विनायक दामोदर सावरकर

1857

का स्वातंत्र्य समर

1857 का

स्वातंत्र्य समर

1857 का स्वातंत्र्य समर

विनायक दामोदर सावरकर

प्रभात पेपरबैक्स

प्रभात प्रकाशन™

ISO 9001 : 2000 का प्रकाशक का उद्यम

www.prabhatbooks.com

उन बलिदानी हुतात्माओं को,
जिन्होंने 1857 के स्वातंत्र्य समर
में अंग्रेजों से लड़ते हुए अपने
प्राणों की आहुति दी।

यह इतिहास की पुस्तक नहीं,
स्वयं भी इतिहास है।

देवेन्द्र स्वरूप

वीर सावरकर रचित '1857 का स्वातंत्र्य समर' मात्र इतिहास की पुस्तक नहीं, यह तो स्वयं में इतिहास है। संभवतः, यह विश्व की पहली पुस्तक है, जिसे प्रकाशन के पूर्व ही प्रतिबधित होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस पुस्तक के प्रकाशन की संभावना मात्र से सर्वशक्तिमान ब्रिटिश साम्राज्य–बीसवीं शती के प्रथम दशक में जहां कभी सूर्यास्त नहीं होता था–इतना थर्रा गया था कि पुस्तक का नाम, उसके प्रकाशक व मुद्रक के नाम–पते का ज्ञान न होने पर भी उसने इस पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया। इस पुस्तक को ही यह गौरव प्राप्त है कि सन् 1901 में इसके प्रथम गुप्त संस्करण के प्रकाशन से 1947 में उसके प्रथम प्रकाशन तक के अड़तीस वर्ष लम्बे कालखं डमें उसके कितने ही गुप्त संस्करण अनेक भाषाओं में छपकर देश–विदेश में वितरीत होते रहे। उस पुस्तक को छिपाकर भारत में लाना एक साहसपूर्ण क्रांति–कर्म बन गया। वह देशभक्त क्रांतिकारियों की 'गीता' बन गई। उसकी अलभ्य प्रति को कहीं से खोज पाना सौभाग्य माना जाता था। उसकी एक–एक प्रति गुप्त रूप से एक हाथ से दूसरे हाथ होती हुई अनेक अंतःकरणों में क्रांति की ज्वाला सुलगा जाती थी।

इतिहास की इस क्रांतिकारी पुस्तक का इतिहास आरंभ होता है सन् 1906 से, जब क्रांति–मंत्र में दीक्षित युवा विनायक दामोदर सावरकर वकालत पढ़ने के नाम पर शत्रु के घर इंग्लैंड में ही मातृभूमि का स्वातंत्र्य समर लड़ने पहुंच जाते हैं। प्रखर राष्ट्रभक्त एवं संस्कृत के महाविद्वान पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'इंडिया हाउस' को अपनी क्रांति–साधना का केंन्द्र बना लेते हैं। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए व्याकुल युवकों का संगठन खड़ा कर लेते हैं। सन् 1907 में 1857 की क्रांति की

पचासवीं वर्षगांठ पड़ी। इस प्रसंग पर भारत में अपने दमन व शोषण के काले इतिहास पर लज्जा और पश्चात्ताप का प्रकटीकरण करने के बजाए ब्रिटिश समाचार–पत्रों व बौद्विकों ने अपने राष्ट्रीय शौर्य की गर्वोक्ति और भारतीय नेताओं की निंदा का दुश्प्रयास करके लंदन में मौजूद भारतीय देशभक्तों को उद्वेलित कर दिया। यह एक प्रकार से बर्रो के छत्ते में ढेला मारने के समान था।

सन् 1857 की पचासवीं वर्षगांठ को ब्रिटेन ने विजय दिवस के रूप में मनाया। ब्रिटिश समाचार–पत्रों ने विशेषांक निकाले, जिनमें ब्रिटिश शौर्य का बखान और भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों की भर्त्सना की गई। 6 मई को लंदन के प्रमुख दैनिक 'डेली टेलीग्राफ' ने मोटे अक्षरों में शीर्षक छापा–'पचास वर्ष पूर्व इसी सप्ताह शौर्य प्रदर्शन से हमारा साम्राज्य बचा था'। जले पर नमक छिड़कने के लिए लंदन में एक नाटक खेला गया, जिसमें रानी लक्ष्मीबाई एवं नाना साहेब जैसे श्रेष्ठ नेताओं को हत्यारा व उपद्रवी बताया गया। सावरकर के नेतृत्व में भारतीय देशभक्तों ने इस अपमान का उत्तर देने के लिए 10 मई को सन् 1857 की पचासवीं वर्ष गांठ बड़ी धूमधाम से मनाई। भारतीय युवकों ने 1857 की स्मृति में अपनी छाती पर चमकदार बिल्ले लगाए। उन्होंने उपवास रखा, सभाएं कीं, जिनमें स्वतंत्र होने तक लड़ाई जारी रखने की प्रतिज्ञा ली गई। भारतीय देशभक्ती के इस सार्वजनिक प्रदर्शन से शासकीय अहंकार में डूबे अंग्रेज तिलमिला उठे। कई जगह भारतीय युवकों से झड़प की नौबत आ गई। हरनाम सिंह एवं आर. एम. खान जैसे युवकों को छाती पर से बिल्ला न हटाने की जिद के कारण विद्यालय से निष्कासन झेलना पड़ा। अंग्रेजों को अपने ही घर में भारतीय राष्ट्रवाद के उग्र रूप का साक्षात्कार हुआ।

किंतु इस प्रकरण ने सावरकर को अंदर से झकझोर डाला। उनके मन में प्रश्नों का झंझावत खड़ा हो गया। सन् 1857 का यथार्थ क्या है? क्या वह मात्र एक आकस्मिक सिपाही विद्रोह था? क्या उसके नेता अपने तुच्छ स्वार्थों की रक्षा के लिए अलग–अलग इस विद्रोह में कूछ पड़े थे? या वह किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सुनिश्चित प्रयास था? यदि हां, तो उस योजना में किसका मस्तिष्क कार्य कर रहा था? योजना का स्वरूप क्या था? क्या सन् 1857 एक बीता हुआ बंद अध्याय है या भविष्य के लिए प्रेरणादायी जीवंत यात्रा? भारत की भावी पीढ़ियों के लिए 1857 का संदेश क्या है? आदि–आदि। सावरकर ने इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए शोध करने का निश्चय किया। ब्रिटिश दस्तावेजों के आगा इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में प्रवेश पा लिया। लगभग डेढ़ वर्ष तक वे इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी और ब्रिटिष म्यूजियम लाइब्रेरी में सन् 1857 संबंधी दस्तावेजों एवं ब्रिटिष लेखन के महासमुद्र में डुबकियां लगाते रहे। जातीय

अहंकार और विद्वेष–जनित पूर्वग्रही ब्रिटिष लेखन में छिपे सत्य को उन्होंने खोज निकाला। 1857 के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करने में वे सफल हुए। उन्होंने 1857 को एक मामूली सिपाही विद्रोह के गड्ढे से उठाकर भारतीय स्वातंत्र्य समर के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। अपनी इस शोध–साधना को उन्होंने मराठी भाषा में निबद्ध किया।

इस बीच लंदन में 10 मई, 1908 को 1857 की क्रांति की वर्षगांठ का आयोजन किया गया। इस अवसर के लिए सावरकर ने 'ट डंतजले' (ऐ शहीदो) शीर्षक से अंग्रेजी में चार पृष्ठ लंबे पैंफ्लेट की रचना की, जिसका इंडिया हाउस में आयोजित कार्यक्रम में तथा यूरोप व भारत में बड़े पैमाने पर वितरण किया गया। इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी और ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में लगातार एक वर्ष तक बैठने के कारण यह तो छिपा नहीं था कि सावरकर 1857 का अध्ययन कर रहे हैं; परंतु उनका अध्ययन किस दिशा में जा रहा है, इसका कुछ आभास इस पैंफ्लेट की काव्यमयी ओजस्वी भाषा 1857 के शहीदों के माध्यम से भावी क्रांति का आह्वान थी। सावरकर ने लिखा–''10 मई, 1857 को शुरू हुआ युद्ध 10 मई, 1908 को समाप्त नहीं हुआ है, वह तब तक नहीं रूकेगा जब तक उस लक्ष्य को पूरा करनेवाली कोई अगली 10 मई आएगी। ओ महान् शहीदों! अपने पूत्रों के इस पवित्र संघर्ष में अपनी प्रेरणादायी उपस्थिति से हमारी मदद करो। हमारे प्राणों में भी जादू का वह मंत्र फूंक दो जिसने तुमको एकता के सूत्र में गूंद दिया था।'' इस पैंफ्लेट के द्वारा सावरकर ने 1857 को एक मामूली सिपाही विद्रोह की छवि से बाहर निकालकर एक सुनियोजित स्वातंत्र्य युद्ध के आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया। 1910 में सावरकर की गिरफ्तारी के बाद उनपर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें पचास वर्ष लंबे कारावास की सजा देने वाले निर्णय में 'ऐ शहीदों' पैंफ्लेट की उपर्युक्त पंक्तियां ही उद्धृत की गई थीं।

10 मई, 1908 को लंदन के इंडिया हाउस में 1857 की क्रांति का वर्षगांठ समारोह अनूठा था। इंग्लैंड और यूरोप के सैकड़ों भारतीय देशभक्त उसमें एकत्र हुए। माथे पर चंदन लगाकर 1857 के शहीदों का पुण्य स्मरण करते हुए मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए सुखों को ठोकर मारकर सर्वस्वार्पण का संकल्प लिया गया। 1857 की क्रांति की संदेशवाहक चपाती का प्रतीक–स्वरूप वितरण हुआ। क्रांति की आग प्रज्वलित करने वाले उक्त पैंफ्लेट का वितरण और वाचन हुआ। इस अनूठे कार्यक्रम का समाचार–पत्रों पर छा गया। सभी पत्रों ने उस पैंफ्लेट को राजद्रोह और क्रांति की चिनगारी सुलगानेवाला बताया।

ब्रिटिश गुप्तचर विभाग बड़ी तत्परता से सावरकर की पुस्तक की पांडुलिपि की खोज में लग गया। ब्रिटिश सरकार की आंखों में धूल झोंककर इस पांडुलिपि की अनेक

देशों में यात्रा, प्रकाशन और प्रकाशन पूर्व प्रतिबंध की रोमांचकारी कहानी हमें 10 जनवरी, 1947 को बंबई से प्रकाशित प्रथम अधिकृत संस्करण में मराठी साप्ताहिक 'अग्रणी' के संपादक श्री जी.एम.जोशी की कलम से तथा दिल्ली स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित फाइलों में मिलती है। जी.एम.जोशी लिखते हैं कि ''सावरकर ने अपनी पहली रचना 'मेजिनी का चरित्र' की तरह ही इस पांडुलिपि को भी प्रकाशन हेतु अपने बड़े भाई बाबाराव सावरकर के पास नासिक भेज दिया। ब्रिटिश गुप्तचर एजेंसियां उस पांडुलिपि की खोज में लगी हुई थी। सावरकर ने पेरिस से प्रकाशित अपने उद्देश्यों को स्पष्ट किया। उन्होंने लिखा कि वे इस पुस्तक के द्वारा देशवासियों के मन में मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए द्वितीय निर्णायक युद्व का संकल्प जगाना चाहते हैं। वे उस इतिहास के माध्यम व दिशा–निर्देश भी करना चाहते हैं। पूरे भारत में स्वतंत्रता समर के लिए संगठन के कार्यक्रम व दिशा–निर्देश भी करना चाहते हैं। पूरे भारत में स्वतंत्रता की अलख जगाने का इससे अधिक प्रभावी व सफल माध्यम क्या हो सकता है कि उनके समाने उस क्रांतियुद्ध, जो निकट भूत में घटा था और जिसकी याद अभी ताजा है, का शुद्व इतिहास प्रस्तुत कर दिया जाए। स्वाभाविक ही, ऐसा ज्वलनशील इतिहास ग्रंथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए भारी डर का कारण बन गया था।

उन्हें कहीं से भनक लगी कि मूल ग्रंथ मराठी भाषा में लिखा गया है और भारत में कहीं उसे छापा जा रहा है। बंबई प्रांत ग्रंथ मराठी भाषा में लिखा गया है और भारत में कहीं उसे छापा जा रहा है। बंबई प्रांत की पुलिस ने महाराष्ट्र के सभी प्रमुख छापेखानों पर एक साथ छापा मारा; किंतु सौभाग्य से जिस छापेखाने में वह छप रहा था उसके मालिक, जो स्वयं भी अभिनव भारत पार्टी से जुड़ा था, को अपने किसी पुलिसवाले मित्र से आसन्न छापे की जानकारी मिल गई। अतः छापा पड़ने के पहले ही पांडुलिपि को वहां से हटा दिया गया और उसे लंदन न भेजकर सुरक्षित पेरिस पहुंचा दिया गया। वहां के भारतीय क्रांतिकारियों ने यह सोचकर कि जर्मनी में संस्कृत ग्रंथों की मुद्रण परंपरा होने के कारण वहां देवनागरी लिपि के मराठी ग्रंथ को छपवाना संभव होगा, पांडुलिपि को जर्मनी भेज दिया। किंतु निराशा हाथ लगी और मराठी पांडुलिपि वापस आ गई। अब क्रांतिकारी टोली ने निर्णय किया कि ग्रंथ का जल्दी–से–जल्दी अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया जाए, अतः उसके कई अध्यायों को अलग–अलग व्यक्तियों को अनुवाद के लिए बांट दिया गया। सुप्रसिद्व क्रांतिकारी वी.वी.एस.अय्यर के मार्गदर्शन में इंग्लैंड में आई.सी.एस और लॉ की परीक्षा की तैयारी में लगे हुए कुछ मेधावी देशभक्त मराठी छात्रों ने शीघ्रातिशीघ्र मराठी ग्रंथ का अंग्रेजी रूपांतर तैयार कर दिया। अब पुनः समस्या खड़ी हुई कि अंग्रेजी ग्रंथ का मुद्रण कहां से हो? ब्रिटिश गुप्तचर विभाग

की सक्रियता के कारण इंग्लैंड के किसी छापेखाने में छपवाना निरापद नहीं था। पेरिस उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों का गढ़ था; किंतु उस समय तक जर्मनी के विरूद्ध फ्रांस और ब्रिटेन का गठबंधन हो चुका था। अतः फ्रांस सरकार का गुप्तचर विभाग भी उन दिनों ब्रिटिश सरकार के दबाव में भारतीय क्रांतिकारियों के पीछे पड़ा हुआ था। जी.एम. जोशी का कहना है कि '' क्रांतिकारियों ने किसी प्रकार हॉलैंड के एक छापेखाने को यह ग्रंथ छापने के लिए तैयार कर लिया और ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को अंधेरे में रखने के लिए प्रचारित कर दिया कि पुस्तक पेरिस में छप रही है।'' जी.एम. जोशी के अनुसार, ''हॉलैंड में छपने के बाद पुस्तक का पूरा संस्करण क्रांतिकारियों के फ्रांस स्थित ठिकानों पर सुरक्षित पहुंच गया, जहां से उसके वितरण की व्यवस्था की गई।''

अब हम दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित फाइलों पर पहुंच जाते हैं। इन फाइलों के अनुसार, न्यू स्कॉटलैंड यार्ड ने 6 नवंबर, 1908 को पुस्तक के छपने की रिपोर्ट ब्रिटिश सरकार को दी, जो तुरंत भारत सरकार को भेजी गई 14 दिसंबर, 1908 के तत्कालीन ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड मिंटों ने आदेश यिा कि पुस्तक के भारत प्रवेश को हमें रोकना होगा। गुप्तचर विभाग के निदेशक ने 18 दिसंबर को लिखा कि निस्संदेह यह पुस्तक बहुत आपत्तिजनक होगी और इसे समुद्र कस्टम्स ऐक्ट की धारा 19 के अंतर्गत प्रतिबंधित करना ठीक होगा और उस पर लेखक के नाम की सही जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। यह जानकारी तभी मिल सकती है, जब एच.ए. स्टुअर्ट नामक अधिकारी ने टिप्पणी लिखी कि अच्छा यह होगा कि हम पोस्ट ऑफिस ऐक्ट के अंतर्गत नोटिस जारी करें। निदेशक, गुप्तचर विभाग सर एडवर्ड हेनरी को इंग्लैंड का गुप्तचर विभाग पुस्तक का सही नाम पता लगाने में असफल रहा। अंतत 11 जनवरी में छपी है।''

इसे कहते हैं अंधेरे में तीर चलाना। भारतीय पोस्ट ऑफिस के महानिदेशक ने सवाल उठाया कि यदि वह पुस्तक माराठी भाशा में है तो बंबई, मध्य प्रांत व राजपुताना सर्किल के डाकखानों में ही उसे रोका जा सकेगा; क्योंकि अन्य प्रांतों में मराठीभाषी कर्मचारी उपलब्ध नहीं हैं। 2 जनवरी 1909 को एक नया सवाल खड़ा हो गया कि अगर वह मराठी पुस्तक जर्मनी से छपकर भारत आ रही है तो उसे समुद्री डाक में ही रोकना होगा; पर काफी सोच–विचार के बाद पोस्ट ऑफिस ऐक्अ के अंतर्गत ही पुस्तक पर

प्रतिबंध लगाने का निर्णय लिया गया; क्योंकि समुद्र कस्टम्स ऐक्ट के अंतर्गत लिये गए किसी भी निर्णय को इंग्लैंड व यूरोप में भी प्रचारित करना पड़ता, जिससे वहां के भारतीय क्रांतिकारी सतर्क हो जाते हैं।

20 जुलाई, 1909 को घबराई हुई बंबई सरकार ने भारत सरकार को तार भेजा कि इस पुस्तक के वितरण को रोकना अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है और वह पुस्तक किसी भी क्षण भारी मात्रा में भारत पहुंच सकती है। अतः हम भारत सरकार से विनम्रतापूर्वक भीख मांगते हैं कि बिना एक क्षण की देरी लगाए समुद्र कस्टम्स ऐक्ट की धारा 19 के अंतर्गत पुस्तक के भारत प्रवेष पर प्रतिबंध का आदेष जारी करें। जहां तक पुस्तक के परिचय का संबंध है, अभी तक प्राप्त जानकारी के अनुसार उसे भारतीय विद्रोह पर विनायक दामोदर सावरकर ने लिखा है। पुस्तक को पूरी तरह घेरने की दृष्टि से उसका परिचय यथासंभव व्यापक कर दिया जाए। आदेश जारी होते ही उसे इंग्लैंड प्रेषित कर दिया जाए। 21 जुलाई, 1990 को भारत सरकार के अधिकारी एच.ए.स्टुअर्ट ने टिप्पणी लिखी कि पुस्तक मराठी में होने के कारण बंबई सरकार बहुत घबराई हुई है। अतः प्रचार की परवाह न करके भी समुद्र कस्टम्स ऐक्ट के अंतर्गत प्रतिबंध का आदेष जारी करना उचित रहेगा। किंतु मेरी जानकारी है कि उस पुस्तक के अंग्रेजी और मराठी दोनों भाषाओं में संस्करण छप चुके हैं। अंग्रेजी संस्करण को लंदन में ए. बोन्नेर ने छापा है। पोस्ट ऑफिस ऐक्ट के अंतर्गत 11 जनवरी का आदेष केवल मराठी संस्करण पर लागू होता है, अतः आदेश की भाषा में संशोधन करना होगा। संशोधित आदेश में भाषा रखी जाए, 'भारतीय विद्रोह पर विनायक दामोदर सावरकर द्वारा मारठी में लिखित पुस्तक या पैंफ्लेट और उसका अंग्रेजी अनुवाद या रूपांतर।'

साथ ही स्टुअर्ट ने यह भी लिखा कि ''बंबई सरकार का यह कथन कि घोषण–पत्र को तुरंत इंग्लैंड सूचित किया जाए, पुनर्विचार चाहता है। मेरे विचार से इंग्लैंड सूचना न भेजी जाए, क्योंकि पुस्तक की अधिक–से–अधिक प्रतियों को जब्त करने के लिए आवश्यक है कि इंग्लैंड में ही उसका जहाज से लदान रोका जाए। वहां नोटिस भेजने का परिणाम होगा कि सावरकर के मित्रगण को इसकी जानकारी हो जाएगी और वे प्रतिबंध के आदेश के उल्लंघन के नए–नए रास्ते खोज लेंगे।''

उसी दिन 21 जुलाई को क्रिमिनल इंटेलिजेंस के उप–निदेशक ए.बी. बर्नार्ड ने लिखित सूचना दी कि हमारी जानकारी के अनुसार सावरकर की पुस्तक का अभी तक केवल अंग्रेजी संस्करण ही छप पाया है और उसका शीर्षक' 1857 की क्रांति का इतिहास' या '1857 का इतिहास' रखा गया है। पुस्तक का प्रकाशन कार्य 24 जून तक पूर्ण हो जाना था। अतः अगली डाक से उसके भारत पहुंचने की पूरी संभावना है। इसका अर्थ है कि उसकी प्रतियां पहले ही रवाना की जा चुकी हैं और इस समय रास्ते

में होंगी। अतः आदेश को तार द्वारा इंग्लैंड भेजने से भी पुस्तकों का जहाज पर लदान रोका नहीं जा सकेगा। 22 जुलाई को भारत सरकार के एक अधिकारी एम.एम.एस. गुब्बाय ने आपत्ति उठाई कि पुस्तक के विवरण की भाशा समुद्री कस्टम्स ऐक्ट की धारा 19 के लिए पर्याप्त नहीं है। इस कानूनी आपत्ति ने भारत सरकार के सामने नया संकट खड़ा कर दिया। क्या वे कानूनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए पुस्तक को अपनी आंखों से देखने तक प्रतीक्षा करते रहें? इसका अर्थ होगा भारत में पुस्तक का प्रवेश, जिसे रोकने के लि वे छह महीने से यह व्यायाम कर रहे हैं। बंबई सरकार अगले ही क्षण आदेष जारी होने के लिए छटपटा रही थी। दिन भर की माथा–पच्ची के बाद सरकार ने 22 जुलाई, 1909 को थोड़े संशोधन के बाद पुस्तक का विवरण देने के लिए निम्नलिखित शब्दावली को अपनाया–

''भारतीय विद्रोह के बारे में वी.डी. सावरकर द्वारा मराठी में लिखित पुस्तक या पैंफ्लेट, जिसके जर्मनी में छपने की रिपोर्ट मिली है और उसका अंग्रेजी अनुवाद।'' 23 जुलाई, 1909 की इस शब्दावली के साथ समुद्री कस्टम्स ऐक्ट की धारा 19 के अंतर्गत पुस्तक पर प्रतिबंध का आदेश अंततः जारी कर दिया गया।

राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित सरकारी फाइलों से उपलब्ध वायसराय स्तर तक की इन उच्च–स्तरीय टिप्पणियों से स्पष्ट होता है कि 6 नवंबर, 1908 से 23 जुलाई, 1909 तक पूरे नौ महीने ब्रिटिश गुप्तचर विभाग एवं भारत सरकार जी–तोड़ कोशिश करके भी पुस्तक की भाषा, शीर्षक, मुद्रण स्थान एवं उस प्रकाशित लेखक के नाम के बारे में सही जानकारी नहीं पा सके और अंधेरे में ही तीर चलाते रहे। प्रकाशन के पूर्व ही किसी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाने की ब्रिटिश सरकार की इस हताश कार्यवाही ने उसे बहुत हास्यास्पद स्थिति में ला दिया। अभिव्यक्ति–स्वातंत्र्य की अलमबरदार होने का ढिंढोरा विश्व भर में पीटनेवाली अपनी सरकार की वकालत करने में ब्रिटिश समाचार–पत्र एवं बुद्धिजीवी स्वयं को असमर्थ पाने लगे। इस पर सावरकर ने सर्वाधिक प्रतिष्ठित दैनिक 'द लंदन टाइम्स' में संपादक के नाम पत्र लिखकर ब्रिटिश सरकार पर तीखा व्यंग्य तीर चला दिया। सावरकर ने लिखा–''ब्रिटिश अधिकारियों ने स्वीकार किया है िकवे निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वह पुस्तक अभी छपी है कि नहीं। यदि ऐसा है तो सरकार ने यह कैसे जान लिया िकवह पुस्तक भयावह राजद्रोहात्मक है? क्यों वे उसके छपने या प्रकाशन के पूर्व ही उसे प्रतिबंधित करने के लिए दौड़ पड़े? या तो सरकार के पास पांडुलिपि के प्रति है या नहीं है। यदि उनके पास पांडुलिपि की प्रति है तो वे मुझ पर राजद्रोह का मुकदमा क्यों नहीं चलाते, क्योंकि उनके सामने यही एकमात्र वैधानिक रास्ता खुला रह जाता है। और यदि उनके पास पांडुलिपि की प्रति है ही नही ंतो वे जिस पुस्तक के बारे में अपुष्ट अफवाहों या उड़ती बातों के अलावा कुछ

नहीं जानते, उसे राजद्रोहात्मक कहकर प्रतिबंधित कैसे कर सकते हैं?'' 'द लंदन टाइम्स' ने सावरकर के उपर्युक्त पत्र को न केवल पूरा छापा बल्कि उसके साथ अपनी टिप्पणी भी जोड़ी कि यदि सरकार ने ऐसा कठोर और असामान्य पग उठाया आवश्यक समझा तो इससे सिद्ध होता है कि दाल में कुछ काला है।

यदि भारत सरकार के किसी अधिकारी एच.ए. स्टअर्ट को 21 जुलाई को ही पता चल चुका था कि पुस्तक का अंग्रेजी रूपांतर लंदन के ए. बोन्नेर प्रकाशन गृह ने मुद्रित किया है तो उस पर छापा क्यों नहीं मारा गया? क्यों 23 जुलाई, 1909 को प्रतिबंध लगानेवाली विज्ञप्ति में पुस्तक का परिचय गोलमोल भाषा में देना पड़ा? इसका निर्णयकरन अभी भी कठिन हो रहा है कि उस पुस्तक का प्रथम गुप्त संस्करण हॉलैंड में छपा या इंग्लैंड में। जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं कि सन् 1947 में प्रकाशित प्रथम अधिकृत संस्करण में श्री.जी.एम.जोशी द्वारा 11 जनवरी, 1947 की तिथि में लिखित प्राक्कथन के अनुसार वह संस्करण हॉलैंड में छपा था, किंतु उसी संस्करण के प्रारंभ में छिपाने और ब्रिटिश सरकार को गुमराह करने के लिए जान–बुझकर इंग्लैंड में छापा गया? सत्य चाहे जो हो, ब्रिटिश सरकार की भरसक कोशिशों के बावजूद पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण छप ही गया। उसका शीर्षक था–'एक भारतीय राष्ट्रवाद'।

अब शुरू हुआ पुस्तक का वितरण अभियान। इस अभियान की कहानी पुस्तक के प्रकाशन अभियान से भी अधिक रोमांचकारी है। पुस्तक की प्रतियों को चोरी–छिपे भारत पहुंचाने के लिए उन्हें 'पिकनिक पेपर्स', 'स्कॉट की रचनाएं', 'डॉन क्विग्जोट' जैसी लोकप्रिय निरापद पुस्तकों के नकली आवरणों के भीतर छिपा दिया जाता था। उन दिनों उस पुस्तक की एक प्रति को भी सुरक्षित भारत पहुंचा देने को सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार को चुनौति देने का साहस भरा क्रांतिकारी कार्य माना जाने लगा था। इसके लिए नए–नए तरीके खोजे गए। अपने सामन की पेटी में नकली तली के नीचे छिपाकर पुस्तक लाना एक तरीका था। इस तरीके को अपनानेवालों में सिकंदर हयात खान और आसफ अली जैसे प्रसिद्व लोगों के नाम भी आते हैं।

पुस्तक की भाषा तो ओजस्वी थी ही, उसमें प्रस्तुत तथ्यों को चुनौति दे पाना ब्रिटिश इतिहासकारों के लिए संभव नहीं हो रहा था। 'टाइम्स' संवाददाता वेलेंटाइन चिरोल ने सन् 1910 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'इंडियन अनरेस्ट' में लिखा कि ''यह भारतीय विद्रोह का अद्‌भुत इतिहास है, जिसमें गहन शोध और तथ्यों की भयंकर विकृति का मिश्रण है। इसमें एक महान् साहित्यिक प्रतिभा ने राक्षसी घृणा को परोसा है।''

ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशन–पूर्व प्रतिबंध की असामान्य घोषणा ने पुस्तक को एकदम लोकप्रिय बना दिया। प्रत्येक देशभक्त युवा अंतःकरण उसे पढ़ने के लिए छटपटाने लगा। उस दुर्लभ पुस्तक की एक–एक प्रति उस जमाने में 300 रूपए में गुप्त रूप से बिकने लगी। उसे पढ़ना और पढ़वाना क्रांति–धर्म बन गया। एक प्रति गुप्त रूप से अनेक हाथों में क्रम से घूमती रहती। आतुर युवक पूरी–पूरी रात लालटेन की रोशनी में बंद कमरे में छिपकर पुस्तक का पारायण करते और स्वयं को क्रांति–मंत्र में दीक्षित मानने लगते। स्वाभाविक ही इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए जगह–जगह उसके अनधिकृत संस्करण गुप्त रूप से छपने लगे। एक हाथ से दूसरे हाथ तक पुस्तक का प्रसारण यदि जोखिम भरा था तो उसका गुप्त रूप से मुद्रण तो बहुत ही जोखिम भरा रहा होगा। ऐसे कितने संस्करण किस–किस भाषा में कहां–कहां छपे, इसकी पूरी जानकारी आना अभी शेष है। कुछ ही संस्करणें की जानकारी अभी तक उपलब्ध हो पाई है।

पुस्तक के अध्ययन की भूख केवल भारत तक ही सीमित नहीं थी, यूरोप, जापान और अमेरिका में भी उसकी चाह पैदा हुई। उसका फ्रेंच अनुवाद सन् 1910 में ही प्रकाशित हो गया। एम.पी.टी. आचार्य और मैडम कामा ने वह फ्रेंच अनुवाद तैयार किया। एक फ्रांसिसि क्रांतिकारी व पत्रकार ई. पिरियोन ने उसका प्राक्कथन लिखा। उसकी भाषा व शैली से अभिभूत होकर उन्होंने लिखा कि यह एक माहकाव्य है, दैवी मंत्रोच्चार है, देशभक्ति का दिशाबोध है। यह पुस्तक हिंदू–मुस्लिम एकता का संदेश देती है, क्योंकि महमूद गजनवी के बाद 1857 में ही हिंदुओं और मुसलमानों ने मिलकर समान शत्रु के विरूद्ध युद्ध लड़ा। यह सही अर्थों में राष्ट्रीय क्रांति थी। इसने सिद्ध कर दिया कि यूरोप के महान् राष्ट्रों के समान भारत भी राष्ट्रीय चेतना प्रकट कर सकता है।''

यद्यपि पुस्तक पर लेखक का नाम 'एक भारतीय राष्ट्रभक्त' छपा था; किंतु श्री पिरियोन द्वारा लिखित इस प्राक्कथन को फ्रेंच पत्रिका 'ले कोरियर' ने अपने 25 जुलाई, 1910 के अंक में छाप दिया। ब्रिटिश कोप से घबराकर फ्रांस की सरकार ने पत्रिका के उस अंक को ही प्रतिबंधित कर दिया।

10 मई, 1910 को 1857 की वर्षगांठ के अवसर पर एक चित्रमय पोस्टकार्ड जारी किया गया, जिसमें 1857 के क्रांति संदेश के साथ रानी लक्ष्मीबाई का चित्र छापा गया। चित्र के नीचे सूचना छापी गई–'1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' पुस्तक को पाने के लिए मैडम बी.आर. कामा को पेरिस क`पते पर पत्र लिखें या न्यूयॉर्क की एफ.एच. पब्लिकेशन कमेटी का पत्र लिखें।

अंग्रेज बुद्विजीवियों, राजनीतिज्ञों में भी इस पुस्तक को पढ़ने की उत्कंठा जाग्रत

हुई । वे कैसे भी पुस्तक की प्रति प्राप्त करके अपने मित्रों को एक अलभ्य उपहार के नाते भेंट करते। ऐसे ही अंग्रेज मित्र सर चार्ल्स क्लीवलैंड से खिलाफत आंदोलन के प्रसिद्व नेता मुहम्मद अली को यह पुस्तक पढ़ने को मिली थी।

सन् 1910 में भारतीय क्रांतिकारियों पर ब्रिटिश दमन–चक्र घूमा। वीर सावरकर लंदन में गिरफ्तार करके भारत लाए गए और उन्हें दो जन्मों का कारावास दंड देकर काला पानी (अंडमान) भेज दिया गया। भारत में भी बड़ी संख्या में क्रांतिकारियों की धर–पकड़ हुई। बड़ी संख्या में उन्हें अंडमान टापू भेज दिया गया। इस आघात से थोड़ा संभलते ही मैडम कामा, लाला हरदयाल एवं वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय आदि क्रांतिकारियों ने '1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' का अंग्रेजी में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया। पहला संस्करण तो निःशुल्क वितरित किया गया था। किंतु इस संस्करण का मूल्य रखा गया, ताकि क्रांतिकारी दल को थोड़ा–बहुत आर्थिक सहारा मिल सके।

इस बीच लाला हरदयाल फरवरी 1911 में अमेरिका के पश्चिमी तट पर सान फ्रांसिस्को पहुंच गए। वहां बड़ी संख्या में पंजाबी सिक्ख व गैर–केशधारी बसे हुए थे। लाला हरदयाल ने सन् 1913 में गदर पार्टी की स्थापना की। नवंबर 1913 में उन्होंने उर्दू में 'गदर' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और जनवरी 1914 से गुरूमुखी लिपि में पंजाबी संस्करण शुरू किया। हरदयाल के मन पर सावरकर की रचना की गहरी छाप बैठी हुई थी। वे उसे दूसरे स्वातंत्र्य समर का पथ–प्रदर्शक मानते थे। इसलिए उन्होंने 'गदर' पत्रिका के उर्दू एवं पंजाबी संस्करणों में उस पुस्तक के अंशों को धारावाहिक छापना आरंभ कर दिया। सार्वजनिक सभाओं में भी उनका वाचन किया जाता। इस प्रकार इस पुस्तक के उर्दू व पंजाबी अनुवाद भी तैयार हो गए। सावरकर ने जो आशा की थी सन् 1857 का इतिहास लिखने के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य देशभक्तों को द्वितीय स्वातंत्र्य समर की प्रेरणा व संगठन योजना प्रदान करना है, उसे उन्होंने प्रथम विश्वयुद्व के समय भारतीय सेनाओं में विद्रोह का मंत्र फूंका। 'कोमागाटामारू' नामक जहाज से क्रांतिकारियों के जत्थे शस्त्रास्त्रों के साथ भारत की ओर रवाना हुए। हांगकांग, सिंगापुर और बर्मा में स्थित ब्रिटिश सेनाओं में बगावत हुई। यह सब सावरकर द्वारा रचित '1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' पुस्तक का ही चमत्कार था।

इसके बाद इस ग्रंथ का एक संस्करण भारत में भगत सिंह के क्रांतिकारी दल ने प्रकाशित किया। सन् 1912 में शहीद भगत सिंह द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन की कहानी उनके एक अनन्य सहयोगी एवं प्रसिद्व समाजवादी नेता राजाराम शास्त्री के शब्दों में ही कहना ठीक रहेगा। 'अमर शहीदों के संस्मरण' नामक अपनी रचना में राजाराम शास्त्री लिखते हैं

''वीर सावरकर द्वार लिखित' 1857 का स्वातंत्र्य समर' पुस्तक ने भगत सिंह को बहुत अधिक प्रभावित किया था। यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी। मैंने इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा सुनी थी और इसे पढ़ने का बहुत ही इच्छुक था। पता नहीं कहां से भगत सिंह को यह पुस्तक प्राप्त हो गई थी। वह एक दिन इसे मेरे पास ले आए। जिससे ली होगी उसे जल्द वापस करनी होगी, इसलिए वह मुझे बहुत कहने पर देने को तैयार नहीं हो रहे थे। पर जब मैंने जल्द–से–जल्द पढ़कर उसे अवश्य लौटा देने का पक्का वायदा किया, तब उन्होंने वह मुझे केवल 3 घंटे के लिए पढ़ने को दी। उसको मैं कभी नहीं भूल सकता। मैंने एम वक्त खाना नहीं खाया और रात–दिन उसे पढ़ता ही रहा। पुस्तक ने मुझे बहुत ज्यादा प्रभावित किया। भगत सिंह के अपने पर मैंने पुस्तक की बहुत प्रशंसा की। कुछ समय बाद भगत सिंह ने एक दिन मुझसे कहा कि 'यदि तुम कुछ परिश्रम करो और मदद करने के लिए तैयार हो जाओ तो गुप्त रूप से इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उपाय सोचा जाए।' मैं पूर्ण रूप से सहायता करने को तैयार हो गया।

''भगत सिंह ने किसी प्रेस में प्रबंध कर दिया। वह प्रतिदिन रात के समय कुछ मैटर मुझे प्रूफ देखने को दे जाते थे; मैं रात में उसे देखकर प्रूफ ठीक करके रख छोड़ता था। दूसरे दिन भगत सिंह उस ले जाते थे। कुछ दिनों तक बराबर यह सिलसिला चलता रहा। इस पुस्तक को दो खंडों में प्रकाशित किया गया। प्रत्येक खंड की कीमत आठ आना रखी गई, फिर गुप्त रूप से इसे बेचने का प्रबंध हुआ। मुझे याद है कि मैंने इस पुस्तक को सर्वप्रथम राजर्षि श्री पुरूषोत्तमदास टंडन के हाथ बेचा था। इसके प्रकाशन से टंडन जी बहुत प्रसन्न हुए थे। इसके बेचने में सुखदेव ने बहुत अधिक परिश्रम किया था; (पृ. 89–90)

सन् 1929–30 में भगत सिंह और उनके क्रांतिकारी साथियों की गिरफ्तारी के समय उनमें से अधिकांश के पास इस पुस्तक की प्रतियां पुलिस को प्राप्त हुई। सन् 1942 में जर्मनी में फ्रेंड्स ऑफ इंडिया सोसाइटी ने भी इस पुस्तक का एक संस्करण प्रकाशित किया।

आजाद हिंद फौज के निर्माण में '1857 का स्वातंत्र्य समर' पुस्तक की भारी भूमिका रही। आजाद हिंद फौज के मूल संस्थापक रासबिहारी बोस क्रांतिकारी बोस क्रांतिपथ पर सावरकर को अपना गुरू मानते थे। जापान में शरण लेने के बाद भी वे द्वितीय विश्व युद्व तक सावरकर से लगातार पत्राचार करते रहे। वे जापान में हिंदू महासभा के अध्यक्ष भी बने। उन्होंने ही सुभाषचन्द्र बोस को आजाद हिंद फौज का नेतृत्व करने के लिए जर्मनी से जापान आने का निमंत्रण दिया था। सुभाष बाबू भी सावरकर के प्रति श्रद्वाभव रखते थे और स्वतंत्रता–प्राप्ति की उनकी रणनीति से सहमत थे। द्वितीय विश्व युद्व द्वारा उत्पन्न

स्थिति का लाभ उठाने के लिए जनवरी 1941 में ब्रिटिश सरकार की आंखों में धूल झोंककर भारत के विदेश पलायन के छह महीने पूर्व 22 जून, 1940 को उन्होंने बंबई में सावरकर के निवास–स्थान पर उनसे गुप्त मंत्रणा की थी। अतः यह कहा जा सकता है कि आजाद हिंद फौज के गठन और ब्रिटिश विरोधी रणनीति की प्रेरणा रासबिहारी बोस व सुभाषचंद्र बोस को सावरकर द्वारा लिखित '1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' पुस्तक से ही प्राप्त हुए थे। उसी को आदर्श रूप में सामने रखकर नेताजी ने रानी झांसी रेजीमेंट का गठन किया था। आजाद हिंद फौज के सेनाधिकारियों ने स्वीकार किया कि इस पुस्तक का एक संस्करण विशेष रूप से छपवाकर सैनिकों को पढ़ने के लिए दिया जाता था। अंग्रेजी के अतिरिक्त एक तमिल संस्करण का प्रकाशन भी हुआ था। इस ग्रंथ का पाठन बार–बार किया जाता था। तमिल संस्करण का संपादन आजाद हिंद फौज के एक प्रचार अधिकारी जयमणि सुब्रह्मण्यम ने किया था। उन्होंने स्वयं ही बताया कि नेताजी सुभाषचंद्र बोस के आर्शीवाद से ही वह संस्करण तैयार हुआ था।

सावरकर द्वारा लिखित इतिहास की इस महान रचना ने सन् 1914 के गदर आंदोलन से 1943–44 की आजाद हिंद फौज तक कम–से–कम दो पीढ़ियों को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। बंबई की 'फ्री हिंदुस्तान' साप्ताहिक पत्रिका ने मई 1946 में 'सावरकर विशेषांक' प्रकाशित किया, जिसमें के.एफ.नरीमन ने अपने लेख में स्वीकार किया कि 'आजाद हिंद फौज की कल्पना और विशेषकर रानी रेजीमेंट के नामरण की मूल प्रेराा सन् 1857 की महान क्रांति पर वीर सावरकर की जब्तशुदा रचना में ही दिखाई देती है।' 'यदि सावरकर ने 1857 और 1943 के बीच हस्तक्षेप न किया होता तो मुझे विश्वास है कि आजाद हिंद फौज के ताजा प्रयासों को भी एक मामूली विद्रोह कह दिया गया होता। किंतु धन्यवाद है सावरकर की पुस्तक को कि 'गदर' शब्द का अर्थ ही बदल गया। यहां तक कि अब लॉर्ड वावेल भी नेताजी सुभाषचंद्र बोस के प्रयास को मामूली गदर कहने का साहस नहीं कर सकता। इस परिवर्तन का पूरा श्रेय सावरकर और केवल सावरकर को ही जाता है।''

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद स्वतंत्रता की दस्तक सुनाई देने लगी थी। जनमानस में बहुत परिवर्तन आ गया था। महाराष्ट्र में सावरकर की सभी रचनाओं, विशेषकर '1857 का स्वातंत्र्य समर' पर से प्रतिबंध हटाने की मांग ने एक जन–आंदोलन का रूप धारण कर लिया। एक सावरकर–भक्त एम.एस.गोखले ने गुप्त रूप से इस पुस्तक को छापकर घोषणा कर दी कि यदि पुस्तक पर से प्रतिबंध न हटाया गया तो वे सार्वजनिक रूप से पुस्त की ब्रिकी करके प्रतिबंध के कानून का

उल्लघंन करेंगे। इस विषय पर प्रबल जन–भावनाओं को पहचानकर बंबई प्रांत की कांग्रेस सरकार ने मई 1946 में इस पुस्तक सहित सावरकर की सभी रचनाओं पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के अड़तीस वर्ष पुराने आदेश को रद्द कर दिया। तब कहीं जाकर जनवरी 1947 में महान् एतिहासिक ग्रंथ का प्रथम कानूनी संस्करण प्रकाशित हो पाया।

10 जनवरी, 1947 का जी.एम.जोशी ने जब इस पुस्तक के प्रथम अधिकृत कानूनी संस्करण की भूमिका में इस पुस्तक का रोमांचकारी इतिहास लिखा तब तक पुस्तक की मूल मराठी पांडुलिपि उपलब्ध नहीं हुई थी और यह मान लिया गया था कि सावरकर द्वारा 1901 में लिखित सिक्ख इतिहास की पांडुलिपि के समान यह भी सदा के लिए खो गई है। जी.एम.जोशी लिखते हैं कि ''सावरकर की गिरफ्तारी के बाद मूल मराठी पुस्तक की पांडुलिपि को मैडम कामा के पास पेरिस भेज दिया गया थां उन्होंने ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के एजेंटों के हाथ में पड़ने से बचाने के लिए उस पांडुलिपि को बैंक ऑफ फ्रांस में अपने लॉकर में सुरक्षित छिपा दिया। फ्रांस पर जर्मनी के आक्रमण के कारण फ्रांस का शासन–तंत्र बुरी तरह अस्त–व्यस्त हो गया। मैडम कामा की भी मृत्यु हो गई। फलतः बहुत खोजबीन के बाद भी उस पांडुलिपि कोई पता नहीं लग पाया। इस प्रकार मराठी साहित्य का एक महान् पुष् खो गया और उसकी प्राप्ति की सभी आशाएं समाप्त हो गई।''

किंतु वीर सावरकर के जीवनीकार धनंजय कीर के अनुसार, ''भारत की स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद वह पांडुलिपि सावरकर के पास बड़े नाटकीय ढंग से वापस लौट आई।'' उनके अनुसार, ''अभिनव भारत' के एक सदस्य गोआ निवासी जे.डी.एस. कोरिन्हो फ्रांस स्थित पुर्तगाली दूतावास की सहायता से उन उथल–पुथल के दिनों में उस पांडुलिपि को लेकर पहले पुर्तगाल और वहां से अमेरिका पहुंच गए। वे वाशिंगटन के एक कॉलेज में शिक्षक हो गए। तमाम कठिनाइयों और संकटों से जूझकर भी उन्होंने अड़तीस साल तक इस बहुमूल्य पांडुलिपि को सुरक्षित संजोकर रखा और भारत के स्वाधीन होने पर डॉ. डी.वाई. गोहकर नामक एक सज्जन के माध्यम से उसे सावरकर के पास वापस भेज दिया।'' हरींद्र श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'फाइव स्टोर्मी ईयर्स : सावरकर इन लंदन' में इस कहानी में इतनी जानकारी और जोड़ते हैं कि ''डॉ. गोहकर उस समय अमेरिका में पढ़ रहे थे और अब महाराष्ट्र राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष हैं।'' हरींद्र के अनुसार, '' पांडुलिपि सावरकर को मई 1949में प्राप्त हुई; पर उसमें वे दे अध्याय नहीं थे, जिन्हें ब्रिटिश गुप्तचर तंत्र ने पुस्तक पर प्रतिबंध लगने से पूर्व चोरी कर लिया था'' उनका कहना है कि वीर सावरकर के भतीजे बालाराव सावरकर ने आवश्यक संशोधन करके मराठी ग्रंथ को भी प्रकाशित कर दिया है।

जनवरी 1947 के अंग्रेजी संस्करण में पुस्तक की यात्रा कथा को जी.एम.जोशी ने बालाराव के साथ मिलकर लिखा है। उस संस्करण के प्रकाशन की अनुमति स्वयं वीर सावरकर ने फोनिक्स प्रकाशन गृह को दी थी। तब वश्य ही जी. एम. जोशी एवं बाल सावरकर द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई पुस्तक–गाथा को वीर सावरकर ने देख लिया होगा। यहां कुछ प्रश्न खड़े होते है कि यदि मूल पांडुलिपि मैडम कामा के बैंक लॉकर में सुरक्षित थी तो वह कोरिन्हो के पास कब, कैसे पहुंची ? यदि कीर के अनुसार, मई 1917 के पूर्व अड़तीस वर्ष वह कोरिन्हो के पास रही तो इसका अर्थ है कि सन् 1911 के लगभग ही वह उन्हें मिल गई होगी। मैडम कामा सन् 1935 में भारत आई और 1916 में अपनी मृत्यु तक एक वर्ष तक यहां रहीं। उन दिनों वीर सावरकर जेल के बाहर रत्नागिरी जिले में स्थानबद्ध जीवन व्यतीत कर रहे थे। क्या उन दिनों मैडम कामा और उनका कभी कोई संपर्क नहीं हुआ? क्या मैडम कामा ने उन्हें पांडुलिपि कोरिन्हो को देने की बात नहीं बताई? जी.एम. जोशी के वर्णन से लगता है कि जानवरी 1947 तक बहुत खोजबीन के बाद भी उन पांडुलिपि का पता नहीं लग पाया था और उसे खोया हुआ मान लिया गया था। इसका अर्थ होता है कि एस समय तक वीर सावरकर को भी उस पांडुलिपि को कोई अता–पता नहीं था। क्या यह संभव है? दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है कि यदि मई 1949 में वापस मिली पांडुलिपि में दो अध्याय नहीं थे, क्योंकि वे ब्रिटिश गुप्तचरों द्वारा चोरी कर लिये गए थे, तो यह चोरी कब हुई होगी? प्रतिबंध का आदेश 23 जुलाई, 1909 को जारी हुआ। अंग्रेजी अनुवाद उसके पूर्व प्रकाशित हो चुका था। अंग्रेजी अनुवाद मराठी मूल के आधार पर ही हुआ होगा। क्या हम यह मान लें कि मराठी पांडुलिपि के दो अध्यायों की चोरी अंग्रेजी अनुवाद पूरा हो जाने के बाद हुई? अंतिम प्रश्न यह उठता है कि बालाराव सावरकर ने मराठी पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए उन दो अध्यायों को कैसे पूरा किया? क्या उन्होंने प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद का मराठी रूपांतर करके पुस्तक को पूरा किया? क्या उन्होंने प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद का मराठी रूपांतर करके पुस्तक को पूरा किया? वीर सावरकर 25 फरवरी, 1966 तक जीवित थे। 1947 में 1857 के स्वातंत्र्य समर का शताब्दी वर्ष भी उनके सामने मनाया गया। क्या उन्होंने मराठी ग्रंथ की पांडुलिपि के इतिहास पर कहीं कोई प्रकाश डाला? ये सभी प्रश्न पुस्तक के इतिहास को रहस्यपूर्ण बना देते हैं।

1957 में 1857 की क्रांति की शताब्दी के अवसर पर पुनः यह असमंजस खड़ा हुआ कि उस घटना को क्या कहें–गदर, क्रांति या स्वातंत्र्य समर? वरिष्ठ इतिहासकार आर.सी.मजूमदार ने उसे 'सिपाही विद्रोह' कहा तो उन्हीं के शिष्य डॉ, एस.बी.चौधरी ने उसे 'जन विद्रोह' का शीर्षक दिया। भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी ने उसे '1587 का विद्रोह' कहा। भारत सरकार ने विवाद से बचने के लिए इतिहासकार एस.एन. सेन द्वारा

लिखित पुस्तक में केवल '1587' जैसा नपुंसक शीर्षक अपनाया। पर, दो वर्ष बाद ही सन् 1959 में मास्को से सोवियत संघ ने अमेरिका के एक दैनिक पत्र 'न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून' में कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगिल्स द्वारा 1857 की क्रांति पर लेखों का एक संकलन प्रकाशित किया और इस संकलन के लिए उन्होंने 'प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य समर 1857–59' जैसा शीर्षक ही अपनाया। इधर सन् 1857 की घटना के स्वरूप को लेकर आर.सी. मजूमदार और उनके शिष्य एस.बी.चौधरी में जबरदस्त बौद्धिक बहस छिड़ गई, जिसका समापन करने के लिए एस.बी.चौधरी ने सन् 1965 में 'थ्योरीज ऑन इंडियन म्युटिनी' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में उन्होंने सन् 1857 से अब तक इस घटना के स्वरूप के बारे में जितने मत प्रतिपादित हुए थे और नामकरण किए गए थे, उन सभी की समीक्षा की। अंत में उन्होंने सावरकर द्वारा प्रस्तुत चित्रण और नामकरण को ही तथ्यों की कसौटी पर सही ठहराया।

यह सावरकर की ऐतिहासिक दृष्टि की भारी विजय थी। सन् 1909 में प्रकाशित प्रथम गुप्त संस्करण की भूमिका में सावरकर ने लिखा था कि यद्यपि उन्हें इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी व नेशनल म्यूजियम लाइब्रेरी में केवल ब्रिटिश सरकार के दस्तावेजों एवं ब्रिटिश लेखकों की पुस्तकों पर ही अवलंबित रहना पड़ा, किंतु उस पूर्वग्रह–युक्त विशाल सामग्री में भी उन्हें 'सिपाही विद्रोह' के परदे के भीतर एक सुनियोजित स्वातंत्र्य समर के स्पष्ट दर्शन तथ्यों में से कैसा नया चित्र उभर आता है, इतिहास–लेखन के क्षेत्र में उसका यह अत्युत्तम उदाहरण है। इसीलिए सावरकर की पुस्तक दो–दो स्वातंत्र्य समरों (1814 व 1943) का प्रेरणा–स्त्रोत बन गई।

देवेन्द्र स्वरूप

ओ हुतात्माओं !

स्वतंत्रता संग्राम आरंभ हो एक बार

पिता से पुत्र को पहुंचे बार–बार

भले हो पराजय यदा–कदा

पर मिले विजय हर बार।

आज 10 मई है। 1857 के स्मरणीय वर्ष में आज के दिवस ही, ओ हुतात्माओ! आपके द्वारा भारतवर्ष की रणभूमि में स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम अभियान का सूत्रपात किया गया था। अपनी पतनकारी दासता के भाव से जाग्रत हो हमारी मातृभूमि ने अपना खड्ग निकाल लिया था और बेड़ियों को भंग करते हुए अपनी मुक्ति और सम्मान हेतु प्रथम प्रहार किया था। आज ही के दिवस 'मारो फिरंगी को' का रणघोष कोटि–कोटी कंठों से गूंज उठा था। आज ही के दिवस मेरठ के सिपाहियों ने भयानक विद्रोह में शामिल होते हुए दिल्ली की ओर कूच किया था और सूर्य के प्रकाश में झिलमिलाते यमुना जल के दर्शन किए थे, और उन ऐतिहासिक पलों को आत्मसात् किया था तथा प्राचीन युग का अवसान कर नए युग का उदय किया था और ''एक ही पल में अपने नेता, अपने ध्वज तथा एक कारण को प्राप्त कर लिया था और सैनिक विद्रोह को एक राष्ट्रीय व धार्मिक संग्राम में परिवर्तित कर दिया था।''

ओ हुतात्माओ! समस्त सम्मान आपको प्राप्त हों, क्योंकि जाति के संरक्षण व सम्मान के लिए आपने उस समय क्रांति की कठोर अग्निपरीक्षा को सहन किया जब इस पावन भूमि के धर्मों पर बलात् व कुटिलतापूर्ण धर्मांतरण का संकट छा रहा था। जब पाखंडी ने अपने मित्रवत् आवरण को उतार फेंका था और विश्वासघाती शत्रु के घृण्ति रूप में नग्न खड़ा हो गया था तथा संधियों का उल्लघंन करने लगा था, मुकुटों को भंग करने लगा था और हमारी कृपालू मातृभूमि का उसकी निष्ठा के लिए उपहास करने लगा था, जिससे उसने मिथ्याभाषी गोरों के ढोंग का विश्वास किया था।

हे बलिदानियों! तभी आपने माता को जाग्रत किया, प्रेरित किया और माता के हेतु ही 'मारो फिरंगी को' के रणघोष के साथ भयावह व विशाल रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। आपके ध्वज पर ईश्वर और हिंदुस्तान का पवित्र मंत्र था। संग्राम में आपने नेक कार्य किया, क्योंकि भले ही आपका रक्तपात होने से बच जाता, लेकिन दासता का दंश कहीं अधिक गहरा होता। आत्मबलहीन धैर्य की अभिशापित श्रृंखला में एक और कड़ी जुड़ जाती। समस्त विश्व घृणा से हमारे राष्ट्र की ओर उंगली उठाता और कहता, '' भारत दासता का अधिकारी है। वह दासता में ही प्रसन्न है, क्योंकि 1857 में भी अपने हित और अपने सम्मान की रक्षा हेतु वह उठ खड़ा नहीं हुआ।''

इसीलिए आज के दिवस को ओ हुतात्माओं! आपकी प्रेरणादायी स्मृति को समर्पित करते हैं। आज ही के दिन आपने एक नवीन ध्वज उठाया था, जिसे ऊंचा रखना है; एक मिशन का उद्घोष को अंगीकार करते हैं; हम आपके ध्वज की उपासना करते हैं; 'विदेशी को भगाने' के उस कठिन मिशन को जारी रखने के लिए हम दृढ़–संकल्प हैं जिसका आपने क्रांतिकारी युद्ध की पैगंबरी गर्जनाओं के बीच उद्घोष किया था। हां, यह एक क्रांतिकारी युद्ध था, क्योंकि 1857 का संग्राम तब तक नहीं थमेगा जब तक कि क्रांति न हो जाए, दासता को धूल में न मिला दिया जाए, दासता को धूल में न मिला दिया जाए और स्वतंत्रता को सिंहासनारूढ़ न कर लिया जाए। जब कभी कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता के लिए जाग्रत होता है; जब कभी स्वतंत्रता का बीज उसके पिता के लहू में अंकुरित होता है और जब कभी एक भी सच्चा पुत्र अपने पिता के रक्त का प्रतिरोध लेने के लिए जीवित, तब तक ऐसे संग्राम का कभी अंत नहीं हो सकता। क्रांतिकारी युद्ध में कोई विराम नहीं है। स्वतंत्रता अथवा मृत्यु मिलने पर ही इसका अंत होता है। आपकी स्मृति से प्रेरित हम 1857 में आपके द्वारा आरंभ संग्राम को परिणति तक ले जाने को कृतसंकल्प हैं। हम अस्त्र–शस्त्रों के बल प्रथम अभियान के युद्धों के रूप में देखते हैं। इनमें मिली पराजय संग्राम की पराजय नहीं हो सकती है। क्या विश्व यह कहेगा कि भारत ने पराजय को अंतिम पराजय के रूप में स्वीकार कर लिया है? क्या सन् 1857 में बहाया गया रक्त व्यर्थ का रक्तपात था? क्या भारतभूमि के पुत्रों ने अपने जनकों की शपथ को मिथ्या सिद्ध कर दिया? नहीं, हिंदुस्तान की सौगंध, नहीं। भारतीय राष्ट्र की ऐतिहासिक निरंतरता भंग नहीं हुई है। 10 मई, 1857 को समाप्त नहीं हो गया और न ही यह तब तक समाप्त होगा जब तक कि ऐसी कोई 10 मई नहीं आती है, जो हमारे संकल्प के साकार होने की साक्षी हो; जो हमारे सुंदर भारत के शीर्ष पर विजय का जगमगाता मुकुट अथवा

बलिदान की आभा को देख ले।

किंतु हे गरिमामय हुतात्माओ! अपने पुत्रों के इस पावन संग्राम में सहायता करो। अपनी प्रेरक उपस्थिति से हमारी सहायता करो। अनगिनत क्षुद्र स्वार्थों से विदीर्ण होकर हम भारत माता की महान् एकता को कभी भी साकार नहीं कर सकेंगे। हमारे कर्णों में वह मंत्र उच्चरित करो, जिसके जादू से आपने एकता के रहस्य को प्राप्त कर लिया था। बताओ कि किस प्रकार फिरंगी शासन छिन्न–भिन्न हो गया था और हिंदुओं–मुसलमानों की आम सहमति से स्वदेशी सिंहासन स्थापित हो गए थे। किस प्रकार मातृभूमि के उच्चतर प्रेम ने जाति और नस्लों के अंतर को दूर कर दिया था। किस प्रकार पूज्य और पूजनीय बहादुरशाह ने समस्त भारतवर्श में गौ वध को प्रतिबंधित कर दिया था। किस प्रकार दिल्ली के सम्राट् को तोप–गर्जना की प्रथम सलामी के पष्चात् श्रीमंत नाना साहब ने द्वितीय सलामी को अपने लिए आरक्षित कर लिया था। किस प्रकार आपने मातृभूमि के ध्वज तले संगठित होकर समस्त विष्व को अंचभित कर दिया था और अपने शत्रुओं को भी यह कहने के लिए बाध्य कर दिया था कि इतिहासकारों व प्रशासकों को भारतीय सैन्य–क्रांति द्वारा सिखाए गए अनेक पाठों में कोई भी इस चेतावनी से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है–''अब ऐसी क्रांति संभव है, जिसमें ब्राह्मण व शुद्र तथा हिंदू–मुसलमान सभी हमारे विरूद्ध एक साथ संगठित हों और यह मानना सुरक्षित नहीं है कि हमारे आधिपत्य की शांति व स्थिरता बहुत सीमा तक उस महाद्वीप पर निर्भर है, जिसमें विभिन्न धर्मोंवाली विभिन्न जातियां निवास करती हैं, क्योंकि वे एक–दूसरे को समझती हैं और एक–दूसरे की गतिविधियों का सम्मान करती हैं और उनमें शामिल होती हैं। सैनिक विद्रोह हमें स्मरण कराता है कि हमारा शासन एक पतली पर्पटी पर आधारित है, जो सामाजिक परिवर्तनों और क्रांतियों की भीषण ज्वालाओं के द्वारा कभी भी विदीर्ण हो सकता है।''[1] हमारे कर्णों में धर्म और देशभक्ति ऐसे गठबंधन की कुलीनता का मंत्र उच्चरित करो; वह सच्चा धर्म, जो सर्वदा देशभक्ति का पक्षधर है; वह सच्ची देशभक्ति, जो धर्म की स्वतंत्रता को सुरक्षित करती है। हमें वह अत्युत्तम ऊर्जा प्रदान करो, वह साहस व गोपनीयता प्रदान करो, जिसके बल पर आपने शक्तिशाली ज्वालामुखी को संगठित किया; हमें उस ज्वालामुखीय लावा के दर्शन कराओ, जो पतली व हरी पर्पटी के नीचे दबा है, जिस पर शत्रु को झूठी सुरक्षा के भ्रम में रखा जा सकता है। हमें बताओ कि किस प्रकार भारत के भयावह विरोध की प्रतीक चपाती गांव–गांव और घाटी–घाटी घूमी थी, जिसने राष्ट्र की समूची प्रज्ञा को अपने संदेश की अस्पश्टता से प्रज्वलित कर दिया था। तत्पश्चाात् हमें श्रवण करने दें उस दहाड़ती हुई गर्जना का, जिसके साथ ज्वालामुखी अंततः फूट पड़ा था अपने समस्त ध्वंसकारी बल के साथ और जो अपने रक्त–तत्व लावा

[1] जॉर्ज विलियम फॉरेस्ट, स्टेट पेपर्स (अनेक श्रृंखलाएं)।

प्रवाह में सभी को छिन्न–भिन्न करता, जलाता और भस्म करता चला गया था। एक माह के भीतर रेजीमेंट–पर–रेजीमेंट, रजवाड़ों–पर–रजवाड़े, नगर–पर–नगरए सिपाही, पुलिस, जमींदार, पंडित, मौलवी और बहुमखी क्रांति ने घंटानाद कर दिया था और मंदिरों तथा मस्जिदों में एक ही घोष गूंज रहा था–मारो फिरंगी को!' मेरठ जागा, दिल्ली जागी; बनारस, आगरा, पटना, लखनऊ, इलाहाबाद, जगदलपुर, झांसी, बांदा, इंदौर–सभी नगर जाग उठे–पेशावर से कलकत्ता और नर्मदा से हिमालय तक यह ज्वालामुखी के एक धधकते लावा के रूप में फूट पड़ा।

तत्पश्चात्, ओ हुतात्माओ! हमें उन छोटी–बड़ी त्रुटियों के बारे में बताओ जो आपको इस महान् परीक्षण के दौरान हमारे सेनानियों में मिली। परंतु सर्वोपरि, उस सर्वाधिक घातक–नहींए, उस एकमात्र कमी की ओर भी इंगित करो, जो हमारे राष्ट्र के हित में संग्राम में शामिल होने के मार्ग पर चलने से इन्कार कर दिया। करो कि हिंदुस्तान की पराजय का एकमात्र कारण हिंदुस्तान था, कि शताब्दियों कि निद्रा से जागकर माता शत्रु पर प्रहार करने को उठी; पर जब उसका दाहिना हाथ फिरंगियों को मौत के घाट उतार रहा था, उसका वाम हस्त शत्रु पर नहीं बल्कि उसी के मस्तक पर प्रहार कर रहा थां इसीलिए माता डगमगाई और पचास वर्षों की अवश्यंभावी मूर्च्छा में धराशायी हो गई।

पचास वर्ष व्यतीत हो गए, परंतु हे अशांत शूरवीरों ! विश्वास करो कि तुम्हारी हीरक जयंती तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति किए बिना नहीं संपन्न होगी। हमने तुम्हारी गर्जना को सुना है और हम उससे साहस प्राप्त करते हैं। अपने सीमित साधनों के बल पर आपने न केवल निरंकुश शासन के, बल्कि निरकुंश शासन और विश्वासघात दोनों के विरूद्ध लंबा युद्ध लड़ा। दोआब और अयोघ्या ने संगठित होकर न केवल ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध संग्राम छेड़ा, बल्कि शेष भारत के विरूद्ध भी संग्राम छेड़ा। आपने तीन वर्षों तक युद्ध लड़ा और हिंदुस्तान का ताज फिरंगियों से लगभग छीन लिया था तथा विदेशी शासन के खोखले अस्तित्व को चकनाचूर कर दिया था। कितना कड़ा पराक्रम है यह! दोआब और अयोध्या जो काम एक माह में कर सकते थे, वही कार्य समूचे हिंदुस्तान का एक संगठित, आकस्मिक और संकल्पित जागरण एक दिन में ही कर सकता है। यही प्रत्याशा हमारे अंतर को प्रकाशित करती है और हमें सफलता का आश्वासन देती है तथा इसलिए हम सशपथ यह घोषणा करते हैं कि तुम्हारा हीरक जयंती वर्ष पुनरोदयी भारत को विजयी भाव के साथ विश्व में पर्दापण करते हुए देखे बिना नहीं व्यतीत होगा।

बहादुरशाह की अस्थियां अपनी कब्र से प्रतिशोध का आह्यन कर रही हैं। मंगल पांडे की आत्मा अभी भी सलीब पर से पवित्र मिशन की पूर्ति के लिए पुकार रही है।

निडर लक्ष्मीबाई का रक्त क्रोध से उबल रह है। कुंवर सिंह की ब्रिटिश शासन को छिन्न–भिन्न करने की एकमात्र प्रतिज्ञा आज भी हिंदुस्तान की हवा में गूंज रही है। अजीमुल्ला खान और वीर अली शाह के तन से निकली रक्त–धाराओं ने इतिहास के पृष्ठों पर अमिट छाप छोड़ी है। क्योंकि जब अपना अपराध स्वीकार करने और युद्धनीति के रहस्यों को प्रकट करने से इंकार करने पर वीर तात्या टोपे को फांसी के फंदे पर ले जाया जा रहा था तो फिरंगियों के मुंह पर ही उन्होंने ये पैगंबरी शब्द बोले थे–

''आज आप मुझे फांसी पर लटका सकते हैं–आप हर दिन मेरे जैसे अन्य लोगों को भी फांसी पर लटका सकते हैं; परंतु मेरे जैसे अन्य लोगों को भी फांसी पर लटका सकते हैं; परंतु मेरे स्थान पर हजारों क्रांतिकारी उत्पन्न होंगे और आपका उद्‌देश्य कभी भी पूरा नहीं होगा।''

हे भारतीय जन! इन शब्दों को पूरा किया जाना चाहिए। ओ हुतात्माओ! हमारे रक्त का प्रतिशोध अवश्य लिया जाएगा।

अनुक्रम

भाग—9

ज्वालामुखी

स्वधर्म और स्वराज्य

धर्मासाठी मरावे, मरोनि अवघ्यांसी मारावें।

मारिता मारित घ्यावें, राज्य आपुलें।।

—स्वामी रामदास

अर्थात्—

धर्म हेतु मरें, मरते हुए सारों को मारें;

मारते—मारते जीतें, राज्य अपना।

कोई छोटा सा घर बनाना तो भी इतनी मजबूत नींव तो बनाई ही जाती है कि वह उसका भार सह सके। नींव मजबूत और घर का भार संभालने योग्य न हो तो उस नींव पर निर्मित मकान ताश के तंबू से अधिक भव्य या विशाल कभी भी नहीं माना जा सकता, यह बात अशिक्षित—गंवार भी जानता है। परंतु किसी सामान्य मनुष्य को भी ज्ञात यह व्यवहारज्ञान भुलाकर जब कोई लेखक प्रचंड क्रांति मंदिर किसी घास के तिनके पर निर्मित था—तो या तो वह पागल होता है या फिर क्षुद्र प्राणी। वह इन दोनों विशेषणों में से किसी एक का भी पात्र हो तो इतिहास—लेखन के पवित्र कार्य के लिए पूरी तरह अयोग्य है।

बड़ी–बड़ी धर्म क्रांतियों या राज्य क्रांतियों के सतही स्वरूप में विहिप असंबद्धता या असमानता की निरंतरता उन क्रांतियों के मूल तत्त्व को समझे बिना कभी भी समझ में नहीं आ सकती। अनेक चक्र और अनेक लौह मार्गोंवाला कोई विशाल संयंत्र प्रचंड शक्ति से काम करता हो तो वह शक्ति किस यंत्र–शास्त्रीय नियम से उत्पन्न की गई है, यह पूर्ण रीति से समझे बिना देखनेवालों को आश्चर्य–मिश्रित विस्मय होगा। उसे ज्ञान से प्राप्त समझ या बूझ कभी नहीं कहा जा सकता। फ्रांस की राज्य क्रांति या हॉलैंड की धर्म क्रांति जैसी अद्‌भुत घटनाएं जब पाठकों एवं लेखकों को अपनी भव्यता से चकित करती हैं तब उनकी उस भव्यता में हक्का–बक्का होकर पाठक की दृष्टि और लेखक की लेखनी भी उसके मूल शक्ति–स्त्रोत को देखने–दर्शाने की हिम्मत नहीं कर पाती। परंतु उस मूल शक्ति को जाने बिना उस क्रांति का वास्तविक रहस्य कभी भी समझ में नहीं आता, अतः इतिहास शास्त्र में वर्णन से अधि कमूल स्त्रोत को दर्शाने ही अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है।

यह मूल स्त्रोत दर्शाने हुए बहुत बार इतिहास–लेखक और एक चूक करते हैं। प्रत्येक कार्य में कुछ प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष, कुछ विशिष्ट और कुछ सामान्य, कुछ आकस्मिक और कुछ प्रधान कारण निहित होते हैं और उनका वर्गीकरण करने में ही इतिहास–लेखक का वास्तविक कौशल होता है। परंतु कुछ इतिहासकार यहां भ्रमित होकर इस वर्गीकरण में आकस्मिक कारणों को प्रधान कारण का स्वरूप दे देते हैं। किसी घर को आग लगने पर उस आग को लगानेवाले व्यक्ति को छोड़ उसके हाथ की माचिस की तीली पर सारा आरोप लादनेवाले मूर्ख न्यायधीष की तरह वह इतिहासकार भी हास्यास्पद हो जाता है। आकस्मिक कारण को ही प्रधान कारण मानकर किसी ऐतिहासिक घटना का इतिहास लिखने से उस घटना न कुछ कारणों से घटित हुई देखकर उस घटक और उसमें सम्मिलित व्यक्तियों के लिए तुच्छ भावना उत्पन्न होने लगती है। इसलिए ऐतिहासिक घटनाओं का––और विशेषकर क्रांतिकारी घटनाओं का–इतिहास लिखते समय उसका केवल वर्णन लिखने से उकसी समुचित कल्पना प्रस्तुत करना संभव नहीं होता या उसका उद्‌गम उसके निमित्त कारण तक ही खोजकर लौट आने से भी उसका यथार्थ स्वरूप ज्ञात नहीं होता। अतः जिसे सत्य, पक्षपात–रहित और मर्मस्पर्शी इतिहास लिखना हो, उसे उस घटना और उस क्रांति की ज्वाला की नींव के कारणों का, उसके मूल में क्या तत्त्व थे, उसके प्रधान कारण क्या थे–इन सबका पर्यालोचन अवश्य करना चाहिए।

'हर क्रांति की नींच में कोई–न–कोई तत्त्व होना ही चाहिए' –इटली के प्रख्यात दार्शनिक और देशभक्त मैजिनी ने कार्लाइल लिखित फ्रांसिसी राज्य क्रांति की एक पुस्तक पर टीकात्मक लेख में ऐसा कहा है। क्रांति अथवा इतिहास में मनुष्य जाति के जीवन की उठा–पटक होती है। जिसके लिए लाखों जूझते हैं, राजसिंहासन जिस कारण डगमगाते हैं,

स्थापित मुकुट लुढ़कते हैं, अजन्मे मुकुट सिर चढ़ते हैं, स्थापित मूर्ति भंग होकर नई मूर्ति की स्थापना भी जिसके कारण होती है और प्रचंड समूह को लगने लगता है कि इसके आगे रक्त बहाना तो कुछ भी नहीं, ऐसे किसी विक्षोभक तत्त्व के सिवाय किसी अन्य क्षुद्र व क्षणिक नींव पर क्रांति के भव्य भवन का निर्माण असंभव है। पर क्रांति की नींव का यह तत्त्व जिस प्रमाण में पवित्र या अपवित्र होता है उसी प्रमाण में उस क्रांति के कार्यकर्ता—व्यक्ति के स्वरूप और कृत्य भी पवित्र या अपवित्र होते हैं। हेतु से जैसे कृत्य की परीक्षा सामान्य व्यवहार में की जाती है उसी तरह इतिहास में भी व्यक्ति या राष्ट्र के हेतु की परीक्षा सामान्य व्यवहार में की जाती है उसी तरह इतिहास में भी व्यक्ति या राष्ट्र के हेतु से उसके कृत्य का स्वरूप निश्चित होता है। यह कसौटी यदि छोड़ दे तो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को मारना या किसी एक सेना द्वारा दूसरी सेना को मारने में कोई भेद नहीं रहेगा। साम्राज्य के लिए सिकंदर की चढ़ाई और इटली की स्वतंत्रता के लिए गैरीबाल्डी द्वारा की गई चढ़ाइयां दोनों समान हेतु समझ लेना आवश्यक है उसी तरह हर क्रांति का यथोचित परीक्षण विवेचन करने के लिए उसका हेतु क्या था, अंतर्निहित इच्छा क्या थी, किस तत्त्व दर्शन से उसका उद्‌भव हुआ था, यह सब जानना आवश्यक है।

सारांश यह कि ऐतिहासिक क्रांति के इतिहासकार को उस क्रांति में असंबद्ध दिखाई देनेवाले प्रसंगों को या उनकी अद्‌भुतता को देखकर विस्मित होकर वहीं बैठ नहीं जाना चाहिए, अपितु उसके उद्‌गम की खोज करते जाना चाहिए। इतना ही नहीं अपितु उस खोज में असंगत एवं आकस्मिक रूप से निकल आई शाखा को छोड़कर मूल के विस्तीर्ण प्रदेश का निरिक्षण करना चाहिए। इस तरह प्रारंभ किए जाने पर अनेक असंबद्ध घटनाओं में पूर्ण संबद्धता दिखने लगती है, वक्र लगने लगती है। अंधकार में प्रकाश दिखने लगता है और प्रकाश में अंधेरा दिखाई देता है। नीचता में उच्चता और उच्चता में नीचता दृष्टिगोचर होती है, विद्रूपता में सुरूपता और सुरूपता में विद्रूपता मिलती है और अपेक्षित या अनअपेक्षित रीति से परंतु स्पष्ट स्वरूप में वह क्रांति इतिहास के सामने आती है।

सन् 1857 जैसी प्रचंड क्रांति बिना हेतु के घटित होना संभव है क्या? पेशावर

से कलकत्ता तक जो आंधी चली उसका हेतु इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि से अपनी सामर्थ्य भर कुछ खास चीजों को नष्ट कर देना है। दिल्ली पर डाले गए घेरे, कानपुर में हुए कत्ल, साम्राज्य के ऊंचे उठे ध्वज और उस ध्वज की छाया में लड़ते–लड़ते रणतीर्थ में शूरों द्वारा लगाई गई छलांगे जैसी उदात्त एवं स्फूर्तिजनक घटनाएं किसी एक अति उदात्त एवं स्फूर्तिजनक हेतु के बिना संभव थी क्या? कोई हर हफ्ते लगनेवाला बाजार भी अकारण नहीं लगता। फिर जिस बाजार का आयोजन करने की तैयारी वर्षों से चल रही थी, जिसकी दुकानें पेशावर से कलकत्ता तक के हर सिंहासन पर सजनेवाली थीं, जिसमें राज्य और साम्राज्य का लेन–देन चल रहा था और जहां रक्त और मांस के सिक्कों के सिवाय और किसी सिक्के की पूछ नहीं थी–वह बाजार क्या यों ही लगा और यों ही उठ गया? ऐसा नहीं हो सकता। ज्ञात होना बहुत कठिन है, इसलिए नहीं अपितु वह ज्ञात हुआ, यह मानना अपने हित में न होने के कारण इस मुद्दे की ओर अंग्रेज़ इतिहासकारों ने दुर्लक्ष्य किया है। परंतु इस दुर्लक्ष्य से भी अधिक उलझानेवाली और सन् 1857 के क्रांतियुद्ध के स्वरूप को सर्वाधिक भ्रष्ट करनेवाली दूसरी युक्ति या चूक विजातीय एवं उनकी धूल ओढ़नेवाले स्वजातीय इतिहासकारों ने जो की है, वह यह है कि इस सन् 1857 के प्रलय का कारण दूसरा कुछ नहीं, मुट्ठी भर लालची लोगों द्वारा उठाई गई कारतूसों की अफवाह है। अंग्रेज़ इतिहासकार और अग्रेज़ों की कृपा पर पले–बढ़े एक देसी ग्रंथकार कहते हैं–कारतूसों में गाय और सूअर की चरबी लगाई जाती है, केवल इतना सुनकर ही मूर्ख लोग भड़क गए। सुनी हुई बात सच है या झूठ, इसकी खोज किसी ने नहीं की। एक ने कहा, इसलिए दूसरे ने कहा और दूसरा बिगड़ गया इसलिए तीसरा बिगड़ गया। ऐसी अंधपरंपरा चली जिससे अविवेकी मूर्खों का समाज जमा हुआ और विद्राह हो गया।

कारतूसों की बात पर लोगों ने अधंपरंपरा से विश्वास किया या क्या हुआ, इसका निर्णय आगे यथास्थान किया जाएगा, परंतु ये सच्चे या झूठे विश्वास विद्रोह की जड़ें थीं, यह विचार उत्पन्न करने का कैसा सुदीर्घ प्रयास चल रहा था, यह इससे स्पष्ट होता है। सन् 1857 जैसी प्रचंड क्रांति ऐसे कारणों से उत्पन्न होगी, यह कहनेवाले मंद या कुटिल बुद्धि के लोगों को क्रांति एक अविवेकी मूर्खों का समाज लगता है; लेकिन इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यदि सन् 1857 की क्रांति मुख्यतः कारतूसों के कारण ही प्रदीप्त हुई तो उसमें नाना साहब, दिल्ली का बादशाह, झांसी की रानी या रोहिलखंड का खान बहादूर कैसे सम्मिलित हुए? इनको अंग्रेजी सेना में नौकरी करनी नहीं थी या घर बैठे भी वह फौजी कारतूस तो तोड़ने ही होंगे, ऐसा आदेश भी किसी ने उन्हें नहीं दिया था। यदि यह विद्रोह केवल या मुख्य रूप से कारतूसों की चरबी से ही हुआ था तो हिंदुस्तान के अंग्रेज गवर्नर द्वारा उसे उपयोग में न लाने का आदेश देते ही उसे तुरंत ठंडा हो

जाना चाहिए था। पर सिपाही अपने हाथ से अपने कारतूस बना लें, ऐसी अनुमति मिलने पर भी उसका उपयोग न कर या सेना की नौकरी छोड़ सारी किटकिट से परे न हटकर सेना के सिपाहियों ने ही नहीं बल्कि सेना से जिनका दूर का भी संबंध नहीं था—ऐसे लाखों लोगों ने, राजा—महाराजाओं ने अपने प्राण रणभूमि पर क्यों अर्तित किए? फौजी और सामान्य जन, राजा और रंक, हिंदू और मुसलमान—इन सबको एक साथ आवेशित करनेवाली बातें क्षुद्र नहीं होती, उसके मूल में होते हैं तात्त्विक कारण।

कारतूसों का डर ही विद्रोह का प्रमुख कारण है—इस कथन में जितनी अर्यथार्थता है उतनी ही इस तर्क में भी कि उस विद्रोह का उद्‌गम केवल अवध का राज छीनने में था। अवध के राज्य के हित—अहित से जिनका कुछ भी संबंध नहीं था, ऐसे कितने ही लोग इस भंयकर क्रांति में सिर हाथ पर लिये लड़ रहे थें फिर उस लड़ाई से उनका क्या हेतु था? स्वयं अवध का नवाब तो कलकत्ता के किले में बंद था और उसकी प्रजा अंग्रेज इतिहासकारों के कथनानुसार नवाब के शासन से बेहद नाखुश थी। फिर पंजाब से बंगाल तक केवल राजा या लश्कर के लोग ही नहीं अपितु हर असल हिंदू व्यक्ति अपनी शमशीर ताने क्यों खड़ा था? सन् 1857 की क्रांति पर लिखा एक लेख किसी हिंदू ने उसी समय इंग्लैंड में प्रकाशित कराया था। उसमें वह हिंदू कहता है—''जिन्होंने अवबध के नवाब को जन्म से भी कभी नहीं देखा था और न आगे देखने की संभावना थी, ऐसे कितने ही सरल और दयालु लोग अपनी—अपनी झोंपड़ियों में नवाब पर आ पड़े दुःखों को कहते जार—जार रोते थे, इसकी कल्पना आपको नहीं हैं। और ऐसे आंसु बह जाने के बाद, जैसे स्वयं पर ही क्रूर प्रहार हो रहे हों, ऐसा मानकर वाजिद अली शाह के अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा कितने सिपाही प्रतिदिन कर रहे थे, यह भी आपको ज्ञात नहीं ...।''[2]

इन सिपाहियों को उससे सहानुभूति क्यों होने लगी और जिन्होंने नवाब को जन्म से नहीं देखा था उनकी आंखें और कंठ क्यों भर आए? अतः अवध का राज्य हड़पने से विद्रोह नहीं उपजा अपितु इन राज्यों को हड़पने में जिस तत्त्व का हनन हो रहा था

[2] यह लेख इंडिया ऑफिस के ग्रंथालय में है। यह लेख अनेक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में से निम्न उद्धरण दिए बगैर रहा नहीं जाता—
"Your (Englishmen's) conduct has all along been mean and pettifogging. Your accuse our ancient moghul rulers of despotism. They were despotic to some extent; but on the whole, they knew how to goern an empire&you know to keep a shop. They has a large mind; you have an ingenious and a crafty one. They could conceive of grand projects. Despite their faults, they were loved by a grand people like us. They settled in the country and tried to improve it. Your servants come here only to make money and go home as soon as they have satisfied themselves on the score. Indeed, in as much as we have come to know you, we have learnt to dispise you. With increasing knowledge we have known that the Anglo-Saxon race is selfish and gypocritical in the extreme and always unprincipled in matters of gain!"
यह लेख करीब 25 पृष्ठों का है और दि. 13.10.1857 को प्रकाशित हुआ है।

उसके कारण विद्रोह उपजा। कारतूसों का डर या अवध का राज्य हड़पना गौण औा आकस्मिक कारण थे। इन्हीं को प्रधान कारण मानने से सन् 1857 की क्रांति का वास्तविक स्वरूप कभी भी ज्ञात नहीं हो पाएगा।

इन निमित्त कारणों को ही मूल कारण मान लें तो उसका अर्थ यह होगा कि यदि ये विशिष्ट कारण घटित या अवध का अधिग्रहण न किया गया होता तो सन् 1857 की क्रांति घटित न होती। परंतु इस प्रकार के विचार से अधिक भ्रामक और मूर्खतापूर्ण अन्य कोई मान्यता मिलना असंभव है। कारण, उस डर के मूल में छिपा तत्त्व यदि किसी और घटना द्वारा प्रकट हो जाता तो भी यह क्रांतियुद्ध होता ही, भले ही अवध का राज्य हड़पा न गया होता। फ्रांस देश की राज्य क्रांति का प्रधान कारण जैसे अनाज के बढ़े हुए मूल्य या बास्तील या राजा का पेरिस छोड़कर जाना या दावतों का रंग नहीं था वैसे ही उपर्युक्त आकस्मिक एवं विशिष्ट घटनाएं इस प्रचंड क्रांति के प्रधान कारण न होकर केवल निमित्तभूत कारण हैं। जैसे सीता–हरण रामायण का केवल निमित्त है और मुख्य या प्रधान कारण उसके मूल में छिपे तत्त्व ही हैं।

वे तत्त्व कौन से थे? हजारों शूरों की तलवारों को उनकी म्यानों से खींचकर रणांगण में चमचमानेवाले वे तत्त्व कौन से हैं? निस्तेज हुए मुकुटों को सतेज करनेवाले और टूटे पड़े ध्वजों को फिर से खड़ा करनेवाले वे तत्त्व कौन से थे जिनपर हजारों व्यक्तियों ने अपने उश्ण रक्त का अभिषेक करना वर्षानुवर्ष अखंड प्रेम से चालू रखा है, ऐसे तत्त्व कौन से थे? मौलवी जिनका उपदेश करते थे, ब्राह्मण जिन्हें 'विजयी भवः' कहकर आशीर्वाद देते थे, दिल्ली की मस्जिद से और काशी के मंदिरों से जिनकी यशःप्राप्ति के लिए परमेश्वर की ओर दिव्य प्रार्थनाएं भेजी जाती थी, जिनकी सहायता के लिए श्रीमंत हनुमानजी ने स्वयं कानपुर के रण–मैदान पर हुंकार भी और जिनके लिए झांसी की महालक्ष्मी ने शुंभ–निशुंभ के रक्त से भीगी अपनी पुराण–प्रसिद्ध तलवार फिर से चलाई, ऐसे वे तत्त्व कौन से थे?

सन् 1857 की क्रांति के प्रधान कारण जो दिव्य तत्त्व थे–स्वधर्म व स्वराज्य। अपने प्राणप्रिय धर्म पर भयंकर, विघातक एवं कपटपूर्ण हमला हुआ है, यह यथार्थ दिखते ही स्वधर्म–रक्षणार्थ जो 'दीन–दीन' की गर्जना शुरू हुई उस गर्जना में और अपनी प्रकृति दत्त स्वतंत्रता के कपटपूर्ण छीने जाने पर और अपने पैरों में पड़ी राजनीतिक गुलामी की जंजीरें देखते ही स्वराज्य प्राप्त करने की पवित्र इच्छा उत्पन्न होने के कारण इस दास्य श्रंखला पर जो प्रचंड आघात किए गए उन्हीं में इस क्रांतियुद्ध की जड़ें हैं। सवधर्म–प्रीति एवं स्वराज्य–प्रीति के तत्त्व हिंदुस्थान के इतिहास में जितनी स्पष्टता से

एवं उदात्तता से दिखते हैं उससे अधिक वे किस इतिहास में मिलनेवाले हैं? विदेशी और स्वार्थी इतिहासकारों ने इस दिव्य हिंद का चित्र कितने ही गंदे रंगों से भरा हो, फिर भी जब हमारे इतिहास के पृष्ठों पर से चितौड़ का नाम पोंछा हुआ नहीं है, सिंहगढ़ का नाम मिटा नहीं है, प्रताप आदि का नाम मिटा नहीं हैं या गुरू गोविन्द सिंह का नाम पोंछा नहीं गया है, तब तक ये स्वधर्म और स्वराज्य के तत्त्व हिंदुस्थान के रक्त–मांस में जमे रहेंगे। उनपर क्षण भर गुलामी के भ्रम के बादल चाहे आएं–सूर्य पर भी बादल आते हैं–परंतु वह क्षण समाप्त होते–न–होते उस तत्व सूर्य की उष्णता से वे पिघल जाएंगे, इसमें शंका नहीं।

स्वराज्य के लिए हिंदुस्थान ने कौन सा प्रयास नहीं किया और स्वधर्म के लिए हिंदुस्थान ने कौन सी दिव्यता अंगीकार नहीं की। ''सूरा सो पचाजिए जो लढ़े दीन के हेत, पुरजा–पुरजा कट मरे तबहु न छोड़े खेत।''(गुरू गोविंद सिंह) इस रीति से स्वधर्म के लिए रण–मैदान में टुकड़े–टुकड़े हो जाने पर भी जो हटते नहीं–वीरों की ऐसी घटनाओं से भारतभूमि का संपूर्ण इतिहास भरा हुआ है।

इस परंमरागत एवं तत्त्व का संचार होने के लिए सन् 1857 के वर्श में जितने कारण घटित हुए उतने पहले कुछेक बार ही घटित हुए थे। इन विशिष्ट घटनाओं से हिंद भूमि के शरीर में किंचित् प्रस्फुरण हुआ, इन मनोवृत्तियों को विलक्षण चेतना मिली और स्वधर्म एवं स्वराज्य के लिए लोक–शक्तियां सज्जित होने लगी। दिल्ली के बादशाह द्वारा स्वराज्य–स्थापना के लिए जारी घोषणापत्र में वे कहते हैं और अपने प्राणप्रिय धर्म एवं प्राणप्रिय देश को पूरी तरह भयमुक्त कर सकते हैं।''[3]

इस वाक्य में उल्लेखित दिव्य तत्त्वों के लिए जो क्रांति होती है, अपने प्राणप्रिय धर्म को एवं अपने प्राणप्रिय देश को बंधनमुक्त करने के लिए जो क्रांतियुद्ध से अधिक पवित्र विश्व में दूसरा क्या मिलनेवाला है? स्वदेश–रक्षा, स्वराज्य–संस्थापन एवं स्वधर्म–परित्राण के लिए दिल्ली के सिंहासन से प्रार्थित इस स्पष्ट दिव्य एवं स्फूर्तिजनक मंत्र में ही सन् 1857 की क्रांति का बीज है। बरेली में मुद्रित कर प्रकाशित किए हुए, अवध के नवाब द्वारा निकाले गए दूसरे एक आज्ञापत्र में वे कहते हैं–''हिंदुस्थान के सारे हिंदुओं और मुसलमानो, उठो! स्वदेश बंधुओं, परमेश्वर की दी हुई सौगात में सबसे श्रेष्ठ सौगात स्वराज्य (Sovereign) ही है। यह ईश्वरीय सौगात जिसने हमसे छल से छीन ली है उस अत्याचारी राक्षस को वह बहुत दिन प्रचेगी क्या? यह ईश्वरीय इच्छा के विरूद्व किया गया कृत्य क्या जय प्राप्त करेगा? नहीं, नहीं। अंगेजों ने इतने जुल्म ढाए हैं कि उनके पाप के घड़े पहले ही लबालब भरे हुए हैं। और

[3] लेकी द्वारा लिखित–'फिक्शन एक्सपोस्ड'।

उसमें हमारे पवित्र धर्म का नाष करने की कुबुद्धि और समा गई है। अब आप अभी भी शांति से बैठे रहेंगे क्या? आप शांति से बैंठे, यह परमेश्वर की इच्छा नहीं है। क्योंकि सारे हिंदुओं और मुसलमान के ह्रदय में उसी की इच्छा उत्पन्न हुई हैं–परमेश्वर की इच्छा–और आपके पराक्रम से जल्दी ही उनका ऐसा सर्वनाश हो जाएगा कि अपने हिंदुस्तान में उनका छिलका, टुकड़ा भी नहीं रहेगा। छोटे–बड़े के सारे भेदभाव भुलाकर इस सेना में सब ओर समता का राज हो। क्योंकि पवित्र धर्मयुद्ध में जो वीर स्वधर्म के लिए अपनी तलवार म्यान के बारह निकालते हैं वे सब समान योग्यता के होते हैं। वे भाई–भाई हैं। उनमें किसी तरह का भेद नहीं है। इसलिए फिर से एक बार मैं सारे हिंदू बंधुओं का आह्यान करता हूं–उठो और इस परम ईश्वरीय और दिव्य कर्तव्य के लिए रण–मैदान में कूद पड़ो।''[4]

ये तत्त्वरत्न देखकर जिसे इस क्रांतियुद्ध की ओजस्विता भासित नहीं होगी उसे या तो मंदबुद्धि या दुर्बुदि होना चाहिए। ईष्वर–प्रदत्त अधिकारों के लिए लड़ना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है और स्वधर्म एवं स्वराज्य के लिए लड़ने को ही उस मय के भारतीय शूरों ने अपने शस्त्र निकाले थे, यह सिद्ध करने के लिए इससे सबल साक्ष्य और क्या दिया जा सकता है! भिन्न–भिन्न स्थानों और भिन्न–भिन्न कालों में निकाले गए ये घोषणापत्र इस क्रांतियुद्ध की मीमांसा करने के लिए एक अक्षर भी और अधिक लिखने की आवश्यकता शेष नहीं रहने देते। ये घोषणापत्र ऐरे–गैरे द्वारा निकाले हुए नहीं हैं। इस युद्ध में जो भी शमशीर निकालते हैं वे सब समान योग्यता के हैं। धर्मयुद्ध में उठी यह गर्जना 'स्वधर्म एवं स्वराज्य' दोनों तत्त्वों का उच्चारण एवं जयघोष करती है।

पर क्या ये दोनों ही तत्त्व (स्वराज्य–स्वधर्म) परस्पर विरूद्ध या भिन्न समझे जाते थे? स्वधर्म एवं स्वराज्य का एक–दूसरे से किसी भी अर्थ में संबंध नहीं है, ऐसी कम–से–कम प्राचीन लोगों की धारणा कभी नहीं थी। मैजिनी के कथानुसार, स्वर्ग और पृथ्वी को किसी एक बांस के बीच में बांधकर अलग नहीं किया गया है। ये दोनों तो एक ही वस्तु के दो छोर हैं। ऐसी ही प्राचीन जनों की पूर्वा पर यथार्थ एवं परिपक्व धारणा है। हमारी स्वधर्म के कल्पना स्वराज्य से भिन्न नहीं है। ये दोनों साध्य नाते से संलग्न हैं। स्वधर्म के बिना स्वराज्य तुच्छ है और स्वराज्य के बिना स्वधर्म बलहीन है। स्वराज्य

[4] लेकी कृत–'फिक्शन एक्सपोस्ड' में वर्णित यह घोषणापत्र उस क्रांतियुद्ध के समय लोक–वृत्ति किस तरह चेत गई थी–यह दर्शाने को बहुत उपयोगी है। इसका काफी कुछ अंश आगे भी दिया जाएगा।

नामक ऐहिक सामर्थ्य की तलवार स्वधर्म नामक पारलौकिक साध्य के लिए हमेशा बाहर निकली रहनी चाहिए। यह प्राचीन जनों के मन का रूझान इतिहास में पग–पग पर दिखेगा। प्राचीन काल में हुई क्रांतियों को धार्मिक स्वरूप क्यों मिलता है, या यह कहें कि धार्मिक पवित्रता के या धर्म–संलग्नता के सिवाय प्रचंड क्रांति का होना–यह बात प्राचीन इतिहास में बिल्कुल भी क्यों ज्ञात नहीं है, इसका बीज भी धर्म के इस विश्व व्यापक स्वरूप में ही है। हिंदुस्थान के इतिहास में आज तक अखंड रूप से व्यक्त होते आए स्वराज्य एवं स्वधर्म के साधन और साध्य तत्त्व इस सन् 1857 के क्रांतियुद्ध में भी व्यक्त हुए, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। दिल्ली के बादशाह द्वारा पहले–पहल निकाले गए घोषणापत्र का उल्लेख पहले किया गया है। उसके बाद जब दिल्ली को अंग्रेजी सेनाओं ने घेर लिया और युद्ध घमासान हो गया तब बादशाह ने हिंदुओं के लिए दूसरा घोषणापत्र जारी किया। उसमें वे कहते हैं–''जीम राजगान वो रोसाए हिंद पर वाझे होके तुम बेहामा उजू: नेकी और फय्याजी में मुश्तईर उद्दईर हों ... खुदावंत ने तुमको ये मर्तबए आली और मुल्क और दौलत और हुकूमत इसी वास्ते बख्शी है कि तुम उन लोगों को, जो तुम्हारे मजहब में दखलंदाजी करें, गारद करों ... ।'' (हमें ईश्वर ने संपति, देश, अधिकार किस लिए दिए हैं? ये सभी केवल व्यक्ति से संबंधित सुख–भोग के लिए न होकर स्वधर्म–संरक्षण के पवित्र हेतु के लिए हैं।)

परंतु इस पवित्र एवं अंतिम हेतु के ये साधन कहां है? पहले दिए हुए घोषणापत्र के अनुसार परमेश्वर की सब सौगातों में अत्यंत श्रेष्ठ स्वराज की सौगात कहां है? दौलत कहां है? मुल्क कहां है? हुकूमत कहां है? गुलामी के प्लेग में यह सारी दैविक स्वतंत्रता मृतप्राय हो गई है। गुलामी का प्लेग किस तरह संहार कर रहा है, यह दिखाने के लिए उपर्युक्त घोषणापत्र में नागपुर का, अवध, झांसी का स्वराज्य–सब कैसे धूल में मिला दिए गए, इसका मार्मिक वर्णन करने के बाद ऐसी चेतावनी दी गई है कि इस तरह धर्म–रक्षण के साधन गंवाने पर तुम परमेश्वर के दरबार में अपराधी और धर्मद्रोही माने जाओगे।

.... स्वधर्म के लिए उठो और स्वराज्य प्राप्त करो'–इस तत्त्व ने हिंदुस्थान के इतिहास में कितने दैवी चमत्कार किए हैं? श्री समर्थ रामदास न महाराष्ट्र को ढाई सौ वर्ष पहले यही दीक्षा दी थी–''धर्मासाठी मरावें, मरोनि अवघ्यांसि मारावें। मारिता मारिता घ्यावे, राज्य आपुलें।''

धर्म हेतु मरें, मरते हुए सारों को मारें;

मारते–मारते जीतें, राज्य अपना।

सन् 1857 के क्रांतियुद्ध का यही तात्त्विक कारण है। इस क्रांतियुद्ध का यही मनःशास्त्र है। जिस दूरबीन से उस युद्ध का स्पष्ट एवं सत्य स्वरूप दिखेगा, ऐसी खरी दूरबीन अर्थात् ''धर्म हेतु मरें, मरते हुए सारों को मारें, मारते–मारते जीतें राज्य अपना।

इस दूरबीन से उस क्रांति की ओर देखें तो कितना अलग दृश्य दिखने लगता है! स्वधर्म एवं स्वराज्य–इन दो पवित्र कारणों से जो क्रांतियुद्ध लड़ा गया उसकी पवित्रता पराजय से भंग नहीं होती। गुरू गोविंद सिंह के प्रयास तादृश रीति से विफल रहे, इस कारण उसका दिव्यत्व कम नहीं होता। या सन् 1857 में इटली में राज्य क्रांति की जो विशाल लहर उठी उसमें उस क्रांति के नेताओं की संपूर्ण पराजय हुई, इस कारण उनके हेतु का पुण्य क्षीण नहीं होता।

जस्टिन मैकार्थी ने कहा है–''वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय प्रायद्वीप के संपूर्ण उत्तरी एवं उत्तर–पश्चिम प्रदेशों में ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध देशी जातियों ने विद्रोह कर दिया था। केवल सिपाहियों ने ही विद्रोह नहीं किया, इसे कोरी सैनिक क्रांति का ही नाम नही ंदिया जा सकता। यह तो भारत पर आंग्ल सत्ता के विरूद्ध सैनिक कठिनाइयों, राष्ट्रीय घृणा और धार्मिक कट्टरता का संयुक्त उभार था। इसमें देशी राजाओं और सैनिकों ने भी भाग लिया मुसलमान और हिंदुओं ने अपने शताब्दियों के धार्मिक विरोध आंदोलन को प्रोत्साहित किया था। चरबीवाले कारतूसों के विवाद ने तो केवल चिंगारी दहकाई और उस चिंगारी ने सभी ज्वलनशील पदार्थों में आग भड़का दी। यदि इस चिंगारी से अग्नि प्रज्वलित न होती तो किसी अन्य माध्यम से भी यही कार्य संपन्न हो जाता। ''मेरठ के सिपाहियों ने क्षण भर में ही एक नेता पा लिया, उन्हें एक ध्वज भी मिल गया और उद्देश्य भी और यह विद्रोह एक क्रांतियुद्ध में परिणत हो गया। जब वे प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियों से जगजगाती यमुना के तट पर पहुंचे तो उन्होंने अनजाने में ही इतिहास की एक निर्णायक घड़ी को प्राप्त कर लिया तथा सैनिक विद्रोह को एक राष्ट्रीय धर्मयुद्ध में परिणत कर दिया।''[5]

चार्ल्स बाल लिखते हैं–''आगे चलकर धारा किनारों को तोड़कर बह निकली और उसने भारत की सैनिक वसुंधरा को आप्लावित कर दिया। उस समय तो यही आशा की जाती थी कि ये धाराएं संपूर्ण यूरोपीय तत्त्वों को विनष्ट कर निगल जाएंगी। जिस समय विद्रोह की यह धारा पुनः मर्यादित होगी और अपने आपको सीमाओं में आबद्ध

[5] 'हिस्ट्री ऑफ अवर ओन टाइम', खंड 3 ।

कर लेगी तो राष्ट्रभक्त भारत अपने विदेशी शासकों से अपने आपको स्वतंत्र कर लेगा तथा वह देशी राजाओं के स्वतंत्र राज्यदंड के सम्मुख नतमस्तक होगा। अब यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण रूप ग्रहण कर चुका था। यह विद्रोह उस संपूर्ण जनता के विद्रोह का रूप धारण कर चुका था जो काल्पनिक गलतियों से क्षुब्ध होकर भड़क उठी थी और घृणा व कट्टरता के भ्रम में आबद्ध हो चुकी थी।''[6]

'कंप्लीट हिस्ट्री ऑफ द ग्रेट सेपॉय वार' शीर्षक अपनी पुस्तक में ह्वाइट लिखते हैं—''यदि मैं अवधवासियों के द्वारा प्रदर्षित साहस की प्रशंसा नहीं करूंगा तो एक इतिहासकार का पावन दायित्व न निभा पाऊंगा । नैतिक दृष्टि से अवध के तालूकेदारों की एक महान् भूल यह थी कि उन्होंने हत्यारे विद्रोहियों से हाथ मिलाया। किंतु इसके लिए भी उन्हें सदुद्देश्य से प्रेरित निष्ठावान देशभक्तों के रूप में मान्यता दी जा सकती है, क्योंकि वे अपनी मातृभूमि और सम्राट् के लिए संग्राम कर रहे थे, स्वराज्य और स्वधर्म के लिए संघर्षरत हुए थे।''

[6] सर जॉन के, 'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 644 ।

प्रकरण–2

कारण परंपरा

स्वधर्म एवं स्वराज्य–इन दो देवताओं का अधिष्ठान रखकर सन् 1857 में प्रारंभ हुए इस रण–यज्ञ का संकल्प कब लिया गया? अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार, इस रण–यज्ञ का संकल्प डलहौजी साहब के कार्यकाल में लिया गया था। उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण है। जिस क्षण हिंदुस्थान के तट पर परतंत्रता ने पहला कदम रखा तभी। बेचारा डलहौजी! उसने अधिक बुरा किया ही क्या? हिंदुस्थान की जन्मजात स्वतंत्रता का हरण कर एसके बदले गुलामी और स्वधर्म के स्थान पर ईसाइयत लादने का पातकी विचार जब पहले–पहल अंग्रेज व्यापारियों के मन में आया, तभी से हिंद भूमि के हृदय में क्रांति चेतना का संचार हुआ है। सन् 1857 के क्रांतियुद्ध का कारण अंग्रेजों के 'अच्छे शासन' या 'बुरे शासन' में न होकर केवल 'शासन' में है। अच्छा या बुरा का प्रश्न गौण है, मुख्य प्रश्न 'शासन' है। जिस देश को हिमालय ने उत्तर और समुद्र देवता ने 'दक्षिण' की ओर से सुरक्षित किया हुआ है उस निसर्गतः बलिष्ठ एवं निसर्गप्रिय हिंदुस्थान पर अंग्रेजों की सत्ता चलने देना है या नहीं, यह मुख्य प्रश्न सन् 1857 के समर–पट पर हल किया जा रहा था, यह यदि सत्य है तो फिर इस समर की मूल उत्पत्ति तभी ही हुई होगी जब यह प्रश्न पहले–पहल सामने आया होगा।

मैजिनी कहता है–"स्वतंत्रता प्रत्येक का प्रकृतिदत्त अधिकार है और इसलिए इस पवित्र अधिकार का अपहरण करने की इच्छा के अत्याचार को मिटाना भी प्रत्येक का प्रकृतिदत्त कर्तव्य है। व्यक्ति की, राष्ट्र की एवं मनुष्य जाति की प्रगति के लिए

उसमें चैतन्य चाहिए। परंतु जहां स्वतंत्रता नहीं होती वहां चैतन्य रहना संभव नहीं। जो लोगों की स्वतंत्रता छीन लेता है वह लोगों की प्रगति का विरोध कर पर–पीड़न का अक्षम्य पाप करता है। इतना ही नहीं अपितु अनजाने सारी मानव जाति का अर्थात् अपनी ही गरदन पर कुल्हाड़ी मारकर आत्महत्या के भयंकर पाप का भी भागीदार हो जाता है। यह पाप कर के आज तक किसका उद्धार हुआ है? ये गुलामी की बेड़ियां परमेश्वर की इच्छा के विरूद्व अपने मानवी बंधुओं के पैरों में जकड़कर आज तक किस पक्ष की विजय हुई है? स्वतंत्रता और गुलामी के झगड़े में अंतिम जय स्वतंत्रता की ही होती है।''[7]

सीले कहता है–''अंग्रेजों का हिंदुस्थान से संबंध प्रकृति से मजाक है। इन दो देशों में किसी तरह का प्राकृतिक बंधन नहीं है। उनका रक्त भिन्न है।''[8] पर यह सब भूलकर जिस वर्ष क्लाइव ने स्वार्थ और अन्याय का साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्लासी के मैदान पर रक्त–मांस की नींव रखी उस सन् 1687 के ही वर्श इस क्रांतियुद्ध के बीज कहां–कहां नहीं बोए? हेस्टिंग ने काशी, रोहिलखंड और बंगाल में वे बीज बोए तो वेलेजली ने मैसूर, आसई, पुणे, सतारा एवं उत्तरी हिंदुस्थान की उपजाऊ भूमि में उसकी बुआई की। इस बुआई में उन्हें कुछ भी कष्ट नहीं हुए, ऐसा नहीं है। तलवार और तोपों से हिंदुस्थान की भूमि जोतनी पड़ी। क्योंकि अन्य किन्हीं ऐरे–गैरे हलों को श्री वर्धन के परकोटे, शनिवार के बाड़े, सह्यादि के टीले, आगरा के बुर्ज और दिल्ली के भरी सिंहासन दाद न देते। इस पथरीली भूमि पर हल चलाकर उन्हें इकसार करने के बाद बीच में बचे–खुचे छोटे–बड़े ढेलों को भी फोड़ा गया। वचन भंग, अविश्वास, घात, जुल्म आदि छोटे–बड़े हथौड़ों से छोटे–छोटे रियासतदार समाप्त किए गए। सेना में नेटिव सिपाहियों का अपमान होने लगा। उनपर उन्मत्त फिरंगी अधिकारियों के हाथों कोड़ों की मार पड़ने लगी। उनके पराक्रम से नए प्रदेश मिलने पर मराठे या निजाम की ओर से उन्हें जागीरें मिलती थी। परंतु कंपनी की ओर से मिलती केवल मीठी–मीठी गप्पें।[9] जिनकी तलवारों ने अंग्रेजों

---

[7] 'मानव के कर्तव्य'।

[8] 'इंग्लैंड का विस्तार', पृष्ठ 214 ।

[9] ''यदि उसे (देशी सैनिक को) अपना संपूर्ण जीवन अपनी पूर्ण क्षमता का प्रदर्शन करते हुए सेना में लगाना पड़ता था तो जो सर्वाधिक सम्मान उसे प्राप्त हो पाता था–वह थी सूबेदारी। एक अंग्रेज सार्जेंट भी अपने से उच्च पद पर नियुक्त देशी अधिकारियों पर हुकुम चलाता था। परेड में भी अंग्रेज अधिकारी भूल करते थे तथा आदेश देते समय गलत शब्दों का प्रयोग करते थे; किंतु इसका संपूर्ण दोष सिपाहियों पर डालकर वे उनकी निंदा और भर्त्सना किया करते। इतना ही नहीं, जो देशी अधिकारी सेना में सेवा करते–करते वृद्ध हो गए थे उन्हें भी यूरोपियन खुलेआम अपशब्द कहते थे। देशी शासकों की सेनाओं के समान उन्हें यात्रा को पूर्ण करने के लिए हाथी और पालकियां

के लिए सारा हिंदुस्थान जीता था, उन सिपाहियों से इतना क्रूर व्यवहार किया जाता कि जनरल ऑर्थर वेलेजली घायल हुए सिपाहियों का उपचार करने के स्थान पर उन्हें तोप से उड़ा देता। इस तरह हिंदुस्थान के कोने–कोने में भयंकर क्रांतियुद्ध के बीज अंग्रेज लगातार बोते आ रहे थे और उनके इन प्रयासों को सफलता जल्दी ही प्राप्त होगी, ऐसे चिह्न प्रादुर्भूत होने में अधिक देर नहीं लगती।[10]

डलहौजी

जिस दिन स्पेन ने नीदलैंड की भूमि पर परमेश्वर की इच्छा के विरूद्ध अपनी गुलामी लादी, उसी दिन यह निशचित हो गया था कि नीदरलैंड और स्पेन के मध्य हजारों लड़ाइयों से भरा हुआ क्रांतियुद्ध होगा। वह कब, कहां और कैसे होगा–केवल इन गौण बातों का निर्णय आल्वा नामक स्पेन के गर्वनर ने किया। जिस क्षण ऑस्ट्रिया ने इटली के पैरों में गुलामी की बेड़ियां डाली। उसी दिन अनेक पराजयों परंतु अंतिम जय से घटित होनेवाला प्रचंड क्रांतियुद्ध निश्चित हो गया था। केवल शेष रहा तिथि निर्णय, वह मैटरनिख के जुल्मों से हो गया। उसी तरह जिस समय आंग्ल भूमि हिंद भूमि पर दासता लादने के लिए किसी राक्षस की तरह दौड़कर आई उसी दिन अंग्रेजों और हिंदुओं का जो भयंकर, क्रूर और घमासान युद्ध होना है, यह तय हो गया; केवल उसका आरंभ कब हो, यह डलहौजी ने तय कर दिया। डलहौजी के शासनकाल में हुए अमानुशी अन्याय कुछ सीमा तक नरम भी हुए होते तो भी उसके कारण अंतिम संग्राम टल नहीं सकता था, क्योंकि प्रत्येक देश स्वतंत्र रहे, यही प्राकृतिक दर्शनशास्त्र का अबाधित रहने वाला अंतिम सिद्धांत है। इस प्रकृति–हेतु के विरूद्ध कोई राष्ट्र के पैरों में बलपूर्वक गुलामी की बेड़ियां, फिर भले ही वे सोने से मढ़ी क्यों न हों, डाल दे तो काल के घन प्रहार के नीचे उनके टुकड़े होना निश्चित है। तथापि जहां–जहां गुलामी होती है वहां–वहां अत्याचार होना स्वाभाविक है और जहां–जहां फिरंगी शासन है वहां–वहां डलहौजी आने ही चाहिए, क्योंकि बिना अत्याचार के जिस तरह गुलामी असंभव है उसी तरह बिना डलहौजी फिरंगी राज्य असंभव बात है।

विदेशियों पर अपना अन्यायमूलक शासन चलाना जहां सर्वसम्मत हो, वहां अपने शासन में जो सर्वाधिक क्रूर होगा उसे ही श्रेशठ माना जाएगा–अर्थात् जो जितना ही

[10] प्राप्त नहीं होती थीं, फिर चाहे उन्हें कितनी भी लंबी यात्रा क्यों न करनी पड़े। वे कहते थे–निजाम और मराठी सरदारों के सिपाही भी हमारे सूबेदारों और जमादारों से अच्छा जीवन व्यतीत करते थे। अंग्रेज अधिकारी देश की सुंदरतम महिलाओं के जनानेखानों में भी प्रविष्ट हो सकते थे। और इस सबकी पराकाष्ठा तो तब हो गई थी जबकि जनरल ऑर्थर वेलेजली ने अपने घायल सैनिाकों को निर्ममता सहित गोलियों से उड़ा देने का आदेश दे दिया था।''
–सर जॉन के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 160–61

अन्यायी है उसे उस अन्याय का कमाल दिखाने के सिवाय अपना श्रेष्ठतम बनाए रखने की दूसरी कोई युक्ति नहीं बचती। इस तरह अन्याय और अधमता में जहां खुली स्पर्धा शुरू होती है वहां डलहौजी ही पैदा होंगे। अनीति–मूलक साम्राज्य जहां–जहां बढ़े वहां वहां ऐसे डलहौजियों के जंगल ही देश रहे।

पर इन सब डलहौजियों को पीछे छोड़ देनेवाला एक आंग्ल डलहौजी सन् 1848 में भारत आया। डलहौजी को अंग्रेज इतिहासकार 'साम्राज्य का प्रणेता' कहते हैं 'इस बात से अलग डलहौजी के अधम और नीच कर्मों के लिए अन्य किसी साक्ष्य की आवश्यकता ही नहीं है। सौ वर्ष तक चलाई गई अंग्रेजी अनीति का मूर्त परिणाम, स्वभाव से जिद्दी, जो मैं कहूं वही होगा–इस टेक पर रहनेवाला, साम्राज्य की चटक और उसका घमंड जिसके रक्त–मांस में घुला हुआ था, ऐसा धूर्त न भी हो पर दुःसाहसी राजनीतिज्ञ, हिदुस्थान की भूमि को सपाट करने के लिए इस भूमि पर उतरा।

डाकुओं के मुख्य नायक की दृश्टि में जिसके घर में संपत्ति भरी हुई है पहले उधर जाना स्वाभाविक है। ऐसा संपत्ति भरा घर दिखते ही वह उस घर पर, चाहे जिस रीति से संभव हो, डाका डालने की योजना बनाने में जुट जाता है। इस जल्दी में न्याय–अन्याय का विचार शुरू हो जाता है तो उसी समय डाकूगिरी समाप्त हो जाती है। ऐसी ही वस्तुस्थिति होने से अंग्रेजों के हिंदुस्थान पर डाले गए भयंकर डाकों[11] में अंग्रेजों के शासन में उस षासन को स्थिरता देनेवाले और उस डकैती को बढ़ानेवाले उनके कृत्य न्यायसंगत थे या अन्यायी, यह निश्चित करने के लिए घिस–घिस करना इतिहास की व्यर्थ खींचतान करना है। संधिपत्र, वचन, दोस्ती आदि शब्दों का डाकेजनी के शास्त्र में स्थान नहीं होता, इतना ध्यान में रखा जाए तो फिर इतिहास बहुत सी असंगतियों से बच जाएगा। फिर वॉरेन हेस्टिंग्स ने नंदकुमार को न्याय से मारा या अन्याय से और उस वॉरेन हेस्टिंग्स को अंगजों ने निरपराध मानकर क्यों छोड़ दिया, यह तय करने के लिए कागजों के ढेर खराब करने की आवश्यकता नहीं होगी। अज्ञानी लोग अपने भोले स्वभाव के अनुसार संधिपत्रों की सूचियां लेकर, उनकी तिथियां देकर, धर्मशास्त्र के वचन देकर, तर्कों के ताने–बाने रच या पिछली परंपराओं के आधार देकर, अपने घर पर आक्रमण करने के लिए आए डाकुओं में परावृत्ति या सहानुभूति उत्पन्न करने का भ्रमपूर्ण प्रयास

[11] मॉलकम लेविन कहता है–"...Grasping everything that could render life desirable, we have desired to the people of the country all that could raise them in society, all that could elevate them as men....we have delivered up their pagoda-properly to confiscation; we have branded them in our official records as 'heathens.' We have seized the possessions of their native princes and confiscated the estates of the nobles; We have unsettled the country by exactions and collected the revenue by means neighbour's purse for what it contains."

भले ही करें; परंतु धूर्त लोग इन निष्फल, बांझ प्रयासों पर हंसे बिना नहीं रहेंगे। डाकुओं पर लागू ये सारी बातें डलहौजी की डकैतियों पर तो विशेष रूप से लागू होती हैं, अतः उसके शासनकाल में घटित कृत्यों में न्याय–अन्याय निश्चित करने का प्रयास करना मूर्खता है। हिंदुस्थान की भूमि समतल करके उसपर तांडव करने डलहौजी आया था, इतना ध्यान में रखा जाए तो काफी होगा। जिसका अंतिम उद्देश्य प्राकृतिक रूप से सुंदर हिंद भूमि को अपनी दासी बनाना था, ऐसे दुर्योधन के लिए न्याय कैसा और अन्याय कैसा? इस पाप वासना को तृप्त करने के लिए जो भी साधन मिलें वे सारे वह उपयोग में लाता ही।

इन साधनों में से पहला साधन था पंजाब से हुई लड़ाई। डलहौजी के पैरों का स्पर्ष हिंदुस्थान के किनारे से होते ही उसे तुरंत यह ध्यान में आया कि पंजाब में जब तक रणजीत सिंह है तब तक अपनी पाप वासना पूरी करना इंग्लैंड के लिए बहुत भारी होगा यह देखकर उसका दृढ़ निश्चय बना कि उस पंजाबी सिंह को किसी तरह गुलामी के जाल में फंसाना ही चाहिए। यद्यपि चिलियनवाला के द्वार से बाहर आकर उस पंजाबी सिंह ने एक भयंकर आघात अपने शत्रु की छाती कर किया, लेकिन गुजरात के पिछले द्वार से शत्रु अंदर घुसा और सिंह गुफा जल्दी ही सिंह का पिंजरा बन गई। रणजीत सिंह की पटरानी चंद्रकुंवर लंदन में घुटकर मरी और रणजीत सिंह का पुत्र दिलीप सिंह दूसरे के दरवाजे टुकड़े जोड़ता पड़ा रहा।[12]

अब हिमालय से कन्याकुमारी तक तो सारा हिंदुस्थान लाल हो गया, परंतु अभी भी सिंधु नदी से इरावती (नदी) तक जैसा चाहिए था वैसा लाल नहीं हुआ था। फिर देर क्यों? ब्रह्मदेष में एक शांति मिशन भेजा कि फतह हुई। केवल वह शांति मिशन शांति का इतने प्रेम से आलिंगन करे कि उसकी पसलियां चूर–चूर हो जाएं। यह अति प्यारा कार्य भी अंत में संपन्न हो गया और ब्रह्मदेश लाल रंग में रंग गया। अब सिंधु नदी से इरावती तक और हिमालय से रामेश्वरम तक सारा हिंदुस्थान सचमुच लाल हो गया! पर जल्दी ही रक्तरंचित नहीं होगा, यह कैसे कहें?

पंजाब और ब्रह्मदेश अंग्रेजों ने जीते अर्थात् क्या किया, उसकी कल्पना केवल नामों से नहीं हो सकती। अकेले पंजाब का अर्थ था पचास हजार वर्ग मील का प्रदेश और चालीस लाख जनसंख्या। जिन पांच नदियों के तट पर ऋषियों ने वेदमंत्र गाए, उनके द्वारा सिंचित यह प्रदेश–पंजाब। यही प्रदेश लेने अलेक्जेंडर आया और इसी प्रदेश को बचाने के लिए पोरस लड़ा। इसी प्रदेश को लेकर रावण की भी महत्त्वकांक्षा

[12] रणजीत सिंह के साम्राज्य के उत्तराधिकारी दिलीप सिंह की दुर्दशा सुनकर किसी को भी दया आएगी। किंतु 'निष्पक्ष' के ने लिखा है–''दिलीप सिंह के लिए यह एक सुखद परिवर्तन था कि अपने जीवन के 12वें वर्ष में ही वह गवर्नर जनरल का आश्रित हो गया और उसे बंगाल की सेना के एक सहायक कर्मचारी की देखरेख में रखा गया, जो इस कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति था, जिसके निर्देशन में सिख राजकुमार का विकास एक भद्र ईसाई, एक अंग्रेज दरबारी के रूप में हुआ। ''

पूरी हो गई होती। परंतु डलहौजी को पंजाब और ब्रह्मदेष जैसे विस्तृत प्रदेष लेकर भी कोई संतोश न हुआ। हिंदुस्थान की सरहद तो अवष्य बढ़ी, परंतु अब भी अंदर पूर्व बादषाहों के कुछ मजार षेश थे, अतः उन्हें भी उखाड़कर सर्वत्र मैदाान करने की उसने प्रतिज्ञा की। पुरानी बादषाही के ये मजार स्थान घेरे हुए थे; केवल इतना ही नहीं, इन पुराने मजारों में गड़े प्रेतों से ही भावी बादषाही के पुन्रूज्जीवित होने की संभावना थी और यह संभावना डलहौजी को पूरी तरह समझ में आ गई थी। सतारा के मजार में हिंदू पदपादषाही गड़ी हुई थी और यीषू मसीह के पुनरूज्जीवन की तरह उन गाड़े हुए प्रेतों में से कदाचित् किसी भावी बादषाही का पुरूज्जीवन होगा, यह डर यीषू के चरित्र पर विष्वास रखने वाले डलहौजी को लगा हो तो कोई आष्चर्य नहीं। सन् 1857 के अप्रैल माह में सतारा के अंतिम महाराज अप्पा साहब दिवंगत हुए । यह समाचार मिलते ही डलहौजी ने वह रियासत हथियाने का निष्चय किया। कारण यह कि राजा की जायज संतति नहीं थी। जायज संतति न होने से गंवार मजदूर की झोंपड़ी भी लावारिस नहीं हो जाती। वह उके द्वारा नियुक्त दत्तक को या उसके निकट संबंधी को दे दी जाती है। पर सतारा? वह तो किसी गंवार की झोंपड़ी न होकर अंग्रेजों की बराबरी की 'दोस्त सरकार' थी।[13] सन् 1839 में प्रताप सिंह छत्रपति पर अंग्रेजी राज्य उलटने के शड्यंत्र का आरोप लगाकर उन्हें गद्दी से हटाने के बाद उके स्थान पर छत्रपति अप्पा साहब की नियुक्ति अंग्रेज सरकार ने ही की थी। इस पदच्युति के संबंध में मि. आर्नोल्ड अपने ग्रंथ 'Dalhousie's Administration" में कहते हैं–''it is not pleasant to dwell upon the circumstances of the dethronement&so discreditable they were.'' परंतु इस बेहूदी पदच्युति के बाद जिसे अंग्रेजों ने सतारा की गद्दी पर बैठाया वह प्रताप सिंह का जायज पुत्र न होकर भाई था। अर्थात् जायज पुत्र के अभाव में हिंदू षास्त्र के अनुसार अन्य संबंधियों का सिंहासन पर अधिकार बनता है, इस समय तक अंग्रेजों ने यह स्पश्ट स्वीकार किया है। यह स्वीकृति अपनी नियमित विष्वासघाती रीति के अनुसार डलहौजी साहब ने अस्वीकार कर दी। यही सत्य है। विभिन्न राजाओं से किए गए समझौतों में हमने दत्तक संतति पहले ही अमान्य की हुई है, ऐसा वे कभी भी नहीं कह सकते थे। सन् 1824 में कोटा के राजा का दत्तक स्वीकार करते समय अंग्रेजी सरकार ने ऐसा स्पश्ट कहा था–

''कोटा के राजकुमार के इस अधिकार को मान्यता दी ही जानी चाहिए कि उन्हें षास्त्रों के नियमानुसार दत्तक पुत्र ग्रहण करने और उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त

[13] सतारा की गद्दी पर सन् 1819 में छत्रपति की पुनर्योजना करते हुए अंग्रेजी द्वारा किए गए समझौते की पहली धारा निम्नवत् थी–''अंग्रेज सरकार अपनी ओर से वह देश अथवा क्षेत्र, जिसको विशेष रूप से निर्दिष्ट किया गया है, सरकार अथवा महाराजाधिराज छत्रपति (सतारा–नरेश) को देने पर सहमत है। हिज हाइनेस महाराजा छत्रपति और उनके पुत्र और उत्तराधिकारी पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रभुसत्ता प्राप्त राजाओं के रूप में इस क्षेत्र पर शासन करते रहेंगे।''

करने का अधिकार है।''[14]

पुनः सन् 1837 में जब ओरछा के राजा ने दत्तक लिया तब अंग्रेजों ने उसे स्वीकार करते हुए वचन दिया था–

''हिंदू नरेशों को यह अधिकार है कि वे स्ववंश की शाखा में उत्पन्न उत्तराधिकारी से अलग भी किसी को गोद ले लें। ब्रिटिश सरकार को ऐसे दत्तक को मान्यता देनी होगी; किंतु गोद लेने की यह प्रक्रिया हिंदू शास्त्र के विरूद्ध नहीं होनी चाहिए।''[15]

इतनी स्पष्ट भाषा में और इतने साफ–साफ दिए गए वचन कागजों में लिखे होते हुए भी यह कहने की हिम्मत अंग्रेज प्रवक्ता और अंग्रेजी नीति के सिवाय और कोई नहीं कर सकता कि वे हमने दिए ही नहीं थें उपर्युक्त दोनों उद्धरण देने का आशय बस इतना ही है। केवल यही दो उद्धरण हों, ऐसा नहीं। हिंदू शास्त्र के अनुसार दत्तक लेने का रजवाड़ों का अधिकार अंग्रेजों ने अनंत बार और अतंत करने का मूल कारण उपर्युक्त समझौतों एवं वचनों की भाषा में खोजने का अर्थ पूर्व शब्दों में मान्य किया हुआ था। केवल सन् 1823 से 1847 तक अंग्रेज सरकार ने एकदम स्पष्ट शब्दों में लगभग पंद्रह राज्यों की गद्दियों पर दत्तक राजाओं की योजना एवं अधिकार मान्य किए हैं–इतना कहना पर्याप्त है। क्योंकि इन रियासतों को अधिग्रहण दिशा की खोज में उत्तर दिशा को जाना है। 'हिंदुस्थान की भूमि सपाट' करने के लिए डलहौजी आया था और सतारा के हिंदू पदपादशाही की कब्र अपना सिर ऊंचा करना चाहती थी। अर्थात् प्रताप सिंह एवं अप्पा साहब इन दोनों ही भाइयों ने शास्त्रोक्त पद्धति से दत्तक लिये थे, फिर भी अंग्रेजों ने उन्हें सतारा की गद्दी। सन् 1674 में गागाभट्ट के हाथों अभिशिक्त और शिवाजी जिसपर विराजे थे, वह वही गद्दी को पहला बाजीराव अपनी विजय अर्पण कर मुजरा करता था यह वही सिंहासन था। महाराष्ट्र! देख, शिवाजी जिसपर बैठता था और संताजी, धनाजी, निराजी, बाजी–जिनके आगे 'जी' कहकर लोग नम्रता से झुकते थे तेरा वही सिंहासन डलहौजी ने टुकड़े–टुकड़े करके फेंक दिया। अब तू चाहे अर्जियां लिख या डेपुटेशन भेजता रह। डलहौजी नहीं सुनता तो फिर नहीं ही सुनता। इंग्लैंड में उसके वरिष्ठ अधिकारी तो जीवित हैं न? डलहौजी एक सामान्य आदमी है, पर उसके वे वरिष्ठ अधिकारी देवता भी हो सकते हैं? हमने उन्हें देखा ही कहां है? यह रंगों बापूजी बहुत बढ़िया और स्वामीभक्त व्यक्ति है–सतारा की शिकायत लेकर उसका इंग्लैंड जाना उचित है। कृपा की तो देव नहीं तो पत्थर! पर वे कृपा करते हैं या नहीं, इसकी बाट जोहता तू कितनी देर बैठेगा? कृपा अब होगी तब होगी, इस

[14] पार्लियामेंट पेपर्स, 15 फरवरी, 1851, पृष्ठ 153।

[15] वही, पृष्ठ 141 ।

आशा में रंगों बापूजी लंदन के लीडन हॉल स्ट्रीट की सीढ़ियां कितनी बार चढ़े–उतरेंगे। अपमान होने तक–मजाक बनाएं जाने तक–करोड़ों रूपए अंग्रेज बैरिस्टरों की जेब में पहुचांने पर लौटने के लिए दमड़ी भी न बचने तक–और अंत में हम सतारा नहीं देंगे, ऐसा गर्वीला उत्तर मिलने तक रंगों बापूजी लंदन का मृगजल पीते रहें।

जब रंगों बापूजी लंदन जाने की तैयारी में लगे थे तब डलहौजी का ध्यान दूसरा षड्यंत्र रचने में लगा था। मराठा सत्ता का एक पौधा, नागपुर की गद्दी के स्वामी राघोजी भोंसले अपनी आयु के सैंतालासवें वर्ष में ही अचानक स्वर्ग नाश का कारण बना। जिन्हें यह ज्ञात रहा कि अंग्रेज हमसे द्वेष करते हैं वे बच गए। परंतु जिन्होंने भी यह माना कि अंग्रेजों से हमारा स्नेह है, उनकी गरदन मीठी छुरी से कटी। विदर्भ का राज्य अंग्रेजों की जागीर नहीं थी या वह उनकी मातहत रियासत भी नहीं थी; वह एक स्वतंत्र और बराबरी की सरकार थी। ऐसे राज्य का राजा निस्संतान मर गया तो उस राज्य को अधिग्रहण करने का अधिकार किस पूर्व या पश्चिम के न्याय से मिलता है, यह सिद्ध करके दिखाने के लिए जे. सिल्वियन ने अंग्रेज सरकार का आह्मन किया था। सारी मिलीभगत। एक खाए, दूसरा हजम करे। एक गला काटे, दूसरा पूछे कि किस प्रकार से गला काटा? मानो गला काटनेवालों को कानून का बहुत डर रहता है। सन् 1843 में डलहौजी ने अपने मित्र की गरदन उतार दी। कारण दिखाया–राजा ने दत्तक लिया ही नहीं था। राजे राघोजी संतान–प्राप्ति की संभावना की आयु में एकाएक दिवंगत हो गए। उसमें यदि वे दत्तक न लेते हुए दिवंगत हुए थे तो भी वह अधिकार उनकी पत्नी को प्राप्त था। राजा की मृत्यु के बाद राजपत्नी द्वारा लिये एग दत्तक, 1834 में धार की राजपत्नी द्वारा लिया दत्तकए 1841 में किशनगढ़ की रानी का लिया हुआ दत्तक–एक–दो नहीं अनेक दत्तक अग्रेंजों ने स्वीकार किए थे। परंतु उस समय उन्हें स्वीकारने में लाभ था और आज राघोजी के पीछे उनकी पत्नी द्वारा लिये गए दत्तक को नकारने में लाभ था। क्या लाभकारी था, यह मुख्य प्रश्न था और उसी के अनुसार सारी बातें तय होती थीं। दत्तक नहीं लिया, इसलिए सतारा का राज्य अधिगृहित किया तो लिया हुआ दत्तक वारिस नहीं होता, इसलिए सतारा का राज्य अधिगृहीत किया। अपने प्राण बचाने की वास्तविकता इच्छा हो तो तर्कशास्त्र के चक्कर में न पड़ें, यही उचित है!

नागपुर का राज्य अधिग्रहण कर डलहौजी ने 76, 432 वर्ग मील का विस्तीर्ण प्रदेश, 46,50,000 जनसंख्या और 5 लाख वार्षिक आमदनी का राज्य हड़प लिया। राजवंश की गरीब रानियां दुःख से रो रही थी। ठीक उसी समय राजमहल के दरवाजे को

खटखटाया गया। कौन है, यह देखने के लिए द्वार खोला तो अंग्रेजों के सिपाही महल में घुसने लगे। तबेले से घोड़े छोड़े गए, हाथी पर बैठी रानियों को नीचे उतारकर उन हाथियों को बाजार में बिकने भेजा गया–वैसे ही राजमहल की सोने–चांदी की वस्तुएं छीन–छीनकर नागपुर के बाजारों में बिकने के लिए रखी गई। राजपत्नी के कंठ में शोभित हार बाजार में धूल खाता पड़ा रहा। हाथी जहां सौ रूपए में बिका, उसी नीलामी में घोड़े की कीमत–जिस घोड़े को डलहौजी के घोड़े से अधिक मूल्यवान खुराक मिलती थी उस घोड़े की कीमत–बीस रूपये और दूसरा जोड़ा पांच रूपए में बिका, क्या आश्चर्य! हाथी और हाथी के हौदे, घोड़े और बैलों की पीठ की झूलें बेची गई। शरीर के सरे अलंकार छिन जाने से रानियां निष्कांचन हो गई। फिर भी अंग्रेजों का स्नेह कम नहीं हुआ था। फिर राजभवन खोदा जाने लगा।[16] स्वयं रनी के शयनकक्ष में फिरंगियों की कुदाल चली। पाठक! ठहरें, इतनी जल्दी शरीर में सिहरन मत आनें दें, क्योंकि यह खुदाई अभी तो आगे भी चलेगी। देखिए, वह रानी के शयनकक्ष के पलंग को तोड–फोड़कर भूमि खोदने लगा। और यह कब? जब बराबर के कक्ष में राजपत्नी अन्नपूर्णाबाई जीवन के अंतिम क्षण गिन रही थी। नागपुर के भोंसले घराने की रानी के शयन के पवित्र पलंग पर बैठकर अंग्रेज उस अंतिम सांस के ताल पर कुदाली चला रहे हैं। और अपराध कौन सा? वह यह कि राजा राघोजी दत्तक लेने से पहले स्वर्गवासी हो गए।

अन्नपूर्णाबाई अंततः उस असह्य अपमान से मर गई। परंतु रानी बांकाबाई की विलायत से न्याय पाने की आशा अभी नहीं मरी थी। पर जल्दी ही अंग्रेजी डॉक्टरों को लाखों रूपए चराने के बाद उन्होंने जो रामबाण औषधियां दीं उनसे वह आशा भी निजधाम चली गई। फिर रानी बांकाबाई क्या कर रही थी? वह अपनी शेष आयु 'राजनिष्ठा' में बिता रही थी। जब सन् १८४७ में झांसी में बिजली कड़क रही थी तब इधर 'बांका' नागपुर में अपने पुत्रों के मन में स्वराज्य के लिए तलवार उठाने की इच्छा जाग्रत होने की संभावना को देख ''मैं स्वयं तुम्हारे नाम सरकार को बताऊंगी और तुम्हारे सिर कलम करने की सलाह दूंगी''-ऐसी धौंस दे रही थी। कुल-कलंकिनी बांका, जा पड़ नरक में-यदि वहां भी देशद्रोहियों को प्रवेश हो तो।

[16] डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेन', पृष्ठ 165–68 ।

प्रकरण–3

नाना साहब और लक्ष्मीबाई

महाराष्ट्र की पुण्यभूमि में माथेरान के गिरी शिखर के गौरव और उस गिरी शिखर की तलहटी में हरी चादर से शोभित भूमि के गौरव में से किसका वर्णन अधिक किया जाए, इसका निर्णय करना असंभव है। इस शानदार माथेरान की देखरेख में और इस सुदंर भूमि की गोद में वेणु नामक एक छोटा सा गांव अपनी सहज सुंदरता से पहले से ही सुंदर उस प्रदेश को और अधिक सुंदर बना रहा था। वेणुग्राम में जो कुलीन एवं सदाचार संपन्न परिवार थे उनमें माधवराव नारायण का परिवार मुख्य रूप से गिना जा सकता था। माधवराव नारायण और उनकी सुशील भार्या गंगाबाई का जोड़ा गृह–दरिद्रता से पीड़ित होकर भी परस्पर प्रेम के सुख में स्वयं को भाग्यवान समझता था। उस पवित्र परिवार के उस छोटे से घर में सन् 1824 में सबके मन और बदन उस समय उल्लास से खिल उठे जब साध्वी गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया। वह सत्पुत्र और कोई नहीं, श्रीमंत नाना साहब पेशवा ही थे जिनके नाम से अत्याचारी राजाओं की देह कांपने लगती थी और जिन्होंने स्वराज्य और स्वतंत्रता के लिए मर मिटनेवालों में अपना नाम अजर–अमर किया। जिस दिन यह भाग्यशाली बालक जनमा वह दिन कौन सा था, इसकी भी इतिहास को जानकारी नहीं। जिस दिन की जयंती मनानी चाहिए उस दिन की स्मृति इतिहास में न हो, यह बात कितनी उद्वेगकारी है! ऐसे दिन राष्ट्र के इतिहास में बहुत

अधिक नहीं होते। हिंदुस्थान में गुलामी के गोबर में सड़ते हुए गोबर के कीड़ों को जन्म देनेवाले दिन लाखों उदय या अस्त होते हैं। परंतु अपनी ईश्वरदत्त स्वतंत्रता और स्वराज्य का अपहरण करनेवाले का रक्त–प्राशन करने के लिए तृशित, मानधन नाना साहब को जन्म देनेवाले दिन षताब्दियों में एक–दो ही होंगे। ऐसे अलभ्य दिन की यह अवमानना देखकर परमेष्वर ऐसे अपात्र को फिर से दान नहीं करेगा, इसकी लज्जा महाराश्ट्र, तुझको होनी चाहिए। जिसने तेरे लिए और तेरे सम्मान के लिए रणांगण में अपना रक्त उड़ेला–उसकी जन्मतिथि तुम्हें ज्ञात न हो–और हाय–हाय! उसकी मृत्युतिथि भी तुझे ज्ञात न हो! तेरे स्वाभिमानी पुत्र कब जनमे, यह तुझे ज्ञात न हो और तेरे ही विष्वासघात के कारण कब मरे, यह भी तुझे ज्ञात न हो! इस अक्षम्य कृतघ्नता के लिए तुम्हारे लिए गुलामी की बेड़ियों का दंड ही उचित है! और वही तुम भोग भी रहे हो!

यह गुलामी की बेड़ी 8 लाख रूपयों में पहली बार खरीदनेवाले कुल–कलंकी अंतिम रावबाजी पुणे की राजगद्दी से उतरकर भागीरथी के तीर पर इसी समय आए थे। उनके साथ ही महाराश्ट्र से बहुत से परिवार भी आए थे और यह सुनकर कि उन सब परिवारों का योगक्षेम आश्रय में आकर रहने लगे। माधवराव नारायण भी इन्हीं लोगों के साथ सन् 1827 में ब्रह्मवर्त् में रावबाजी के आश्रय में रहने सपरिवार चले गए। वहां रावबाजी की माधवराव के पुत्र से उनके बाल–तेज को देखकर रावबाजी इतने चकित हो गए कि कि माधवराव उनके सगोत्री हैं, यह ज्ञात होते ही उन्होंने नाना साहब को 7 जून, 1827 को दत्तक के रूप में ग्रहण कर लिया। उस समय नाना साहब की आयु केवल ढाई वर्श की थी। इस रतह वेणुग्राम में जनमा यह बालक अपने पूर्वसंचित पुण्य अंष के कारण महाराश्ट्र राज्य के अधिपति की गद्दी का वारिस हो गया। पेषवा की गद्दी का वारिस होना महाभाग्य की बात है। परंतु ऐ तेजस्वी राजकुमार! उस भाग्य के साथ ही आनेवाला उत्तदायित्व भी तुम्हें समरण है कि नहीं? पेषवाओं की लड़ी हैं। इसने बड़गांव की संधि की और सबसे विषेश महत्त्व की बात यह कि अब षीघ्र ही अपवित्र स्पर्ष से इसके भ्रश्ट होने का अवसर आनेवाला है या आ ही गया है, यह सब तुझे मालूम है या नहीं? गद्दी का वारिस होने का अर्थ होता है उसके संरक्षण और सम्मान की रक्षा करना। फिर पेषवाओं की इस गद्दी के सम्मान की रक्षा करेगा या नहीं, या तो विजय का मुकुट इस गद्दी के सिर पर रखना पड़ेगा अन्यथा चितूर की मानिनी की तरह दीप्त चिता में जलना होगा। इसके सिवाए पेषवा की गद्दी का सम्मान तीसरे किसी उपाय से नहीं होगा। हे तेजस्वी राजकुमार! यह दायित्व ध्यान में रखकर तू महाराश्ट्र की गद्दी पर सुख से बैठ। पेषवा की गद्दी षरणागत हुई, यह सुनने का अवसर तेरे बा पके कारण आने

से सब ओर लज्जा की कालिमा छा गई थी और सबकी यह इच्छा थी कि पेशवा की गद्दी का अंत होना ही है तो वह उसके प्रारंभ जैसा उज्जवल हो। मरना हो तो मारते–मारते मरे। बालाजी विश्वनाथ जिस गद्दी का पहला पेशवा था उस गद्दी का अंतिम पेशवा श्रीमंत नाना साहब था, यह अभिमानपूर्वक इतिहास को कहा जा सके, इसलिए हे राजतेजयुक्त बालक! तू महाराष्ट्र की पेशवाई गद्दी पर चिरकाल विराजमान हो।

इसी समय श्री क्षेत्र काशी में मोरोपंत तांबे और उनकी सुशील पत्नी भागीरथी चिमणाजी अप्प साहब पेशवा के आश्रय में रहते थे। इस दंपती को अपना नाम इतिहास में अजर–अमर होनेवाला था, लेकिन हिंदुस्थान के हाथ में दामिनी–सी दमकनेवाली खड्ग जैसी कन्या को जन्म देने का सौभाग्य उसे प्राप्त है, उस समय उस दंपती को यह शायद ही ज्ञात होगा। 19 नवंबर, 1835 को उपर्युक्त दंपती की गोद में महारानी लक्ष्मीबाई साहब ने जन्म पाया। उस शौर्यशालिनी का बचपन का नाम मनुबाई था। इस सुलक्षणी कन्या का जन्म हुए तीन–चार वर्ष बीतते–न–बीतते सारा परिवार काशी छोड़ बाजीराव के उदार आश्रय में ब्रह्मवर्त् आ गया और वहां लक्ष्मीबाई और नाना साहब के मेल से रत्न और कांचन का जो संयोग बना उसे देखकर किसे आनंद न हुआ होगा! आगे चलकर अपने स्वधर्म एवं स्वराज्य के लिए तलवारें कैसे चलानी हैं, इसका प्रशिक्षण लेते हुए शस्त्रशाला में राजपुत्र नाना साहब एवं मनोहारिणी छबीली लक्ष्मीबाई को साथ–साथ खेलते देखकर किन नेत्रों को हर्ष नहीं हुआ होगा! मनुष्य की शक्ति कितनी मर्यादित है! जिस समय राजपुत्र नाना और छबीली लक्ष्मी तलवार का खेल एक साथ सीखते थे, उस समय लोगों को न अद्वितीय बच्चों का भावी दिव्यत्व नहीं दिखा और अब जब वह दिव्यत्व उन्हें दिखता है, तब उनकी वह भूतकालीन बाल लीलाएं नहीं दिखती। लेकिन मनुष्य के चर्मचक्षु की वह अदूरदृष्टि दूर करने को यदि कल्पना का चश्मा मिले तो भूतकाल की वह बाललीला हम सहज ही देख सकेंगे। श्रीमंत नाना साहब और उनके बंधु राव साहब जब अपने शिक्षक के पास विद्याभ्यास कर रहे थे तब यह तेजस्विनी छबीली भी अटक–अटककर पढ़ना सीख रही थी।[17] हाथी के हौदे में नाना साहब बैठे हैं और दूसरे पर बैठकर यह मूर्त लक्ष्मी कब आती है, इसकी प्रतीक्षा में लगाम खींचे खड़े हैं–तभी कमर में तलवार लटकी हुई, वायु के कोमल झोंके से जिसके घुंघराले केश किंचित् मात्र हिल रहे हैं और जिसकी गौर तनु उन्मत्त घोड़े को नियंत्रण में रखने के श्रम से गुलाबी हो गई है–ऐसी छबीली अपने घोड़े पर साथ आते ही दोनों ही दौड़ते निकल जाते हैं। नाना की आयु लगभग अठारह और छबीली का सात वर्ष के आसपास थी। सातवें वर्ष से भावी धर्मयुद्ध के इन दो प्रमुख योद्धाओं की कवायद प्रारंभ हुई, यह कितनी मनोरम बात है! इन दो मानवी रत्नों का तब से एक–दूसरे पर बहुत प्रेम था।

[17] पारसनी कृत 'झांसी की रानी का चरित्र', पृष्ठ 28–29 ।

इन दो भाई–बहनों की यम द्वितीया के दिन भाईदूज होती थी। सुंदर, सतेज, मनोहरी छबीली हाथ में सोने का दीप लेकर उस तरूण राजकुमार की आरती उतारती थी।

सन् 1542 में छबीली का झांसी के महाराज गंगाधर राव साहब से विवाह हुआ और वह झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई बनी। महारानी लक्ष्मीबाई झांसी में अपने पति सहित लोकप्रिय हो रही थी। कि सन् 1841 में बाजीराव साहब का देहांत हो गया। बाजीराव साहब की मृत्यु के लिए एक बूंद आंसु भी नहीं बहाना है, क्योंकि सन् 1818 में स्वयं का राज्य बेचकर इस कुल कलंकी ने देसरे राज्य को डुबोने में अंग्रेजों की सहायता की थी। अपनी 5 लाख की पेंषन में से बहुत सारा धन बचाया था। अफगानिस्तान की लड़ाई में जब अंग्रेजों को भेजे। फिर आगे जब पंजाब में सिख राश्ट्र से अंग्रेजों की लड़ाई षुरू हुई तब ब्रह्यवर्त का मराठा मंडल सिखों से मिलकर अग्रेंजो के विरूद्ध उठेगा, ऐसा दिखने लगा; परंतु तभी इस बाजी ने उसे बेरंग कर दियां उसने षिवाजी के इस पेषवा ने अपनी गांठ का व्यय करके एक हजार पैदल और एक हजार षनिवार बाड़ा बचाने के लिए सेना नहीं थी, पर सिखों का बाड़ा अंग्रेजों को सौंपने के लिए भरपूर सेना थी। हाय रे राश्ट्र! मराठे सिखों का राज लेंगे और सिख मराठों का राज्य लेंगे। किस कारण से? इसलिए कि दोनों की छाती पर अंग्रेज नाच सकें। ऐसा बाजीराव मरा, इसके लिए मृत्यु का आभार ही माना जाए। बाजीराव ने मृत्यु–पूर्व ही मृत्युपत्र लिखकर श्रीमंत नाना साहब को पेषवाई के सारे अधिकार और अपने वारिसदारी के सारे हक सौंप दिए थे। परंतु बाजीराव के मरने का समाचार मिलते ही अंग्रेज सरकार ने घोशित किया कि नाना साहब को 5 लाख रूपयों की पेंषन पर किसी भी तरह का अधिकार नहीं है। अंग्रेज सरकार का कुछ प्रतिबिंब उनके द्वारा स्वयं लिखवाए गए पत्र में प्रतिबिंबित हुआ है। वे पूछते हैं–''हमारे विख्यात राजवंष से आपका यह कृपण व्यवहार पूरी तरह से अन्यायपूर्ण है। हमारा विस्तृत राज्य और राज्य–षासन जब आपको श्रीमंत बाजीराव से प्राप्त हुआ त बवह ऐसे समझौते पर प्राप्त हुआ कि आप उसके मूल्य के रूप में 5 लाख रूपए प्रति वर्श दें। यह पेंषन यदि हमेषा रहनेवाली नहीं है तो उस पेंषन के लिए दिया हुआ राज्य हमेषा आपके पास कैसे रहेगा? उस समझौते की एक षर्त तो तोड़ी जाए और दूसरी बनी रहे, यह अनुचित है।''[18] बाद में ऐसा जो कहा जा रहा था कि आप दत्तक पुत्र हैं, इसलिए आपका हक नहीं बनता, उसके संबंध में साफ–साफ और तर्कसंगत निवेदन करने के बाद श्रीमंत नाना साहब कहते हैं–''श्रीमंत बाजीराव साहब

[18] नाना साहिब्स क्लेम ईस्ट इंडिया कंपनी' में यह मूल पत्र दिया हुआ है।

ने अपनी पेंशन में मिव्ययिता से कुछ राशि बचाई, इसलिए अब पेंशन चालू रखने का कोई कारण नहीं है, ऐसा यदि कंपनी कहती है तो इस तर्क का सारे इतिहास में उदाहरण मिलना कठिन होगा। यह पेंशन जो दी गई वह समझौते की शर्त के रूप में दी गईं उस समझौते में बाजीराव उस पेंशन को किस तरह व्यय करें, उस शर्त में क्या यह भी तय किया गया था? ए हुए राज्य के लिए यह पेंशन मिलती है। उसे कैसे व्यय करना है, यह कहने का इस जगत् में किसी को तनिक भी अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं अपितु श्रीमंत बाजीराव इस पेंशन की सारी–की–सारी राशि यदि ब चाते तो भी वैसा करने में वे पूरी तरह स्वतंत्र थे। कंपनी से मैं यह पूछता हूं कि उनके कर्मचारियों की पेंशन का व्यय किस तरह होता है, क्या इसकी जांच करने का अधिकार उसे है? कोई भी पेंशनभोगी कितना खर्च करता है, क्या बचाता है,? यह स्वयं के नौकरों से भी पूछना संभव है क्या? परंतु जो प्रष्न नौकरों से भी नहीं पूछा जा सकता वह एक विख्यात राजवंष के अधिपति से पूछा जो प्रष्न नौकरों से भी नहीं पूछा जा सकता वह एक विख्यात राजवंष के अधिपति से पूछा जा रहा है।'' यह आवदेन लेकर नाना के विष्वासपात्र वकील अजीमुल्ला खान विलायत गए।

इस सन् 1857 के क्रांतियुद्ध में जो महत्त्व के पात्र हैं उनमें अजीमुल्ला खान का नाम स्मरणीय है। अजीमुल्ला खान पहले बहुत निर्धन होते हुए भी अपने बुद्धिबल से अपनी उन्नति कर नाना के एकनिश्ठ वकील हो गए थे। वे पहले एक अंग्रेज के यहां घरेलु नौकर थे।[19] उस अति सामान्य नौकरी में भी अपनी महत्त्वकांक्षा न छोड़ते हुए वहां उन्होंने अंग्रेजी और फ्रेंच भाशा का अच्छा परिचय प्राप्त किया। ये दो भाशाएं अच्छी तरह सीख लेने पर उन्होंने कानपुर के एक स्कूल में षेश अध्ययन किया और थोड़े ही दिनों में वहां की सरकारी पाठषाला में षिक्षक हो गए। उनकी बुद्धिमत्ता की कीर्ति नाना साहब के कानों में पड़ते ही उन्होंने उन्हें अपने दरबार मं रख लिया। सन् 1854 में अजीमुल्ला खान इंग्लैंड गए। अंग्रेजी रीति–रिवाजों की संपूर्ण जानकारी होने से लंदन के लोगों में वे बहुत प्रिय हो गए। अपनी आकर्शक और मीठी वाणी, अपने षारीरिक तेज एवं अपनी असीम उदारता के कारण अजीमुल्ला अनेक अंग्रेजी ललनाओं के गले का हार बन गए। लंदन के सार्वजनिक बगीचों में या ब्राइटन के समुद्री किनारे पर रत्न जड़ित पोषाक में इस 'भारतीय राजा' को देखने आंग्ल नर–नारियों की भीड़ इकट्‌ठी होती थी। कुछ अंग्रेज युवतियां तो अजीमुल्ला पर इतनी लट्‌टू हो गई थी कि उनके वापस हिंदुस्थान आ जाने पर भी उन्हें अत्यंत आदर और प्रेम की भाशा में लिखे उनके प्रेमपत्र आते थे। हैवलॉक की सेना ने जब ब्रह्मवर्त जीता तब उसे इंग्लैंड की अनेक भद्र महिलाओं द्वारा अपने 'प्रिय अजीमुल्ला खान' को भेजे पत्र देखने को मिले। अजीमुल्ला खान के प्रति महिलाओं के मन आकर्शित हो गए थे तो भी ईस्ट इंडिया कंपनी का मन उसकी ओर

[19] थॉमसन कृत–'कानपुर'।

आकर्षित न हुआ और उसने अनेक दिन चक्कर लगवाकर उन्हें साफ जवाब दिया कि 'गर्वनर जनरल द्वारा किया गया फैसला हमको पूरी तरह मान्य है और इसलिए बाजीराव के दत्तक का उनकी पेंशन पर किसी तरह का अधिकार शेष नहीं रहता।' इस तरह मुख्य कार्य के संबंध में निराश हो जाने पर अजीमुल्ला खान इंग्लैंड छोड़कर हिंदुस्थान की ओर आने के लिए फ्रांस के रास्ते निकले। हम उन्हें यात्रा में ही छोड़कर यह देखें कि नाना साहब उस समय क्या कर रहे थे?

श्रीमंत नाना साहब पेशवा के जीवन की विस्तृत जानकारी प्रकाशित करने का सुअवसर महाराष्ट्र के इतिहास के भाग्य में है क्या? वह अवसर जब आएगा तब आएगा, पर अभी उनके संबंध में जो भी जानकारी मिली है, यद्यपि वह उनके शत्रुओं की ओर से ही प्राप्त हुई है तब भी उसका संकलन करके रखना बुरा न होगा। श्रीमंत के बचपन की थोड़ी–बहुत जानकारी ऊपर दी जा चुकी है। ब्रह्मवर्त एक छोटा सा परंतु ठाठदार नगर था। नगर से लगा हुआ भागीरथी का पाट था। सुंदर घाट, अनेक देवालय और नाना भूषणों से मंडित वहां आनेवाले नर–नारियों के समूह की शोभा से वह बह्मवर्त नगर और वह भागीरथी का पाट बहुत सुंदर लगता था। श्रीमंत का बाड़ा बहुत विस्तीर्ण और उत्तम साज–सामान से सुशोभित था। अलग–अलग रंग की मूल्यवान दरियों और गलीचों से उस बाड़े के दीवानखाने सजे हुए थे। यूरोपियन कारगरी का भिन्न–भिन्न रंगो में कांच का सामान, मोमबत्तियों के बड़े–बड़ें दर्पण, हाथी दांत और सोने से निर्मित रत्नजड़ित नक्काशी के काम, संक्षेप में हिंदुस्थान के राजमहलों में दिखनेवाली सब प्रकार की कमनीयता श्रीमंत के उस दीवानखाने में दिखती थी।[20] घोड़ों और ऊंटों के सारे उढ़ावन चांदी के होते थे। श्रीमंत को घोड़ों का बहुत शोक था और उत्तर हिंदुस्थान में उनकी अश्वविद्या की बड़ी धूम थी। उनकी घुड़सवार उत्तम और होशियार घोड़ों से हमेशा भरी रहती थी। अलग–अलग जाति के हिरन, शिकारी घोड़ों से हमेशा भरी रहती थी। अलग–अलग जाति के हिरन, शिकारी कुत्ते, सांभर, ऊंट एवं हिंदुस्थान के सब तरह के जानवर पालने में उनकी बहुत रूचि थी। परंतु इन सब वस्तुओं की तुलना में श्रीमंत का शस्त्रागार बहुत उत्तम था। उसमें अलग–अलग तरह के शस्त्र, तेज धारवाली तलवारें, एकदम नई बंदूकें और सब तरह की तोपें बहुत थी। श्रीमंत स्वभाव से स्वाभिमानी थे। हम एक बड़े राजवंश के अंगभूत हैं और उस महान् और प्रथित वंश को सोहे, ऐसा जीवन की सकें तो जीना है, अन्यथा पूरी तरह नामशेष हो जाता ही अच्छा, यह उनका निश्चय था। अपने आभिजात्य और कुल की महानता का उनके द्वारा भेजे गए आवेदन में बार–बार साभिमान उल्लेख हुआ है। मराठों के विस्तृत साम्राज्य का अधिपति होते हुए भी पेंशन के लिए दूसरों के दरवाजे पर निवेदन करने की

---

[20] थॉमसन कृत–'कानपुर' में कानपुर के कत्लेआम में से जो दो व्यक्ति बचे हुए थे, थॉमसन उन्हीं में एक थे, अतः उपर्युक्त पुस्तक का किंचित् महत्त्व है।

मजबूरी का उनको बहुत दुःख होता था। 'संभावितस्य चाकीतिर्मरणादतिरिच्यते' के अनुसार अकीर्ति की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करनेवालों में से वे थे। उनका स्वभाव राजा जैसा उदार और शूरों जैसा स्वाभिमानी था। कभी–कभी कानपुर की सेना के यूरोपीय अधिकारियों को वे पार्टियां देते थे; परंतु उनके निमंत्रण को वे कभी स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि उनकी पात्रता के अनुसार तोपों की सलामी देना कंपनी को स्वीकार न था।[21] वे अपने प्रदेश के लोगों से बहुत स्नेह करते थे। उनका स्वभाव गंभीर और रहन–सहन बहुत सादा था। किसी तरह के दुर्व्यसन का उन्हें रत्ती भर भी शौक नहीं था। उनका कई बार निरीक्षण कर चुके एक सज्जन लिखते हैं–

''मैंने जब उन्हें देखा, उस समय उनकी आयु लगभग अट्ठाईस वर्ष होगी; पर वे चालीस के आसपास के दिखते थे। शरीर उनका स्थूल था, चेहरा गोल, आंखें उग्र, पानीदार और चंचल, कद–काठी सामान्य, स्पेनीश लोगों जैसा गोरा रंग और बातचीत कुल मिलाकर आनंदी और कुछ विनोदी थी। दरबार में वे किनखाबी पोशाक पहनकर बैठते थे।'' उनके शरीर पर पहने अलंकार और उनके सिर के अत्यंत मूल्यवान मुकुट को देख यूरोपियन महिलाएं ललचा जाती थीं–ऐसा ट्रेवेलियन लिखता है। नाना का व्यवहार भी इस भव्यता को शोभा देने योग्य उदार और दयालु था। वे स्वयं की प्रजा पर कृपा करते थे, इसमें तो कोई आश्चर्य ही नहीं; परंतु जिन्होंने उनसे बेईमानी कर उनके जीवन का सत्यानाश किया, उन अंग्रेज लोगों पर भी वे हमेशा कृपा करते रहते थे। कितने ही अंग्रेज युवा दंपतियों को हवाखोरी करने की इच्छा होने पर महाराज की बग्घी उनके लिए भेज दी जाती थी। कितने ही अवसरों पर महाराज के घर अंग्रेज अधिकारी तथा अन्य लोग अपनी मैडमों के साथ बुलाए जाते और उत्तम शोलें, मूल्यवान मोती, रत्न आदि वस्तुएं उनको उपहारस्वरूप दी जाती। व्यक्ति के लिए द्वेष उनकी उदार आत्मा को कलुषित नहीं करता था, यह इससे अच्छी तरह सिद्व होता है। राष्ट्रयुद्ध में जिनकी दे हके टुकड़े–टुकड़े करना है उन्हीं प्रतिस्पर्धियों को अन्य अवसरों पर उपकृत करना, यह वीरता की उच्च कल्पना हिंदुस्थान के काव्य और इतिहास में हर क्षण दृष्टिगोचर होती आई है। राजपूत वीर अपने कट्टर शत्रु से भी युद्ध–अवसर को छोड़ ऐसी ही उदारता से व्यवहार करते थे। श्रीमंत नाना अपनी उदारता के कारण उस समय के अंग्रेजों के बहुत प्यारे हो गए थे, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। श्रीमंत नाना के आतिथ्य–

[21] 1. थॉमसन कृत–'कानपुर', पृष्ठ 48।

2. सर जॉन के कहता है–"A quiet unostentatious young man not at all addicted to any extravagant habits."

3. चार्ल्स बाल कृत–'द हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्युटिनी', खंड 1. पृष्ठ 305।

4.ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर', पृष्ठ 68–69।

5. ''नाना साहब हमारे देशवासियों के साथ संपर्क होने पर सदैव जिस सत्यता का व्यवहार करते थे वह अवर्णनीय है। अधिकारियों को उनकी मैत्री और सरलता पर पूर्ण विश्वास और भरोसा था। पदाधिकारी भी उन्हें 'महान् पुरूष' कहकर ही संबोधित करते थे।'' –ट्रेवेलियन कृत–'कानुपर'

सात्कार का जब तक आनंद ले रहे थे तब तक अंग्रेज अधिकारियों और मैडमों के वे गले का हार बने हुए थे। परंतु कानपुर के रण–मैदान में स्वराज्य के लिए और स्वधर्म के लिए उनके द्वारा तलवार उठाए जाते ही उनपर दुःशब्दों और निम्न स्तर की गालियों की बौछार शुरू हो गई। ऐसे इन कोतवाल को डांटनेवाले कृतघ्न चोरों से ही हिंदुस्थान में अंग्रेजी का इतिहास भरा है। श्रीमंत नाना साहब एक विद्याचार–संपन्न व्यक्ति थे। उन्हें विश्व की राजनीति में बहुत रूचि थी और उसके लिए वे बहुत से प्रमुख अंग्रेजी पत्र खरीदते थे। हर रोज दैनिक पत्र आते ही महाराज वह सब पढ़वा लेते थे। इस काम के लिए मि. टॉड नामक एक अंग्रेज नियुक्त था। वे प्रोफेसर भी कानपुर के कत्लेआम में मारे गए। इंग्लैंड और हिंदुस्थान में अंग्रेजों की राजनीति पर नाना बहुत बारीकी से चर्चा किया करते थे। अवध के राज्य के संबंध में वे उसी अंग्रेज व्यक्ति से बहस किया करते थे।[22] श्रीमंत नाना साहब पेशवा के व्यक्तित्व से संबंधित चरित्र की ऊपर दी हुई जानकारी उनके ही शत्रुओं के इतिहास से शब्दशः ली जाने के कारण एक बात समझ लेनी चाहिए, वह यह कि उस जानकारी में यदि सद्‌गुणों का वर्णन है तो वह बहुतायात से सत्य होना चाहिए। क्योंकि अंग्रेजों जौ दीर्घद्वेशी शत्रु नाना जैसे कट्टर प्रतिद्वंदी का सद्‌गुण विवशता से ही किंचित मात्र देगा। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त वर्णन पढ़कर श्रीमंत के लिए मन में आदर हिलोरें मारता है और जिस वंश का बालाजी विश्वनाथ से उद्‌गम हुआ है, उस रण–विख्यात भट वंश के इस अंतिम पेशवा की वह गोरी और भव्य मूर्ति–मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट लकदक कर रहा है, कांतिमान देह पर किनखाबी पोषाक पहनी है, सतेज और चपल नेत्रों में मानभंग से उत्पन्न गुस्से की लालिमा है, कमर में 3 लाख रूपयों की तलवार लटकी हुई है और स्वराज्य एवं स्वधर्म का प्रतिशोध लेने के लिए गुस्से की ज्वाला जिसकी देह से और पानीदार तलवार जिसकी म्यान से बाहर कूदने को तैयार है–उस अंतिम पेशवा को प्रणाम करने के लिए मस्तक नत होने लगता है।

अंत में अंग्रेजीं का अंतिम उत्तर आया कि 'आपका बाजीराव की पेंशन पर तिनके बराबर भी अधिकार नहीं था। इतना ही नहीं, आपका ब्रह्मवर्त की ओर के प्रदेश पर स्थापित स्वतंत्र शासक का अधिकार भी अब आपको नहीं मिलेगा।' ऐसा अंतिम उत्तर अंग्रेजों की ओर से नाना को आया और 'हम जो कर रहे हैं वही न्याय है' यह भी कहा गया। न्याय? अब यह न्याय है या अन्याय, इसका ठीक–ठीक उत्तर देने का कष्ट अंग्रेज सरकार को उठाने की आवश्यकता नहीं है। उधर कानपुर के मैदान पर जल्दी ही इस प्रश्न का यथार्थ निर्णय करने की जंगी तैयारी शुरू हो चुकी है और मराठों के हृदय को दुखाना न्याय है या अन्याय, इसकी पूरी चर्चा अब वहीं होगी। अंग्रेजों के कटे सिर, उनकी कटी हुई गरदनें, चीरे हुए शरीर और बहनेवाले रक्त का लाल–लाल नाला–ये

[22] चार्ल्स बाल कृत–'द हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्युटिनी', खंड 1 ।

सब इस प्रश्न की यथायोग्य चर्चा करेंगे और इस चर्चा को शांति से सुन कानपुर के कुएं पर बैठे गिद्ध इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देंगे कि यह न्याय था या अन्याय।

नाना के घर ऐसे विशाल समारोह की तैयारी शुरू है तो उधर उनकी बहना छबीली भी शांत नहीं बैठी है। उसके भी सामने 'न्याय या अन्याय', यही प्रश्न आ पड़ा है। सन् 1853 में उसके पति अचानक परलोक सिधार गए और उसके दत्तक प्रिय पुत्र दोमादर को उत्तराधिकारी के अधिकार न देते हुए अंग्रेज सरकार ने झांसी अधिगृहीत कर ली। परंतु ऐसी चिट्ठी–पत्री से अधिगृहीत होनेवाली वह रियासत नहीं थी। उस झांसी की रियासत पर नागपुर की बांका का राज्य नहीं था, वहां तो नाना की 'छबीली' बहन महारानी लक्ष्मीबाई राज्य कर रही थी। वह ऐसे अधिग्रहण की क्या परवाह करे! अंग्रेजों का यह कुटिल और जल्लादी कृत्य देखकर दुःख, अपमान, मानभंग के बादलों की गड़गड़ाहट होने लगी और उनमें से झांसी की उस चपला ने कड़कड़ाहट की–''अपनी झांसी मैं नहीं दूंगी।''[23]

अपनी झांसी मैं नहीं दूंगी–जिसमें हिम्मत हो वह लेकर देखे!

[23] डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन', खंड 2।

प्रकरण–4

अवध

मानव जाति के दुर्भाग्य से इस जग में चोर को छोड़ संन्यासी को फांसी देने का न्याय हमेशा होता आया है। पर राजनीति के क्षेत्र में तो यह खुल्लम–खुल्ला किया जाता है। जुल्म और अन्याय दोनों भाववाचक कल्पनाएं मानवीय मन को स्वीकार नहीं होती, अतः उनके कारण होनेवाले त्रास का प्रतिशोध लेने के लिए जब वह झल्लाकर बाहर निकल पड़ता है तब यह नहीं देखता कि उस जुल्म और अन्याय की जड़ में कौन है और जो सामने पड़ जाता है उसी गरीब को मारने लगता है। इस उतावली में जो अन्याय की जड़ या आत्मा है उसे भुला दिया जाता है। इस घालमेल के कारण कोई बड़ी हानिन यदि नहीं होती है तो उस उपेक्षा को क्षमा किया जा सकता है। परंतु सच में देखा जाए तो इस घालमेल के परिणाम बहुत भयंकर होते हैं। चोरों को मारने के लिए बनाए गए फंदे संन्यासियों को मारने में खप जाते हैं और उधर चोर के सुरक्षित बच जाने से चोरी की घटनाएं पहले से भी अधिक होने लगती हैं। लेकिन इस फांसी पर संन्यासी के बदले यदि एकाध चोर को भी चढ़ा दिया गया तो भी उस चोरी का सारा क्रोध उस एक ही चोर पर उतार दिए जाने से बाकी के चोर निर्भय होकर–'पुनष्चः हरिः ओम्' करने को तैयार हो सकते हैं। विषवृक्ष का वास्तविक नाश उसकी शाखाएं और पत्तियां तोड़ते रहने से नहीं हो सकता–वह तो तब होगा जब उन शाखाओं और पत्तों को बार–बार आगे धकेलती हुई और उनका पोषण करती हुई उस वृक्ष की जड़ें खोदकर उनका सर्वनाश किया जाए।

डलहौजी किसी परिस्थिति का परिणाम है। वह परिस्थिति जब तक बनी हुई है तब तक बनी हुई है तब तक एक डलहौजी जाए तो उसकी जगह दस डलहौजी आएंगे। परंतु यह सिद्धांत भूलकर अंग्रेज इतिहासकार जान–बूझकर और हिंदुस्थानी लोग भोलेपन और अज्ञान से डलहौजी के शासनकाल में हुए सारे अत्याचारों का दोष इतने जोर से उस पर थोपते हैं मानो वही मुख्य कर्ता था। परंतु यह मानना पूरी तरह गलत है। इस मान्यता का यह परिणाम होता है कि डलहौजी को छोड़ मुख्य कारा की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। यदि इंग्लैंड की सरकार की सम्मति न हो तो डलहौजी की हिम्मत है कि वह इधर का पैर उधर रख सके। डलहौजी के हर कृत्य को इंग्लैंड की सरकार की स्वीकृति मिले बिना हिंदुस्थान में एक पत्ता भी हिलना असंभव है। ऐसी स्थिति में डलहौजी यदि एक अंश का दोषी है तो उसके पीछे छिपकर यह अधम कृत्य करनेवाले ठगों पर दस गुना दोष आना चाहिए। परंतु इंग्लैंड की सरकार माने वहां के मुटठी भर अधिकारी–इन मुटठी भर अधिकारियों को इंग्लैंड की जनता के सामने कंपकंपी आती है। अंग्रेज जनता की अनिच्छा हो तो इन अधिकारियों को एक क्षण भी अपने अधिकार संभाले रहना संभव न हो। ऐसी परिस्थिति में ये अधिकारी भी डलहौजी के पापी कृत्यों को मान्यता क्यों देते थे? वह इसलिए कि उनके सारे कृत्य सारी अंग्रेज जनता को पसंद थे। इस तरह देखें तो इंग्लैंड नामक पूरा राष्ट्र ही इस अन्याय और अत्याचार का दोषी है। साम्राज्य के रक्त की चटक लग जाने से पूरा राष्ट्र ही क्रूर, निर्दयी बन गया है। जब सारा इंग्लैंड मधुमक्खी का छत्ता है। तो डलहौजी नामक एक मधुमक्खी पर सारा गुस्सा उतारने से क्या लाभ? जब तक यह छत्ता बना हुआ है तब तक ये मधुमक्खियां हिंदुस्थान के फूलों से मधु ले जाकर उसके बदलें में विष भरे डंक मारती ही रहेंगी। उस छत्ते को सीने से चिपकाए रखें और उसमें से मधु लेने के लिए आनेवाली मधुमक्खियों को गाली–गलौच करें कि ये डंक बहुत मारती है। तो इसमें कोई तुक नहीं। यह मूर्खतापूर्ण कल्पना और यह अभागी अंधता सन् 1857 के नेताओं की दृष्टि को स्पर्श न कर सकी। यही उस क्रांतियुद्ध का मुख्य रहस्य है। उसका हेतु (साध्य) अमुक कानून रद्द करो या अमुक डलहौजी हटाओ, यह न होकर कानून बनाने की या उस डलहौजी को भेजने की मुख्य शक्ति अर्थात् राज्यसत्ता को प्राप्त करना ही था। सभी अंग्रेज डलहौजी हैं और उस छत्ते की सारी मधुमक्खियों का उद्देश्य अपने भारतीय फूलों से मुध लेकर उसके एवज में विष भरे डंक मारते रहने का है, यह अंतिम सत्य उन चतुर और माननीय पुरूषों के ध्यान में है और ऐसे इन अंग्रेजों से पूरी तरह संबंध तोड़े बिना, गुलामी की शाखाएं न तोड़ते हुए उस हलाहल भरे कंटीले वृक्ष को समूल उखाड़े बिना, संक्षेप में यह कि स्वराज्य की यह औषधि संग्राम भूमि के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलती। यह वास्तविकता सत्य उनकी कुशाग्र बुद्धि को ज्ञात होते ही एक क्षण भी न रूकते हुए वे अपने प्राण अपने हाथों में और तलवार शत्रु की गरदन पर रखने रण–मैदान में कूद पड़े।

सन् 1857 के क्रांतियुद्ध की पवित्रता और महानता इसी सत्य ज्ञान में और उसके लिए किए गए प्राणदान में है। जिन्हें डलहौजी ही सारे अत्याचारों का मुख्य कारण लगता है उन्हें इस युद्ध की वास्तविक महानता ज्ञात नहीं होगी। ऐसे अज्ञानी व्यक्तियों को यदि सत्य ज्ञात करने की इच्छा हो तो विशेषतः अवध का राज्य किसने अधिग्रहण किया, यह देखें और क्यों अधिगृहीत हुआ, यह समझ लें। अवध का वह विस्तृत और संपन्न राज्य डलहौजी के पहले एक शताब्दी तक अधिग्रहण होता रहा था।

अवध के नवाब ने जब से अंग्रेजों से रिष्ते बनाए तब से उसके राज्य का एक–एक टुकड़ा अंग्रेजों की ओर जाने लगा था। सन् 1801 में एक समझौता वजीर के सिर पर जबरन लादा गया, उसमें यह अपहरण की इच्छा पूरी निर्लज्जता से प्रदर्शित की गई थी। नवाब वजीर उस समय पहले से ही कंपनी की सहयोगी सेना के लिए प्रतिवर्ष 75 लाख रूपये दे रहा था। कंपनी की इस डकैती से नवाब का खजाना कठिनाई में आ गया थां पर अंग्रेजों ने जबरन यह मांग की कि नवाब अपनी सेना हटाकर उसके स्थान पर कंपनी की सेना रखे। इस सेना का खर्च उठाने की शक्ति नवाब के खजाने में नहीं है, यह अंग्रेज अच्छी तरह से जानत थे; बल्कि यह जानकारी थी, इसीलिए उन्होंने यह मांग की थी। नवाब के पास खजाना नहीं था, किंतु प्रदेश था, अंत में उसमें से एक उपजाऊ टुकड़ा तोड़कर नवाब ने अंग्रेजों को दिया और नाहीं–नाहीं कहते भी नवाब के सिर यह संक्षक सेना बैठ ही गई। इस सन् 1801 के समझौते की तीसरी धारा का अर्थ था–''नवाब अपने प्रदेश की व्यवस्था से प्रजा को सुखकर करे और हर काम में वह कंपनी के अधिकारियों से सलाह–मशवरा करे।'' अब यह प्रजा को सुखकर व्यवस्था कैसे रखनी है। यदि नवाब कोई सुधार करने की इच्छा करे तो उसकी इच्छा के विरूद्ध कंपनी उस पर गुर्राए।[24] फिर भी आग्रह था कि प्रजा के लिए सुखकर व्यवस्था की जाए । नवाब का खजाना बार–बार डकैती डालकर खाली किया जाता और उस पर नई मांग भी रखी जाती और इस डकैती की पूर्ति के लिए जब नवाब को कर लादने की विवशता होती तो कंपनी कहती कि प्रजा को सुखकर व्यवस्था होनी चाहिए। नवाब को जब इस तरह स्वयं के राज्य में सुधार करना असंभव हो जाए और प्रजा विद्रोह कर राज्य में सुधार का प्रयास करे तो उसका बंदोबस्त करने अंग्रेजी बैनेट और संरक्षक सेना की तलवारें प्रजा की गरदन पर रख उसे हूं–चूं भी नहीं करने देगा–इस प्रकार कंपनी का आग्रह बना ही रहता कि प्रजा के लिए सुखकर व्यवस्था की जाए! इस तरह

[24] 1.'डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन', पृष्ठ 348–349।
2. सर जॉन के ने कहा है–''सत्यता यह है कि यह एक ऐसी त्रुटियुक्त प्रणाली थी जिसकी जितनी अधिक भर्त्सना की जाए, कम ही है। इस प्रकार उसने निकृष्ट श्रेणी का द्वैध शासन आरंभ कर दिया था। राजनीतिक और सैनिक सत्ता तो कंपनी के हाथों में थी, किंतु अवध का आंतरिक शासन अभी भी नवाब, वजीरों के हाथ में था।''

एक ओर नवाबों और जनता को राज्य व्यवस्था सुखकर करना पूरी तरह असंभव बनाकर देसरी ओर कंपनी कहती कि राज्य व्यवस्था सुखकर करनी ही होगी। यह स्थिति कुछ ऐसी ही थी कि कोई अत्याचारी बाप बच्चे को जोर से पीटता जाए और कहे–चुप रह, खबरदार जो रोएगा तो! इसमें फर्क इतना ही है कि वह बाप ऐसा मूर्खतापूर्ण कार्य कम–से–कम सद्हेतु से तो करता है! परंतु कंपनी नवाब का मुंह बांधकर जो पिटाई कर रही थी वह तो केवल उसका गला दबाकर प्राण लेने के लिए ही थी। यह प्राणघात जितनी जल्दी और जितनी सुलभता से हो, करने के लिये अंग्रेजों ने हजारों अड़चनें और हजारों तिकड़में भिड़ाई–उन सबका वर्णन स्थानाभाव के कारण संभव नहीं। फिर भी उदाहरण के लिए एक अत्यंत नीच तिकड़म दिए बिना रहा नहीं जाता। वह तिकड़म थी, सन् 1837 में लॉर्ड ऑकलैंड द्वारा नवाब से किया हुआ समझौता कुछ ही वर्षों बाद साफतौर पर अस्वीकार करना। यह समझौता होते ही इंग्लैंड उसे भूल गया हो, ऐसा नहीं क्योंकि सन् 1847 में लॉर्ड हार्डिगटन ने उस समझौते को माना था। कर्नल सलीम ने सन् 1841 में वही समझौता माना था।[25] सन् 1853 में हिंदुस्थान में चालू समझौते की सूची में भी वह सन् 1837 का समझौता लिखा हुआ था। पर सन् 1853 में जो समझौता इंग्लैंड की स्मृति में था वह समझौता उसी वर्ष वास्तविकता समय आने पर इंग्लैंड एकदम भूल गया। सन् 1837 के उस समझौते के अनुसार वह रियासत अधिग्रहण करना संभव नहीं था, यह देखते ही एक घंटे पहले तक मान्य किया हुआ और चालू समझौतों की सूची में लिखकर भेजा हुआ समझौता हिंदुस्थान सरकार साफ अस्वीकार करने लगी। ऐसा कोई समझौता हुआ ही नहीं था, ऐसा धड़ल्ले से कहते समय अंग्रेज सरकार लज्जित कैसे नहीं हुई–हिंदुस्थान का अंग्रेजी इतिहास जिसने थोड़ा–बहुत भी पढ़ा है, उसे इस पर बहुत आश्चर्य नहीं होगा। चूंकि अंग्रेज सरकार को अवध का राज्य चाहिए था, अतः वह राज्य हड़पने के लिए सन् 1837 के समझौते की अपेक्षा 1801 का समझौता उसके लिए अधिक लाभदायक था।

ये सारी तिकड़में डलहौजी के पहले ही हो चुकी थी, इतना अवष्य ध्यान में रखना चाहिए, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि डलहौजी ने अवध के अधिग्रहण करने में कुछ अपूर्व पातक नहीं किया। अवध का प्रदेश सबको चाहिए था, पर उसको कैसे हथियाया जाए, इसका निर्णय डलहौजी के हाथ में हुआ। पंजाब की तरह या ब्रह्मदेश की तरह उसपर चढ़ाई कर उसे जीता नहीं जा सकता था; क्योंकि वहां के लोगों ने कभी ब्रिटिशों से झगड़ा नहीं किया था। नवाब ने उनसे कभी प्रेम से व्यवहार नहीं किया, ऐसा आरोप लगाना भी संभव नहीं था; क्योंकि आज तक हर कठिन अवसर पर नवाब ने अंग्रेजों की सहायता की थी। जब अंग्रेजों की सहायता की थी। जब अंग्रेजों की सहायता की थी। जब अंग्रेजों की जेब में पैसा नहीं था तब नवाब ने उन्हें

[25] डलहौजीज एडमितिस्ट्रेशन', खंड 2, पृष्ठ 52

पैसा दिया और जब बड़ी–बड़ी लड़ाइयों में अंग्रेजों के पास खाने को कुछ नहीं था तब उन्हें अनाज भिजवाया। नागपुर की तरह वहां क, ऐसी शिकायत नहीं थी। क्योंकि राजमहल औरस संतति से भरा हुआ था। वहां झांसी की तरह दत्तक का कोई भी बखेड़ा नहीं था; क्योंकि वर्तमान राजा दिवंगत राजा का औरस पुत्र था और राज्य पर शासनरूढ़ था। इस तरह लखनऊ के इस नवाब ने उपर्युक्त अपराधों में से एक भी अपराध नहीं किया था। यद्यपि ये सारे अपराध नवाब ने नहीं किए थे, फिर भी उस मूर्ख के हाथें एक बड़ा प्रमाद हो ही गया। वह प्रमाद यह कि नवाब के राज्य का प्रदेष बहुत ही उपजाऊ, युंदर और धनी था। यह उसका अपराध अंग्रेजों के बहुत पहले से ही ध्यान में आया हुआ था। अवध के सुंदर प्रदेश का वर्णन करते हुए अंग्रेजी ब्ल्यू बुक की सुकोमल भाषा में भी कविता फूट पड़ी है–''इस सुंदर प्रदेश में कहीं–कहीं बीस तो कहीं–कहीं दस फीट पर ही भरपूर जल भंडार हैं। सारा प्रदेश हरे–भरे खेतों से भरा हुआ है। अमराई की छाया से शीतल, बांस के ऊंचे–ऊंचे वन अपने सिर ठाट और शान से उठाए हुए, इमली की घनी छाया, नारंगी की गंध, अंजीर के वृक्षों की विचित्रता और पुष्पराग का परिमल आदि सारी प्रकृति की अवर्णनीय सुंदरता फैली हुई है।''

ऐसा यह प्रदेश अपने कब्जे में रखने का प्रचंड अपराध अवध के नवाब ने किया था, इसलिए सन् 1849 में डलहौजी ने उसे गद्दी पर से उठाकर फेंक देने का आदेश दे दिया और उस आदेश को समस्त अंग्रेजों की अनुमति और सहयोग मिलने से अवध एक झटके में अधिग्रहीत कर ली गई। कारण यह बताया गया कि नवाब अपने राज्य में सुधार नहीं कर रहा था। ओहो! ईसा मसीह भी इस उदारता के आगे नतमस्तक हो जाएं। नवाब के राज्य में जो एक गुनी दरिद्रता थी उसे चौगुनी करने, जो कुछ चैतन्य था उसे समाप्त करने और अवध के तन पर फटा–पुराना ही सही, पर स्वतंत्रता का जो कपड़ा था उसे फाड़कर नंगा करने तथा उसके सिंहासन पर बलात्कार करनेवाले इंग्लैंड की यह अव्यवस्था की बात यदि एकबार मान ली तो हिंदुस्थान पर तेरा राज क्या एक दिन भी रह पाएगा? आज चीन में अफीम की लत है, अफगानिस्तान में अतयाचार है, बहुत क्या तेरे पैर के नीचे स्थित रशिया को अपने देष से जोड़ सकते हो? तेरे पड़ोसी के घर का सामान अव्यवस्थित है, इसलिए उसके घर में घुसकर उसे बांधकर वह घर अपने कब्जे में लेने का अधिकार तुम्हें कैसे मिला? पर डलहौजी के प्रशासन के सबंध में लिखनेवाला आर्नोल्ड कहता–''नवाब ने इसके सिवाय भी कितने ही अपराध किए थे। जैसे वह अपनी दासियों को जरी की साड़ियां भेंट देता था। देसरा अपराप यह कि उसने 11 मई को आतिशबाजी का जलसा किया। और यह भी कि एक दिन सुबह ही उसने दवाई पी और शाही बेगम और ताज बेगम से भोजन का आग्रह किया। अब इससे भयंकर

अपराध और क्या हो सकता है? फिर भी धन्य हैं अंग्रेज कि नवाब सुबह दवाई पीता था, फिर भी उस (अपराध) की ओर ध्यान न देकर उसे राज्यच्युत नहीं किया। पर अंत में सारे उपाय व्यर्थ गए। कारण, एक दिन नवाब के सामने कुछ घोड़ियों पर घोड़े–छोड़े गए–अर्थात् अंग्रेज सरकार को उन घोड़ियों की पवित्रता भंग होने पर बहुत दया आई और उन्होंने उस भयंकर अवसर पर वहां खड़े नवाब के अपराध पर उसे राज्यच्युत कर दिया।''

ऐसी घिनौनी बातें कहकर नवाब की राज्य व्यवस्था संबंधी अक्षमता का ढोल पीटना चाहनेवाले मूर्ख और ईर्ष्यालू अंग्रेज इतिहास–लेखकों को यह सब देखने हिंदुस्थान आने का कश्ट करने की आवष्यकता ही क्या थी? उन्हें इंग्लैंड में कहीं भी रोनाल्ड के ग्रंथ मिल सकते थे या लज्जावश किसी ने नन दिए हों तो इंग्लैंड के राजमहलों से भी उन्हें बहुत सारी जानकारी मिल गई होती और घोड़ियों का पातिव्रत्य भंग करने से भी बड़े व्रतों को भंग करनेवालों की जिंदगी और राज्य अधिग्रहण कर लेने तथा स्वयं के घर के छेद भरने में वे अपने समय का अधिक उपयोग कर सकते थे।

प्रकरण–5

धकेलो उसमें....

अब इच्छित राष्ट्रकार्य की तिथि पास आती जा रही है, अतः ऐसे समय इष्ट सिद्धि के लिए कुल देवताओं की कृपा प्राप्त करनी ही चाहिए। इस प्रचंड राष्ट्र–विक्षोभ के कुलदेव की प्रसन्नता ही प्रतिशोध है। इसे प्रसन्न किए बनिा और अपनी सहायता के लिए आने को बाध्य करने के सिवाए सन् 1857 में लिये गए संकल्प की सिद्धि नहीं होगी। इसलिए हवनकुंड को प्रदीप्त करो और उसमें इतनी दिव्य हवन सामग्री डालो कि मुख्य कुलदेव चैतन्य होकर प्रकट हो ही जाएं। इंद्रजित् के प्रचंड यज्ञ से अजेय रथा बाहर निकलने तक जैसे हवनों का धूम–धड़ाका उड़ाया गया वैसे ही इस यज्ञ से जब तक मर्तिमंत प्रतिशोध अपनी सहस्त्र जिह्वाएं सहस्त्र दांतों से युक्त होकर आविर्भूत न हो तब तक हवनकुंड में हवन करते ही जाना है। इंद्रजित् के समय वानर उस यज्ञ को भंग करने के लिए प्रयासरत थे। परंतु सौभाग्य से इस राष्ट्र–यज्ञ में सहायता करने के लिए अंग्रेज स्वयं ही उतावले हो रहे हैं। फिर विलंब क्यों? कोप की अग्नि भभक रही है और उसकी सातों जीभें लपलपाती हुई उछल रही हैं। फिर विलंब क्यों? चलो, आहुति डालना प्रारंभ करो!

पंजाब के इतिहास–प्रसिद्ध राजा, कोहिनूर के तेज से दीप्तिमान उस शूरवीर से पहले आहूति दान का सम्मान पाने योग्य दूसरा कौन होगा! इसलिए चल, आ जा रे डलहौजी! उस कोहिनूर को उसके वास्तविक मालिक के छीनकर ले आ। पंजाब की स्वतंत्रता का खून हुआ है–यह उस राष्ट्र–क्षोभ के कुलदेव को सूचित करने के लिए

वह अग्नि चेत गई है। इस कोहिनूर को फेंक दो उसमें!

इस ब्रह्मदेश को दूसरा सम्मान मिलना उचित है, इसलिए चल आ, रे डलहौजी! उस ब्रह्मदेश को उसके वास्तविक मालिक से छीनकर ले आ। अग्नि चेत गई है तो इष्ट सिद्धि के लिए इस ब्रह्मदेश को धकेलो उसमें!

सतारा के शिवाजी की गद्दी कहां है? उसका मान तीसरे हवन का है। इसलिए उस पर बैठे राजाओं को श्मशान में बैठने को कहकर वह गद्दी, अंग्रेजी जाओ और जल्दी ले आओ! यह अग्नि भभक रही है, इसलिए मराठों की ओर से सतारा की इस राजगद्दी को धकेलो उसमें!

इस चौथे हवन को केवल नागपुर की गद्दी कैसे पूरी पड़ेगी! तदर्थ उस गद्दी के साथ ही नागपुर के सारे भवन, हाथी–घोड़े, राजा–रानियां, रानियां के अलंकार, आक्रोष, चिल्लाहट–जो भी मिले वह सब जल्दी जाओ! यह अग्नि भभक रही है, इसलिए पूरा नागपुर धकेल दो उसमें!

अब हवनकुंड सच में जाज्वल्य दिखने लगा है। ऐसे समय उतनी ही जाज्वल्य हवि चाहिए। पर ऐसी आग से भी तेजस्विनी हवि ब्रह्मवर्त के मुकुट को उसमें धकेलो! राष्ट्र–क्षोभ के न्याय देव! 'प्रतिशोध' को प्रसन्न करने के लिए नई हवि ऐसी चुनो कि बस! यह मान उसी का। इस नीति होत्र की ज्वाला आकाश छूने लगे, इसलिए यह झांसी की बिजली धकेलो उसमें!

देखो, देखो, इस दिव्य हवनकुंड से सारे पापी दुर्योधनों के शरीर कांपने लगे हैं, इसलिए प्रतिशोध का सिर ऊपर दिखने लगा है। ऐसे समय आविर्भूत होने को तत्पर उस देवता को पूर्ण संतुष्ट करने के लिए हवनों का आक्रमण होना चाहिए। इसलिए चलो, ये हैं अर्काट के नवाब, धकेलो इन्हें!

तंजावुर की गद्दी, धकेलो उसमें!

अंगूल के राजा, धकेलो उसमें!

सिक्कत के भाग, धकेलो उसमें!

संबलपुर के राज्य, धकेलो उसमें!

खैरपुर के अमीर, धकेलो उसमें!

ऐसे रूपए और चिल्लर कितने गल गए, इसकी कोई गिनती नहीं! इसलिए ऐसे हविर्दान कौन गिने! अत्यंत पुष्ट और पूरी तरह निरपराध बलि लखनऊ के नवाब के अतिरिक्त मिलना कठिन है, इसलिए लखनऊ के नवाब को धकेलो उसमें!

अहा–हा! इस अग्नि–कल्लोल से ऊपर निकलते देवता की यह केसी उग्रता! इस प्रतिशोध के भयानक जबड़े में सारा जगत् ही पिस जाएगा। परंतु उस जबड़े की धार जब तक अधिक तेज न हो जाए तब तक ठहरना उपयोगी नहीं। इसलिए दिल्ली के

राजमहलों को ताले लगा और वहां के मयुरासन पर बैठनेवाले अकबर के वंशज को खींचकर धकेलो उसमें!

अवध प्रांत के बड़े–बड़े तालुकेदार[26] क्या कर रहे हैं? उनकी सारी जमीनें और उनके सारे हक छीनकर उन्हें जंगली पशुओं जैसा घेरकर लाओ इधर! वैसे ही बंबई प्रात के (इनाम कमीशन आदि के द्वारा) हजारों हकदारों के हक फेंक–फांककर उन्हें भी लाओ इधर! हवनकुंड प्रज्वलित हैं। इसलिए जमींदार, जागीरदार, तालुकेदार, वतनदार आदि सारे दारों को कंगाल कर धकेलो उसमें!

राजा, महाराजा, बादशाह, प्रधान, नवाब, वजीर जैसी उत्तम हवियां इस हवन कुंड में पड़ें और हमारे राष्ट्र–क्षोभ 'कुलदेव' को प्रसन्न करें! हमारी यह वर्तमान दुर्दशा और गुलामी देखकर हमारे पूर्वजों की आंखों से बहनेवाले आंसु उस देवता को अच्छी तरह स्नान करावें। सतारा की गद्दी के टुकड़े देखकर गुस्से में भरे शिवाजी उस देवता को चैतन्य करें। अवध के राजमहल की बेगमों के कष्ट और नागपुर के महलों में अपमान के कारण मरी हुई अन्नपूर्णाबाई की आत्मा हमारे उस राष्ट्रीय प्रतिशोध को चेताए। हे प्रतिशोध! जग के न्याय! तलवार की धार पर तू चढ़ता है तो तू देवों को भी वंदनीय और ऋषियों को भी स्तुत्य हो जाता है। सज्जन रक्षक प्रतिशोध! तेरा डर न हो तो अन्याय का कलि इस दुनिया पर निरकुंश होकर नाचने लगे। हे प्रतिशोध! तेरी उग्रता से ही कंपित होकर पापियों को पुण्यवान् होकर नाचने लगे। हे प्रतिशोध ! तेरी उग्रता से ही कंपित होकर पापियों को पुण्यवान् होना पड़ता है। तू ही रावण का राम था, तू ही दुर्योधन का भीम था, तू ही हिरण्यकशिपु का नृसिंह था। उनके समय में तुम्हें प्रसन्न करने के लिए जितना हविर्दान नहीं हुआ थ उतना इस प्रचंड हवनकुंड में लगा हुआ है। एतदर्थ, जग से अन्याय और अंधेर समाप्त हो, परवशता और परदासता मिट जाए,

[26] अवध के राज्य को अधिगृहीत करने के बाद वहां के अत्यंत कुलीन, प्रभावशाली और प्रमुख लोगों की जो दुर्दशा हुई वर्णन बहुत भयंकर है। वंश परंपरा से प्राप्त जमीनें और वतन एक क्षण में नष्ट हो गए। इन अभागे तालुकेदारों के लिए 'के' लिखता है–"The charges against him were many and great for he had diverse ordeals to pass through and he seldom survived them all….When the claims of a great talukdar could not be altogether ignored, it was declared that he was a rougue or a fool…. They gave him a bad name and straightway they went out to ruin him!….It was at once a cruel wrong and a grave error to sweep it away as though it were an encumbrance and an usurpation."
जो व्यवस्था नवाब नहीं कर सहते थे उस राज्य की ऐसी व्यवस्था करने पर सारे जमींदारों को कंपनी ने जल्दी ही बेरहम मार लगाई, यह आगे वर्णित है। इनाम कमीशन जो नियुक्त किया उसने तो विकट कहर ढाया। अंग्रेजों को जैसे बड़े–बड़े राजा नहीं चाहिए थे वैसे ही रिसजोर जमींदार भी नहीं चाहिए थे। जो जमीनें और जागीरें तलवार के जोर पर प्राप्त की थीं उनके कागज नहीं थे, इसलिए उन्हें एक सिरे से अधिगृहीत किया गया। कम–से–कम पैंतीस हजार 'वतन' और बड़ी जागीरें छानबीन के लिए निकाली और उनमें से केवल पांच वर्ष में तीन पंचमाश समाप्त कर दीं।

स्वतंत्रता और स्वराज्य की जय–जयकार हो, ऐसी परमेश्वर की इच्छा हो तो तू इस यज्ञ से मर्तिमंत हो प्रकट होना। धन्य–धन्य!! 'मृत्यु सर्वहरश्चाहम्'–ऐसी गर्जना करते यह मर्तिमंत राष्ट्र–क्षोभ ऊपर आ रहा है। इस भयंकर गर्ति को शतशः प्रणाम है। जिसके भयंकर जबड़ों में उन्मत्त राज; पिस जाते हैं, जिसके हाथ के घन से निरपराध देशों के पैरों में पड़ी दासता की बेड़ियां तड़ाक से टूट जाती हैं, जिसके नेत्रों से निकलनेवाली ज्वालाएं अत्याचारों की काली कोठरियों को जलाकर भस्म करती हैं और जिसकी लपलपाती तप्त जिह्य हजारों दुःशासनों का रक्त गटागट पीती है उस भयंकर, उग्र एवं भयानक राष्ट्रीय प्रतिशोध को शतशः प्रणाम–

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरूत्तमाड् गेः

हे हिदंभूमि! अंततः इस महायज्ञ से तेरा 'प्रतिशोध' सभी में मर्तिमंत रीति से प्रादुर्भूत हो गया। पर वह क्या–क्या करने से शांत होकर संपूर्ण रूप से अंतर्धान होगा, क्या यह भी तुझे ज्ञात है?

प्रकरण–6

अग्नि में घी

विश्व में ऐसा कौन सा सद्धर्म है कि जिसमें परतंत्रता और दासता को धिक्कारा नहीं गया हो। इसी कारण जहां परमेश्वर होगा वहां परतंत्रता कभी नहीं रह सकती और जहां परतंत्रता है वहां परमेश्वर का अधिष्ठान नहीं, वहां धर्म नहीं। एतदर्थ किसी भी प्रकार की परतंत्रता का अर्थ धर्म का उच्छेद एवं ईश्वरीय इच्छा का भंग होना है।

क्या मनुष्य जाति की उन्नति के लिए उत्पन्न हुए सारे धर्म मनुष्य जाति की अवनति के लिए उत्पन्न हुई परतत्रंता को एक क्षण भी जीवित रखने की आज्ञा देगें? उसमें भी राजनीतिक परतंत्रता सभी परतंत्रताओं से मनुष्य जाति की अत्यंत भयानक अवनति करनेवाली है, इसलिए इस अधम राक्षस का कंठच्छेदन करने की आज्ञा प्रमुखता से ही दी गई होगी। जो अन्यों को गुलाम बनाते हैं और जो गुलामी में रहते हैं, वे दोनों ही मनुष्य जाति को नरक की ओर धकेलते हैं। इसलिए मनुष्य जाति को स्वर्ग की ओर ले जानेवाले सद्धर्म इस राजनीतिक गुलामी को नष्ट करने के लिए अपने अनुयायियों को बार–बार उपदेश देते हैं। उनका यह उपदेश अस्वीकार करनेवाले सारे लोग धर्मद्रोही हैं। दसरों को गुलामी में ढकेलनेवाले अंग्रेज भले ही रोज चर्च में जाएं, वे धर्मद्रोही ही हैं और परतंत्रता के नरक में सड़नेवाले भारतीय रोज शरीर पर भभूत मलते रहें तब भी वे धर्मद्रोही ही हैं। जो किसी भी तरह की दासता में रहते हैं वे सारे हिंदू धर्मभष्ट्र हैं और वे सारे मुसलमान भी धर्मभष्ट्र हैं, फिर वे चाहे रोज हजार बार संध्या–वंदन कर रहे हों या हजार बार नमाज

पढ़ रहे हों। यह ध्यान में रखकर ही श्री समर्थ रामदास ने स्वराज्य–प्राप्ति को धर्म का मुख्य कर्तव्य कहा है। जो राज्य अपनी इच्छा के विरूद्ध बलपूर्वक अपने पर थोपा गया है– ऐसे पर–राज्य को उखाड़ फेंकना, गुलामी की बेड़ियां तोड़ देना और मनुष्य जाति की उन्नति का जो प्रथम साधन होता है, वह स्वराज्य प्राप्त करना, स्वतंत्रता प्राप्त करना धर्म का प्रधान कर्तव्य है, ऐसा प्राणनाथ प्रभु का छत्रसाल को दिया गया या समर्थ का शिवाजी को दिया गया उपदेश दो शताब्दियों बाद हिंदुस्थान की पुण्यभूमि के पुरूषों के कान में ज्ञात या अज्ञात रूप से सन् 1857 में फिर से गूंजने लगा।

हिंदुस्थान की पुण्यभूमि की स्वतंत्रता का हरण कर अंग्रेजों ने सभी धर्मों को तो अपने पैरों तले कुचला ही था, परंतु धर्म का सैद्धांन्तिक अपमान पूरा नहीं है, ऐसा लगने पर ही शायद, इस हिंदुस्थान के पवित्र धर्म का स व्यावहारिक अपमान करने के लिए वे बहुत आतुर थे। अफ्रीका और अमेरिका में वहां के निवासियों को ईसाई धर्म की दीक्षा देने के काम में मिली सफलता से बहके हुए पश्चिमवासियों को अफ्रीका की भांति ही हिंदुस्थान में भी सारे लोगों को ईसाई बना डालने की भारी आशा थी। वेद और प्राचीन हिंदू धर्म तथा ईसाइयत की पीठ पर नृत्य करते इस्लाम के जड़–मूल कितने गहरे हैं, इसका उन्हें जरा भी ज्ञान नहीं था। दर्शनशास्त्र, भक्ति–प्रेम एवं नीति–निपुणता में सारे जग का आदिगुरू आर्य धर्म आज तक कितनों के ही नामकरण और नामशेष देखता आया है, यह इन अल्प बुद्धिवालों को कैसे ज्ञात हो! उन्हें आज पूरे हिंदुस्थान को ईसाई बनाने की रत्ती भर भी आशा नहीं हैं–फिर भी सन् 1857 तक उन्हें इस सफलता के संबंध में पूरा विश्वास था। औरंगजेब जैसे खुले द्वेष से भी भयानक गला काटनेवाला द्वेष करने और हिंदुस्थान को अनजाने ईसामय बना डालने का उनका दृढ़ उद्‌देश्य था। इतना ही नहीं अपितु इस हेतु उनके खुले प्रयास भी चल रहे थे। हिंदुस्थान में पाश्चात्य शिक्षा–पद्वति प्रारंभ करनेवाला मैकाले अपने एक निजी पत्र में लिखता है–अपनी यह शिक्षा प्रणाली ऐसी ही बनी रही तो तीस वर्ष में पूरा बंगाल ईसाई हो जाएगा।[27] इस टिटहरी को ऐसी आशा और विश्वास था कि अपनी चोंच से मैं यह अगाध समुद्र देखते–देखते पी पाऊंगी। सारे हिंदुस्थान को ईसाई बना डालने के लिए हर अंग्रेज की कुछ–न–कुछ योजनाएं अवश्य होती थी। इस धर्म–प्रवर्तन को प्रकटतः मदद करनेवाला हजारों मिशनरियों द्वारा किया जानेवाला निवेदन मानकर उसके अनुसार हिंदू और इस्लाम धर्म की गरदन पर तलवार चलाने का कार्य भी अंग्रेजी सरकार द्वारा किया जाता था; परंतु उस राष्ट्र को धर्म–प्रवर्तन की अपेक्षा व्यापार–प्रवर्तन और यीशू की तुलना में द्रव्य भक्ति अधिक होने के कारण ऐसे खुले कार्य करके

[27] ''हमारी अंग्रेजी पाठशालाएं दिन–प्रतिदिन आश्चर्यजनक ढंग से प्रगति करती जा रही हैं। अकेले हुगली नगर में ही 1,400 बालक अंग्रेजी सीख रहे हैं। इस शिक्षा का प्रभाव का नितांत चमत्कारपूर्ण हो रहा है। मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है कि यदि यह शिक्षा योजना सुचारू रूप से जारी रही तो तीस वर्ष पश्चात् बंगाल में एक भी मर्तिपूजक र रह जाएगा।''
–मैकलेज लेटर टू हिज मदर, 12 अक्तूबर, 1836

धर्म के लिए हिंदुस्थान का राज्य होने से निकलने देने की गलती उसने नहीं की। इच्छा नहीं थी, ऐसा नहीं, पर हिम्मत नहीं थी। फिर भी, बड़े–बड़े नाम देकर और अपना मूल हेतु छिपाते हुए सती प्रथा प्रतिबंध, विधवा विवाह को समर्थन, दत्तक पुत्राधिकार की समाप्ति आदि अवसरों पर हिंदुस्थान की धर्म–आस्थाओं में परिवर्तन करने क प्रयास उन्होंने प्रारंभ कर ही दिया था। मिशनरियों के तहत चलनेवाले स्कूलों को सरकारी धन की सहायता बिना रूके मिल रही थी। बड़े–बड़े आर्कबिशपों के वेतन बड़े–बड़े सरकारी अधिकारियों द्वारा हिंदुस्थान की जनता को निचोड़कर जमा किए गए धन से दिए जाते थे। ये अधिकारी अपने अधीनस्थ लोगों को अपने पवित्र धर्म को त्यागकर ईसाई होने का उपदेश करते । सरकारी कागजों में हिंदुस्थान के लोगों का उल्लेख 'Heathen' षब्द से किया जाता। अंग्रेजी कर्मचारियों का अधिकतर समय आसमानी बाप का शुभ चरित सुनाने में ही जाता था। सेना में जो अंग्रेज घुसते थे उनमें से कितने ही केवल अधिकार के बल पर भारतीय धर्म की खिल्ली उड़ाने के लिए ही घुसते थे। शांति काल में सेना के लोगों को कोई काम न होता था, अतः उस समय हिंदू और मुसलमान सिपाहियों को यीशू का चरित सुनाने को विपुल समय मिलने से लश्करी विभाग में यत्र–तत्र इन मिशनरी कर्नलों और सेनापतियों की आवाजाही बढ़ गई थी। जिस 'रामचन्द्र' के पवित्र नामोच्चार से हर हिंदू के ह्रदय में भक्तिभाव उमड़ पड़ता है और जिस 'मोहम्मद– के नाम से सारे मुसलमानों की रग–रग से प्रेम झालक पडऋता है उस रामचंद्र के और उस मोहम्मद के नाम को वे पादरी कर्नल गालियां बकते। उठते–बैठते भारतीय सिपाहियों को अधिकार के जाोर से चुप बैठाकर वे उनके सामने उनके प्राणप्रिय वेदों और कुरान की डटकर निंदा करते थे। इन मानवी राक्षसों का यह उद्योग किस तरह निरंतर चल रहा था और इस कार्य का उन्हें कितना अभिमान था, इसका स्वरूप स्पश्ट करने के लिए एक व्यक्ति से संबंधित उदाहरण देना आवश्यक है। सारे धर्मों का जनक आर्य धर्म तथा ईसाइयत की गरदन पर छुरी रखकर आगे बढ़ा हुआ मोहम्मदी धर्म, इन दोनों धर्मों को और उनके अनुयायियों को अपने टुटपुंजिया शुभ चरति से ठगना चाहनेवाले इन पादरी सेनापतियों में से बंगाल पैदल रेजीमेंट का एक कमांडर बड़े घमंड से कहता है–''मैं गत बीस वर्षों से यह शुभ चरित का कार्य निरंतर कर रहा हूं। इन काफिर लोगों की आत्मा को शैतान से बचाना एक फौजी कर्तव्य ही है।'' हिंदुस्थान कके धन पर मोटे हुए ये पादरी वीर एक हाथ में लश्करी आदेशों की पुस्तक और दूसरे हाथ में बाइबिल लेकर इस देश के सिपाहियों को धर्मच्युत करने का प्रयास दिन–रात करते रहते थे। इतना ही नहीं अपितु उस प्रयास में जल्दी सफलता मिले, इसके लिए धर्मांतरण करनेवाले सिपाही को पदोन्नति का खुला वचन देते थे। सिपाही अपना धर्म छोड़े तो हवलदार हो जाता था और हवलदार–सूबेदार, मेजर। इस प्रकार सेना विभाग एक तरह से बलात् ईसाई बनाने का मिशन हो जाता था। हिंदुस्थान के धन से मुटाए हाथ और हिंदुस्थानी पैसे से खरीदी गई तलवार से हिंदुस्तानी धर्म को ही चोट पहुंचाने के अंग्रेजों के इस हेतु के विरूद्ध संशय उत्पन्न हुआ और उसमें हर रोज जुड़ती

नई–नई घटनाओं के कारण सारे हिंदुस्थान को ईसाई बनाने की अंग्रेजी नीति सबको स्पष्ट दिखने लगी। अपने सनातन आर्य धम्र का और अपने प्राणप्रिय इस्लाम धर्म का मीठी छुरी से गला काटा जा रहा है, यह देखते ही हिंदू और मुसलमान क्रोधित हो उठे। फिरंगियों के असह्य अत्याचारों से उनके शरीर जलने लगे और धर्म–रक्षा के लिए प्राण भी देने के लिए वे शपश लेने लगे।

और इसी भड़कती आग में घी डालने को हिंदुस्थानी लश्कर में नए कारतूस उपयोग करने का आदेश आ गया। नए प्रकार की बंदूकों के लिए नए कारतूस काम में लाने की आवश्यकता पड़ जोने से इन कारतूसों का कारखाना हिंदुस्थान में लगाने का प्रस्ताव सरकार ने किया। यह प्रस्ताव यद्यपि सन् 1857 के आरंभ में अमल में आया, फिर भी इन कारतूसों का प्रवेश पहले ही हो गया था। हिंदुस्थान के हिंदू और मुसलमान की धर्म–निष्ठाओं को तुच्छ माननेवाली फिरंगी सरकार ने इंग्लैंड में तैयार गाय की चरबी लगे ये कारतूस सन् 1853 में ही हिंदुस्थान में भेजे थे, ऐसा अब सिद्ब हो गया है। अंग्रेजों ने यह बात गुप्त रखकर कि उन कारतूसों में किसकी चरबी लगी है–कानपुर, रंगून एवं फोर्ट विलियम की हिंदुस्थानी फौज के हिंदू–मुसलमानों को सन् 1853 में ही धर्मच्युत कर दिया थां यह विश्वासघात सन् 1857 में खुलने तक कारतूसों को चाहे जो भी चरबी लगाने की अंग्रेजों ने जान–बुझकर व्यवस्था की थी। यह बात अनुमान से नहीं कही गई है, क्योंकि सन् 1857 के दिसंबर में कर्नल टक्कर द्वारा भेजी गई सरकारी रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है।[28] स्वयं कमांडर–इन–चीफ को यह बात ज्ञात थी। ऐसा होते हुए भी हिंदुस्थानी सिपाहियों को वे कारतूस देकर उनके पवित्र धर्म को भ्रष्ट करने का अधम कृत्य निरंतर चालू रखा गया था। अंग्रेजों के मन के इस विश्वासघात की कल्पना सन् 1853 में भारतीय सिपाहियों को बिल्कुल भी न थी, अतः उन्होंने इन कारतूसों का प्रयोग बिना किसी शंका के किया। इस तरह अपनी कपट भरी योजना सफल होते देख उन कारतूसों के निर्माण का कारखाना दमदम में चालू किया गया। इस कारखाने में तैयार किए गए कारतूसों को पहले जैसी ही चरबी लगाई जाती थी;पर ऐसा करने में हिंदुस्थानी लोगों को धर्मच्युत करने का सरकार का हेतु नहीं था–इसे कोई भी भूले नहीं! ऐसा उद्‌देश्य न होते हुए भी हमारा देश मिट्‌टी में मिल गया। उेसा कोई उद्‌देश्य न होते हुए भी हमारा स्वराज्य चर–चर ची दिया गया और ऐसा उद्‌देश्य न होते भी हमारे धर्म का नाश हो रहा था। कमांडर–इन–चीफ को चरबी की बात मालूम होते हुए भी उसने क्योंकर हिंदुओं के मुंह में गाय का मांस एवं मुसलमानों के मुंह में सूअर का मांस ठूंसा? इस एक व्यवहार में अंग्रेजी सरकार ने कितनी बार सफेद झूठ बोला, यह देखें तो रक्त की हर बूंद खौलने लगती है। कारतूस को गाय और सूअर की चरबी लगाई जाती है, इस अफवाह पर सिपाहियों ने अंधविश्वास किया, ऐसा कहनेवाले निर्लज्ज लोग, दमदम कारखाने में जो ठेकेदार

[28] के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 380।

चरबी देता था उसका करार पत्र अवश्य देखें,[29] जिससे इसका स्पष्ट उत्तर मिलेगा कि उन कारतूसों में गाये की चरबी का उपयोग किया जाता था या नहीं। हिंदू लोग जिसे मां मानते हैं उस गाय की चरबी की आपूर्ति दो आने की एक पौंड की दर से की जाती थी और उस चरबी में सुअर की चरबी का अंश मिलाया जाता था, यह भी असंभव नहीं है। इन कारतूसों का हल्ला होते ही सन् 1857 की 29 जनवरी को एक सरक्यूलर भेजा गया था। उसमें से सरकारी हुकूमत कहती—''नेटिव सिपाहियों के लिए बननेवाले कारतूसों को केवल बकरी या बकरे की चरबी लगाई जाए, सूअर या गाय की चरबी बिल्कुल काम में न ली जाए।'' जल्दबाजी में निकाले गए सरक्यूलर से यही सिद्धह होता है कि गाय या सूअर की चरबी न लगाने का इसके पहले नियम नहीं था। दमदम और मेरठ में इन कारतूसों के कारखाने थे। दमदम के कारखाने में काम करनेवाले एक महतर ने एक ब्राह्मण के ऐसा कहते ही वह मेहतर बोला, ''अब सब ओर भ्रष्टता फैलेगी। जिन कारतूसों को तुम दांत से तोड़ोगे उन कारतूसों पर गाय और सूअर की चरबी मढ़ी जा रही है।'' यह सुनते ही वह ब्राह्मण दूसरे सिपाहियों को वह बात कहने लगा। दमदम में जल्दी ही सारे सिपाही संशयग्रस्त हो गए और उन्होंने पड़ताल की तो यह सत्य स्पष्ट हो गया कि कारतूसों को गाय और सूअर की चबी लगाई जाती है। दमदम का यह समाचार आग की तरह सब और फैल गया। हर सिपाही को अपने हाथों में गाय और सूअर की चरबी लगी दिखने लगी। और हर लश्करी शिविर में ईसाई लोगों के इस षड्यंत्र से हर एक को अपने धर्म और अपने अस्तित्व का एक क्षण का भी भरोसा नहीं रहा। यह देखकर अंग्रेजी सरकार घबरा उठी और उसने अपना कुकृत्य छिपाने के लिए ऐसी झूठी और नीच बातें कहनी शुरू कीं जिससे कि मनुष्य जाति को कालिख पुती रहे। कारतूसों को गाय और सूअर की चरबी लगाई हुए थी, यह जब अस्वीकार करना कठिन हो गया, तब हिंदुस्थानी सरकार के लश्करी सचिव बर्च ने सरकारी घोषणा की कि मेरठ और दमदम में तैयार होने वाले नए कारतूस हमने अभी तक बिल्कुल नहीं बांटे हैं। उसका यह कथन बिल्कुल झूठ था। अंबाला, सियालकोट और बंदूकों के प्रशिक्षण के लिए चलाए गए नए लश्करी वर्गों में ये चरबी लगे कारतूस सन् 1856 से ही भेजे जा रहे थे। अंबाला डिपों में 22,500 और सियालकोट को 14,000 कारतूस 23 अक्तूबर, 1856 को भेजे गए, फिर भी कर्नल बर्च जनवरी 1857 में सरकारी घोषणा करता है कि कारखाने से एक भी कारतूस नहीं भेजा गया। जहां लश्करी वर्ग चल रहे थे वहां नई बंदूकों के प्रशिक्षण में इन कारतूसों का उपयोग नहीं किया गया, यह असंभव था। इसके पहले लिखा जा चुका है कि

[29]1- के कृत–इंडियन म्युटिनी', खंड1, पृष्ठ 381।
2. ''चरबी की बनावट में गाय की कुछ होती थी, इस विषय में तनिक भी संदेह नहीं है।''
–के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 381

सन् 1853 में यही कारतूस भारतीय सिपाहियों को कोई जानकारी न देते हुए उपयोग के लिए दिए गए थे। गुरखा पलटन में तो ये कारतूस खुलेआम बांटे गए थे। फिर भी बर्च किसी उस्ताद उचक्के जैसा सीना तानकर कहता है कि चरबी लगा एक भी कारतूस नहीं बांटा गया था।[30]

भोले सिपाहियों को चाहे जैसी लुका–छिपी कर धोखे में रखना चाहनेवाली सरकार का यह प्रयास विफल हो जाने पर अब सिपाहियों को ऐसी अनुमति दी गई कि वे चाहे कोई भी चिपचिपी वस्तु अपने कारतूसों में स्वयं ही लगा लें। इस अनुमति का परिणाम जो होना था वहीं हुआ। सरकार द्वारा चरबी लगाने की जिद इतनी जल्दी छोड़ देने का अर्थ है कि एक ओर चुप करके दूसरी ओर से छल करने की उसकी योजना होगी–ऐसा उनको पक्की तरह लगने लगा। चरबी की जगह पर चाहे कोई भी चिपचिपापन लाने के लिए ऐसा ही कोई धर्मबाह्य पदार्थ लगाने का प्रयास नहीं करेगी, इसको कैसे माना जाए? अतः ये कारतूस किसी भी मूल्य पर नहीं लेना है, यह दृढ़ निश्चय सब लोगों को करना चाहिए।

पर यह निश्चय हो गया तो भी इतने से मुख्य आपदा तो टालनेवाली नहीं है। बहुत हुआ तो ये कारतूस नहीं दिए जाएंगे। परंतु इनके स्थान पर कल कोई देसरी आपदा आएगी। अर्थात् इन कारतूसों को न लेने से भी धर्म पर आई वास्तविक आपदा टलनेवाली नहीं है। गुलामी के नरक में गिरे लोगों का धर्म पवित्र कैसे रह सकता है! गाय की चरबी तो क्या, देशमाता की चरबी काटकर निकाली जा रही है–इस बात को भुला देनेवालों का धर्म जीवित कैसे रह सकता है? सद्धर्म स्वर्ग में रहता है और गुलामी में पड़े लोग नरक में रहते हैं। अतः यदि उन्हें धर्म चाहिए तो उन्हें गुलामी की गंदगी अपने और अपने शत्रुओं के रक्त से धोकर साफ करनी चाहिए।

इसलिए अब कारतूस लें या न लें, हे हिंदुस्थान! धर्म रक्षण यदि आवश्यक हो, धर्म के उद्देश्य के लिए मानव का जो प्रगमन आवश्यक है उसे साधने का यदि तेरा हेतु हो और यदि अपमान पर तुझे लज्जा आती है तो इस गुलामी को भंग करने को तैयार हो जा। धर्म के लिए मर, मरते–मरते सबको मार और मारते–मारते स्वराज्य प्राप्त कर। सन् 1857 का वर्ष उदय हो चुका है, इसलिए उठ! और स्वराज्य प्राप्त कर!

[30] ''ठीक अंतिम समय पर कर्नल बर्च सिपाहियों को यह आश्वासन देने हेतु आगे आया कि उन्हें दिए गए किसी कारतूस में चरबी नहीं लगाई गई है। उसका यह कथन सर्वथा मिथ्या था। सिपाही इससे धोखे में आनेवाले नहीं थे। जैसाकि एक साहसी लेखक ने लिखा है कि 'सरकार तो केवल झूठ का पुलिंदा ही खोल रहा है।' '' –बंगाल के एक हिंदू का पत्रक, 1857

प्रकरण–7

गुप्त संगठन

जैसाकि पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है, जब सारे हिंदुस्थान में क्रांति की सामग्री इधर–उधर तैयार हो रही थी तब उस सामगी की यथोचित योजना कैसे तैयार की जाए और उसमें क्रांतियुद्ध का भवन किस तरह बनाया जाए, इसका नक्शा ब्रह्मवर्त में तैयार हो रहा था।

पूर्व प्रकरण में हमने अजीमुल्ला खान को यूरोप प्रवास पर छोड़ दिया था। उस प्रवास में जाने के पहले लंदन में उसी समय सतारा की गद्दी का झगड़ा सुलझाने हेतु रंगो बापूजी नामक एक चतुर और कर्मठ सज्जन गए हुए थे, उनसे अजीमुल्ला खान ने भेंट की। सतारा की गद्दी का प्रेत दहन करते आए हुए रंगों बापूजी और पेशवा की गद्दी का प्रेत दहन करने आए अजीमुल्ला खान, इनकी उन दोनों इतिहास–प्रसिद्ध गद्दियों के प्रेत संस्कार के समय क्या वार्त्ता हुई, अपने देश का सर्वनाश करनेवाले फिरंगियों की पिटाई करने के लिए उन्होंने कैसी शपथ लीं और हिंदुस्थान में लौटकर सतारा में रंगों बापूजी ने और ब्रह्मवर्त में अजीमुल्ला खान ने प्रचंड युद्ध की रचना करने के लिए क्या–क्या मंत्रणा की, इतिहास कभी भी यह शब्दशः नहीं बता पाएगा। फिर भी सन् 1857 का युद्ध हुआ, यह जितना सत्य है–इस युद्ध की योजना लंदन में अजीमुल्ला खान और रंगो बापूजी ने बनाई थी, यह बात भी उतनी ही सत्य है। लंदन से रंगो बापूजी सीधे सतारा को लौट गए और उत्तर की ओर ब्रह्मवर्त में जिस भवन का निर्माण हो रहा था

उस भवन के निर्माण की सामग्री जुटाने लगे। परंतु अजीमुल्ला खान सीधे हिंदुस्थान न आकर यूरोप में प्रवास करने लगे। उस समय क्रिमिया द्वीप में अंग्रेजों का रूस से घमासान शुरू था और रूसी भालुओं के पंजों तले ब्रिटिशा शेर भी गाय बनता जा रहा था। अजीमुल्ला खान को यह समाचार ज्ञात होते ही उसके मन में घुमड़ते महान् कार्य को बल मिला। स्वदेष के सीने पर नाचते अंग्रेज शेर को रूस ने कहां तक घायल किया है, उसके कितने पंजे काटे हैं तथा शेष को काटने के लिए अपने प्रिय हिंदुस्थान में होनेवाले प्रयासों में रूस की कितनी सहानुभूति या सहयोग प्राप्त करना संभव है, इसकी प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने अजीमुल्ला खान क्रिमिया द्वीप गए।

यूरोप के प्रवास से अजीमुल्ला खान के हिंदुस्थान लौटने के बाद ब्रह्मवर्त के राजभवन में निराला ही वातावरण बन गया। सारे हिंदुस्थान पर विजय–आनंद से लहरानेवाला पेशवाओं का वह ध्वज 'जरी पटका' आज तक उस राजभवन में धूल खाता पड़ा हुआ था। जिसके सुर सुनकर लाखों मराठी तलवारें रणांगण में शत्रु पर टूट पड़ती थीं, वह दुंदुभि उस राजभवन में वीर रस को त्याग करूण रस के सुर निकालनें लगी थी। वह देशव्यापी राजमुद्रा भी, जिसके मुद्रण पर दिल्ली की घटनाएं अवलंबित थी, अपने स्वयं के वैधव्य पर सिक्का मारते पड़ी थी। परंतु अजीमुल्ला खान के यूरोप से लौटते ही ऐसा लगने लगा जैसे उन वस्तुओं को एक विलक्षण चैतन्य प्राप्त हुआ हो। धूल खाती हुई जरी पटके में फिर से चमक मारने लगी और श्रीमंत नाना साहेब उस तेजस्वी, चपल और उग्र नेत्रों में असह्य अपमान से उत्पन्न हुए प्रतिशोध से अधिक उग्रता एवं 'तस्मात् युद्धाएं युज्यस्व' की चेतना से अधिक तेजस्विता आने लगी। 'तस्मात् युद्धाए युज्यस्व'–क्योंकि स्वराज्य की होली हो चुकी है। तस्मात् युद्धाए युज्यस्व–स्वधर्म को पैरों तले कुचला जा रहा है और स्वतंत्रता का हनन हो रहा है। तस्मात् युद्धाए यज्यस्व–स्वदेश की स्वतंत्रता आज तक किसी को भी युद्ध के बिना प्राप्त नहीं हुई। छत्रपति को जिसके लिए ताना की बलि देनी पड़ी थी, वह स्वराज्य का सिंहगढ़ युद्ध के बिना कभी नहीं मिलेगा। धर्मरक्षा के लिए जो स्वराज्य–संपादन नहीं करता वह महाराष्ट्र धर्म का असल मराठा नहीं और जो महाराष्ट्र धर्म का असल मराठा है वह, स्वराज्य–संपादन का जो एकमात्र मार्ग है उस समर–मार्ग में कूदने से कभी भी पीछे हटनेवाला नहीं। एतदर्थ युद्धाएं युज्यस्व–श्री छत्रपति द्वारा प्रांरभ किए गए स्वतंत्रता यज्ञ के होता का कंकण बांधने जो हाथ आगे आता है वह हमेशा ही धन्य है।

हतो वा प्राप्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्!

तस्मात् युद्धाएं युज्यस्व!!

ऐसी दैवी चेतना श्रीमंत नाना साहब के नेत्रों को अधिक उग्रता और अधिक तेजस्विता देने लगी। श्री शिवराय को जो कर्तव्य निभाना पड़ा वही महान् कार्य अपने

हिस्से में आया है, इसलिए जय या पराजय जो भी मिले, मुझे तो स्वतंत्रता का नूतन 'शिवराज' या प्रथम पेशवा का मान बढ़ानेवाला अंतिम पेशवा बनना है—उनमें मन ने यह दृढ़ निश्चय किया।

अपने देश और स्वराज्य का भविष्य निश्चित काने का वीरोचित निर्णय हो जाने के बाद श्रीमंत नाना का एकमात्र लक्ष्य था उस निर्णय को कार्य—रूप देना। स्वराज्य—प्राप्ति के लिए जो क्रांतियुद्व लड़ना है उसे सफलता मिले, इसके लिए दो बातें अनिवार्य थी। पहली बात हिंदुस्थान के समस्त लोगों में स्वतंत्रत की जंगी और अनिवार्य इच्छा उत्पन्न होना और फिर उस इच्छा की सिद्वि के लिए—एक ही समय में पूरे देश द्वारा विद्रोह करना, हिंदुस्थान के समस्त लोगों में स्वतंत्रता की जंगी और अनिवार्य इच्छा उत्पन्न होना और फिर उस इच्छा की सिद्वि के लिए—एक ही समय में पूरे देश द्वारा विद्रोह करना, हिंदुस्थान के इतिहास को स्वतंत्रतागामी करना—ये दोनों ही काम विदेशियों को चकमा देकर ही किए जा सकते थे। क्योंकि जिस किसी परतंत्र देश के मन में स्वतंत्रता संग्राम छेड़ने की इच्छा हो उस देश में उस संग्राम की तैयारी गुप्त रीति से ही करनी पड़ती है। अन्यथा आंरभ में ही अमोघ शक्ति से हमला कर बलवान शत्रु उस प्रयास को चूर—चूर कर सकता है। यह ऐतिहासिक सत्य जानकर दोनों महान् विभूतियों—श्रीमंत नाना साहब और अजीमुल्ला खान ने सन् 1856 के प्रांरभ में स्वतंत्रता के लिए हिंदुस्थान को तन और मन से जाग्रत करने के लिए युद्ध संगठन बनाया।

हिंदुस्थान में जितने राजे—रजवाड़े हैं उन सभी में यदि अंग्रेजों के विरूद्ध उठने की इच्छा उत्पन्न हो गई तो एक क्षण में ही अपना देश अपने हाथ आ जाएगा, यह तथ्य नाना के ध्यान में पहले ही आ गया था। इन हिंदुस्तानी सिर चढ़े राजाओं से आगे—पीछे अंग्रेजी राज को धोखा होगा, यह जानकर ही अंग्रेजी सरकार एक के बाद दूसरी रियासत छीनती चली जा रही है, यह वास्तविक स्थिति सारे राजे—राजवाड़ों के आगे रख उनके मन को स्वतंत्रतागामी करने के लिए नाना ने हर दरबार में अपना दूत भेजना प्रारंभ किया। कोल्यहापुर, दक्षिण की सारी पटवर्धनी रियासतों, अवध के जमींदारों और दिल्ली से मैसूर तक की सारी राजधानियों में नाना के दूत और उनके पत्र सारे हिंदुस्थान को स्वतंत्रता युद्व के लिए उइने की चेतना देते हुए घूम रहे थे। अंग्रेजी सत्ता के नीचे स्वराज्य और स्वधर्म की कैसी छीछालेदर होती जा रही है; जो रियासतें आज जीवित हैं, वे भी कल किस तरह नामशेष होनेवाली हैं तथा अंग्रेजों की विश्वासघाती गुलामी में अपने प्राणप्रिय हिंदुस्थान की कैसी बरबादी हो रही है—यह सब स्पष्ट और मार्मिक रीति से जनता के मन में भरते हुए मौलवी, पंडित एवं राजनीतिक संन्यासी सारे हिंदुस्थान भर में गुप्त रीति से विचरने लगे। दासता और गुलामी के प्रति गुस्सा उत्पन्न करते हुए यह दास्य नामशेष करना कितना सुलभ है, हिंदुस्थान के ह्रदय में हिंदुस्तान की तलवार ही कैसे धंसाई जा रही है और हिंदुस्तानी लोग स्वदेश के लिए मर मिटने के लिए तैयार हो जाएं तो एक क्षण में उन्हें अपना देश फिरंगियों के चुंगल से मुक्त करना कितना सरल है—यह सब राजा से रंक तक हर भारतीय ह्रदय को वे राजनीतिक संन्यासी भी प्रकार समझाकर कहते थे। हम सब देशबुंध एक ही जाएंगे तो मुट्ठी भर गोरों को धूल चटाकर स्वदेश को क्षण भर में स्वतंत्र

कर सकते हैं, यह आत्मविश्वास हर सिपाही और हर नागरिक में मन में इन राजनीतिक संन्यासियों ने किस तरह उत्पन्न किया था, यह उस समय के देशभक्तों के उद्गार में पग–पग पर दिखता है। काली नदी की लड़ाई में हारे हुए अंग्रेजों ने प्रश्न किया कि ''हमारे विरूद्व उठने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?' इस अक्खड़ प्रश्न के उत्तर में सिपाहियों ने कहा, ''हिंदुस्थानी सिपाही एक हो गया तो गोरा चटनी के लिए भी नहीं मिलेगा।''

अंग्रेज सरकार ने सन् 1857 के आरंभ में ही सिपाहियों की चिट्ठियां खोलनी शुरू कर दी थी। उन पत्रों में से एक पत्र हिंदुस्थान के लोगों की शक्ति के संबंध में कहता है–''विदेशियों को हम ही सिर चढ़ाए हुए हैं! यदि हम उठे तो फिरंगियों के मुट्ठी भर लोगों को तलवार के एक झटके में गारद कर सकते हैं। कलकत्ते से पेशावर तक मैदान साफ है।''

श्रीमंत नाना साहब के स्वयं के हस्ताक्षर के पत्रों ने और ब्रह्यवर्त से भेजे गए संन्यासियों ने ऐसी उदात्त आत्मनिष्ठा के बीज भारतीय मन में बो दिए। परंतु आज उपलब्ध जानकारी से ऐसा दिखता है कि अवध का राज्य अधिगृहित होने तक इन बीजों में जोरदार अंकुर नहीं फूटे थे।[31]

सन् 1856 में अवध का राज्य अधिगृहीत होते ही अकस्मात् सब लोगों में परतंत्रता के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता का रम्य एवं पुण्य दर्शन श्रीमंत नाना की तीक्ष्ण दृष्टि को इसके पहले ही हो चुका था और गुलामी की गंदगी की दुर्गंध बड़ी दूर से उन्हें आने लगी थी। परंतु जड़बुद्धि सामान्य जनसमूह प्रत्यक्ष साक्ष्य के बिना उसे ग्रहण न कर सका। फिर भी, अवध का राज्य अधिगृहीत होते ही हर कोई अपने अस्तित्व को धिक्कारने लगा और गुलामी में सड़ने की अपेक्षा मरना भला, ऐसी गर्जना कर अपनी तलवारों पर पानी चढ़ाने लगा। इसी समय हिंदुस्थान की इतिहास–प्रसिद्ध राजधानी को भी मानो नई चेतना मिल गई और दिल्ली के रामहलों में स्वतंत्रता संग्राम की मंत्रणाएं शुरू हो गई। दिल्ली के बादशाह की बादशाही लेकर ही अंग्रेज नहीं रूके अपितु उनकी

[31] विभिन्न प्रांतों में भेजे गए राजकीय दूतों में से एक दूत मैसूर में पकड़ा गया। उसका कहा निम्न भाग बहुत महत्त्वपूर्ण होने से पूरा–का–पूरा यहां दिया जा रहा है–''श्रीमंत नाना ने अवध अधिगृहीत होने के पूर्व दो–तीन माह से पत्र–प्रेषक शुरू किया था। परंतु पहले उन्हें उत्तर नहीं आए। किसी को भी आशा नहीं थी। अवध का राज्य अधिगृहीत हो जाने पर नाना ने पत्रों की अधिक मार की, तब जाकर केवल लखनऊ के साहूकार नाना के विचार पड़ने लगे। पुरबिया लोगों का राजा मान सिंह भी मिल गया। फिर सिपाही लोगों ने अपनी–अपनी 'तजवीजें' करनी शुरू कीं और लखनऊ के साहूकारों से उन्हें सहायता मिलने लगी।'' अवध अधिगृहीत होने तक बिलकुल उत्तर नहीं आया; परंतु वह राज्य अधिगृहीत होते ही सैकड़ों लोगों ने हिम्मत से आगे आकर नाना को वचन–पत्र भेजे। सिपाहियों की तजवीजें पहले से ही शुरू हो गई थी। फिर कारतूसों की घटना हुई और उस असंतोष पर नाना के पत्रों की बरसात होने लगी। जम्मू के गुलाब सिंह ने–मैं सेना और खजाना लेकर तैयार हूं–ऐसा पत्र लिखा। और लखनऊ के साहूकारों ने धराशियां भी भेज दीं।

'बादशाह' की शाब्दिक पदवी भी उनके बाद न चले, यह भी तह कर लिया। ऐसी पिन्नावस्था में अपना पूर्व वैभव प्राप्त करने हेतु एक बार अंतिम प्रयास करके देखें और मरना ही है तो बादशाही की शान से मरें—ऐसा विचार राजमहल में होने लगा। इस काम में प्रमुख इस्लामी सत्ताओं की सहायता मिले, इसलिए मैं सुन्नी पंथ छोड़कर अवध के नवाब और ईरान के शाह का शिया पंथ स्वीकार करता हूं, ऐसी घोषणा भी बादशाह ने की। इसी समय अंग्रेजों की ईरान से लड़ाई शुरू हुई। हिंदुस्थान में भी उसी समय विद्रोह होना अपने लिए लाभदायक है, यह देखकर ईरान के शाह ने सन् 1857 के प्रारंभ में दिल्ली की मस्जिदों से इसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणाएं होने लगीं—''फिरंगियों के कब्जे से हिंदुस्थान को मुक्त करने ईरानी फौज जल्दी ही आ रही हैं, इसलिए बूढ़े, जवान, छोटे—बड़े, सुशिक्षित—अशिक्षित, रैयत और लश्कर सारे लोग इन काफिर लोगों के शिकंजे से मुक्त होने के लिए रणांगण में कूद पड़ें।''[32]

इस घोषणापत्र को सारे भारतीय समाचार—पत्रों ने प्रकाशित किया और दिल्ली के लोगों में क्रांतियुद्ध की लहर दौड़ गई। दिल्ली के बादशाह के सचिव मुकुंदलाल कहते हैं—'6राजमंदिर के द्वार पर और महल में मुगल खुले मन से युद्ध की चर्चा करते रहते थें सिपाही जल्दी ही विद्रोह कर राजमहल की ओर आएंगे और फिरंगियों का जुआ उतार फेंककर फिर से अपना राज्य स्थापित करेंगे, ऐसी निश्चयपूर्वक बातें वे करते और अपना राज्य हो जाने पर अपने देश की सारी सत्त एवं सारे अधिकार अपने ही हाथों में रहेंगे। ऐसी आशा से सब लोग उत्साहित हो जाते।'' इस लोक—जागृति को उत्तेजना देने के लिए शहजादे और राजवंश के अन्य पुरूषों ने अलग—अलग उपाय किए और दिल्ली में क्रांति की ज्वलाएं सब ओर से सुलगने लगीं।

इस तरह दिल्ली के दीवाने—आम में और ब्रह्मवर्त के राजमंदिर में स्वतंत्रता संग्राम की गुप्त तैयारी हो रही थी। हिंदुस्थान की क्रांतिकारी शक्तियों को इकट्ठा और संगठित करने के लिए इन दो राजमहलों से जो प्रचंड प्रयास चल रहे थे वे इतने गुप्त रीति से किए जा रहे थे कि अंग्रेजों जैसे धूर्त लोगों को भी सन् 1857 में तोपों की गड़गड़ाहट होने तक उसकी रत्ती भर भनक नहीं थी। हजारों रूपयों की तनख्याह और हाथियों का पुरस्कार देकर इस राजनीतिक जिहाद का उपदेश करने के लिए बड़े—बड़े मौलवी भेजे गए। वे गांवों और शहरों में इस राजनीतिक धर्मयुद्ध का उपदेश गुप्त सभाओं में देते हुए घूमते थे। सिपाहियों के शिविरों में रात को इनके व्याख्यान होते थे। लखनऊ की मस्जिदों में मौलवी जिहाद शुरू करने संबंधी खुले भाषण किया करते । पटना और हैदराबाद में रात में सभाएं होती और विभिन्न मौलवी सब स्तर के लोगों को

[32] के कृत—इंडियन म्युटिनी', खंड 2 पृष्ठ 30 ।

स्वतंत्रता की रक्षा करने और स्वधर्म के लिए युद्ध करने की शिक्षा देते थे। जिनके पवित्र नाम से अपने हिंदुस्थान देश का इतिहास भूषित हुआ और जिनके पावन चरित्र का कथन आगे यथासंभव किया जानेवाला है, उन देशभक्त मौलवी अहमद शाह को लखनऊ में हिंदू और मुसलमानों को फिरंगियों के विरूद्ध एक साथ विद्रोह करने का खुला उपदेश देने के कारण फांसी का दंड दिया गया था।

उपर्युक्त मौलवी की तरह ही सैकड़ों प्रचारक फकीरों और संन्यासियों का बाना धारण कर स्थान–स्थान पर गुप्त प्रचार करने लगे। भीख मांगने के बहाने हर घर में जाना सुलभ होने से और इस तरह शत्रु के मन में किसी तरह की आशंका उत्पन्न न होने के कारण ये देशभक्त फकीर और संन्यासी दर–दर घूमकर दासता के प्रति घृणा और भावी स्वतंत्रता की अभिलाषा लोक समूह में प्रदीप्त किया करते थे। विशेषतः सेना में इन लोगों का उपयोग बहुत था। क्योंकि हर टुकड़ी में एक पंडित और एक मुल्ला धार्मिक कार्यों के लिए रखना अनिवार्य होने से उस स्थान पर यही लोग जाकर बैठते थे। सिपाहियों के मन पर उनके धर्मगुरू का दबाव और प्रभाव होने से इन्हीं लोगों के द्वारा स्वतंत्रता के पवित्र धर्म की दीक्षा देना आवश्यक था। स्वतंत्रता के बना धर्मरक्षण असंभव है, यह मर्म जानकर हजारों धर्मगुरू इस राजनीतिक जिहाद का आह्यवन करने आगे आए। सन् 1857 के अप्रैल माह में ऐसा ही एक देशभक्त फकीर वहां की सैनिक छावनी में आया। उसके पास हाथी–घोड़े आदि तथा अन्य संरजाम भी था। वहां के सिपाहियों को राजनीतिक जिहाद की दीक्षा देने में वह मग्न था–परंतु अंग्रेज अधिकारियों को उसपर शंका हुई और उन्होंने उसे वहां से निकल जाने का आदेश दिया। यह आदेश होते ही फकीर वहां से तो निकल गया, परंतु पास के ही एक गांव में घुसकर फिर अपनी गुप्त रचना का कार्य करने लगा।[33] ऐसे कितने की स्वतंत्रता के भक्त लोग अपनी जान हथेली पर लिये उस अपार रचना का गुप्त कार्य बड़े कौशल से कर रहे होंगे। परंतु वे ¨ थे कौन? कहां के? यह भी स्मृति आज जनता में नहीं रही–हाय–हाय!

जिस प्रकार मस्जिद, मंदिर और भिक्षा के बहाने घर–घर में स्वतंत्रता की चेतना उत्पन्न करने मौलवी और पंडित, फकीर और संन्यासी भेजे गए वैसे ही विभिन्न स्थानों से अधिक महत्त्व के स्थान पर उपदेशकों और शिक्षकों को भेजा गया था। हिंदुस्थान में विभिन्न प्रदेशों के लोगों के एकत्रित होने के मुख्य स्थान बड़े–बड़े तीर्थ क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र एक प्रकार से सारे प्रदेशों के लोगों के राष्ट्रीय सम्मेलन–स्थल ही हैं। मस्जिदों में स्थानीय लोग ही आंएगें, परंतु तीर्थों में भी राजकीय महंत नियुक्त किए गए और जल्दी ही गंगा के पुण्य स्नान के लिए आनेवाले हजारों बंधुओं को हिंदुस्थान के मन में मचल

[33] मि, विलियम कृत–'द मेरठ नैरटिव'।

रहे स्वतंत्रता युद्ध में सम्मिलित होने का गुप्त उपदेश देते–देते पंडित लोग प्रत्येक तीर्थ में घूमने लगे।[34]

विराट् जनसमूह के मन में एक ही इच्छा उत्कटता से उत्पन्न करने और उसकी अक्षय मुद्रा उनके हृदय पर अंकित करने के लिए कविता जैसा उत्तम साधन नहीं है। मार्मिक शब्द और आकर्षक पद्धति से पद्य में गुंथा हुआ सत्य जनता के हृदय में बहुत तेजी से अंकुरित होता है। इसीलिए राष्ट्रगीत की महत्ता बहुत मानी जाती है। राष्ट्रगीत राष्ट्र के हृदय की भावना एक वाक्य में प्रकट कर सकते हैं। जब–जब किसी प्रबल भावना से राष्ट्रीय आत्मा छटपटाने लगती है तब–तब उससे निकले सहज बोल ही तो राष्ट्रगीत हो जाते हैं। फ्रांस कि राष्ट्रीय आत्मा के बोल हैं–ला मार्सेलीज । सन् 1857 में स्वधर्म–रक्षण की उदात्त भावना से भारतभूमि की आत्मा फड़फड़ाते समय उसके मुख–मार्ग से ऐसा कोई राष्ट्रगीत निकला न होता तो आश्चर्य ही होता। दिल्ली के बादशाह के एक निजी गर्वया ने सारे हिंदुस्थान के कंठ से निनादित होनेवाले एक राष्ट्रगीत की रचना स्वयं की थी। अपने पूर्वजों के पराक्रम का वर्णन करने के पश्चात् उस राष्ट्रगीत में वर्तमान की अवनति को करूण रस में चित्रित किया गया था। जो लोग एक दिन हिंदुस्थान के इस छोर से उस छोर तक विजयशाली वैभव से अभिशिक्त हुए थे उन्हीं लोगों को आज विश्व में गुलाम कहलाने की बारी आए, उनका धर्म अनाथ हो जाए और उनके अभिषिक्त सिर विदेशियों के पैंरों तले कुचले जाएं–इस विपरीत और लज्जास्पद स्थिति के लिए उस राष्ट्रगीत में भारत माता आक्रोष कर रही थी। परंतु अब उसका यह आक्रोश हमें सुनाई देगा क्या? क्या अब वह सन् 1857 का गीत हम फिर सुन सकेंगे? उस राष्ट्रगीत का प्रारूप यदि कोई खोजकर निकाले तो अपने इतिहास पर उसके अक्षय उपकार होंगे। तब तक इतिहास इतना ही कहता है कि अपनी धरती माता सन् 1857 में आक्रोश कर रही थी और कानपुर के मैदान में कूदते समय नाना के कान में वही आक्रोश भयंकर रूप से गूंज रहा था।

विस्तीर्ण रचना के साधन भी विस्तीर्ण ही होते हैं। जर्जर हुई मातृभूमि को मदोन्मत्त अत्याचारों के हाथ से छुड़ाने जैसा कार्य करने के लिए पहली मूलभूत एवं

[34] 1. ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर'।
2. ''दिल्ली के राजमहल से बहुत पहले ही एक राजाज्ञा प्रसारित की गई थी, जिसमें मुसलमानों को यह निर्देश दिया गया था कि वे अपने सभी महत्त्वपूर्ण समारोहों पर एक गीत का गायन करें, जिसकी राज–दरबार के संगीतज्ञ ने रचना की है, जिसमें बड़े ही मार्मिक शब्दों में उनकी जाति के पराभव और उनके उस प्राचीन धर्म की अवमानना का वर्णन उपलब्ध है जो कभी उत्तर की हिममालाओं से दक्षिणी राज्यों तक व्याप्त था; किंतु जो अब शैतानों और विदेशियों द्वारा पददलित किया जा रहा है।'' –ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर' । मेरे मत से–वृत्ति का अभिप्राय समझ पाने में पूरी तरह असमर्थ ग्रंथकार को इतना लिखना ही पड़ा। यह उस राष्ट्रगीत की सुंदरता का परिचायक है।

महत्त्वपूर्ण कोई बात है तो वह है सब लोगों का मनःप्रवर्तन। वस्तुस्थिति के क्रांति करनी हो तो सबसे पहले मनःस्थिति पर विजय पानी चाहिए। यह मनःक्रांति की चौकियां स्थापित करनी चाहिए।

यह मनःक्रांति संपादित करने के लिए मन की ओर जो भी रास्ते जाते हैं उन सारे रास्तों का क्रांति की चौकियां स्थापित करनी चाहिए। मानव मन सहज ही उत्सवप्रिय होता है, अतः सामान्य जनसमूह को वश में करने के लिए उत्सव के अतिरिक्त दूसरा राजमार्ग नहीं दिखता। इन उत्सवों को शक्कर में घोलकर सिद्वातों की गोली दी जाए तो समाज का बालमन उसे रूचि से गटक लेता है ओर उससे रोग भी ठीक हो जाते हैं। ऐसे गहरे विचार से उस गुप्त संगठन के कार्य में विभिन्न चित्ताकर्षक उत्सवों से सामान्य जन को स्वतंत्रता युद्व की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी। विभिन्न प्रकार के चित्रों के खेल तैयार कर, स्वधर्म की और स्वतंत्रता की कसी अवहेलना हुई है–इसका हूबहू नाटक उन चित्रों द्वारा प्रस्तुत कराया जाता था; और उस सारे अपमान, गुलामी और परतंत्रता का प्रतिशोध किस तरह लिया जाए, इसके उद्दीपक और अनिवार्य चेतना देनेवाले चरित्र इन तारों से बंधी गुड़ियों से दरशाए जाते थे। चौपाल, पनघट, चौकी, धर्मशाला आदि बस्ती की खुली जगह में वीर रसोत्पादक गीत गाकर लोगों को चेताया जाता था। उत्तरी हिंदुस्थान का अति प्रिय गीत आल्हा, जिसे सुनने पर आठ दिन में कहीं–न–कहीं लड़ाई होनी ही चाहिए, ऐसी धारणा है, वह वीर रस से भरा गीत–गाते लोगों की बांहे फड़कने लगी। पूर्वजों के पराक्रम के स्मरण से जब उनका रक्त खौलने लगता तो तुरंत विषय घुमाकर वर्तमान दासता की पूरी बात प्रस्तुत की जाती, इस पर जो 'हर–हर महादेव' की गर्जना न करे, ऐसा कापुरूष कौन होगा?

राष्ट्रकार्य के लिए केवल उस राष्ट्र के पुरूषों की अनुमति होने से ही बात पूरी नहीं होती। इसके लिए तो पुरूषों को जन्म देनेवाली कोख में भी राष्ट्र–क्षोभ के बीज अंकुरित होना आवश्यक है। भारतीय महिलाओं की शूरता कितनी सहायक होती है–यह सिखों का और राजपूतों का इतिहास अभिमानपूर्वक कहता है। भारतीय स्त्रियों की मन–सामर्थ्य संपादन हेतु इस गुप्त संगठन के कार्यक्रम में वैदू लोगों की महिलाओं को लगाया गया था।[35] इन वैदू महिलाओं की घरेलू दवाइयां एवं सामान्य ज्योतिष कार्य के लिए हिंदुस्थान के सामान्य वर्ग की महिलाओं में हमेशा आवाजाही होती है। अतः भारतीय स्त्रियों को ऐसी दवाई देने के लिए जिससे अपनी मातृभूमि का यह गुलामी का रोग ठीक हो और वह दवाई देने पर गुलामी का भूत मां को कब छोड़ेगा और यह भूत–बाधा उतरते ही उसे स्वतंत्रता का सुंदर बालक कब उत्पन्न होगा, यह भविष्य बताने का कार्य ये वैदू महिलाएं जितनी कुशलता से करती थीं उतना कोई धन्वंतरि भी नहीं कर सकता था। इन वैदू महिलाओं ने महिलाओं में और मौलवी तथा पंडितों ने पुरूष समाज

---

[35] ट्रेवेलियन।

में जिस तरह प्रचंड जागृति उत्पन्न कर दी, उसी तरह गांव–गांव घूमनेवाले तमाशेवालों ने भी इस राष्ट्रक्षोभ को बहुत बढ़ाया। ये तमाशगीर अपने खेलों में गुलामी से घृणा उत्पन्न करने का प्रयास करते थे। इस प्रकार हर तरह के और हर स्तर के लोगों में अंग्रेजी शासन पलट देने के लिए सन् 1857 के उस गुप्त संगठन के प्रचंड प्रयास चल रहे थे।

इस संगठन के गुप्त केंद्र अब सब स्थानों पर फैल गए थे।[36] इस गुप्त संगठन की जिस राजभवन में प्रथम प्राण–प्रतिष्ठा हुई उस ब्रह्मवर्त में तो उसकी बढ़त जोरदार ही रही थी; परंतु श्री नाना के और अजीमुल्ला के पत्रों ने और उपदेशकों ने अब हजारों स्थानों पर उस रचना की शाखाएं खोल दी थी। ब्रह्मवर्त में नाना का निवास आगामी मंगल कार्य की तैयारी में जैसे जुटा दिखता था वैसी ही दिल्ली के महल में भी तैयारी की धूमधाम थी। इधर लखनऊ और आगरा में उस देशभक्त–मौलवी अहमद शाह में जिहाद के बीज इतने गहरे उतर गए कि वह सारा शहर जैसे किसी क्रांतिकारी दल का गढ़ बन गयां मौलवी, पंडित, जमींदार, किसान, व्यापारी, वकील, विद्यार्थी ऐसी सारी जातियां और सारे पंथ स्वधर्मार्थ और स्वदेशार्थ अपने प्राणदान करने की दीक्षा लेकर सज्जित हो गए थे और इस गुप्त रचना की अगुवाई करनेवालों में सबसे अग्रणी नेता एक पुस्तक विक्रेता था। कलकत्ता में तो स्वयं सवध के पूर्व नवाब और उनके मुख्य वजीर अली नक्की खान ठहरे हुए थे। उपर्युक्त मुख्य वजीर ने सन् 1857 की घटना में जितना धैर्य, चतुराई और साहस दिखाया उतना बहुत कम दिखा पाए होंगे। कलकत्ता में मुख्य काम बैरकपुर, दमदम आदि स्थानों पर रह रहे सिपाहियों को राज्य क्रांति के लिए अनुकूल कर लेने का था। वह बहुत नाजुक काम अली नक्की खान ने इतनी सफाई से किया कि सन् 1857 का वर्ष आते ही सारे सिपाही राष्ट्रकार्य में मिल जाने के लिए शिवजी का बेल पत्र उठाकर या गंगाजल हाथ में लेकर या कुरान की कसम लेकर वचनबद्ध हो गए थे और अवध के नवाब ने भी उन्हें उदारता का वचन दिया था। सिपाहियों के सारे ठिकानों पर रात को गुप्त बैठकें होतीं और वहां शपथ–विधि संपन्न होते ही दूसरे दिन उस रेजीमेंट का सूबेदार नवाब के यहां जाकर स्वतंत्रता संग्राम के लिए उनसे मिलने का वचन दे आता। इन सिपाहियों के मिलने के मुख्य स्थान मेरठ और बैरकपुर ही थे। उत्तर में जैसी संगठित और नियमित रचना थी वैसी ही दक्षिण में बनाने के लिए रंगों बापूजी प्रयासरत थे। पटवर्धनी रियासतों ओर कोल्हापुर के दरबार में क्रांतियुद्ध के लिए जाल

[36] अपने विस्तृत इतिहास के अंत में मैलसन लिखता है–''इस षड्यंत्र का नेता निश्चित रूप से मौलवी ही था। इस संगठन की शाखाएं संपूर्ण भारत में फैल गई थीं। निश्चित रूप से ही आगरा में, जहां यह मौलवी यदा–कदा रहता था और दिल्ली, मेरठ, पटना एवं कलकत्ता में भी वहां अवध का पूर्व नवाब रहता था, इस क्रांति संगठन का प्रभाव प्रायः व्यापक ही था।''

बुना जा रहा था। अधिक क्या कहा जाए, परंतु ठेठ मद्रास तक इस क्रांतियज्ञ की ज्वालाएं भड़कने लगी थी। सन् 1857 की जनवरी में निम्न घोषणापत्र प्रकाशित हुआ–''हे देशबंधुओं और धर्मनिष्ठों, उठो! काफिर अंग्रेजों को अपने देश से भगा देने के लिए सारे उठो! इन अंग्रेजों ने न्याय के सारे सिद्धांत मटियामेट कर दिए हैं। उन्होंने हमारा स्वराज्य लूट लिया है और स्वदेश को धूल में मिलाने का उनका दृढ़ निश्चय है। अंग्रेजों की इन भयानक यातनाओं से अपने हिंदुस्थान को मुक्त करने के लिए केवल एक ही उपाय शेष रह गया है और वह उपाय है तुमुल युद्ध करना। ऐसे युद्ध में जो रण–मैदान में खेत रहेंगे वे अपने देश के शहीद होंगे। जो स्वदेश एवं स्वधर्म के लिए लड़ेंगे और मरेंगे उन वीर्यवान् शहीदों के लिए स्वर्ग के दरवाजे खुल रहे हैं और जो डरपोक और देशद्रोही अधम इस राष्ट्रकार्य से परावृत्त होंगे उनके लिए नरक के द्वार खुले होंगे। देशबंधुओं, इनमें से तुम क्या स्वीकार करोगे?''[37]

ऐसी स्थिति में सन् 1857 का उदय हुआ और ऐसी सूचनाएं आने लगी कि हिंदुस्थान में यत्र–तत्र सांकेतिक महत्कार्य का मुहूर्त आ गया। इसी समय कारतूसों का बखेड़ा खड़ा हुआ। हर एक सिपाही दिन में अपनी बंदूक को रगड़–रगड़कर साफ करता और रात होते ही अपनी रेजिमेंट के सूबेदार मेजर के बंगले पर आयोजित होनेवाली गुप्त बैठकों में जाकर स्वतंत्रता संग्राम के लिए शपथ दिलाने के लिए भोज के कार्यक्रम आयोजित करते। इन भोजों के समय एक–दूसरे से योजना कही जाती और उन योजनाओं को फिर नाना साहब या अली नक्की खान को बताया जाता। कुछ रेजिमेंटों में ऐसी क्रांति घटना चलते हुए गलती या विश्वासघात से वह जानकारी सरकार के कानों तक गई तो एक–दो रेजिमेंटों को निःशस्त्र कर दूर कर दिया गया। बहुत बढ़िया! ये सारे सिपाही स्वयंसेवक बनकर गांव–गांव जाते और क्रांतियुद्ध के जिहाद का उपदेश करते। सिपाहियों के सब ठिकानों से वचन–पत्र ऐसा था। सातवीं अवध रेजिमेंट का अड़तालीस रेजिमेंट को भेजा गया वचन–पत्र ऐसा था–''रेजिमेंट के हमारे भाई का मत हमें स्वीकार है। कारतूसों के बारे में उनके जैसा ही व्यवहार करेंगे और समय आने पर टूट पड़ेंगे।'' बैरकपुर से सियालकोट जैसे दूर देश भेजे गए पत्र पकड़े गए थे। उनमें एक में बैरकपुर के सिपाही सियालकोट के सिपाहियों को लिखते हैं–''भाइयों, शत्रुओं के विरूद्ध उठो!''

रूसी क्रांति की तरह ही हिंदुस्थान के क्रांतियुद्ध में भी पुलिसवाले जनता से बहुत सहानुभूति बरतते थे। क्रांति के गुप्त संगठन यंत्र का प्रचंड पहिया अब तीव्र गति से

---

[37] 1. चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 40 ।
2. रेड पैंफलेट, खंड 1 ।

घूमने लगा था। ऐसे समय में विभिन्न पहियों की गति एक लय में घूमने लगे, ऐसा प्रयास आवश्यक था। इसी उद्देश्य से क्रांति पक्ष का एक दूत हाथ में रक्त कमल पुष्प लेकर बंगाल की सैनिक छावनी में प्रवेश करता और अपने हाथ का फूल पहली टुकड़ी के मुख्य भारतीय अधिकारी को देता। भारतीय अधिकारी उसे अपने निचले आदमी को देता—और इस तरह वह कमल हर सिपाही के हाथ से होकर अंतिम सिपाही तक और अंतिम सिपाही से फिर आए हुए उस क्रांतिदूत के हाथ लौट आता। बस, इतना काफी था! इस तरह एक शब्द भी बोले बिना वह क्रांतिदूत तीर की तरह आगे बढ़ता और रास्ते में दूसरी टुकड़ी मिलते ही उसके मुखिया के हाथ में वह रक्त कमल दे देता। इस रीति से कमल काव्य में पूर्ण हुआ संगठन क्रांति के एक ही रक्तमय विचार से भर जाता। यह रक्त कमल मानों क्रांति की अंतिम राजमुद्रा ही थी। इस रक्त कमल को स्पर्श करते ही सिपाहियों के मन में किन भावनाओं का उछाल आता, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः किसी महान् वक्ता को अपने अतुल्य शब्दों से श्रोताओं में जो वीर वृत्ति जागृत कर पाना कठिन था उस वीर वृत्ति का संचार इन लड़ाके सैनिकों में उस निर्वाक् कमल पुष्प ने अपने रक्तिम वर्णीय संकेत से किया।

कमल पुष्प! शुचि, यश और प्रकाश का कविजनों का मान्य काव्य प्रतीक! और उसका वर्ण? रक्तोज्जवल ! रक्तोज्जवल!! उस पुष्प में स्पर्श मात्र से हृदय पुष्प विकसित हो उठे, इतना वह मृदुचेतन! सैकड़ों सिपाहियों द्वारा जब वह कमल पुष्प इस हाथ से उस हाथ में दिया गया होगा तब उस पुष्प के मूक वाक् संदेश से भी बहुत बड़े गूढ़ार्थ एवं उदात्त ध्येय की स्फूर्ति संचरित हो जाती होगी, यह बात निश्चित है। इस रक्त कमल के कारण सबके हृदय सच में एक हो गए। क्योंकि बंगाल में सिपाही और किसान दोनों ही एक ही बात बोलते हुए दिखाई देते कि 'सबकुछ लाल होगा!' सब ओर अब लाल होना है।[38]

उस रक्त कमल और उसके द्वारा संचरित भावना ने हर व्यक्ति के हृदय में एक ही ध्वनि का निर्माण किया था। सिपाही द्वारा सिपाही को लिखे पत्र भी इसी रीति से लिखे होते थे। परंतु इस संगठन के नेताओं के पत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते थे, अतः उन्हें बहुत सावधानी से लिखा जाता। अधिकतर योजना एवं रचना प्रत्यक्ष व्यक्ति भेजकर ही निश्चित की जाती। परंतु पत्र भेजना ही हो तो अत्यंत अस्पष्ट भाषा में लिखे जाते थे। इतना ही नहीं अपितु ये अस्पष्ट पत्र पकड़े जाने पर कदाचित् मुश्किल हो जाएगी, इसलिए चतुर नेता लोग अपना सारा पत्राचार सांकेतिक भाषा में ही करते थे। कुछ बूंदों

[38] ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर'।

की और आंकड़ों की लिपि बनाकर उसका इस गुप्त संगठन में उपयोग किया जाता।1[39]

परंतु इन संकेत चिह्नें और इन गुप्त पत्रों में भी जो राष्ट्रीय उद्‌बोध न दिया जा सका वह उद्‌बोध हिंदुस्थान की भविष्यवाणी ने दिया। भविष्य कथन मन के आगामी काल में होनेवाली कूद है। मन दिव्यत्व पर भविष्य का दिव्यत्व अवलंबित होता है। सन् 1857 में हिंदुस्थान का मन स्वतंत्रता के प्रकाश से दिव्य हो गया, इसलिए सन् 1857 में हिंदुस्थान के भविष्य कथन में अति महत्त्वपूर्ण और 1857 के इतिहास पर उसके कितने ही पृष्ठों पर मुद्रांकित हुआ वह भविष्य यह था कि कंपनी का राज ठीक सौ साल में समाप्त हो जाएगा। प्लासी की लड़ाई को सन् 1857 में सौ वर्ष पूरे हो रहे थे। अतः इस वर्ष की जनवरी से एक विलक्षण आशा और एक विलक्षण चेतना पूरे दे के कण–कण में संचार कर रही थी। इस एक भविष्य कथन ने देखते–ही–देखते राष्ट्र में ऐसी आशा उछाल दी कि अंग्रेजी राज डूब जाएगा। इस भविष्य काल को वर्तमान काल में बदलने के लिए हर कोई सज्जित होने लगा।

सन् 1857 के साल में अंग्रेजी राज डूबेगा, इस भविष्य कथन द्वारा राष्ट्र विभूति को स्वतंत्रता–प्राप्ति के लिए पहले ही तैयार किया गया। वह इसीलिए कि रण–देवता से स्वतंत्रता का दान मिलते ही किसी तरह का आकस्मिक घोटाला न होने पाए; सिपाही, सेनापति, पटेल, जमींदार आदि अंग्रेजी शासन में जिस–जिस पद पर थे उसी पद पर रहकर स्वतंत्र राज्य की सेवा किसी तरह की गड़बड़ी न करते हुए करें, ऐसी योजना बनी थी। गुप्त संगठन के नेताओं ने कितनी कुशलता से सारे राष्ट्र को सूचिबद्ध कर दिया था, इसे ध्यान से देखने पर मन धन्य हो जाता है।

जन–क्षोभ को उत्तेजित करने रोज लखनऊ में उत्तेजक और क्रांतिकारी घोषणापत्र लगाए जाते। इन घोषणापत्रों में–सारे भाई एक साथ उठें और हिंदुस्थान का राज्य वापस लें, ऐसा उपदेश अति उत्तेजक भाषा में दिया जाता। सुबह होते ही शहर के हर चौराहे पर इस अर्थ के नए घोषणापत्र और पर्चे लगे मिलते। ये बातें अंग्रेज अधिकारियों के कानों में पहले ही पड़ी होने पर भी उन्हें ये पत्र और उनके लेखकों को गाली देते हुए कुढ़ते रहने के सिवाय कुछ करते बनता नहीं था। क्योंकि पुलिसवाले कहते कि ये पत्र–परचे लिखता कौन है? इसे खोज पाना कठिन है। कुछ ही दिनों में अंग्रेजों को ज्ञात हो गया कि ये पुलिसवाले ही क्रांतिपक्ष के नेता थे। गुलामी की सुरक्षा की अपेक्षा स्वतंत्रता की रक्षा करनेवाले पुलिसवाले रूस की राज्य क्रांति में दिखते हैं, ऐसा नहीं, वे हिंदुस्थान की राज्य क्रांति में भी थे। उत्तरी हिंदुस्थान में जैसे यह गुप्त संगठन कुशलता से खड़ा हो गया था वैसे ही यदि दक्षिण में भी होता तो कैसी बहार आ जाती!

[39] 1- इन्स कृत–'सेपॉय रिवॉल्ट', पृष्ठ 55 ।
2. रेड पैंफलेट, खंड 2 ।

इस तरह इधर–उधर मन–प्रवर्तन की लहरें उठा देने के बाद श्री नाना साहब फिर सारे केंद्रों को भी सूत्रबद्ध कर डालने के लिए और मुख्य–मुख्य गुप्त संगठनों में एकवाक्यता लाने के लिए ब्रह्मवर्त के बाहर निकले। सन् 1857 के अप्रैल में श्रीमंत अपने साथ अपने भाई बाबा साहब और अपने मंत्री अजीमुल्ला खान को लेकर दिल्ली की ओर गए। दिल्ली के वातावरण में उस समय नाना ने क्या मंत्र पढ़े और दिल्ली के दीवाने–आम में बादशाह से नाना ने कया निजी बातें की, इसकी स्मृति केवल उस वातावरण और दीवाने–आम को ही होगी! अंग्रेज लोगों में से मोर्लड नाम का अधिकारी आगरा में जज के पद पर था। वह उस समय नाना से मिलने गया था और उसका नाना द्वारा उत्तम स्वागत हुआ था, इस कारण अगले तीन माह बाद अंग्रेजों के कैसे स्वागत की तैयारी नाना कर रहे थे, इसकी उसको हवा भी नहीं लगी। दिल्ली की सारी तैयारी देख और वहां के सारे काम जांच नाना लखनऊ चले गए। सन् 1857 के गुप्त संगठन के केंद्रों में लखनऊ अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्र था। 18 अप्रैल को नाना साहब लखनऊ की ओर चले। उसी दिन सुबह लखनऊ के चीफ कमिश्नर सर हेनरी लॉरेंस की बग्घी के पीछे दौड़ते हुए लोगों ने उस पर कीचड़ के लड्डू फेंके थे और जल्दी ही इससे अधिक प्रभावी लड्डू कैसे फेंके जाए, यह बताने के लिए नाना की सवारी वहां आई थी। फिर क्या? उस लखनऊ शहर के उत्साह और सहस की कोई सीमा नहीं रही। लखनऊ शहर देखने का अर्थ क्या है, इसकी उस समय उस पगले को क्या कल्पना होती। नाना इसी माह कालपी शहर देखने भी गए। आगे स्वतंत्रता संग्राम में जिन्होंने अपने अतुल देशाभिमान और रण–कुशलता से पूरे जग को चकित किया उस जगदीशपुर के कुंवर सिंह से नाना की राजनीति चल रही थी और उधर के सारे आंदोलन का नक्शा भी इसी समय अंतिम आकार ले पाया था। इस रीति से दिल्ली, लखनऊ, कालपी, जगदीशपुर आदि स्थानों पर स्थित प्रमुख नेताओं से प्रत्यक्ष मिलकर और उनकी सलाह से भावी क्रांति का पक्का नक्शा बनाकर श्री नाना साहब अप्रैल के अंत में ब्रह्मवर्त लौट आए।

प्रमुख नेताओं से मिलकर बात पक्की करने नाना साहब जब इधर प्रवास कर रहे थे तब उधर सारे देश में भावी मंगल कार्य की सुपारी देने के लिए राज्य क्रांति के संदेश वाहक अपने कार्य में संलग्न थे। वे आज ही अवतरित हुए हैं, ऐसा बिल्कुल नहीं हैं; क्योंकि वेल्लोर के विद्रोह के पहले भी उधर ऐसी ही रोटियां भेजी गई थी। सन् 1857 के आरंभ में गुप्त पंखों के ये देवदूत सारे हिंदुस्थान में भावी मंगल कार्य का समाचार देते हुए भ्रमण करने लग गए थे। वे कहां से आए और किधर जाएंगे, यह कोई

भी नहीं जान पा रहा था। ये देवदूत जिसे समझ में आता उसी को मुख्य संदेश देते और जिसे ठीक न समझते उससे खूब बतियाते। इस विचित्र रोटी को कुछ पगले अंग्रेज अधिकारियों ने पकड़—पकड़कर उसका चूरा किया और फिर उस चूरे का भ चूरा बनाकर उससे कुछ कहलवाने के प्रयास किए; परंतु किसी चुड़ैल की तरह उस चपाती को बोलने को कहते ही वह अपने मुंह की जीभ ही नष्ट कर देती और जिससे मन होता उसी से बोलती। वह रोटी गेहूं या बाजरे के आटे की बनी होती थी। उस पर यद्यपि कुछ भी लिखा हुआ नहीं होता था, फिर भ वह हाथ में आते ही, उसका स्पर्श होते ही हर व्यक्ति की देह में क्रांति चेतना संचार करने लगती। हर गांव में मुखिया के पास वे रोटियां आती। वह स्वयं उसका एक टुकड़ा खाता और उसका प्रसाद के रूप में सारे गांव में बांट देता। फिर उतनी ही जाता रोटियां बनवाकर वे गांववाले पड़ोस के गांव में भिजवा देते।

जा, हे क्रांति के देवदूत ! ऐसे ही आगे जा। अपनी प्रिय माता, अपनी स्वतंत्रता के लिए जिहाद करने को तैयार हो गई है, यह शुभ वार्त्ता उसके बच्चों को सुनाने दसों दिशाओं में दौड़कर जा। तुम्हारी मां पर संकट है, अतः उसके बचाव के लिए दौड़! दौड़! ऐसी कर्कश चिल्लाहट करते हुए आधी रात में भी न रूकते निरंतर दौड़ता रह! गढ़ और कोट के दरवाजे बंद हैं, तथापि उनके खुलने तक न रूकते वहां आकाश मार्ग से पहुंच जा।

घाटियां गहरी हैं, कगार टूटे हुए हैं, नदियां विराट् हैं, वन भयानक हैं। परंतु इस कारण एक क्षण भी न सहमते हुए यह भयंकर राष्ट्र—संदेश लेकर तू तीर की गति से बढ़ता जा। तेरी गति पर हमारी इस माता का जीवन और मृत्यु अवलंबित है। इसलिए तेरे पंख जितने काट सकें उतनी दूरी कम करते हुए पूरे वातावरण में उड़ान भरता जा। शत्रु ने तेरी दे हके किसी अंग का भंग किया तो भी हे मायावी देवदूत! हमारे राष्ट्र के इस संकट के समय में तू हजारों—लाखों देह धारण कर उस हर देह में जीभ लगाकर बढ़। पत्नी एवं पति, माता एवं बालक, बहन एवं भाई सबको स्वतंत्रता संग्राम की कार्य—सिद्धि के लिए सपरिवार आने का निमंत्रण देना। कानपुर के देवता को बुलाना; शंख, भेरी, दुंदुभि, ध्वज, पताका, रणगीत, गर्जना, गड़गड़ाहट आदि सारे सगे—संबंधियों को इस युद्ध कार्य की इश्ट सिद्धि के लिए बुला लाना। कुल देवता, ग्राम देवता एवं राश्ट्र देवता अपने—अपने अनुचरों सहित स्वातंत्र्य समर के मंगल समारोह के लिए सुसज्ज होकर उत्सुक हैं—उन सबसे कह—'अति समयों वर्तते' सावधान!

सावधान, मित्रों! सावधान!! और अपनी ही अकड़ में उस हरे—भरे पर्वत पर षांति से लेटे षत्रुओं, अब सावधान! यह पर्वत ऊपर से जितना हरा—भरा दिखता है उतना ही वह अंदर से भी हरा—भरा होगा, इस विष्वास से* तुम इसके माथे पर लातें मार रहे हो

क्या? मारो, वैसे ही मारते जाओ लातें! जल्दी ही तुम्हें कालिदास के शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमास्ति तेजः–इस वचन की सच्चाई ज्ञात होगी। हे विश्व! यह हमारा तपोधन हिंदुस्थान शम–प्रधान है, यह सच है; पर इसलिए तुम इसके इस शम–प्रधानत्व का अनुचित लाभ मत उठाना। क्योंकि इस तपोनिधि के शरीर में प्रदाहक, प्रचंड शक्तियां भी गूढ़ता से भरी हुई है। शंकर के तीसरे नेत्र की कथा क्या तुमने कभी सुनी है? वह नेत्र जब तक खुलता नही ंतब तक बहुत शांत रहता है। परंतु उसके खुलते ही पूरे विश्व को राख करने में सक्षम ज्वालाएं उसी में से निकलती हैं। तूने कभी ज्वालामुखी को देखा है। वह ज्वालामुखी ऊपर से हरा–भरा रहता है, पर यदि वह एक बार अपना जबड़ा खोलने लगे तो उसके उबलते अग्नि रस से दसों दिशाएं जलने लगती हैं। परंतु इस सामान्य ज्वालामुखी से भी जाज्वल्यतर यह हिंदुस्थान का जीवित ज्वालामुखी अब खौलने लग गया है। उसके उदर के भयंकर अग्नि रस में लहरें उठने लगी हैं। उसके दाहक द्रव्य एक–दूसरे में मिल रहे हैं और उनपर स्वातंत्र्य–प्रेम की चिंगारी गिर गई है। उसके मस्तक पर नाचनेवालो, एक क्षण और . . . कि दिग्गजों के कान भी बधिर हो जाएं, ऐसी गड़गड़ाहट होनेवाली है; फिर मदांध जुल्म को यह ज्ञात होगा कि हिंदुस्थान के ज्वालामुखी का प्रतिशोध कैसा होता है।

40

[40] अंग्रेजों को हिंदुस्थान की मनोवृत्तियां इतनी ज्ञात थीं कि 87 की फरवरी में अंग्रेजी पत्र एवं अंग्रेजी सरकारी रिपोर्ट कहती है–''संपूर्ण देश पूर्णरूपेण शांत है।'' –चार्ल्स बाल

भाग—2

विस्फोट

प्रकरण—9

शहीद मंगल पांडे

सन् 1857 के क्रांतियुद्ध के इतिहास में एक आश्चर्यजनक बात थी उसकी परम गोपनीयता। पूरे युद्ध की रचना गुप्त रीति से हुई। सारे हिंदुस्थान भर में क्रांति रचना का दौर—दौरा चलते हुए भी अंग्रेजों जैसे धूर्त राज्यकर्ताओं को उस विद्रोह की इतनी कम जानकारी मिल पाई थी कि प्रत्यक्ष विद्रोह होने के एक वर्ष बीत जाने के बाद भी अंग्रेजों के अनेक अधिकारियों को विद्रोह का प्रमुख कारण कारतूस ही लगता था। कारतूस कितना निमित्त मात्र कारण था, यह अब कहीं जाकर अंग्रेजी इतिहासकारों को ज्ञात होने लगा है और सन् 1857 के भयंकर युद्ध में स्वदेशाभिमान और स्वधर्माभिमान का पवित्र स्फुरण उन योद्धाओं में कैसे संचरित हुआ था, यह स्पष्ट रीति से कुछ इतिहासकार डरते—डरते अब स्वीकार करते हैं।[41]

[41] मैलसन ने लिखा है—''एक बहाने मात्र के रूप में ही और केवल इसी रूप में ही कारतूस क्रांति का कारण सिद्ध हुए थे। षड्यंत्रकारियों ने इस बहाने का पूर्ण लाभ उठाया था और उन्हें यह अवसर इसलिए उपलब्ध हुआ था, जैसाकि मैंने सिद्ध करने का प्रयास भी किया है कि सैनिकों तथा जनता के कतिपय वर्गों के मन में यह विश्वास बद्धमूल करा दिया गया था कि उनके विदेशी स्वामी प्रत्येक कार्य ही दृष्ट हेतु को लेकर कर रहे हैं।

मेडली ने अपनी पुस्तक में लिखा है—''वस्तुतः चरबी से चिकने किए गए कारतूसों की बात ने तो केवल उस सुरंग में अंगार मात्र ही लगाया था जिसका निर्माण अनेक द्वारा किया गया था।'' श्री डिजाराइली ने तो सुस्पष्ट शब्दों में इस धारणा को अस्वीकार किया था कि ''चिकने कारतूस ही इस विद्रोह का मूल कारण थे।'' —चार्ल्स बाल कृत—'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 629

हिंदुस्थान जैसे विस्तीर्ण देष में राज्य क्रांति जैसे गंभीर काम को अंग्रेजों जैसे धूर्त अधिकारियों को हवा भी न लगने देते हुए इतनी गोपनीयता से संगठित करने का कार्य जिन्होंने किया उन श्रीमंत नाना साहब, मौलवी अहमद शाह, वजीर अली नक्की खान आदि नेताओं की जितनी प्रशंसा की जाए, वह कम है। सिपाही, पुलिस, जमींदार, राजस्व अधिकारी, किसान, व्यापारी, साहूकार आदि सारे वर्गों में और हिंदू और मुसलमान इन दोनों जातियों में अपूर्व दोस्ती और प्रचंड क्रांति के बीज बो दिए और वे बीज अंकुरित होते ही उन सबने उत्कृष्ट संगठन कर अंग्रेजों को उस प्रचंड हलचल की हवा भी लगने नहीं दी। यह गुप्त संगठन पूर्ण आकार ले पाए, इससे पहले 19 वीं पलटन पर प्रयोग किया जाएगा, ऐसा रंग दिखने लगा। बंगाल में फरवरी माह में सारी पलटनों की अपेक्षा 34वीं पलटन राज्य क्रांति के लिए अति उत्सुक हो गई थी। इस 34वीं पलटन का मुख्यालय बैरकपुर में होने से और वजीर अली नक्की खान उसके पास कलकत्ता में होने से उन्होंने सारी पलटन को शपथपूर्वक राज्य क्रांति–कार्य से जोड़ लिया था। इस पलटन की कुछ टुकड़ियां 19 वीं पलटन में भेजी गई थी। इस कारण उन टुकड़ियों ने 19 वीं पलटन को भी राष्ट्रकार्य में खींच लिया। परंतु परिस्थिति यह हो गई कि राज्य क्रांति की प्रचंड घटना की बिल्कुल भनक न लगने, अंग्रेज अधिकारियों को उसकी कोई जानकारी न होने से उन्होंने उस 19 वीं पलटन में भेजी गई थी। इस कारण उन टुकड़ियों ने 19वीं पलटन पर ही कारतूसों का पहला प्रयोग किया। परंतु वे कारतूस लेने से वह पलटन खुले रूप से मुकर गई और समय आया तो शस्त्र उठाने तक का अपना निश्चय है, यह प्रकट किया। वह कृत्य देखते ही हमेशा की तरह अंग्रेजों ने 'नेटिवों' को धौंस–पट्टी दिखाना चालू किया। परंतु अब वहां पहले के 'नेटिव' नहीं थे, यह बात उस पलटन में हो रही तलवारों की खनखनाहट से जल्दी ही गोरे अधिकारियों की समझ में आ गई। अब यह मानभंग चुपचाप पी जाने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं था; क्योंकि उस सारे प्रदेश में ऐसी एक भी पलटन नहीं थी जो इस नेटिव सेना को नियंत्रण में रख सके। यह बाधा दूर करने के लिए मार्च के प्रारंभ में ब्रह्मदेश में स्थित फिरंगी पलटन कलकत्ता लाई गई और 19वीं पलटन को निःशस्त्र कर काम से हटाने का आदेश जारी हुआ। इस आदेश पर कार्यवाही बैरकपुर में की जाए, यह निश्चित किया गया।

[42]

[42] इससे भी एक पग आगे रखकर एक लेखक ने अपने ग्रंथ में लिखा है–''यह तो असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया गया है कि कारतूसों का भय था, तो अनेक के लिए बहाना मात्र ही था। जिन कारतूसों की टोपी दांत से तोड़ने पर अपने धर्म से ही हाथ धो बैठने का भय निर्माण कर बात का बतंगड़ बनाया गया था, हमसे युद्ध करते समय उन्हीं को वे ही सिपाही हमपर चलाते समय किसी प्रकार के संकोच का प्रदर्शन नहीं करते थे।''

अपने बंधुओं को अपनी आंखों से सामने दंडित किया जाएगा, यह सुनकर भी शांत रहनेवाला बैरकपुर नहीं था। वहां स्वतंत्रता की ज्योति हर तलवार में चलकने लग गई थी। परंतु इन सबसे अधिक मंगल पांडे की तलवार म्यान में अधीर हो रही थी। 19वीं पलटन की रतह ही 34वीं पलटन को भी समय आते ही कंपनी की नौकरी को लात मारकर निकल जाने की इच्छा थी। इसलिए 19वीं पलटन को कंपनी अपने आप ही निकाल रही है, यह बहुत बढ़िया हो रहा है–ऐसा सारे स्वदेशाभिमानियों को लग रहा था। सब ओर का एकमत होने तक एक माह रूका जाए, ऐसा चतुर नेता कह रहे थे और सारे हिंदुस्थान में अलग–अलग पलटनों में कौन सा दिन निश्चित किया जाए, को धीरज कौन बंधाएं? मंगल पांडे ब्राह्मण कुल में जनमा और क्षात्रधर्म में दीक्षित हट्टा–कट्टा जवान था। स्वधर्म पर प्राणों से अधिक निष्ठा रखनेवाला, आचरण से सुशीलवान, स्वभाव से तेजस्वी और आयु से तरूण मंगल पांडे के पवित्र रक्त में देश –स्वातंत्र्य की विद्युत चेतना प्रवेश कर गई थी। फिर उसकी तलवार कैसे धीरज रखे? शहीदों की तलवार को कभी धैर्य रहता है क्या! जय–पराजय की रत्ती भर भी परवाह न करते हुए अपनी तत्त्वनिष्ठा पर जो स्वयं के रक्त का अभिषेक करते हैं, ऐसे ही लोगों के सिर पर बलिदानी मुकुट झिलमिलाता है और इस निष्फल–से लगते उष्ण रक्त से ही विजय की मूर्ति प्रकट हुआ करती है। अपने स्वदेश बंधुओं का अपनी आंखों के सामने अपमान हो, यह बात मंगल पांडे के अंतरतम को असह्य पीड़ा देने लगी और अपनी रेजिमेंट उसी दिन विद्रोह करे, वह ऐसा आग्रह करने लगा। गुप्त समिति के नेता आज विद्रोह करने को अनुमति नहीं दे रहे हैं, ऐसा ज्ञात होते ही उस जवान का साहस रूकना दुष्कर हो गया। उसने लपककर अपनी बंदूक उठाई और 'मर्द हो वो उठो', ऐसी गर्जना करते हुए परेड मैदान में कूद पड़ा।''अरे, अब पीछे क्यों रहते हो? भाइयों, आओ, टूट पड़ो। तुम्हें तुम्हारे धर्म की सौगंध है–चलो, अपनी स्वतंत्रता के लिए शत्रु पर टूट पड़ो।'' ऐसी गर्जना करते हुए वह अपने स्वदेश बंधुओं को अपने पीछे आने का आह्वान करने लगा। यह देखते ही सार्जेंट मेजर ह्यूसन ने सिपाहियों को मंगल पांडे को पकड़ने का आदेश दिया। परंतु अंग्रजों को आज तक मिले देशद्रोही सिपाही मंगल पांडे को पकड़ने नहीं हिला। और इधर मंगल पांडे की बंदूक से सन्–सन् करके निकली गोली ने उस ह्यूसन का शव तत्काल भूमि पर पटक दिया। यह गड़बड़ हो ही रही थी कि इतने में लेफ्टिनेंट बॉ भी वहां आ गया। इससे पहले कि उसका घोड़ा नाचते–नाचते आगे सरकता, मंगल पांडे की बंदूक से दूसरी गोली छूटी और वह उस घोड़े के पेट में घुसते ही घोड़ा लेफ्टिनेंट को लेकर धड़ाम से गिरा। मंगल पांडे को बंदूक भरने का अवसर मिले, इसके

पहले ही धूल में पड़े लेफ्टिनेंट ने अपनी पिस्तौल निकाल ली। यह देखते ह मंगल पांडे ने तिल भर भी डगमगाए बिना अपनी शमशीर निकाली। बॉ ने पिस्तौल चलाई, पर गोली चूक गई और वह तलवार निकाले, उसके पहले ही मंगल पांडे की तलवार का बार हुआ और बॉ मिट्टी सूंघने लगा। इतने में मंगल पांडे पर उस पहलेवाले गोरे की हमले की तैयारी में बढ़ता देख पास के एक सिपाही ने बंदूक के दस्ते से उसका सिर फोड़ दिया और सारे सिपाहियों ने गर्जना की–'मंगल पांडे को कोई हाथ न लगाए।'' तभी कर्नल व्हीलर वहां आया और मंगल पांडे को पकड़ने का आदेश देने लगा। ''हम अपने आदरणीय ब्रह्मण के बाल को भी नहीं छुएंगे'', फिर ऐसी गर्जना हुई और अंग्रजों के गाढ़े लाल रक्त के उस दृष्य के आगे अधिक न रूकते हुए वह कर्नल जनरल के बंगले की ओर भाग गया। इधर मंगल पांडे अपने रक्तरंजित हाथ उठाकर–''मर्दों, बढ़ो!'' ऐसी भयानक गर्जना करते हुए इधर–उधर घूम रहा था। जनरल हीर्से को यह समाचार मिलते ह ीवह कुछ और युरोपियन सैनिक लेकर मंगल पांडे की ओर दौड़ता आया। अब निष्चित ही षत्रु पकड़ लेगा, यह जान उस देषवीर मंगल पांडे ने फिरंगियों के हाथों पकड़े जाने की अपेक्षा मृत्यु को अपनाने का निष्चय किया और अपनी बंदूक अपने ही सीने की ओर कर ली और तत्काल उसकी पवित्र देह घायल होकर गिर गई। तुंरत उस घायल युवक को अस्पताल ले जाया गया; और उस एक सिपाही ने जो बहादुरी दिखाई उससे लज्जित होकर सारे अंग्रेज अधिकारी अपने–अपने तंबू में चले गए। यह सन् 1987 के मार्च की 29 तारीख थी।

मंगल पांडे का कोर्ट मार्शल कर जांच–पड़ताल हुई। उस जांच में वह अन्य षड्यंत्रकारियों के नाम बताएं, इसके लिए बहुत प्रयास हुए। परंतु उस तेजस्वी युवक ने 'वह किसी के भी नाम बताने को तैयार नहीं है, 'यह उत्तर दिया। उसने यह भी बताया कि मैंने जिनपर गोलियां चलाई उन अंग्रेज अधिकारियों से मेरा किसी तरह का व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। यदि व्यक्तिगत द्वेष होता तो उनकी हत्या खून मानी जाती। मंगल पांडे का मंगल नाम शहीदों की सूची में न जाकर खूनी मनुष्यों की सूची में डालना पड़ता। परंतु मंगल पांडे का वह साहस सिद्वातों के लिए था। स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए सुखे–दुःखे समे कृत्वा' मंगल पांडे की तलवार म्यान से बाहर निकली थी। स्वदेश ओर स्वधर्म का अपमान देखने से मुत्यु भली है–यह वज्र निश्चय करके ही वह बाहर निकला था। इस कार्य में जैसी उसकी स्वदेश–भक्ति और स्वधर्म–प्रीति दिखाई दी, वैसा ही उस युवा की तलवार का पानी भी दिखाई दिया। ऐसे युवा को फांसी का दंड सुनाया गया। दिनांक 8 अप्रैल उसकी फांसी के लिए तय हुआ। शहीदों के रक्त में क्या तेज होता है, यह तो ज्ञात नहीं, परंतु उसके नाम–स्मरण से भी मन की उदात्त वृत्तियां खिलने लगती हैं। परंतु जिनकी दृश्टि को मंगल पांडे के प्रत्यक्ष दर्षन का लाभ हुआ था–

बैरकपुर के ऐसे सारे नागरिकों के ह्रदय में उसके प्रति दिव्य प्रीति उत्पन्न हुई हो तो इसमें क्या आष्चर्य! उस सारे बैरकपुर षहर में मंगल पांडे को फांसी देने के लिए एक भी जल्लाद नहीं मिला। अंत में उस अमंगल कार्य के लिए कलकत्ता से चार जल्लाद लाए गए। दिनांक 8 अप्रैल को सुबह मंगल पांडे को फांसी–स्थल की ओर ले जाया गया। चारों ओर लष्करी लोगों का पहरा था। उनके बीच से मंगल पांडे गर्व से चलता चला गया और फांसी पर चढ़ गया। ''मैं किसी के नाम नहीं बताऊंगा,'' यह एक बार फिर से कहते ही उसके पैर के नीचे का सहारा निकाल लिया गया और मंगल पांडे की देह से उसकी पवित्र आत्मा स्वर्ग चली गई।

इस तरह सन्1857 के क्रातियुद्ध की पहली भिड़त हुई और इस रीति से उस क्रांतियुद्ध का पहला षहीद स्वर्गवासी हो गया। जिसके रक्त से सन् 1857 की षहादत की नदी का उद्गम हुआ उस देषवीर, धर्मवीर मंगल पांडे का नाम हर एक के कंठ एवं ह्रदय में अक्षय बना रहना चाहिए। सन् 1857 में हिंदुस्थान के स्वतत्रंता बीज में अंकुर फोड़ने के लिए मंगल पांडे ने अपना उश्ण रक्त सबसे पहले अर्पित किया। उस स्वतत्रंता की फसल आगे–पीछे कभी लहलहा उठी तो उसके पहले नैवेद्य का अधिकारी मंगल पांडे है।

मंगल पांडे नहीं है, पर उसका चैतन्य सारे हिंदुस्थान में फैला हुआ है और जिस सिद्धांत के लिए मंगल पांडे मरा वह सिद्धांत चिरंजीवी हो गया है। मंगल पांडे ने सन् 1857 के क्रांतियुद्ध को अपना रक्त दिया, इतना ही नहीं अपितु उस क्रांति में जो–जो स्वदेष के और स्वधर्म के लिए लड़े उन सबको 'पांडे' उपाधि लगाने का प्रयत्न षुरू हो गया।[43] और इसीलिए यह नाम हर माता अपनी संतान को साभिमान बताने लगी।

[43] ''यह नाम भारत भर में सभी विद्रोही सिपाहियों के लिए उपनाम के रूप में ख्याति प्राप्त कर गया।'' –चार्ल्स बाल
''सिपाहियों को सामान्यतः 'पांडे कहकर संबोधित किए जाने का उद्गम स्थल यह नाम ही था।''
–लॉर्ड रॉबर्ट कृत–'फोरटी वन ईयर इन इंडिया'

प्रकरण–२

मेरठ

देशवीर मंगल पांडे के बलिदान से सन् 1857 का बीज जमते ही उसे अंकुरित होने में देर क्यों हो? जिस 19वीं रेजिमेंट में मंगल पांडे था उस रेजिमेंट के सूबेदार को भी इस आरोप में फांसी दी गई कि उसने रात में क्रांतिकारी बैठकें कीं और 19वीं रेजिमेंट व 34वीं रेजिमेंट इन दोनों ने मिलकर पूरे प्रदेश में विद्रोह करने का गुप्त षड्यंत्र रख–यह उनके पास मिले कागज–पत्रों से सिद्ध हो जाने पर उन्हें निःशस्त्र कर नौकरी से निकाल देने का दंड दिया गया। सरकार के हिसाब से वह दंड था; परंतु इन दोनों ही रेजिमेंट के सिपाहियों को यह अपना बड़ा सम्मान लग रहा था। जिस दिन उन्हें शस्त्र नीचे रखने का आदेश हुआ उस दिन युरोपियन सेना को पूरी तरह तैयार रखा गया था। अंग्रेज अधिकारियों को विश्वास था कि नौकरी से निकाल देने के दंड से सिपाही पश्चात्ताप करेंगे; परंतु उन हजारों सिपाहियों ने किसी बहुत ही अपवित्र वस्तु की तरह कंपनी की दासता पर खुशी से लात मारी। अपने बूट और यूनिफार्म फाड़–फूड़कर फेंक दिए। उन सिपाहियों को अपने वेतन से सैनिक टोपियां लेनी पड़ती थी। अतः उसे उनकी निजी संपति मान कंपनी ने उन्हें छूट दी थी कि वे चाहें तो उसे ले जाएं । परंतु नदी में नहाकर बाहर आने के बाद फिर से गुलामी का चिह्न को स्पर्श किया तो। अब हिंदुस्थान को कोई दूसरा आकर टोपी पहनाए, वे दिन लद गए हैं। फेंक दो दासता की टोपियां। हजारों टोपियां आकाश में दिखने लगी। परंतु गुरूत्वाकर्षण के जिद्दी स्वभाव के कारण वे फिर से हिंदुस्थान की भूमि पर ही गिरी। फिर से भू देवी को

दासता की छूत लगी। दोड़ो सिपाहियों, उन दास्य चिन्ह्यें को उन अंग्रेजी अधिकारियों के सामने फाड़कर और पैरों तले कुचलकर धूल में मिला दो। हजारों सिपाही उन दास्य–दूशित टोपियों को कुचलने लगे और बलहीन हुए अंग्रेज अधिकारी अपनी सत्ता का खुला अपमान करता यह भारतीय नृत्य देखते रहे।[44]

उत्तर प्रदेष के उच्च पुरबिया ब्राह्मण कुल में जनमे मंगल पांडे का रक्त केवल बंगाल में ही स्वतंत्रता के बीज नहीं जमा रहा था, उधर अंबाला में भी उसकी विद्युत चेतना का संचार हो गया था। अंबाला में सिपाहियों ने एक नई पद्धति चालू की थी। वह था–यदि कोई अधिकारी उनके विरूद्ध जाए तो उसका घर–बार जलाकर भस्म कर डालना। रोज रात को देशद्रोहियों और विदेशियों के घर जलने लगे। यह काम इस झटके से और गुप्त ढंग से होता मानो प्रत्यक्ष अग्नि नारायण ही क्रांति पक्ष की गुप्त समिति का सदस्य बन गया है। बहुत आग गली और जो आग लगानेवाले को पकड़वा देगा, उसको हजारों रूपयों के इनाम भी घोशित किए गए। पर एक आदमी भी सूचना न देता। अंत में परेषान होकर स्वयं कमांडर–इन–चीफ ॲन्सन गवर्नर जनरल को लिखता है–

"It is really strange that the incendiaries should never be detected. Everyone is on the alert here, but still there is no clue to trace the offenders." फिर अप्रैल के अंत में वह लिखता है – "We have not been able to detect any of the incendiaries at Ambala. This appears to me extraordinary; but it shows how close the combinations among the conceive to be their wrongs and how great the dread of retaliation to any one who would dare to become an informer."

हिंदुस्थान के देशद्रोहियों पर तो अंग्रेजी साम्राज्य आधारित था! परंतु अंबाला में एक भी देशद्रोही न मिला।इससे स्वयं कमांडर–इन–चीफ गऊ बन गया और सिपाहियों के गुप्त षड्यंत्र की स्तुति करते हुए उनपर गुस्सा करता रहा तो इसमें आश्चर्य की बात क्या थी! अब यह आग हिंदुस्थान में जगह–जगह आरंभ हो गई थी। अंतिम विशाल आग भड़काने के पहले इधर–उधर छोटी–बड़ी गड़बड़ शुरू हो गई थी। अंबाला की भांति वहां भी अधिकारियों और देशद्रोहियों के घर सुलगने लगे थे। दिनांक 31 मई को सारा हिंदुस्थान एक साथ सुलगा दिया जाए, जिससे इधर–उधर जान छिपाने का अवसर न पाकर परतंत्रता अंदर–ही–अंदर राख हो जाएगी, यह निर्धारित योजना–लखनऊ की गुप्त समिति को यद्यपि मान्य थी, फिर भी वहां के तेजस्वी सिपाही बहादुरों को अपना गुस्सा दबाए रखना कठिन हो गया। उसमें भी हर रात की गुप्त सभाओं में चल रहे उद्दीपक भाषणों और जलनेवाले घरों के भयंकर दृश्यों से सिपाहियों को रूकना और अपने को रोकना कठिन

[44] रेड पैंफलेट, खंड 1, पृष्ठ 34।

हो गया। मई की 3 तारीख को ऐसे ही चार अटल सिपाही बहादूर बलपूर्वक लेफ्टिनेंट मेशम के तंबू में घुसे और बोले, ''आपसे यद्यपि हमारा कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं हैं, फिर भी चूंकि आप फिरंगी हैं, इसलिए आपको मरना होगा।''[45]

राक्षस रूप में आए उन सिपाहियों को देखते ही भयभीत हुआ वह लेफ्टिनेंट उनसे घिघियाकर कहने लगा, ''आप चाहें तो मुझे एक क्षण में मार सकते हैं, परंतु मुझ गरीब को मारने से आपको क्या मिलेगा? दूसरा कोई आएगा और मेरा काम करने लगेगा। अपराध मेरा न होकर इस राज्य व्यवस्था का है। फिर मुझे क्यों नहीं छोड़ते?'' इन बातों से सिपाही बहादुर थोड़े होश में आए और सारी राज्य व्यवस्था को एकदम मारना चाहिए, यह मानकर लौट आए। पर यह बात अधिकारियों तक गई और तुरंत ही हेनरी लॉरेंस ने पलटन को धोखे से तोपखाने की मार में खड़ा करके निःशस्त्र कर दिया।

परंतु मेरठ की ओर तो दांव इससे भी अधिक रंगत पकड़ रहा था। कारतूसों के संबंध में सिपाही वास्तविक शिकायत करते हैं या नहीं, यह पक्का जानने के लिए एक टुकड़ी को वे कारतूस देने का निश्चय किया। उस परेड में आए नब्बे सिपाहियों में से पूरे पांच ने भी उन कारतूसों को नहीं छुआ। परंतु वे कारतूस फिर से दिए गए। फिर से सिपाहियों ने उन्हें स्पर्श करने से मना किया और वे अपने–अपने स्थान पर चले गए। उनका यह आचरण जनरल के कानों तक जाते ही उसने कोर्ट मार्शल के सामने उस सारे सिपाहियों को खड़ा कर पचासी घुड़सवारों को आठ से दस वर्ष तक सश्रम कारावास का दंड दिया।

मई की 9 तारीख को एक हृदयद्रावक घटना घटी। यूरोपियन कंपनी और तोपखाने की मार के पहरे में ऊंचाई पर पचासी सिपाहियों को खड़ा किया गया। शेष नेटिव सिपाहियों को यह तमाशा देखने को जान–बूझकर बुलाया गया और फिर उन पचासी देशभक्त सैनिकों को अपने कपड़े उतरवाकर लोहे की भारी–भारी बेड़ियां उनके पैरों और हाथों में ठोंक दी गई। शत्रु की छाती में घुसनेवाली तलवार के सिवाए जिनके हाथों में अन्य कुछ भी न पड़ा था, अपने उन मर्द स्वदेश बंधुओं के हाथ में आज फिरंगियों ने लोहे की बेड़ियां ठोक दीं, यह देखकर सारे भारतीय सिपाहियों के शरीर थर्रा उठे। पर सामने ही खड़ी तोपों को देखकर हर तलवार म्यान में ही फड़फड़ाती रही। फिर उन पचासी शूर सिपाहियों को–तुम्हें दस वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया है–यह सुनाया गया और हाथ–पैर की भारी–भारी बेड़ियों के बोझ तले झुके वे धर्मवीर

[45] ''व्यक्तिगत रूप से तो तुम्हारे प्रति मन में कोई द्वेष भावना नहीं है; किंतु तू फिरंगी है, अतः तुझे मरना ही चाहिए।'' –चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 42

कारावास की ओर चल दिए। उस समय अपने धर्म की रक्षा के लिए कारावास में जा रहे उन सिपाहियों को स्वदेश बंधुओं ने कैसे नेत्र संकेत किए, यह भविष्य शीघ्र ही कहेगा। गाय और सूअर के रक्त से बने कारतूस अपने पर जबरन लादे जाएं और उसे कोई रोके तो उसे दस वर्ष के कठोर कारावास का दंड भुगतना पड़े, ऐसा भयंकर अपराध जिस दासता में होता है, उस फिरंगी दासता का हम टेंटुआ दबाएगें और दस वर्ष के लिए तुम्हें पहनाई गई बेड़ियां और सौ वर्षों से अपनी मातृभूमि के पैरों में पड़ी गुलामी की बेड़ियां इन दोनों को जल्दी ही तोड़ देंगे, यह उन नेत्र संकेतों का अर्थ हो सकता है।

यह घटना प्रातःकाल की थी। प्रिय देशबंधुओं को अपनी आंखों के सामने परदेशी और परधर्मी लोग बेड़ियां डालकर कारावास में डालें और उस दृश्य को खुली आंखों से देखें, इसका दुःख झेलते, मन–ही–मन जलते सिपाहियों का अपनी–अपनी बैरकों में लौटते ही धीरज टूटने लगा। शहर के बाजार में वे गए तो वहां की महिलाएं उनका तिरस्कार कर कहने लगी–''तुम्हारे बाप कारावास में भेजे गए हैं और तुम यहां मक्खियां मारते फिर रहे हो। थू तुम्हारी जिंदगी पर!!''[46] पहले ही गुस्से से पगलाए सिपाहियों को यह कैसे सहन होता कि रास्ते में औरतें उनके जीवन पर थूकें! उस दिन रात में सारी लाइन पर सिपाहियों की गुप्त बैठकें होती रही। क्या अब भी मई की 31 तारीख तक रूकना है।? इधर अपने भाइयों के कारावास में पड़े होते हुए हम नामर्दों की तरह चुप होकर बैठें! रास्ते में औरतें–बच्चे अपने पर देशद्रोही कहकर थूकने लगें, फिर भी दूसरों की राह देखते चुप बैठना? 31 मई की तारीख अभी कितनी दूर है। तब तक उन फिरंगियों के झंडे तले रहना? नहीं–नहीं, कल ही रविवार है। इस रविवार का सूर्य नारायण अस्तमान होने के पहले कारावास के उन देशवीरों की बेड़ियां टूट ही जानी चाहिए। स्वदेश जननी की बेड़ियां टूटनी ही चाहिए और स्वतंत्रता का झंडा लहराना ही चाहिए। तत्काल दिल्ली संदेश भेजे गए–''हम तारीख 11 या 12 को वहां आ रहे हैं; सारी तैयारी करके रखो।–''

10 मई का रवि उदय हुआ। सन् 1857 की गुप्त तैयारी की अंग्रेजों को इतनी कम जानकारी थी कि मेरठ के सिपाहियों की दूसरों से तो क्या आपस में भी कुछ सामान्य योजना बन रही है, इसकी भी उनको आशंका नहीं हुई। रविवार को सुबह उनका नित्यकर्म शांति से शुरू हुआ। घोड़े की गाड़ियां, शीत उपचार, सुगंन्धित फूल, हवाखोरी, गाना–बजाना–सारी बातें हमेशा की तरह चालू हो गई। साहबों के घर के नेटिव नौकर अकस्मात् नौकरी पर नहीं आए, इसका भी उन्हें कोई अधिक आश्चर्य नहीं हुआ।

[46] 1. जे.सी. विल्सन।
2. रेड पैंफलेट, खंड 1 ।

इधर सिपाहियों के बीच बहस चल रही थी कि पूरा कत्लेआम करना है या नहीं। 20वीं पलटन और तीसरी घुड़सवार पलटन के सिपाही बोले,''चर्च में फिरंगियों के जाते ही 'हर–हर महादेव'' बोलो। और लश्करी ओर मुलुकी, सैनिक और नागरिक बच्चे–औरतें–मर्द–जो मिले उसे काटते दिल्ली चलों।'' यहीं अंत में तय हुआ।

इधर मेरठ में पास–पड़ोस के गांवों से भी टूटे–टाटे शस्त्र हाथ में लिये हजारों लोग आकर मिल रहे थे। स्वदेश–कार्य के लिए आए उन ग्रामीणों की तरह मेरठ के नागरिक भी सज्जित होने लगे। फिर भी अंग्रेजों को तिनके भर जानकारी नहीं थी।

रविवार की शाम के पांच बजे चर्च का घंटा उस शांत वातावरण में हलके–हलके बनजे लगा और अंग्रेज लोग अपनी–अपनी पत्नियों सहित हंसते–खेलते चर्च की ओर जाने लगे। परंतु उस दिन का चर्च का घंटा अंग्रेजों के लिए प्रार्थना नहीं बजा रहा था–वह तो उनकी मृत्यु वेला बजा रहा था। क्योंकि उधर सिपाहियों की लाइन में एक ही गर्जना उठ रही थी–'मारो फिरंगी को'। इस ध्वनि से सारा वातावरण भर गया।

सबसे पहले कारावास में पड़े धर्मवीरों की बेड़ियां तोड़ने सैकड़ों घुड़सवार उधर गए। उस कारावास के रक्षक भी क्रांतिपक्ष के ही थे, अतः 'मारो फिरंगी की' की रण–ध्वानि सुनते ही वे कारागृह छोड़कर अपने साथियों से मिल गए। दूसरे ही क्षण उस अभागे कारागृह की दीवारें ढहने लगी। दस वर्ष कठोर कारावास भोगने के लिए फिरंगियों द्वारा पहनाई गई बेंड़ियां थर–थर कांपने लगी। एक देशभिमानी लुहार आगे आया और उसने जल्द ही उन बेड़ियों के टुकड़े–टुकड़े कर दिए। प्रचंड वीर गर्जना करते वे कारावास भोग रहे धर्मवीर बाहर आए, घोड़ों पर चढ़े और अपनी मुक्ति के लिए आए देशबंधुओं के साथ उस कारावास को पीछे छोड़ चर्च की ओर पूरे जोश से दौड़े। इधर पैदल टुकड़ी ने दंगा शुरू कर दिया। ग्यारह पलटनों का कर्नल फिनीस अपने घोड़े पर बैठ यों ही उधर आया था। सिपाहियों के सामने खड़ा होकर हमेशा की अकड़ के साथ उन्हें डांटने–डपटने लगा तो सिपाही उसका काल बन उस पदा दौड़ पड़े। 20वीं पलटन के एक सिपाही ने अपनी पिस्तौल उस पर चलाई और वह कर्नल अपने घोड़े के साथ भूमि पर गिर गया। पैदल और घुड़सवार, हिंदू और मुसलमान सारे–के–सारे गोरे रक्त के लिए इतने बेचैन हो गए थे कि यह फिनीस का रक्त तो दरिया में खसखस थी। मेरठ के बाजार में यह समाचार पहुंचते ही वह पूरा शहर जलने लगा और जहां–जहां भी अंग्रेज मिला वहां–वहां उसे गारद किया गया। सदर बाजार के सारे लोग हाथ में तलवारें, भाले, लाठियां, छुरियां–जो जिसके हाथ में लगा वह शस्त्र लेकर गली–गली में दौड़ने लगे। जिस किसी भवन पर अंग्रेजी सत्ता के चिह्न थे वे सारे भवन, बंगले, कार्यालय सब आग में जलने लगे। आकाश में धुएं के बादल, अग्नि, अग्नि की रंग–बिरंगी ज्वालाएं हजारों लोगों के हल्ले–गुल्ले की मिली–जुली आवाजें और सबसे ऊंची आवाज–मारों फिरंगी को–

से मेरठ का आकाश भयानक हो उठा। विद्रोह प्रारंभ होते ही पूर्व संकेतों के अनुसार मेरठ से दिल्ली की ओर जानेवाली तार तोड़ डाली गई और उस रास्ते पर अपना कड़ा पहरा बैठा दिया। वह अंधियारी रात होने से अंग्रेजों को बड़ी आफत हुई। कोई तबेले में छुपा तो कोई सारी रात पेड़ के नीचे बैठा रहा–कोई घर की तीसरी मंजिल पर तो कोई जमीन के गड्ढे में। किसी ने किसान का वेश बनाया तो कोई बटलर के पांव पकड़े रहा। विद्रोही सिपाही अंधियारी होते ही दिल्ली की ओर कूच करने लगे थे; परंतु उनके प्रतिशोध का अधूरा काम मेरठ के लोगों ने स्वयं ही पूरा किया। अंग्रेजों के लिए इतना गुस्सा उत्पन्न हुआ था कि अंग्रेजों के स्पर्श होने से जो घर जलाने लायक हो गए थे, पर पत्थर के हाने से जलाए नहीं जा सकते थे, उन्हें चूर–चूर कर दिया गया। वहां के कमिश्नर ग्रीदेड के बंगले को आग लगा दी गई, फिर वह वह अंदर ही छिपा बैठा रहा। यह बात बाहर ज्ञात हुई तो मेरठ के लोग सशस्त्र होकर कर्कश गर्जना करते इकट्ठा हो गए। त बवह कमिश्नर अपने बटलर के पांव पड़ने लगा और पैरों के नीचे फैली आग और चारों ओर शत्रुओं का घेराव, मृत्यु के ऐसे जबड़े से अपने परिवार को बचाने के लिए उसकी चिरौरी करने लगा। वह बटलर उस पर द्रवित हो गया और क्रांतिकारियों से बोला, ''कमिश्नर घर में नहीं है'' और जहां वह छिपा था उसकी विपरीत दिशा में चलने का आग्रह करते हुए उन्हें दूर तक ले गया। इतने में वह कमिश्नर गिरते घर से भाग गया। मिसेज चैंबर्स के बंगले में विद्रोहियों ने उसे छुरा भोंककर, खींच–घसीटकर फेंक दिया। कैप्टन क्रेजी ने अपनी पत्नी और बच्चों का गोरा रंग छिपाने के लिए उन्हें घोड़े की जीन पहनने को दी और उन्हें काले रंग से रंगकर एक मंदिर के खंडहर में रात भर छिपाके रखा। डॉक्टर खिस्टे और व्हेटरनरी सर्जन फिलिप्स को पत्थरों से कुचलकर मारा गया। लेफ्टिनेंट हेंडरसन और लेफ्टिनेंट पेंट का पीछा कर उन्हें गारद कर दिया गया। घरों में आग लगाने से कितने ही औरत–बच्चें जल मरे। जैसे–जैसे अंग्रेजी रक्त अधिकाधिक गिरता गया वैसे–वैसे विद्रोहियों की कर्कश गर्जना और भयानक अट्टाहस का उत्साह बढ़ने लगा। रास्तों में पड़े अंग्रेजों के शवों को लोग लतियाने लगे। बीच में किसी विद्रोही को गोरे लोगों पर वार करते किंचित् दया आ जाती तो अन्य हजारों लोग 'मारो फिरंगी को' कहते–चिल्लाते–दौड़ते आते और कारावास में डाले गए उन पचासी निरपराध धर्मवीरों में से एकाध वहां होता तो उसके हाथ पर चढ़ाई गई फिरंगी बेड़ी के निशान की ओर अंगुली दिखाकर–'इसका प्रतिशोध लेना है' कहते हुए वार–पर–वार करने लगते।[47]

वास्तविकता यह थी कि यदि कहीं पहले विद्रोह खड़ा होने की संभावना नहीं थी तो वह मेरठ में; क्योंकि वहां नेटिव सिपाहियों की दो पैदल रेजिमेंट और एक

[47] एक हिंदू द्वारा लिखित 'विद्रोह के कारण'।

घुड़सवार रेजिमेंट थी। परंतु गोरे सिपाहियों की एक पूरी राठफलमेंस बटालियन और एक ड्रगून रेजिमेंट के साथ एक उत्तम तोपखाना उनके पास था। ऐसी स्थिति में सिपाहियों को सफलता मिलने की संभावना बिल्कुल नहीं थी। विद्रोह होते ही वहां अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने का कार्य मेरठ शहर को सौंपकर विद्रोही सिपाही तत्काल इसी उद्‌देश्य से दिल्ली की ओर जा रहे थे। उनका पीछा कर उन्हें रोकना और पूर्ण नाश करने का काम भी बड़ा सरल था। पर अंग्रेजी सेना और उनके अधिकारियों में उस समय जो भीरूता, अव्यवस्था और चिंता दिखाई दी उस पर तो अंग्रेज इतिहासकारों को भी बहुत लज्जा आती है। नेटिव घुड़सवारों का कर्नल स्मिथ उसकी पलटन विद्रोह कर गई है, यह ज्ञात होते ही उधर देखे बिना भाग खड़ा हुआ। तोपखाने का अधिकारी तैयार होकर कुछ करे इससे पहले सिपाही दिल्ली की ओर चल पड़े थे। उसमें भी आगे न बढ़ते हुए अंग्रेजी सेना घबराई–सी जगह–जगह सारी रात पड़ी रही। वास्तविकता यह है कि मेरठ के व्रिदोह से अंग्रेजों का बड़ा नुकसान हुआ। यह अभूतपूर्व और अकस्मात् घटित प्रचंड घटना क्या है, इसका दूसरे दिन तक उन्हें कुछ पता न चला। इधर सिपाहियों ने नक्शा अच्छी तरह बनाया हुआ था। विद्रोह करते ही कारागार से बंदियों को छुड़ाना और बाद में अंग्रेजी रक्त की बरसात करना। इस अकस्मात् हमले से अंग्रेज लोग बुरी तरह घबरा उठे। उस एक झटके में मेरठ शहर ने विद्रोह करके सब ओर आग लगाकर एवं चारों ओर से मार–पीटकर अंग्रेजों के लिए यह पता तब तक सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हो गए। यह दिल्ली की ओर जाने की योजना बहुत चतुराई भरी थी। पहले झटके में दिल्ली पर कब्जा कर विद्रोह को एक क्षण में राष्ट्रीय होने की सूचना अंग्रेज अधिकारियों के कानों तक पहुंचती, तभी दिल्ली की ओर जानेवाले तार तोड़कर और रास्ता रोककर, कारागृह से अपने धर्मवीरों को मुक्त करके, अंग्रेजों के रक्त के नाले बहाकर, वे दो हजार सिपाही गोरे रक्त से रंगी अपनी तलवारें ऊंची उठाकर गर्जना करने लगे–'दिल्ली! दिल्ली!! चलो दिल्ली!!!'

प्रकरण–3

दिल्ली

श्रीमंत नाना साहब पेशवा अप्रैल के अंतिम भाग में दिल्ली आ गए थे। तब निश्चित हुई बातों के अनुसार 31 मई के रविवार की सारे लोग उत्सुकता से राह देख रहे थे। दिनांक 31 मई को सारे हिंदुस्थान भर में 'हर–हर महादेव' एक साथ गूंज उठा होता तो सच में अंग्रेजी साम्राज्य की इतिश्री होने और स्वतंत्रता की विजय दुंदुभि बजाने के लिए इतिहास को अधिक देर ठहरना न पड़ता; परंतु मेरठ के अग्रिम विद्रोह से क्रांति की तुलना में अंग्रेजों को अधिक लाभ हुआ।[48] मेरठ के बाजार में जिन तेजस्विनी महिलाओं ने सिपाहियों की जिंदगी पर थूका और मर्द हो तो कारागृह के वीरों को छुड़ाकर लाओ, 'ऐसा कहकर हमारे इतिहास की नारियों की तेजस्विनी चेतना में एक स्फूर्तिदायी कथा तो

[48] ''इतना सुनिश्चित था कि यदि संपूर्ण हिंदुस्थान में सहसा ही विद्रोह की ज्वाला धध उठती और अंग्रेजों को इस विद्रोह के होने से पूर्व इसका पता न लग पाता तो हमारे (गोरे) बहुत ही थोड़े व्यक्ति इस वेगवान संहार से बच पाते। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश राष्ट्र के लिए भारत पर पुनः विजय प्राप्त कर पाना एक अत्यंत ही कठिन कार्य होता अथवा अपने पूर्वी साम्राज्य में पराजय एक एक अमिट कलंक सर्वदा के लिए हमारे मस्तक पर अंकित हो जाता।''

''मेरठ के इस भयानक विद्रोह से हमें एक महान् लाभ अवश्य हुआ। वह यह था कि समूचे भारत के सैनिकों के विद्रोह का कार्यक्रम 31 मई, 1857 के निश्चित दिन कार्यान्वित होना था। किंतु इस समय से पूर्व भड़के उभार ने हमें समय से ही जाग्रत् कर दिया।'' –ह्वाइट का इतिहास, पृष्ठ 17

जोड़ी, फिर भी उन्होंने परदेशियों में सारे सिपाही नेटिव ही थे। उन्हें भी मंगल पांडे का समाचार सुनने के बाद से धीरज रखना कठिन हो रहा था। पर बादशाह और बेगम जीतन महलने बड़ी कुशलता से सारी दिल्ली की गुप्त समिति को संदेश आया कि हम कल आ रहे हैं, तैयारी रखो!! यह अपूर्व और आकस्मिक संदेश दिल्ली में पहुंचते –न–पहुंचते मेरठ से दो हजार सिपाही 'दिल्ली! दिल्ली! की गर्जना करते हुए निकल गए। उस रविवार की रात को पूर्ण रतजगा रहा। हजारों घोड़े दौड़ रहे हैं, हिनहिना रहे हैं, तलवारों और बैनेटों की खनखनाहट हो रही है–ऐसा यह भयानक दृश्य देखते हुए रात जाग रही थी। अंत में भोर हुई और अपना पीछा करता मेरठ का तोपखाना अभी भी नहीं आया, यह देखकर उत्साहित वे सिपाही रात भर हुए कश्टों को भूलकर एक क्षण भी कहीं न ठहरकर वेसे ही आगे बढ़े। मेरठ से दिल्ली कोई 32 मील है। सुबह के आठ बजे सेना के प्रमुख हिस्से को यमुना का पवित्र दर्शन हुआ। स्वतंत्रता के पवित्र कार्य के लिए जानेवाले योद्धाओं को अपने शातल जल से सिंचित कर प्रोत्साहन देनेवाली भगवती यमुना उन्हें दिखते ही उन हजारों योद्धाओं ने 'जय जमुनाजी' कहकर उसका वंदन किया। यमुना से दिल्ली शहर को जोड़नेवाले नाव के पुल पर से भारतीय घोड़े दोड़ते चले जा रहे थे। पर वे किसलिए दोड़ रहे हैं, यह यमुना नदी को ज्ञात है क्या? उसे यह बताए बिना जाना इष्ट नहीं है तो पकड़ो, वह कोई अंग्रेज पुल पर से जा रहा है; उसे और उसके गोरे रक्त को फेंक दो इस काली कालिंदी में। सिपाही क्यों दौड़े जा रहे हैं, इसका पूरा समाचार वह रक्त यमुना नदी को दे देगा।

वह नाव का पुल उतरकर सिपाही दिल्ली की प्राचीर से भिड़ गए। यह भनक लगते ही दिल्ली में स्थित अंग्रेज अधिकारी नेटिव सिपाहियों को परेड पर बुलाकर उन्हें राजनिष्ठा के व्याख्यान देने लगे। फिर 54वीं पलटन को लेकर कर्तल रिप्ले विद्रोहियों का सामना करने निकला। 54 वीं पलटन के नेटिव सिपाहियों ने निकलते समय ही कहा किय कर्नल साहब, उन मेरठ के सिपाहियों को दिखाइए तो सही; फिर हम उन्हें देख लेंगे। क्या देख लेंगे, यह उस कर्नल को क्या मालूम? उसने बड़े गर्व से उन्हें शाबासी दी और वह पलटन विद्रोहियों का सामना करने चल दी। थोड़ा आगे जाते ही प्राचीर से मेरठ के घुड़सवार दौड़ते हुए आते दिखाई दिए। गुस्से से उग्रतम हुए और गोरे रक्त की अनिवार्य मांग करनेवाले उन घुड़सवारों के पीछे लाल रंग की वरदी में मेरठ का पैदल दल भी था। एक–दूसरे को देखते ही उन्होंने एक–दूसरे को सलामी दी और मेरठ की सेना दिल्ली की सेना से मिलने लगी। मेरठ की सेना ने 'फिरंगी राज्य का नाश हो' और 'बादशाह की जय हो' के नारे लगाए ये नारे सुनते ही दिल्ली की सेना ने 'मारो फिरंगी को' की प्रति गर्जना की। यह क्या है? कहनेवाला कर्नल रिप्ले क्षण में ही गोलियों की बौछार में भूमि

पर गिर गया और फिर उस रेजिमेंट के साथ आए सारे अंग्रेजों को एक साथ कत्ल कर दिया गया। इस तरह अपने स्वदेश–प्रेम पर फिरंगी रक्त की मुहर लगाकर मेरठ के घुड़सवार नीचे उतरे और दिल्ली के सिपाहियों से गले मिलने लगे। यह समाचार सुनते ही शहर का कश्मारी दरवाजा खुल गया और उस इतिहास–प्रसिद्ध दरवाजे से 'दीन–दीन' की गजना करते स्वतंत्रता योद्धा दिल्ली में प्रवेश कर गए।

मेरठ सेना की दूसारी टुकड़ी कलकत्ता दरवाजे से अंदर घुसने लगी। वह दरवाजा पहले बंद किया हुआ था, परंतु इन सिपाहियों की भयानक थपकी पड़ते ह ीवह धीरे–धीरे हटने लगा और जल्दी ही उस दरवाजे पर नियुक्त पहरेवालों ने 'दीन–दीन' कहते विद्रोहियों को अंदर कर लिया। कलकत्ता दरवाजे से अंदर घुसे सिपाही प्रथम दरियागंज के यूरोपीय बंगलों की ओर गए और वे भवन कुछ क्षणों में आग बन गए। जो विदेशी लोगों को आश्रय दिया हुआ है, यह ज्ञात हुआ। विलायती आदमियों को अंदर लेने के कारण दरियागंज के घरों को जो दंड मिला उसे देखने के बाद भी यह अस्पताल यदि विलायती लोगों को अंदर लेने का साहस करे तो किसी को भी गुस्सा आना स्वाभाविक है। उस अस्पताल की जमकर पिटाई करने के बाद वह शस्त्रधारी उग्रता अपने असंख्य अवयवों के साथ दिल्ली के घर–घर में गोरे रक्त को सूंघने चली! पर निशान के बिना सेना कैसी? और ऐसी सेना का कपड़े का निशान किस काम का? इसलिए जहां भी गोरा सिर मिले वहां उसे भाले पर टांगकर उसका भयानक निशान 'दीन' के ताल पर नाचते हुए वह अपूर्व सेना आगे बढ़ती गई।

बादशाह के नाम का जयघोष करते हुए सिपाही और शहर के सैकड़ों लोग दिल्ली के राजमहल में घुसने लगे। रास्ते से घायल होकर भागता आया कमिश्नर फ्रेजर एक छोटे दरवाजे पर खड़ा था। उसे देखते ही मुगल बेग नाम के आदमी ने उसके गाल पर वार किया। यह इशारा होते ही सब विद्रोही दौड़ पड़े और सीढ़ियों पर क्षत–विक्षत हुआ कमिश्नर फ्रेजर आने–जानेवालों के पैरों तले कुचला जाने लगा। उसे कुचलते सिपाही वहां न रूककर ऊपर चढ़ गए और जिस कमरे में जेनिंग और उसका परिवार रहता था, वहां जाकर वे डरावने राक्षस की तरह खड़े हो गए। इतने में किसी ने उस कमरे का दरवाजा लगाने का प्रयास किया; पर वह एक धक्के से चरमरा गया और सिपाहियों की तलवार के नीचे वह जेनिंग, उसकी युवा कन्या, उसके यहां की मेहमान एक अंग्रेज स्त्री का खात्मा हो गया। दिल्ली के रास्ते पर से मरते–मरते दोड़ा कैप्टन डगलस कहां है? भेजो उसे यम के घर! और ये कोने में घुसे कलेक्टर साहब! उन्हें भी जीवन की पेंशन पर भेजो। अब दिल्ली के राजमहल में फिरंगी सत्ता कानाम भी शेष नहीं रहा। अब जरा शांत बैठने में कोई हानि नहीं। घुड़सवारों ने अपने घोड़े राजमहल के मैदान में बांधे और सारी रात दौड़ते आए सिपाही दीवानेखास के राजमहल में अपना सामान रख विश्राम करने लगे।

इस तरह दिल्ली का राजमहल लोक–सेना के हाथ आ गया और अब आगे क्या

करना है, इस विषय पर बादशाह, बेगम साहिबा और सिपाहियों के नेता वार्त्ता करने लगे। पहले निर्धारित योजना के अनुसार 31 मई तक रूकना अब मूर्खता थी। अतः कुछ सोच–विचार के बाद बादशाह ने क्रांतिकारियों से मिल जाना तय किया। इतना होते–होते मेरठ से विद्रोह कर निकला तोपखाने का बहुत सा भाग दिल्ली आ पहुंचा और उसने बादशाह के सम्मान में और स्वतंत्रता के लिए राजमहल में आकर इक्कीस तोपों की सलामी दी। सिपाहियों और अन्य लोगों की वार्त्ता के बाद भी जो थोड़ी चंचलता बादशाह के मन में शेष थी वह भी इन तोपों की गड़गड़ाहट में पिघल गई। और उस राजकीय सलामी की घन–गर्जना में उस वृद्ध बादशाह के हृदय का अनंत राज–तेज हड़बड़ाकर जाग उठा। उसकी उस भव्य और आदरणीय मूर्ति के सामने फिरंगियों के रक्त से सनी तलवार चलाते हुए सिपाहियों के नेता ने कहा, ''खाविंद! मेरठ में अंग्रेजों की पराजय हो चुकी है, दिल्ली अपने हाथ में है और पेशावर से कलकत्ता तक के सारे सिपाही आपके आदेश की राह देख रहे हैं। अंग्रेजों की गुलामी की बेड़ियां तोड़कर अपनी प्रकृतिदत्त स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सारा हिंदुस्थान जाग उठा है। ऐसे समय में यह स्वतंत्रता का निशान अपने हाथ में लें, जिससे हिंदुस्थान के सारे बहादुर उसके सम्मान के लिए मरने को तैया हो जाएंगे। हिंदुस्थान अपना स्वराज्य वापस लेने के लिए लड़ने लगा है और अब उसका नेतृत्व यदि आपने स्वीकार किया तो पल भर में हम उन फिरंगी राक्षसों को या तो समुद्र में डुबो देंगे या उनके शवों की दावत गिद्धों को देंगे।[49] हिंदू और मुसलमान दोनों ही जातियों के नेताओं का यह एक स्वर और उद्दीपक भाषण सुनकर बादशाह को स्वतंत्रता का उत्साह आने लगा। उसकी कल्पना के सामने शाहजहां और अकबर की मूर्तियां आने–जाने लगीं और अब गुलामी में रहने की अपेक्षा स्वदेश को स्वतंत्र करते–करते मरना ही अधिक श्रेयस्कर है, ऐसी दैवी स्फूर्ति उसके हृदय में संचरित होने लगी। आगे बादशाह ने कहा, ''मेरे पास खजाना नहीं है और तुम्हें वेतन भी नहीं मिलेगा।'' तब वे सिपाही बोले, ''हम अंग्रेजों का खजाना लूटेंगे और आपके खजाने में भरेंगे''[50] ''तो फिर आपका नेतृत्व मैं स्वीकार करता हूं।'' ऐसा अभिवचन उस वृद्ध बादशाह से मिलते ही उस राजभवन में जमा उस प्रचंड जनसमूह ने बड़े जोर से गर्जना की।

राजमहल में जब यह सब गड़बड़ी चल रही थी तब शहर में जोर का ऊधम हो रहा था। दिल्ली के सैकड़ों लोग घर में जो शस्त्र मिले वही लेकर विद्रोही सिपाहियों से मिल रहे थे और यूरोपीय लोगों को काट डालने के लिए यहां–वहां घूम रहे थे। बारह बजे के आसपास दिल्ली के बैंक पर हमला हुआ। उसमें बैंक का मैनेजर बेरेस फोर्ड, उसकी पत्नी और उसके पांच बच्चे मार डाले गए। वह भवन भी नष्ट कर दिया गया। फिर 'दिल्ली गजट' के छापाखाने की ओर लोग गए। मेरठ का समाचार छापने के लिए

[49] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 74।

[50] मेटकॉफ।

कंपोजिटर कंपोजिंग कर रहे थे, तभी दरवाजे पर 'दीन–दीन' की गर्जना हुई और कुछ ही देर में छापाखाने का हर ईसाई चीर दिया गया। वहां का सबकुछ–मशीनें आदि जो कुछ भी था–फिरंगियों के स्पर्श से अपवित्र हो गया था, अतः उसका नष्ट करके क्रांति की वह भयानक हवा आगे बढ़ी। परंतु अभी भी वह चर्च खड़ा होकर अपने धर्मयुद्ध की ओर देखता रहे, यह पूरी तरह अनुचित है। इस चर्च में हिंदुस्थान में तुम्हारा राज्य रहना ही भयानक पाप है, अपने अनुयायियों को एक दिन भी इस चर्च ने ऐसा कहा था क्या? उलटे ऐसे पाप के अधिकारियों को ऐहिक और परलौकिक संरक्षण देने के लिए इस पक्षपाती चर्च ने अपने पंखों को फैलाया हुआ है। हिंसा की ऐसी गुफा हमने अपने देश में निर्मित होने दी, उसका प्रायश्चित्त गाया और सूअर के रक्त से बने कारतूसों के रूप में हमें मिला। अभी भी संभलों और उस चर्च की व्यवस्था करने के लिए पहले उसी की ओर बढ़ो! देखते क्या हो? फोड़ो वह क्रॉस! दीवारों की सारी चमड़ी उखाड़ो, उस व्यासपीठ का चूरा बनाओ और बोलो–दीन! रोज चर्च में आते समय यह घंटा बजता है। अब हम उसको घनघनाएं। बज घंटा, बज! आज तू इतना बज रहा है, पर कोई गोरा तेरी ओर क्यों नहीं बढ़ रहा? तुझे इन काले हाथों का स्पर्श भाता है क्या? हाथ का स्पर्श भला न लग रहा हो तो गिर जा नीचे! हमारे वे बंधु अपने पैरों का स्पर्श करने बुला रहे हैं। सारे घंटे टूटकर नीचे गिरने के बाद उनके गिरने की आवाज के साथ वे सिपाही भी विकट हास्य करते हुए एक–दूसरे को कहने लगे–''कैसा तमाशा है! क्या मजा है!!''

परंतु उधर देसरी तरफ इससे भी भयानक तमाशा चल रहा था। राजमहल के एक ओर अंग्रेजों की सेना के लिए तैयार किया हुआ एक बारूदखाना था। इस बारूदखाने में लड़ाई में आवश्यक सारा सामान ठूंस–ठूंसकर भरा हुआ था। उसमें कम–से–कम नौ लाख कारतूस, आठ–दस हजार बंदूकें, तोपें और सीजट्रेन भरी हुई थी। यह बारूदखाना अपने कब्जे में लेने का क्रांतिवीरों ने दृढ़ संकल्प किया। पर यह काम सरल नहीं था। उस बारूदखाने में नियुक्त अंग्रेज चाहे तो वहां लड़ने पहुंचनेवाले सबका नाश करने में एक क्षण भी लगनेवाला नहीं हैं। क्योंकि उस बारूदखाने को सुलगा देने के लिए एक तीली जलाकर डालना काफी था। इस काम में हाथ डालना बहुत ही जोखिमपूर्ण था। फिर भी वह बारूदखाना कब्जे में लिये बगैर क्रांति का जीवन क्षण भर भी सुरक्षित न रहता। अतः यह काम पूरा करने को हजारों सिपाही तैयार हो गए। उन्होंने उस बारूदखाने के अंग्रेज अधिकारी को शरण आने के लिए बादशाह के नाम से संदेश भेजा। परंतु ऐसे कागज के टुकड़ों को मान देकर अंग्रेजों ने इस देश का शासन प्राप्त नहीं किया था। लेफ्टिनेंट बिलोमी ने उस चिट्ठी को उत्तर देने का भी मान नहीं दिया। यह अपमान देखकर गुस्सा हुए हजारों सिपाही उस बारूदखाने की दीवार पर चढ़ने लगे। बारूदखाने

के अंदर नौ अंग्रेज और कुछ भारतीय लोग थे। दीवार पर दिल्ली के बादशाह का निशान लगा देखकर भारतीय लोग अपने स्वदेश बंधुओं को तेजी से आकर मिलने लगे और उन नौ अंग्रेजों पर निराशा की छाया मंडराने लगी। सिपाहियों की लगातार मार के आगे अंग्रेज कितनी देर टिक सकेंगे, यह दिख ही रहा था। उन्होंने समय अपने पर बारूदखाना उड़ा देने का निश्चय किया था, इसमें संदेह नहीं; क्योंकि यदि वे बारूदखाना स्वयं सौंप देते तो भी उनके प्राण सिपाही न लेते, इसपर उनका कोई भरोसा नहीं था। इधर सिपाही भी यह जानते हुए भी कि बारूदखाना उड़ाया जाएगा तो अपनी ओर की प्रचंड हानि होगी, टूट पड़े थे। इतने में दोनों ओर से लोग जिस भयानक आवाज की प्रतीक्षा में आशंकित थे वे हजारों तोपें एक साथ छूटने की जंगी आवाज हुई और उस बारूदखाने से आग की प्रचंड ज्वाला आकाश की ओर बढ़ गई। उन अंग्रेज वीरों ने स्वयं के प्राणों की आशा छोड़क रवह बारूदखाना शत्रु के कब्जे में न देते हुए अपने हाथों से सुलगा दिया और उस एक आवाज के साथ करीब पच्चीस सिपाही और आसपास के रास्तों पर के तीन सौ आदमी आकाश में उड़ गए।

परंतु क्रांति पक्षवालों ने इस बारूदखाने की आग में जान–बुझकर जो अपना नाम करवा लिया वह यों ही नहीं था। क्योंकि जो लोग इस बारूद के विस्फोट में बलि हुए उनके आत्मयक्ष से उस राज्य क्रांति को अपूर्व शक्ति मिली। जब तक यह प्रचंड बारूदखाना अंग्रेजों के कब्जे में था तब तक मुख्य केंद्र के नेटिव सिपाही अपने अधिकारियों की अधीनता में थे। वे अपने स्वदेश बंधुओं पर हमला नहीं कर रहे थे, पर अंग्रेजों के विरूद्ध भी नहीं हुए थे। दोपहर चार बजे सारा दिल्ली शहर हिलानेवाले विस्फोट की आवाज सुनते ही वे केंटोनमेंट के सिपाही इकट्ठे हुए और 'मारो फिरंगी को' की गर्जना करते हुए अंग्रेजों पर टूट पड़े। मुख्य रक्षक गार्डन को किसी ने उड़ा दिया। स्मिथ और रेह्वले को मार डाला और गोरा रंग देखते ही 'टूट पड़ो–मार डालो' की ध्वनि होने लगी। एक शतक के बाद जाग्रत हुआ राष्ट्र–क्षोभ अपने उग्र जबड़े के नीचे पुरूष, महिलाएं, बच्चे, घर, दरवाजे, पत्थर, ईंट, घड़ियां, मेज–कुरसियां, रक्त, मांस, अस्थियां–जिन–जिन चीजों को फिरंगी स्पर्श हुआ था सब पर क्रांतिकारियों का आक्रोश टूटा। उस सारी सचेतन दिल्ली के बादशाह का बहुत सख्त आदेश हो जाने के बाद ही बहुत से अंग्रेज लोग मृत्यु से बच पाए और राजमहल की कैद में पहुंचा दिए गए। परंतु लोकमत बादशाह के इस कृत्य के इतना विरूद्ध था कि चार–पांच दिन खींचतान करने के बाद उसे अपने कब्जे के उन पचास फिरंगियों को लोगों को सौंप देना अनिवार्य हो गया। 16 मई को एक सार्वजनिक मैदान पर वे पचास फिरंगी ले जाए गए। वह दृश्य देखने के लिए इकट्ठा हुए हजारों नागरिकों ने उनके सामने फिरंगी राज्य और अंग्रेजों की बेईमानी की पूरी–पूरी निंदा की और फिर सिपाहियों का आदेश होते ही एक क्षण में उन पचासों के

टुकड़े–टुकड़े कर दिए गए। सिपाही की तलवार से बचने कोई महिला या बच्चा गिड़गिड़ाने लगता तो–'मेरठ की बेड़ियों का बदला, गुलामी का बदला, बारूदखाने का बदला'–कहते हुए लोग बड़े जोर से चिल्लाने लगते। इस बदले की धार चढ़ी तलवार वह गिड़गिड़ाता भूरा सिर छांट देती। 11 मई को अंग्रेजों के कत्लेआम का आरंभ होकर उसकी पूर्णाहूति 16 मई को हुई। इस बीच सैकड़ों अंग्रेज जान बचाके दिल्ली से भाग गए। किसी ने मुंह पर काला रंग पोतकर नेटिव होने का स्वांग रचा तो कोई जंगल–जंगल भागता धूप में छिपने का साहस किया, भेद खुलते ही गांववालों के हाथों मारा गया। कोई –यात्रा में थककर रास्ते में बैठ जाने पर –पास–पड़ोस के गावंवालों द्वारा फिरंगी कहकर काट डाला गया और कोई दयालु गांववाले मिल जाने से उनकी कृपा पाकर मेरठ छावनी पहुंच गया।

बारूदखाने के विस्फोट में विद्रोही सैनिकों को भरमूर बंदूकें मिली और उसके कारण हर सिपाही के हिस्से में जो कत्ल हुआ, उसका समाचार सुनते ही सैकड़ों गांवों ने अपनी सीमा में फिरंगी को घुसने न देने का संकल्प लिया। परंतु इन गांवों या दिल्ली में इतने बवंडर के चलते हुए भी एक भी अंग्रेज महिला के शील पर किसी ने आक्रमण नहीं किया था। यह बात अब अंग्रेजों द्वारा की गई जांच–पड़ताल में ही सिद्ध हुई है।[51] दिल्ली में कत्ल हो जाने के बाद उस अवसर के प्रत्यक्ष देखे हुए वर्णन के नाम पर कितने ही अंग्रेज धर्माधिकारियों ने जो भयंकर वर्णन किए हैं उनसे अधिक निंदात्मक, असत्य और घटिया बयान आज तक किसी ने नहीं किया होगा। दिल्ली के रास्तों पर महिलाओं को नंगा कर घुमाया, सार्वजनिक रूप से उनका शील भंग किया गया, उनके स्तन काटे गए, छोटी बच्चियों पर अत्याचार किए गए आदि अमानवीय झूठ जिनके धर्मोपदेशक प्रकाशित करते हैं उन अंग्रेज लोगों की सत्यनिष्ठा कितनी घटिया होगी।[52] सन् 1857 की राष्ट्रीय क्रांति इसलिए नहीं हुई थी कि हिंदुस्थान के लोगों को गोरी औरतें नहीं मिलती थी। उलटे, गोरी महिला के मनहूस कदम (मराठी में पाढरा पाप अर्थात् गोरे पांव) फिर से अपने घर में न पड़ें, इसलिए सन् 1857 का राष्ट्र–क्षोभ उद्भूत हुआ था।

इस तरह मेरठ की महिलाओं के फुफकार से उठे उस भयानक चक्रवात के चक्कर में पड़ पांच दिन के अंदर हिंदुस्थान में सौ वर्ष से जमा हुआ गुलामी का विषवृक्ष भरभराकर गिर गया। इन पहले पांच दिनों में क्रांति पक्ष में नेताओं को जो अपूर्व

[51] 1. ''चाहे कितनी भी क्रूरता अथवा रक्तपात क्यों न किया गया और बाद में कितनी भी जनश्रुतियां क्यों न प्रसाहित की गई हों कि महिलाओं से भी छेड़छाड़ की गई है, उनका अपमान किया गया है; किंतु जहां तक मैंने जांच की है, इसकी सत्यता का कोई भी प्रमाण मुझे नहीं मिला।''
–ऑनरेबल सर विलियम म्यूर, के.सी.एस.आई., गुप्तचर विभाग के प्रमुख

[52] चार्ल्स बाल कृत –इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 105।

सफलता मिली, उसका मूल कारण था अंग्रेजों की गुलामी से छुटने की उत्कट इच्छा का सारी जनता में पैदा होना। मेरठ की महिलाओं से दिल्ली के बादशाह तक सबके हृदय में स्वतंत्रता और स्वधर्म–रक्षण की अनिवार्य इच्छा प्रादुर्भूत होने से और उस इच्छा को गुप्त संगठन के द्वारा पहले से ही व्यवस्था प्राप्त हो जाने से केवल पांच दिन के अंदर हिंदुस्थान की इतिहास–प्रसिद्ध राजधानी में स्वराज्य की प्राण–प्रतिष्ठा हो गई। दिनांक 16 मई को दिल्ली में फिरंगी सत्ता का एक भी चिह्न शेष नहीं रहा था। अंग्रेजी वस्तुओं से दिल्ली को इतनी घृणा हो गई थी कि कोई अंग्रेजी भाषा का एक शब्द भी बोले तो उसे जमकर मार खानी पड़ती। अंग्रेजी निशान के टुकड़े गली–कूचों में कुचले जा रहे थे। और अपने आज तक के अपमान के दाग दासता के उष्ण रक्त से धोकर स्वच्छ हुआ स्वराज्य का चिह्न उस प्रचंड क्रांति के सिर पर डोल रहा था। यह स्वतंत्रता की इच्छा इतनी प्रबल थी कि पहले पांच दिन में देशद्रोह की छूत कहीं नहीं लगी। पुरूष और महिलाएं, श्रीमंत व गरीब, तरूण और वृद्ध, सिपाही और नागरिक, मौलवी और पंडित, हिंदू और मुसलमान –सारे–के–सारे स्वदेश के निशान के नीचे अपने–अपने शस्त्र निकालकर परदेशी दासता पर हमले कर रहे थे। ऐसी विलक्षण स्वदेश–प्रीति और स्वातंत्र्य–प्रीति उबल रही थी और पर–सत्ता के प्रति इतनी घुणा उत्पन्न हो गई थी। इसलिए मेरठ की ललनाओं के बाग्बाणों से दिल्ली का सिंहासन प्रादुर्भूत हुआ।

ये पांच दिन हिंदुस्थान के इतिहास में हमेशा चिरसमरणीय रहें, क्योंकि मुहम्मद गजनवी के आक्रमणों से प्रारंभ हुआ हिंदू और मुसलमान का प्रचंड युद्ध समाप्त हो जाने की घोषणा इन पांच दिनों में हुई और हिंदू और मुसलमान के बीच का परायापन तथा विजतो–विजित भाव नामशेष होकर उनमें आपसी बंधुत्व भाव इन्हीं दिनों में प्रकट हुआ। मुसलमानों की परतंत्रता से श्री शिवराज, प्रताप सिंह, छत्रसाल, प्रतापादित्य, गुरू गोविंद सिंह तथा महादजी शिंदे द्वारा मुक्त हुई भारत माता ने–'इसके बाद तुम सब समान और सरोहर हो और मैं तुम दोनों की मां हूं, इस दिव्य मंत्र का उच्चारण किया। हिंदुस्थान अपना देश है और हमस ब सगे भाई हैं, ऐसी गर्जना करते हिंदू–मुसलमानों ने सम समानता से और एकमत से दिल्ली के तख्त पर स्वराज्य का उभय स्वीकृत झंडा तभी खड़ा किया। ऐसे ये पांच दिन इतिहास में चिरस्मरणीय रहें।

इन पांच दिनों में हिंदुस्थान में लोकशक्ति का प्रथमोदय हुआ। अपेन पर कौन राज्य करे, इस प्रश्न का निर्णय करने का कार्य लोकपक्ष का है। इस संवेदना का जन्म हिंदुस्थान में इन पांच का निर्णय करने का कार्य लोकपद्वक्ष का है। इस संवदेना का जन्म हिंदुस्थान में इन पांच दिनों में हुआ। लोकपक्ष ने ही उस राज सिंहासन पर स्वसम्मत पुरूषार्थ की योजना की। लोगों को जो पसंद होगा उसी का राज्य स्वदेश पर चले, यह भावना और राजनीति लोकपक्ष का कर्तव्य है, यह चेतना हिंदुस्थान के शरीर में इन पांच दिनों में उदय हुई।

लोकपक्ष की यह जयंती हिंदुस्थान के इतिहास में अविस्मरणीय रहे।

प्रकरण–4

मध्यांतर और पंजाब

दिल्ली स्वतंत्र हो जाने की वार्त्ता विद्युत वेग से फैलते ही उसकी आकस्मिकता ने सारे हिंदुस्थान में अपनों और परायों दोनों को क्षण भर के लिए तो चकित कर दिया। अंग्रेजों को तो तुरंत यह भी समझते न बना कि हम जो सुन रहे हैं उसका अर्थ क्या है? सारे देश में शांति का साम्राज्य है, ऐसा जान कलकत्ता में लॉर्ड केनिंग सोए पड़े थे और इधर कमांडर–इन–चीफ ॲन्सन शिमला की ठंडी हवा में जाने के लिए सज रहे थे। उन्हें पहले जब दिल्ली स्वतंत्र हो जाने का अधूरा तार आया तब उस तार का वास्तविक हड़बड़ी चकित–विस्मित सारे हिंदुस्थानी लोगों में भी मची हुई थी। क्योंकि दिल्ली के इस अकल्पनीय विद्रोह के आकस्मिक हल्ले में अंग्रेजों को भावी संकट की सूचना मिलने से उस संकट का परिहार करने का अवसर मिल गया। अकल्पित हमले से दिल्ली का सिंहासन जैसे एक–दो दिन में उनसे झटक लिया गया, वैसे ही 31 मई को निश्चित पूर्व संकेत के अनुसार एक समय में यदि सब जगह विस्फोट होता तो सारे हिंदुस्थान का सिंहासन एक झटके में हथियाया जा सकता था। अ बवह योजना तो मेरठ के विद्रोह के कारण उलझ गई थी, फिर भी दिल्ली कब्जे में आ जाने से विद्रोह को राज्य क्रांति का स्वरूप मिल गया और इस असंभव वार्त्ता से एक विलक्षण चेतना का जन्म हो गया था।

अब इस चेतना का लाभ उठाकर एकदम विद्रोह किया जाए या पूर्व नियोजित संकेत के अनुसार 31 मई की राह देखी जाए? दिल्ली के विद्रोह की वार्त्ता सुन अन्यत्र क्या योजना चल रही है? दिल्ली की जल्दबाजी से जैसा घोटाला हुआ वैसे ही अन्य स्थानों की सम्मति लिये बिना हम भी विद्रोह करें और घोटाला फैल गया तो क्या होगा? ऐसी अनेक अनिश्चिताओं के कारण क्रांतिकारी नेताओं को—आगे क्या होना है—उसकी प्रतीक्षा करते हुए अपनी—अपनी जगह रूके रहना पड़ा। मंद गति जैसा क्रांति का प्राण हरण करनेवाला दूसरा विष नहीं है। क्रांति का विस्तार जितना त्वरित और जितना आकस्मिक होता है उतनी ही उसकी विजय की संभावना अधिक होती है। यह विस्तार का वेग शिथिल तो शत्रु को संरक्षण का अवसर मिल जाता है। जो पहले उठते हैं उनका उत्साह यह देखकर घटने लगता है कि अपने साथ कोई नहीं आ रहा और जो बाद में आते हैं उनके रास्ते में बीच के अवसर का लाभ लेनेवाला चतुर शत्रु अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है। इसलिए उठाव और प्रसार के बीच में अधिक समय जाने देना क्रांतियुद्ध के लिए हमेशा हानिकारक होता है। फिर भी जहां तक बने, एक साथ विद्रोह करना निश्चित होते हुए भी बीच में ही आ पड़े पेंच के कारण विभिन्न स्थानों के क्रांतिकारी नेताओं को न ठहरते बन रहा था और न आगे बढ़ते।

क्रांतिकारी पक्ष की इस अपरिहार्य स्तब्धता का अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। अंग्रेजों के पैर हिंदुस्थान में पड़ने के बाद से आज तक उन्हें ऐसी भयानक वार्त्ता सुनने का अवसर कभी भी नहीं आया था। इस मई माह में बैरकपुर से सीधे आगरा तक कोई सात सौ पचास मील में केवल एक गोरी रेजिमेंट थी। ऐसी स्थिति में क्रांतिकारी पक्ष के पूर्व संकेतानुसार यदि यह सारा प्रदेश एकदम उठ गया होता तो दस इंग्लैंड भी इकट्ठा हो जाते तो भी हिंदुस्थान कब्जे में न रहता। यह गोरी रेजिमेंट दानापुर में रखी गई थी। उधर पंजाब में सरहद पर पर्याप्त गोरी सेना थी। परंतु उसे उधर—से—अधिक गोरी सेना को जमा करना। उसी समय अंग्रेजों के भाग्य से ईरान की लड़ाई समाप्त हुई थी—इसलिए उस सेना को हिंदुस्थान जल्दी आने के आदेश हुए। ईरान की लड़ाई सामप्त होते ही अंग्रेजों ने चीन से बखेड़ा खड़ा कर उधर सेना भिजवाई थी। परंतु हिंदुस्थान में यह भयानक आंधी आते ही केनिंग ने चीन की ओर जानेवाली सारी सेना बीच में ही रोक लेने का निश्चय किया। इन दो सेनाओं के सिवाय रंगून में स्थित गोरी रेजिमेंट भी कलकत्ता में रख ली गई और मद्रास फ्युजिलयर नामक गोरी सेना को तैयार रहने को लिख गया।

ये गोरी सेनाएं जब सभी दिशाओं से यथासंभव वेग से कलकत्ता के लिए चली थीं तब केनिंग ने सिपाहियों के मन को फिर से एक बार कब्जे में लेने का प्रयास किया। उसने कहा, ''आपकी जाति और वर्ण विषयक रीति में हाथ डालकर हिंदुस्थान के धर्म को दुखाने का हमारा कोई इरादा नहीं हैं सिपाही चाहें तो कारतूस अपने हाथों से बना लें। कंपनी का नमक जिन्होंने खाया है उनका ही यह विद्रोह करना पाप है।'' इस प्रकार की

बातों से भरा एक घोषणापत्र निकालने का अधिकार है या नहीं, जहां यही विवादास्पद विषय है वहां नया घोषणापत्र निकालने का अर्थ वह विवाद समाप्त करना नहीं बल्कि उसे चिढ़ाना है। लेकिन हिंदुस्थान के पास अब यह घोषणापत्र पढ़ने का समय नहीं है, क्योंकि दिल्ली में उसी समय घोषित दिव्य घोषणापत्र की ओर सबकी आंखें लगी हुई हैं। एक ही समय दो घोषणापत्र जारी हुए। कलकत्ता में गुलामी का, दिल्ली में स्वतंत्रता का। हिंदुस्थान को उस समय दिल्ली का घोषणापत्र भाया, इसलिए केंनिग ने कलम तोड़कर कमांडर–इन–चीफ, दिल्ली को तुरंत तोपें दागने का ओदश दिया।

कमांडर–इन–चीफ ॲन्सन जब शिमला में था तब उसे दिल्ली के विद्रोह का तार मिला। उसे पढ़कर, अब क्या करना चाहिए, इसका विचार वह कर ही रहा था कि केनिंग ने उसे तुरंत दिल्ली जीतने का आदेश दिया। विद्रोहियों की योजना का या शक्ति का अंग्रेजों को इतना अज्ञान था कि उन्हें लगता था, दिल्ली एक हफ्ते में छीनी जा सकती है और एक बार दिल्ली जीती तो उस माह के अंत में विद्रोह का अंत हो जाएगा। पंजाब का मुख्य अधिकारी सर जॉन लॉरेंस भी दिल्ली पर कब्जा करने को जोर डाल रहा था। परंतु दिल्ली जीतना कितना कठिन है, इसका कनिंग और लॉरेस की तुलना में कुछ अधिक सही अनुमान ॲन्सन को था, अतः समुचित सामग्री इकट्ठी करने के पहले दिल्ली की ओर नहीं जाने की नीति उसने बनाई। शिमला की ठंडी हवा छोड़ मुख्य सेना स्थल की ओर ॲन्सन आ भी न पाया था कि वहां शिमला में हुल्लड़ मच गया। गुरखाओं की नासिरी बटालियन ने विद्रोह किया, यह समाचार शिमला आते ही अंग्रेजों का धीरज छूट गया। उस वर्ष शिमला में बनाए गए हवादार बंगलों और वृक्षों के बगीचों में आज तक भोगे राजविलास का अब भयंकर किराया देना पड़ेगा। गुरखा पलटन आई, ऐसा एक शोर होते ही गोरी औरतें और बच्चे जिधर राह दिखे उस तरफ भाग निकले। इस भागमभाग में अंग्रेज पुरूषों ने स्वाभाविक ही महिलाओं को पीछे छोड़ दिया–और वह भी अपने सामान के थैले पीठ पर बंधे होते हुए। अंग्रेजी धैर्य का प्रदर्शन दो दिन निरंतर चलता रहाः लेकिन जब गुरखा न आए तो हारकर वह प्रदर्शन बंद करना पड़ा। इसी समय कलकत्ता में भी रोज ऐसा ही होता था। कलकत्ता के पास बैरकपुर की नेटिव रेजिमेंट ने विद्रोह किया, यह अफवाह बार–बार उठती और अंग्रेजों की औरतें, बच्चे और पुरूष रास्ते से पोर्ट की ओर दौड़ते दिखाई देते। कितनों ने इंग्लैंड का टिकट निकाल लिया, कितनों ने अपनी गठरियां बांधकर पोर्ट की ओर भागने की तैयारी रखी और अनेक दफ्तर के काम छोड़ कोने–कोने में छिपे रहते। ऐसा डर मेरठ और दिल्ली में था, फिर भी अंग्रेजों का कानपुर अभी बचा हुआ था!

कमांडर–इन–चीफ ॲन्सन ने अंबाला आते ही दिल्ली पर घेरा डालने के लिए सीजट्रेन तैयार करना शुरू किया। हिंदुस्थान पर आज तक कभी ऐसा संकट न आया था। अंग्रेजों की शक्ति की बंद मुट्ठी लाख की होते हुए भी अंदर की स्थिति शोचनीय थी। ॲन्सन को किसी

तरह भी जल्दी करना असंभव हो गया। अंग्रेजों के काले सिपाहियों को 'चल' कहते ही चलाया जा सकता था, परंतु अब गोरे सिपाहियों को केवल 'चल' कहने से कैसे चलेगा? उनका एक–एक का दिमाग और आज तक बढ़ता मिजाज अब एकाएक कैसे संभले। उसमें भी अब नेटिवों से पहले जेसी हर तरह की सहायता मिलना पूरी तरह असंभव था। गाड़ियां मिली नहीं, मजूर मिले नहीं, रसद मिली नहीं, जख्मी लोगों के लिए डोली मिली नहीं। ऍडज्यूटेंट, क्वाटर मास्टर, मेडिकल चीफ–हर कोई अपने–अपने विभाग की तैयारी करना छोड़ –नकार' का घंटा बजाने लगा। हिंदुस्थानी लोगों के आश्रय बिना अंग्रेजी सत्ता धूल पर की गई लिपाई जैसी है। सन् 1857 में इस कुचली हुई धूल में थोड़ा चैतन्य आते ही अंग्रेजों को अंबाला से दिल्ली तक आना कठिन हो गया। क्योंकि–"Natives of all classes stood aloof, waiting and watiching the issue of events. From the capitalists to the coolie al shrunk alike from rendering assisatance to those whose power might be swept away in a day."[53]

उपर्युक्त लेखक कहता है, हिंदुस्थान के नेटिव ऐसे ही चुप हो बैठते तो अंग्रेजी सत्ता वास्तव में एक दिन में फेंक दी गई होती। परंतु सन् 1857 में वह दिन उगनेवाला नहीं था। सन् 1857 उस दिन के भोर की रात थी। जिन्हें वह भावी भोर दिखने लगी वे नींद छोड़कर उठे। परंतु जिन्हें वह तत्कालीन रात ही दिखी वे अपना गुलामी का खींचा हुआ ओढ़ावन और खींचकर सो गए। इन उनींदे लोगों में कुभकर्ण का सम्मान पानेवाले पटियाला, नाभा और जींद–ये तीन रियासतें थी। इन रियासतों के हाथों में सन् 1857 की क्रांति का जीवन या मृत्यु थी। ये रियासतें दिल्ली और अंबाला के बीच में थी, अतः उनके आधार के बिना अंग्रेजों की पीठ बिलकुल सुरक्षित रहनेवाली नहीं थी। ये रियासतें अन्य रियासतों की तरह केवल चुप रही होती तो भी क्रांति सफल होने की बहुत संभावना थी। पंरतु पटियाला, जींद और नाभा–इन तीनों ने जब अंग्रेजों से भी अधिक क्रूरता से सन् 1857 की राज्य क्रांति को चोट पंहुचाना प्रारंभ किया तब पंजाब और दिल्ली, इन दो हिस्सों की यह जंजीर एकाएक टूट गई और उस क्रांति के अवयवों की संगति क्षणार्थ में नष्ट हो गई। इन रियासतों ने दिल्ली के बादशाह की ओर से आए निमंत्रण को धिक्कार दिया; निमंत्रण देने आए सवारों को मार डाला;स्वयं के खजाने से अंग्रेजों पर धन की सतत वर्षा की। जिस प्रदेश से अंग्रेजी सेना जानेवाली थी उस प्रदेश को सैन्य संरक्षण दिया; अंग्रेजों के साथ निशान को संभालने घर–द्वार छोड़कर दौड़ने आए तब इन सिख रियासतों ने–इन गुरू गोविन्द सिंह के चेलों ने–अत्यधिक क्रूरता से उनका वध किया, यंत्रणा दी।[54]

---

[53] 1. के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2।

[54] 2. इस वर्णन से अधिक हृदयद्रावक वर्णन द्व57 के क्रांतियुद्ध में मिलना मुश्किल है। जिस प्रदेश से अंग्रेजों को संरक्षण मिलता था उसी प्रदेश के स्वधर्म और स्वराज्य के लिए हथेली पर सिर लिये

पटियाला, नाभा और जींद की सहायता मिलना पक्का होते ही अंग्रेजों में विलक्षण धीरज आ गया। पटियाला के राजा ने अपने भाई के साथ उत्तम सेना और तोपें देकर उसे ठाणेश्वर का रास्ता रोकने भेज दिया और जींद के राजा ने पानीपत को चौकी पर कब्जा जमाया। ये दो अति महत्त्वपूर्ण चौकियां इस तरह परस्पर रोकी जाने से अंबाला से दिल्ली तक के मार्ग और पंजाब का निरंतर यातायात–ये दो बहुत नाजुक बातें संरक्षित हो गई और कमांडर–इन–चीफ ने 25 मई को अंबाला छोड़ दिल्ली की ओर स्वयं कूच किया। पर दिल्ली स्वतंत्र हो जाने का समाचार सुनने के पश्चात् उसके धक्के से ॲन्सन पूरी तरह हताशा से भर गया था। उसमें भी शिमला की ठंडी हवा में जो आज तक कभी अनुभव नहीं हुई, ऐसी गरमी में उसे झुलसना पड़ा था। इन मानसिक और शारीरिक चिंताओं से कृश हुआ वह कमांडर–इन–चीफ करनाल तक आते–आते 27 मई को कालरा की बीमारी से मर गया। उस दिन उसके अधीनस्थ अधिकारी बर्नार्ड ने कमांडर–इन–चीफ के अधिकारों को संभाला।

इस तरह पुराने कमांडर–इन–चीफ को गाड़कर अंग्रेजी सेना नए कमांडर के नेतृत्व में दिल्ली की ओर बढ़ी। उस समय उस अंग्रेजी सेना में इतना उत्साह था कि सुबह लड़ाई आरंभ कर शाम को दिल्ली शहर में शत्रु का रक्त गटगट पिएंगे, ऐसी घमंड भरी बातें वे खुलेआम करने लगे। गोरे सिपाहियों के काले हृदय में कितना हलाहल भरा हुआ है, यह सेना अंबाला से दिल्ली आ रही थी उस समय वे पूरे जग को यह दिखा रहे थे कि मेरठ की नेटिव सेना का क्या? वे तो हर तरह से काफिर (Heathen) थे। उन्होंने कारतूसों के निर्माण में हड्डियों का चूरा मिलाने की गप पर विश्वास कर मेरठ और दिल्ली में निरपराध अंग्रेजों को कत्ल किया। यह नेटिव के देश और धर्म का जंगलीपन था; परंतु इसके नीचे जो ढका हुआ है, संभव है, वह कभी स्पष्टता से प्रकट भी न हो। क्योंकि काफिरों की अपेक्षा ईसाई गप्पों की विश्वसनीय बातों और जंगलीपन में सुधार को ही परमेश्वर अधिक धिक्कारेगा और उस गंदगी को धोने के लिए उसे रक्त की वर्षा करनी पड़ेगी।

अंबाला से दिल्ली की ओर आते समय हजारों गांवों में से जिन–जिनपर हाथ डाला जा सका, उन सारे भारतीय आदमियों को एक साथ पकड़ा जाता और तुरंत आधे घंटे में उनका कोर्ट मार्शल कर पंक्ति में खड़ा कर, सबको फांसी का दंड देकर, तरह–तरह की यंत्रनाएं देकर मार डाला जाता। मेरठ में नेटिवों ने भी अंग्रेजों को मार डाला

55

[55] स्वकीयों को केवल रास्ता भी न मिले! इतना ही नहीं अपितु उनमें के हजारों लोगों को शत्रु से भी अधिक यंत्रणा देकर मा डाला जाए! इस अमानुषिक पाप का प्रायश्चित्त हिंदुस्थान के इतिहास में कभी हो तो हो। इस यंत्रणा का वर्णन –'टू नेटिव नैरेटिव्स ऑफ द म्युटिनी इन दिल्ली' में देखने को मिलेगा।

था। परंतु वह जंगलीपन से अर्थात् एक आघात से मारा गया था। परंतु अंग्रजों ने उस त्रुटि को सुधारकर बहुत अच्छा किया। वे कोर्ट मार्शल के आगे केवल दृष्टिपात होते ही फांसी का दंड दिए गए सैकड़ो लोगों को, उनके फांसी के खंभे खड़े करते हुए ही पैशाचिक यंत्रनाएं देने लगते, उनके सिर के बाल तड़ातड़ तोड़ते, उनके शरीर में बैनेट के सिरे से आर–पार छेद किए जाते और तत्पश्चात् इन सारी यंत्रणाओं और प्रत्यक्ष मृत्यु को भी जिसके उन गरीब, निर्दोष और निरपराध हिंदू लोगों के मुंह में, उनके फांसी पर चढ़ने सिपाही उन गरीब, निर्दोष और निरपराध हिंदू लोगों के मुंह में, उनके फांसी पर चढ़ने को तैयार होने पर भी, जबरन गाय का कच्चा मांस कुचल–कुचलकर भरते।[56]

वह कोर्ट मार्शल क्या झमेला था, यह जंगली पाठक वर्ग को बताना रह ही गया। गांवों के निरपराध लोगों को सैकड़ों की संख्या में पकड़कर उनका 'न्याय' किया जाता। यह न्याय की घुट्टी यूरोपियन राष्ट्र पहले से ही पिए होते हैं। नीदरलैंड की राज्य क्रांति में अल्वा ने भी ऐसा ही एक न्यायसन स्थापित किया था। उस न्यायसन की कार्यवाही इतने ध्यान से चलती कि वहां के न्यायधीश बीच में ही सो जाते और दंड देने का समय आने पर उन्हें हिलाकर जगाए जाने पर जितने कैदी सामने दिखते उतनों की ओर एक गंभीर नज़र डालकर वह कहते, ''चढ़ाओ इन्हें फांसी पर!'' नीदरलैंड के इतिहास में अंकित इस 'यमासन' को अंग्रेजों ने सुधरकर विकसित किया था, इसमें कोई शंका नहीं, क्योंकि इनके न्यायधीश कभी भी सोते नहीं थे। इतना ही नहीं, कोर्ट मार्शल पर नियुक्त होने के पूर्व उन्हें यह शपथ लेनी पड़ती थी की हम निरपराध या अपराधी यह भेद न करके सबको फांसी का दंड देंगे। यह पवित्र शपथ लेकर अंग्रेज लोग निरपराध नेटिव को फांसी पर चढ़ाने के लिए जहां न्याय करते हैं उस स्थान को अंग्रेजी भाषा में 'कोर्ट मार्शल' कहा जाता है।

मेरठ और दिल्ली में मारे गए मुट्ठी भर अंग्रेज लोगों के लिए हजारों निरपराध लोगों से ऐसा पैशाचिक प्रतिशोध लेते हुए कमांडर बर्नार्ड दिल्ली के पास पहुंचने के पहले मेरठ में शेष बची गोरी सेना से मिलने का अवसर देख रहा था। मेरठ में अंग्रेजों की बड़ी सेना थी, यह पहले कहा जा चुका है। वह सेना अंबाला से निकली सेना से

[56] 1. होम्स कृत–'हिस्ट्री ऑफ द सीज ऑफ दिल्ली'।
2. 'सैनिक पंच न्यायलय के आसन को ग्रहण करने के पूर्व प्रत्येक पंच द्वारा यह शपथ ग्रहण की जाती थी कि मैं बंदी के अपराधी अथवा निर्दोष होने की चिंता न करते हुए उसे प्राणदंड दूंगा। और यदि उनमें से कोई इस विवेकहीन निर्णय के विरूद्ध अपना मुख खोलता भी था तो उसके अन्य साथी उसका मुख बंद कर देते थे। निर्णय के तत्काल उपरांत ही फांसी के फंदों पर जाते हुए बंदियों को प्रताड़ना दी जाती थी और उनका उपहास भी किया जाता था। उन्हें अनाड़ी–हत्यारे भांति–भांति की यंत्रणाएं देते थे और पड़े–लिखे अधिकारी मनोरंजन करते थे।''
–होम्स कृत–'हिस्ट्री ऑफ द सेपॉय वार' पृष्ठ 124

मिलने नीचे उतर रही थी। परंतु इन सेनाओं के मिलने के पहले ही उनसे दो–दो हाथ करने क्रांतिकारी दिल्ली से आगे आए हुए थे। हिंडन नदी के किनारे दोनों 30 मई को मिले। क्रांतिकारियों का दायां बाजू तोपों से सुरक्षित था। अतः उस ओर मुंह मारने का प्रयास करने में अंग्रेजों को सफलता नहीं मिल रही थी। दाई ओर तोपों और संगीनों की लड़ाई अच्छी जम रही थी, इतने में अंग्रेजों की मार के सामने बिल्कुल न टिकते हुए क्रांतिकारियों का बायां बाजू उखड़ने लगा। यह देखते ही उनकी पंक्तियों में भगदड़ मच गई और पांच तोपों को शत्रु के हाथों छोड़कर वे दिल्ली लौट आए। इस पहली लड़ाई में तत्काल मृत्यु गले लगाई। अन्य अपने कर्तव्य करें न करें, परंतु स्वयं मरने के पहले अपना जीवन किसी तरह सार्थक कर जाऊं ऐसी उदात्त स्फूर्ति से उस 11वीं रेजिमेंट के सिपाही ने अंग्रेजों के हाथों तोप पड़ेगी, यह जानते ही जान–बुझकर तोप और बारूदखाने में बंदूक चलाई। उसके जगी धमाके में कैप्टन एंड्रयूज और उसके सारे साथी जलकर सिरकमल अर्पित करने के बाद उस देशवीर ने अपना भी सिरकलम उसकी सेवा में जिस तरह अंग्रेज इतिहासकार रम जाते हैं, वैसे ही केवल राष्ट्र–कार्य के लिए प्राण निछावर करनेवाले उस शूर सिपाही के स्तुति स्तोत्र गाने में क्या उसके देशबंधुओं को नहीं रंगना चाहिए? पर इस शहीद का नाम भी इतिहास को ज्ञात नहीं। इस देशवीर के लिए 'के' कहता है–''विद्रोहियों में भी ऐसे अनेक शूरवीर विद्यमान थे जो अपने राष्ट्र–कार्य की सफलता हेतु प्रसन्न वदन मृत्यु का आंलिगन करने को तत्पर रहते थे तथा काल को भी चुनौती देते थे।[57]

इस पहली लड़ाई में अंग्रेजों की पूर्ण विजय हो जाने से कलकत्ता तक इस अनुमान से डाक द्वारा यह पूछताछ होने लगी कि अब एक–दो दिन में दिल्ली गिरने को है; परंतु वास्तविक स्थिति कितनी अलग थी। इस अभूतपूर्व, आकस्मिक और अस्त–व्यस्त क्रांतियुद्ध का विकराल स्वरूप देखकर भी वह पहला धक्का सहकर उस पर अंकुश लगाने की खूबी और हिम्मत यद्यपि उत्पन्न नहीं हुई थी, तो भी अपने स्वदेश को स्वतंत्र किए बिना जब तक जान में जान है तब तक रूकना नहीं, तो भी अपने स्वदेश को स्वतंत्र किए बिना जब तक जान में जान है तब तक रूकना नहीं, यह इच्छा अवश्य अति उत्कटता से दिल्ली के हजारों नागरिकों के हृदय में उछल रही थी और इसीलिए दिनांक 30 मई की पराजय के लिए सारी रात नागरिकों द्वारा धिक्कारे गए सिपाही फिर से 31 मई को बाहर निकले। क्रांतिकारियों की तोपों की भारी मार शुरू होते ही अंग्रेजों ने भी अपनी तोपें दागनी शुरू की। क्रांतिकारियों की तोपें आज अच्छे अनुशासन और बड़ी

[57] के कृत–'हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 138।

जिद से हमला कर रही थीं, इसलिए अंग्रेजों को प्राणहानि भी बहुत होने लगी। मई माह की धूप अंग्रेजों को असह्य थी सो अलग। फिर भी अंग्रेजों ने कल की तरह हमला करने का प्रयास किया, पर वह सफल नहीं हो रहा था। अंत में शाम को अंग्रेज अंतिम हमला करने निकले। इसके आगे उन्हें रोकना कठिन होगा, यह देखते ही क्रांतिकारियों ने तोपों का एक भयानक हमला किया और उस हमले से अंग्रेजों की तितर–बितर हुई सेना फिर से एकत्रित हो तब तक अपनी तोपें संभालते हुए रणांगण छोड़ दिया। कोई बात नहीं एक दिन में स्थिति कुछ सुधरी ही है। कल और ऐसी तीसरी पराजय झेली तो भी अंग्रेजों की दुर्दशा होगी, क्योंकि अब उनमें क्रांतिकारियों से छोटी हाथापाई करने लायक भी शक्ति नहीं है। जून की पहली तारीख को ऐसी चिंता में पड़े अंग्रेजी कैंप के पीछे से एक सेना आती दिखी। अपनी पिछाड़ी पर चली आ रही यह सेना काले रंग की है, यह देखते ही अंग्रेजों में हड़बड़ी मच गई और वे किसी तरह संरक्षण के लिए तैयार होते, तभी उनके ध्यान में आया कि वह क्रांतिकारियों की सेना नहीं है। अपितु मेजर रीड की अधीनता में अंग्रेजों की ओर से लड़ने गुरखे आ रहे हैं। अंबाला से नीचे आ रही अंग्रेजी ऐसी स्थिति में बेचारे गरीब क्रांतिकारी क्या करेंगे? ये दोनों अंग्रेजी सेनाएं 7 जून को एक–दूसरे से मिल गई। इस समय दिल्ली पर घेरा डालने के लिए तैयार करवाई गई सीजट्रेन भी नाभा के राजा की सहायता से सही–सलामत आ पहुंची। इस सीजट्रेन के अंबाला पहुंचते ही उसे साथ लेकर 5वीं रेजिमेंट सहित अंग्रेजों की इकटठी हुई वह सेना हमला करने के लिए दिल्ली के पास के अलीपुर गांव तक आ पहुंची।

अंग्रेजी सेना क अलीपुर पहुंचने का समाचार सुनते ही क्रांतिकारी फिर से दिल्ली के बाहर निकले और उनका बुंदेल की सराय नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना से सामना हुआ। इस समय अंग्रेजों की सेना भरपूर सामग्री, उत्तम सेनापति, ताजा दम सैनिकों और लाभ का स्थान–इतनी बातों से युक्त थी तो क्रांतिकारियों की ओर उनकी सदिच्छा के सिवाय दूसरी कोई शक्ति नहीं थी। जिसने रणभूमि का कभी मुंह भी नहीं देखा, ऐसे एक राजपुत्र पर सेनापतित्व का दायित्व था। उनकी संख्या में सिपाहियों से असैनिक ही अधिक थे और उसमें भी अपने ही देशबंधु सिख और गुरखा–फिरंगियों की ओर हाने से उनका मन निरूत्साहित था। ऐसी स्थिति में यह लड़ाई एक बहुत बड़ा तमाशा होगा, की विलक्षण चेतना उन सिपाहियों के मन में उत्पन्न हो गई थी, जिससे उन्होंने अंग्रेजी सेना को टक्कर देने में ऐसा कमाल किया कि अंग्रेजों को जल्दी ही समझ में आ गया, यह तमाशा न होकर वास्तव में जान लेने या देनेवाली लड़ाई है। दिल्ली की सेना की तोपें इतनी जिद और जोर से जोर मार करने लगीं कि ऐसा लगने लगा जैसे उसके सामने अंग्रेजी

सेना की कुछ भी नहीं चलेगी। अंग्रेजी तोपखाने के गोलंदाज और अधिकारी चट–पट मरने लगे और क्रांतिकारियों की तोपों की मार और भी तेज हो गई। यह देखते ही अंग्रेजों ने अपनी पैदल सेना को तोपों पर हमला करने का कड़ा आदेश दिया। अंग्रेजी पैदलों का वह हल्ला देखते–ही–देखते क्रांतिकारियों के तोपखाने से आकर भिड़ गया, फिर भी उस दिन क्रांतिकारी तोपें छोड़कर एक इंच भी इधर–उधर नहीं हुए। स्वराज्य और स्वदेश के लिए लड़नेवाले वीरों को शोभा दे, ऐसी ही अटल रीति से अंग्रेजी सेना की संगीन छाती में घुसने तक उन्होंने अपना स्थान नहीं छोड़ा। परंतु ऐसे शूर मर्दों को अपनी कृति से उत्तेजना देना तो दूर, उनके साथ अंत तक केवल खड़ा रहनेवाला सेनापति भी उन्हें नहीं मिला था, बल्कि जब अंग्रेजों की संगीन छाती में घुसने के बाद भी अपना स्थान छोड़कर एक पैर भी पीछे न हटानेवाले वीर स्वदेश और स्वधर्म के लिए प्राण न्योछावर कर रहे थे तो उनका कमांडर–इन–चीफ तोप की पहली आवाज होते ही सिर पर पांव रखकर दिल्ली भाग गया था। इतने में उस अभागी सेना क बाई ओर अंग्रेजों के घुड़सवार टूट पड़े और उनपर पीछे से होपग्रांट ने घुड़सवार–तोपखाने से हमला किया। इस तरह अपनों और परायों द्वारा अनाथ हुई वह सेना दिन भर लड़ी गई लड़ाई का कुछ भी श्रेय न मिलने पर तितर–बितर होकर दिल्ली में घुसने लगी। वैसे ही धकियाते जाने का आदेश दिय और वह अंग्रेजी सेना उस दिन शाम तक दिल्ली की दीवारों से आ भिड़ी। उस दिन की लड़ाई में क्रांतिकारियों का शहर–बाहर का सारा कब्जा नष्ट हो गया और अंग्रेजों को दिल्ली पर मोरचा लगाने के लिए अति उत्तम स्थान मिल गये। यहां यह कहना आवश्यक है कि उस दिन की लड़ाई में सीमूर की गुरखा पलटन ने बड़ा पराक्रम दिखाया, इसलिए अंग्रेजी इतिहासकार उन्हें बहुत शाबासी देते हैं। स्वदेश स्वतंत्रता के गले पर छुरी चलाने सदा–सर्वदा के लिए शापित शूरता दिखाने के कारण उन गुरखों के नाम सदा–सर्वदा के लिए शापित हुए हैं, इसमें तिल भर भी शंका नहीं।

इन देशद्रोही गुरखों की सहायता से अंग्रेजों ने बुंदेल का सराय की लड़ाई जीती अवश्य, परंतु इस जय ने उनके मनोराज्य को धूल में मिला दिया; क्योंकि दिल्ली के बाहर दोपहर लड़ाई लड़कर उस दिन की रात दिल्ली के राजमहल में रिपुरक्त का प्राशन करते बिताएंगे, ऐसी जो अंग्रेज सैनिकों को आशा ही नहीं भरे थे, स्वराज्य और स्वधर्म के रक्षणार्थ म्यान में केवल असैनिक लोग ही नहीं भरे थे, स्वराज्य और स्वधर्म के रक्षणार्थ म्यान से बाहर निकली तलवारें भी सिद्धांतनिष्ठा के संकल्प के साथ उस प्राचीर पर बीच–बीच में झलकती हैं, यह अप्रिय सत्य अंग्रेजों की नजर में इस लड़ाई ने ला दिया। इस लड़ाई में अंग्रेजों के एक सौ चौंतीस लोग घायल हुए तथा चार अधिकारी और सैंतालीस लोग मारे गए। परंतु इन सब मृतकों में अंग्रेजी लश्कर में दुःख और

उदासीनता फैलानेवाली जो मृत्यु हुई वह ऍडज्यूटंट जनरल कर्नल चेस्टर की थी। लड़ाई की भीड़ में यह मृत्यु हुई। क्रांतिकारियों की ओर की हानि बताते हुए अंग्रेज इतिहासकार उपन्यासकारों से भी बढ़–चढ़कर कैसा वर्णन करते हैं, यह आगे दिखेगा। परंतु इस प्रथम महत्त्वपूर्ण लड़ाई की गड़बड़ में भी विशेष रूप से उल्लेखिनीय एक बात अवश्य कहनी है कि उस दिन अंग्रेजों के हाथ लगी क्रांतिकारियों की तोपों की संख्या एक 13 कहता है और दूसरा पूरी 26, जबकि ये दोनों ही वहां उपस्थित सरकारी अधिकारी थे।

इस तरह दिनांक 98 जून को संध्या समय अंग्रेजी सेना ने दिल्ली की प्राचीर तक आकर तंबू ठोंके। अंबाला और मेरठ से दिल्ली की ओर अंग्रेजी सेना को अबाधित रीति से लाने का कार्य–पंजाब की स्थिति पर पूरी तरह अवलंबित होने से उस महत्त्वपूर्ण प्रांत में मेरठ के विद्रोह के क्या परिणाम हुए, वहां के स्वदेशी लोगों ने क्या प्रयास किए और उनका प्रतिकार करने के लिए अंग्रेजों के सोचे हुए उपायों को कितनी सफलता प्रांत को पूर्णतया ब्रिटिशों के अधीन लाने के बाद डलहौजी ने उन लोगों का सैनिकी बाना और स्वतंत्रता प्रेम, इन दो सद्‌गुणों का नाश करनेवाली अपनी राज्य व्यवस्था की नीति रखी। सर हेनरी लॉरेंस और सर लॉरेंस इन दो प्रमुख कूटनीतिज्ञों को प्राप्त इन नवीन प्रांत की राज्य व्यवस्था मिलते ही उन्होंने पंजाब के लोगों को पूरी तरह निःशस्त्र कर दिया। उनमें से अधिकतर सिख सिपाहियों को उन्होंने अपनी सेना में मिला लिया। उत्तरी हिंदुस्थान की अंग्रेजी सेना का अधिकांश ऊपर लाकर उसके डेरे पूरे पंजाब भर में फैला दिए और इस योजना से सारे सूत्र चलाए कि सब लोग खेती की ओर ध्यान देकर अपनी उपजीविका कमाने के नशे में गर्क हो जाएं। लोगों के किसान हो जाने पर उनके सैनिकी गुण घुटते जाते हैं, वे शांति के बहुत भूखे हो जाते हैं और उनकी खेती में बाधक राज्य क्रांतियों की लहरों को उनकी अनुमति सहज नहीं मिलती। ऐसी गहरी राजनीति सिंह का साम्राज्य और स्वतंत्रता नष्ट हुए दस वर्ष बीतते–बीतते पंजाब में हर कोई तलवार छोड़कर हल की मूंठ पकड़ने लगा और जिसने स्वयं हल नहीं पकड़ा ऐसे सिख सिपाहियों ने अंग्रेजी लश्कर में प्रवेश क रवह (हल) अंग्रेजों की ओर से अपनी मातृभूमि पर चलाया। ऐसी स्थिति में पंजाब में वास्तव में कुछ भी गड़बड़ नहीं होगी, ऐसा उस प्रांत के मुख्य अधिकारी जॉन लॉरेंस को विश्वास था। मई माह प्रारंभ होने तक अन्य अंग्रेज कूटनीतिज्ञों की तरह उस प्रांत के मुख्य अधिकारी सर जॉन लॉरेंस 'मरी' हिल्स की ठंडी हवा में जाने को तैयार हुआ कि तभी 10 मई को मेरठ के विद्रोह की और 11 मई को दिल्ली स्वतंत्र होने का विद्युत समाचार पंजाब पर आ गिरा। यह सुनते ही पंजाब के उस

चाणक्य (धूर्त) चीफ कमिश्नर को समाचार की भयंकरता पूरी तरह समझ में आ गई और अंग्रेजी साम्राज्य को उलट देनेवाले इस आघात से निपटने वह रावलपिंडी में ही जमकर बैठ गया।

इस समय पंजाब की अंग्रेजी सेना का अधिकतर हिस्सा मियां मीर में था। मियां मीर की छावनी, लाहौर के बहुत पास थी, अतः लाहौर के किले पर उन्हीं सिपाहियों में से चुने हुए सिपाही सुरक्षा के लिए रखे गए थे। इस छावनी में देशी सिपाही यूरोपियन सोल्जर से चार गुना अधिक होते हुए भी मेरठ का सामचार आने तक उनके लिए अंगेजी अधिकारियों के मन में कोई विशेष आशंका नहीं थी और इसीलिए वे क्रांतिकारियों से मिले हुए हैं या नहीं, यह एकाएक निश्चित करना बहुत कठिन हो गया। उस समय लाहौर में रॉबर्ट मोंटगुमरी मुख्य अधिकारी था। मोंटगुमरी ओर जॉन लॉरेंस ये दोनों ही डलहौजी की प्रशिक्षा में तैयार हुए थे, अतः त्वरित बुद्धि और अकस्मात् आ पड़े संकट से पर पाने में आवश्यक साहस और धैर्य में प्रवीण थे। फिर भी पंजाब के सिपाहियों में स्वतंत्रता की चेतना कहां तक उत्पन्न हुई है, इसकी सही जानकारी प्राप्त करना आवश्यक था। इस कार्य पर एक ब्राह्मण ने अपना देशद्रोही कार्य उत्तम रीति से सिद्ध करके मोंटगुमरी से निवेदन किया कि ''साहब, वे सारे फसादी हैं और फसाद में बुरी तरह डूबे हुए हैं।'' ऐसा कहकर उसने अपना हाथ अपने गले से लगाकर दिखाया। इस ब्राह्मण की यह वार्त्ता सुनकर अंग्रेजों की आंखों का भ्रम–पटल हट गया। विद्रोह की गुप्त तैयारी केवल उत्तरी हिंदुस्थान में ही नहीं अपितु उसकी ज्वालाएं सारे पंजाब में उचित अवसर पर उफन पड़ने तक दबी बैठी हैं, यह उन्हें स्पष्ट नजर आ गया और यह भयानक रहस्य प्रकट करनेवाले मेरठ के विद्रोह को धन्यवाद देते हुए मोंटगुमरी ने मियां मीर की नेटिव सेना को तत्काल निःशस्त्र करने का आदेश दिया। मई माह की तेरहवीं तारीख को सुबह के समय मियां मीर में एक जनरल परेड बुलाई गई। सिपाहियों को इसकी कोई पूर्व सूचना न मिले, इसलिए उस सुबह के पहले दिन सारे अंग्रेज लोगों के लिए एक जंगी सिपाहियों के ध्यान में आने के पूर्व ही उन्हें अचानक यूरोपियन सोल्जरों, घुड़सवारों ओर तोपखाने के घेरे में ले लिया गया और इस कपट नाटक का नेटिव सिपाहियों को पता चलते ही हमेशा की तरह परेड के बीच ही एकाएक तोपखाने को बत्ती लेकर तैयार रहने का आदेश हुआ और यह विचित्र सुनकर चकित उन रेजिमेंटों को हथियार नीचे रखने के आदेश दिए गए। गुस्से से गुर्राए पर प्रदीप्त तोपखाने के कारण हताश उन हजारों नेटिव सिपाहियों ने अपने–अपने हथियार नीचे डाले और एक अक्षर भी बोले बिना अपनी–अपनी लाइनों की ओर लौट गए।

अति शूर और जिसके पराक्रम से ही अफगानिस्तान में अंग्रेजों के प्राण बचे थे, उसी पंजाबी सेना को मयां मीर में निःशस्त्र करने की इस विधि–प्रक्रिया में ही वहां की सेना की एक टुकड़ी लाहौर के किले पर भेजी गई। उस टुकड़ी ने लाहौर किले के तोपखाने पर नियुक्त अंग्रेजी सोल्जर की सहायता से वहां के नेटिव सिपाहियों को निःशस्त्र कर किले से निकाल दिया ओर किला अपने कब्जे में ले लिया। 13 मई को अंग्रेजों ने जिस फुरती से यह साहस भरा कृत्य पूरा किया उस फुरती से यदि एक अंणु मात्र भी ढील हुई होती तो उस दिन से पंद्रह दिन के अंदर सारा पंजाब विद्रोह की आग में जलने लगा होता; क्योंकि पेशावर, अमृतसर, फिल्लौर, जालंधर इन अलग–अलग स्थानों पर स्थित पलटनें बड़ी उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा कर रही थी कि मियां मीर के सिपाही लाहौर के किले पर कब टूट पड़ते हैं। फिरंगियों द्वारा मियां मीर के सिपाहियों को निःशस्त्र कर लाहौर का किला कब्जे में लेने का समाचार फैलते ही पंजाब भर में अंग्रेजों का दबदबा फिर बढ़ने लगा।[58]

परंतु लाहौर के दुर्ग से भी अति महत्त्वपूर्ण स्थान अमृतसर का गोविदंगढ़ था। अमृतसर नगर सिखों के लिए काशी क्षेत्र होने से यहां किसी प्रकार की गड़बड़ी होने पर उन सारे लोगों के संतप्त हो जाने की संभावना थी, इसलिए क्रांतिकारी सिपाहियों की उस पर अधिक नजर थी। मियां मीर के निःशस्त्र सिपाही गोविंदगढ़ जीतने के लिए अमृतसर की ओर आ रहे हैं, यह अफवाह उठ जाने से अंग्रेजों में दहशत फैल गई और उन्होंने अमृतसर को बचाने के लिए सिख और जाट किसानों से विनती की। इस विनती को उन राजनिष्ठ देशद्रोहियों ने माना और अमृतसर का किला–लाहौर के किले की तरह ही अंग्रेजों ने पूरी तरह अपने अधिकार में ले लिया। इस तरह 15 मई के पहले ही लाहौर और अमृतसर, ये दो शहर तात्कालिक रूप से क्रांति की ज्वालाओं से सुरक्षित कर लिए गए।

इतनी सुरक्षा होते ही सर जॉन लॉरेंस केवल अपने मातहत प्रदेश की चिंता नहीं कर रहा था; दिल्ली का समाचार मिलते ही उसने कहा कि यह सिर्फ विद्रोह नहीं है अपितू राज्य क्रांति होनेवाली है। फिर भी उसका अनुमान था कि दिल्ली यदि झटके में वापस आ गई तो फिर भी उसका अनुमान था कि दिल्ली यदि झटके में वापस आ गई तो फिर और कहीं विद्रोह नहीं होगा। इसी आधार पर उसने जनरल ॲन्सन को जून माह के पहले दिल्ली जीत लेने के लिए पत्र–पर–पत्र लिखे। इतना ही नहीं अपतिु पंजाब में सब ओर शांति बनाए रखने का काम अपने जिम्मे लेकर दिल्ली

[58] ''यदि पंजाब हाथ से चला जाता तो हमारा सर्वनाश हो जाना निश्चित था। ऊपरी प्रदेश में सेना पहुंचने से पहले ही सभी अंग्रेजों की अस्थियां धूप में सूखने के लिए डाल दी गई होतीं। इस संकट से बचकर पूरब में अपनी सत्ता पुनः स्थापित करना तथा गर्व से माथा ऊंचा उठाना इंग्लैंड के लिए असंभव ही हो जाता। –लाइफ ऑफ लॉर्ड लॉरेंस

पर हमला करने के लिए और अंबाला में सेना की कमी को पूरी करने के लिए पंजाब से लश्कर भेजना प्रारंभ किया। इस सहायता की पहली खेप डॉली के अधीन भेजी गइ़ गाइड कोर रेजिमेंट थी। जॉन लॉरेंस का डॉली की बहादुरी पर बहुत विश्वास था और इसीलिए दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए उसने उसी को चुनां डॉली अपनी रेजिमेंट लेकर मंजिल–दर–मंजिल दिल्ली की ओर बढ़ा और बुंदेल की सराय की लड़ाई के दूसरे दिन वहां की अंग्रेजी सेना से आकर मिल गया। दिल्ली के घेरे में अब दो नेटिव रेजिमेंट हो गई थी–एक गुरखों की रीड के अधीन और दूसरी डॉली के अधीन पंजाब से आई हुई। इन दोनों रेजिमेंटों पर अंग्रेजों की बड़ी कृपा थी और वह अनुचित थी, यह कौन कहे? इन नेटिव रेजिमेंटों ने उस कृपा के बदले वैसा ही देशद्रोह किया था।

डॉली की रेजिमेंट के दिल्ली की ओर रवाना होने के बाद सर जॉन लॉरेंस ने पंजाब की कुल परिस्थिति का सूक्ष्म निरिक्षण किया। उस प्रदेश में हिंदू, सिख और मुसलमानों का आपस में अखंड द्वेष शुरू था। उत्तर हिंदुस्थान में हिंदू और मुसलमान दोनों को ही स्वदेशाभिमान का जैसा चैतन्य मिला हुआ था वैसा पंजाब के लोगों को उस समय मिला नहीं था। वास्वत में उनकी स्वतंत्रता गए दस वर्ष भी नहीं हुए थे। अंग्रेजों के कंठनाल पर सन् 1949 में जो सिख सिपाही कुल्हाड़ी चला रहे थे वे ही 1857 में उनके गले क्यों लगे क्यों लगने लगे, इस विलक्षण कूट प्रश्न का खुलासा इसी बात में होनेवाला है कि उनकी स्वतंत्रता जाते–न–जाते ही सन् 1857 की क्रांति आ गई थी। मुसलमानों की परतंत्रता पर जिस शूर और स्वाभिमानी जाति को इतना गुस्सा आया था कि सौ वर्ष तक अखंड लड़ाई कर अंत में पंजाब को स्वतंत्र किए बिना उन्होंने तलवार नीचे नहीं रखी, उसी 'खालसा' पंथ के अनुयायियों ने अंग्रेजों की गुलामी को इतना चाहा हो, ऐसा बिलकुल नहीं है। पर अंग्रेजों का राज गुलामी है या नहीं, यह उन सिपाहियों की बुद्धि में पूर्णता से आ भी नहीं पाया कि सन् 18567 आ गया। अंग्रेजों का राज हिंदुस्थान पर ऐसे ही समय आया जिस समय हिंदुस्थान में एक ऐतिहासिक जल प्रलय शुरू हो गया था। अनेक सदियों के बाद स्थान–स्थान पर अलग–अलग जमा जलसर अपने–अपने अपेक्षित बांधों को फोड़कर एक प्रचंड महानदी में विलीन हो रहे थे। यह महानदी थी हिंदुस्थान की एकराष्ट्रीय प्रवत्ति। आज विश्व में जो–जो राष्ट्र एकीकृत और संगठित हुए हैं उन सबको वह एकीकृत अस्तित्व आने के पहले, और आने के लिए ही ऐसी अराजकता और गृह कलह की अग्नि में पिघलना पड़ा था। इटली का गृहयुद्ध, जर्मनी का गृहयुद्ध–उनमें उनके विभिन्न प्रांतों और विविध जातियों की कड़ी शत्रुता और प्रतिशोध लेने के लिए एक–दूसरे पर किए गए अत्याचार–आदि की ओर देखें तो ऐसा लगता है जैसे हिंदुस्थान का यह गृहयुद्ध कुछ भी नहीं था। परंतु उपर्युक्त देशों को गृह कलह की भयानक आग में तथा

गुलामीगिरी की अत्यंत तीव्र उष्णता में पिघलना पड़ा, इसीलिए आज उनका एक संगठित सुंदर और सबल व्यक्तित्व बना है, यह भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। वैसी ही ऐतिहासिक उत्क्रांति से भारतभूमि की घटना गुजर रही थी। गुलामी की आंच हिंदुस्थानी लोगों को अच्छी तरह लग जाने से वे संगठित होने लगे थे। परंतु पंजाब को यह गुलामगिरी की आंच पूरी तरह लगने में दस वर्ष की अवधिक कम थी और इसीलिए विशेषतः सिख सन् 1857 के उबलते राष्ट्र–तेज में विलीन न हो सके थे।[59]

पंजाब के अंग्रेज अधिकारियों के ध्यान में यह सत्य आ गया था और इसीलिए उन्होंने सिखों और जाटों में मुसलमानों के प्रति द्वेष अधिक–से–अधिक भड़का देने का कार्य शुरू किया। सिख लोगों में मान्य एक पुराने भविष्य कथन का उन्हें स्मरण कराया गया। पहले मुगल बादशाह ने जहां अपने गुरू को मार डाला था उसी दिल्ली पर 'खालसा साहब' एक बार हमला कर उसे धूल में मिला देनेवाले हैं, ऐसा भविष्य संदेश हर सिख को दिया गया था। उस भविष्य कथन की पूर्णता का 'कंपनी साहब' को क्या लाभ? बहादुरशाह के स्थान पर कोई रणजीत सिंह दिल्ली पर राज्य करने लगेगा? हिंदुस्थान में रणजीत सिंह और बहादुरशाह दोनों ही न हों, इस हेतु जो प्रयास कर रहे थे उनको एकांगी भविष्य में कुछ संशोधन करना आवश्यक और सहज था। संशोधन करके जारी किए गए भविष्य के नए संस्करण में ऐसा लिखा हुआ था कि दिलली मिट्टी में तब ही मिलेगी जब खालसा साहब और कंपनी साहब एक होंगे। भविष्य तो भविष्य ही है। एक बात बुरी है, वह यह कि आज के भविष्य कल भूत हो जाते हैं। पर कम–से–कम आज जितना हो सके उतना लाभ ले लेना बुद्धिमानी है। इस भविष्य के अतिरिक्त सिख लोगों में दिल्ली के प्रति अधिक गुस्सा दिलाने के लिए एक झूठी घोषणा की गइ कि दिल्ली में बादशाह ने यह आदेश जारी किया है कि 'सारे सिखों को एक साथ कत्ल किया जाए!' अरे रे! बेचारा गरीब बादशाह!! इसी समय वह दिल्ली की सड़कों पर स्वयं घूम–घूमकर यह कह रहा था कि यह युद्ध केवल फिरंगियों के विरूद्ध है, अतः स्वदेशी लोगों को खरोंच तक न लगने दी जाए।

परंतु क्रांतिकारियों के बहुत जोर लगाने पर भी सिख अंग्रेजों की ओर ही रहे।

[59] 1. सर जॉन लॉरेंस ने अपने 21 अक्तूबर, 1857 को लिखे गए एक पत्र में लिखा था–''यदि सिख हमारे विरूद्ध क्रांतिकारियों के साथ मिल जाते तो हमारी रक्षा करना मानवी शक्ति से परे था। किसी को यह आशा नहीं थी, न ही कोई यह कल्पना ही कर पाया था कि अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता को हड़पनेवालों से प्रतिशोध लेने का अवसर ये लोग गंवा देंगे और इस लोभ का संवरण कर लेंगे।''
2. मेटकॉफ कृत–'टू नेटिव नैरेटिव्स ऑफ द म्युटिनी'।

पंजाब में जहां–जहां सेना की रेजिमेंट थीं वे अधिकतर हिंदुस्थानी लोगों की थी। इस कारण उन सबने अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने के लिए कमर कसी हुई थी और वे अपने नियत संकेत–समय की प्रतीक्षा में रूके थे। केवल हिंदुस्थानी सिपाही ही पंजाब में स्वातंत्र्य को ललचाए थे, ऐसा बिल्कुल नहीं था; लष्कर के बाहर हर तरह के व्यवसायी नागरिक भी राज्य क्रांति के 'बीज' यहां–वहां छितराए हुए थे। मियां मीर के सिपाहियों को निःशस्त्र करने के बाद जल्दी ही ज्ञात हुआ कि वे जिस पर्वत पर शांति से सो रहे थे उसमें कितने विस्फोटक पदार्थ भरे पड़े हैं। लाहौर और अमृतसर के किले यद्यपि अंग्रेजों ने सुरक्षित कर लिये, तब भी फिरोजपुर में रखा गोला–बारूद का भंडार अभी सुरक्षित ही था। उस भंडार के लालच में वहां के नेटिव सिपाही विद्रोह करने को तैयार हैं या नहीं, यह पक्का जानने के लिए 13 मई को एक परेड की गई। सिपाहियों ने परेड पर अपना व्यवहार इतना शांत रखा कि उस समय उनके हृदय में भड़क रही क्रोधाग्नि की एक चिंगारी भी बाहर नहीं आई। अतः उनको निःशस्त्र करने के बाद जल्दी ही ज्ञात हुआ कि वे जिस पर्वत पर शांति से सो रहे थे उसमें कितने विस्फोटक पदार्थ भरे पड़े हैं। लाहौर और अमृतसर के किसी यद्यपि अंग्रेजों ने सुरक्षित कर लिये, तब भी फिरोजपुर में रखा गोला–बारूद का भंडार अभी असुरक्षित ही था। उस भंडार के लालच में वहां के नेटिव सिपाही विद्रोह करने को तैयार हैं या नहीं, यह पक्का जानने के लिए 13 मई को एक परेड की गई। सिपाहियों ने परेड पर अपना व्यवहार इतना शांत रखा कि उस समय उनके हृदय में भड़क रही क्रोधाग्नि की एक चिंगारी भी बाहर नहीं आई। अतः उनको निःशस्त्र करने का विचार त्यागकर तथा उनको केवल अलग–अलग रखने का निर्णय लेकर उनमें से एक पलटन को शहर के बाजार में से ले जाया गया। परंतु किस लेन–देन के लिए वह फिरोजपुर का बाजार से चले तो उन्हें दुकानदारों और दूसरे लोगों ने स्वराज्य की हवा बेचना प्रारंभ किया, जिससे बाजार से निकलते–निकलते सिपाहियों के मन की चंचलता नष्ट हो गई; दृढ़ निष्चय हो गया और 'हर–हर महादेव' की घोषणा हो गई। सिपाहियों के आक्रमण से गोला–बारूद का भंडार बचाना कठिन लगते ही उसे उड़ा देने के सिवाए अंग्रेजों का अन्य उपाय ही न रहा। बारूद का भंडार उड़ा देखकर स्वराज्य का निशान जिस दिल्ली की प्राचीर पर स्वदेश वीरों को बुला रहा था उस प्राचीर की ओर सिपाही दौड़ चले। इसी समय फिरोजपुर शहर भी विद्रोही हो गया और यूरोपियन लोगों के बंगले, तंबू, भोजनालय, प्रोस्टेंट चर्च कैथोलिक चर्च जलाते, गिराते, लूटते, नष्ट करते लोग यूरोपियन कहां हैं, इसकी पूछताछ करते यहां–वहां घूमने लगे। परंतु मेरठ के तार से चेते हुए यूरोपियन कहां हैं, इसकी पूछताछ करते यहां–वहां घूमने लगे। परंतु मेरठ के तार से चेते हुए यूरोपियन कहां हैं, इसकी पूछताछ करते यहां–वहां घूमने लगे। परंतु मेरठ के तार से चेते हुए यूरोपियन पहले ही बैरकों के पीछे जाकर सुरक्षित बैठे थे। सिपाहियों का पीछा करने जो अंग्रेजी सेना भेजी गई थी वह, जो साकने आया उसे मारते और अपनी क्रूरता पर घमंड करते हुए लौट आई।

पंजाब में अंग्रेजों की सत्ता को जैसे अंदरूनी असंतोष का डर था वैसे ही उसे सरहद पार के अफगानी डकैतों का भी डर था। सन् 1857 के क्रांतियुद्ध की गुप्त चर्चा के समय लखनऊ की गुप्त समिति ने काबुल के अमीर की सहायता मांगने का प्रयास किया था। क्योंकि सन् 1856 के अगस्त माह में मि. फारसिथ के हाथ एक पत्र पड़ा था जिसमें यह स्पष्ट लिखा था– ''लखनऊ के मुसलमानों ने अमीर दोस्त मोहम्मद से संबंध जोड़े हैं। अवध का राज्य अधिगृहीत हो गया है और अब हैदराबाद पर एक

कुल्हाड़ी चलते ही मुसलमानी सत्ता का नाम भी फिर से सुनाई न देगा। इसका समय पर ही कुछ उपचार करना होगा। यदि लखनऊ के इस प्रश्न का उस राजनितिपटु अमीर ने अस्पष्ट उत्तर दिया–''जो होगा, देख लेंगे।'' परंतु काबुल के अमीर से अंग्रेजों का हाल ही में समझौता हो जाने के कारण उन्हें अमीर से अधिक पेशावर के नजदीक की स्वतंत्र मुसलमान जमातों से अधिक डर था और मुसलमानी जमातों में कोई अंग्रेजों से मिल न जाए, यह उपदेश करते सैकड़ों मुल्ला यात्रा पर निकले थे। पेशावर में इस समय जो अंग्रेज अधिकारी थे वे सारे ही साहसी, राजनीतिपटु और युद्ध–विशारद थे, इसमें कोई शंका नहीं। निकल्सन, एडवर्ड्स, चेंबरलेन आदि अधिकारियों के उत्साह के कारण और उन्हें जॉन लॉरेंस जैसे वरिष्ठ अधिकारी से प्राप्त अचूक सहायता के कारण पेशावर की ओर का यह संकट बड़े धैर्य से टाला गया। उन्होंने तत्काल ही जान लिया कि विद्रोह करना चाहनेवाली मुसलमान जमातों को किस तरह अपनी ओर करना चाहिए और धन का लालच मिलते ही वे सारे पहाड़ी लोग अंग्रेजी सेना में नौकरी पाने की जल्दी करने लगे। पहाड़ी लोगों को ध्नबल पर खरीदते ही जॉन लॉरेंस ने पंजाब में इधर–उधर सुलगते असंतोष को वहीं–का–वही दबा देने के लिए एक घुमंतू सेना का निर्माण किया। इस सेना में अनुभवी, कसे हुए, जिनकी ईमानदारी पर अंग्रेजों को पूरा विश्वास था, ऐसे नेटिव सिपाही एवं अंग्रेज सोल्जर लिये जाते। इस `सना का गठन होते–होते ही उसके लिए एक काम तैयार हो गया, क्योंकि पेशावर की ओर के भारतीय सिपाहियों में मियां मीर की निःशस्त्रता की घटना का समाचार पहुंचते ही बड़ी खलबली मच गई थी, इसलिए इस भारतीय सेना पर स्वयं पहली चोट करने की योजना पेशावर के साहसी अंग्रेज अधिकारियों ने बनाई और वे इस सारी सेना को निःशस्त्र करने को तैयार हो गए। परंतु उस भारतीय सेना के अंग्रेज कमांडर आदि अधिकारियों को अपने सिपाहियों का यह अमपान बहुत बुरा लगा। सन् 1857 में जो एक विलक्षण गुप्तता चारों ओर रखी गई थी उसी के जाल में फंसे ये अंग्रेज अधिकारी यह मानने को बिल्कुल तैयार नहीं थे कि उनके अधीनस्थ सिपाही विद्रोह पर उतारू हैं। फिर भी कॉटन और निकल्सन ने इस नेटिव सिपाहियों को 21 मई को सुबह के समय यूरोपियन सेना से घेरकर निःशस्त्र करने का आदेश दिया। इस अकस्मात् हुए हमले से बच पाना असंभव है, यह देखकर सारे सिपाहियों ने अपने हथियार नीचे रखे और यह अपमान भरा कृत्य देखकर क्रोधित उनके अंग्रेज अधिकारी भी अपने सिपाहियों के साथ कंपनी को धिक्कारने लगे।

पेशावर की नेटिव सेना को निःशस्त्र करने के बाद पंजाब सरकार को होती–मर्दानी में रखी 55वीं नेटिव रेंजिमेंट की ओर देखने की फुरसत मिली। यह 55वीं नेटिव

रेजिमेंट विद्रोही हो गई है, इस संबंध में सरकार को विश्वास हो गया था। परंतु उन सिपाहियों के मुख्य सैनिक अधिकारी कर्नल स्पॉटिस वुड को सरकार के इस संदेह पर बहुत खेद हुआ।

हमारे सिपाही सरकार से कभी भी बेईमानी नहीं करेंगे, यह वह जी तोड़कर कहता रहा, फिर भी जब सरकार पर सवार खून नहीं उतरा तो उसका हृदय टूट गया। 24 मई को सिपाहियों के नेताओं ने कर्नल के पास आकर पूछा, ''अंग्रेजी सेना पेशावर से हमपर हमला करने आ रही है, क्या यह समाचार सच है?'' इस प्रश्न का कर्नल ने गोलमोल उत्तर दिया। सिपाहियों को उससे संतोष न होते हुए भी वे लौट गए। उस 55वीं नेटिव रेजिमेंट का पेशावर की सेना की तरह खात्मा करने के लिए अंग्रेजों सेना वास्तव में चढ़ी चली आ रही थी। वह दुष्टतापूर्ण कार्य देखते बैठने की अपेक्षा कर्नल स्पॉटिस वुड ने अपने कमरे में जाकर आत्महत्या कर ली। यह समाचार 55वीं रेजिमेंट को ज्ञात होते ही उसने खजाने पर हमला किया और अपने–अपने शस्त्र, निशान और वह खजाना लेकर वे सारे सिपाही फिरंगियों की गुलामी को लात–मारकर आगे चले। परंतु होती–मर्दान से दिल्ली कोई पास नहीं थी। सारा पंजाब यूरोपियनों की सुसज्ज सेना से अटा पड़ा था और यूरोपियन सेना पिछाड़ी पर टूटी पड़ रही थी। ऐसी स्थिति में सफलता इतनी कठिन थी कि पेशावर के सिपाहियों की तरह ही चुपचाप शस्त्र नीचे रखकर फिरंगियों की शरण जाने की बात भी उनके मन में आने लगी। परंतु अब फिरंगी दासता की बेड़ियां पैरों में डाल लेने की अपेक्षा यमपाश गले में डलवा लेना उन वीरों को पसंद आया और अपने पीछे लगी अंग्रेजी सेना को उसने यह बात कह दी कि –अब लड़ते–लड़ते प्राण दिए। इस 55वीं रेजिमेंट की कहानी भी इतनी हृदयद्रावक है कि उसे सुनने पर–'अपि ग्रावा रोदत्यपि दलति वज्रस्व हृदयम!' उनका पीछा करने के लिए निकल्सन इतना कठोर हो गया था कि वह चौबीस घंटे तक घोड़े से नीचे नहीं उतरा। सैंकड़ों लोग उस लड़ाई में मारे गए और शेष लड़ते–लड़ते सरहद के बाहर निकल गए। परंतु वहां भी उन्हें आश्रय कौन दें? वहां की मुसलमान जमातों ने उनका स्वागत बहुत ही भयंकर तरीके से किया। उनमें से हिंदुओं को अकेले–अकेले पकड़कर बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाने लगा। उनमें से हिंदुओं को अकेले–अकेले पकड़कर बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाने लगा। तब वे अभागे सिपाही यह सोचकर कि अपने हिंदुत्व की रक्षा करने में कश्मीर का हिंदू राजा समर्थ होगा, आश्रय पाने, धर्म–रक्षण करने एवं देश–सेवा करने गुलाब सिंह के प्रदेश की ओर चल पड़े। रास्ता पथरीला, वहां अन्न नहीं, वस्त्र नहीं, विश्राम नहीं–ऐसे संकटों और कठिनाइयों से जूझते वे सैकड़ों हिंदू सिपाही–अपने धर्म का आज तीनों लोकों में कोई त्राता नहीं, इस दुःख के अश्रु बहाते कश्मीर की ओर बढ़ रहे थे, तब उन्हें चींटियों, कीड़ों की तरह मसल डालने को अंग्रेजों ने हर कदम

पर तलवार चलाई। परंतु फिर भी अपने धर्म का त्राता कश्मीर में है, ऐसी उत्कट भावना से वे हजारों सिपाही कश्मीर की ओर बढ़ ही रहे थे। धर्म का त्राता! हाय!! यह ज्ञात होते ही ि कवे कश्मीर की ओर आ रहे हैं, वहां के राजा राजपूत कुलोत्पन्न गुलाग सिंह ने उन अनाथ हुए और धर्मरक्षा के लिए मृत्यु से भी बच निकलनेवाले हिंदू लोगों को अपने राज्य में प्रवेश करने से मना किया। इतना ही नहीं अपितू इन हिंदुओं में से जो कोई जहां कहीं भी मिल जाए उसे वहीं काट डालने का कड़ा आदेश अपने लश्कर को देकर उसने अपना यह 'सुकृत्य' अंग्रेजों के दरबार में बड़े गर्व से सूचित किया। अब या तो धर्मांतरण करना या फिर गुलामी स्वीकार करना या मृत्यु का आंलिगन करना, यही कुछ करना था उन्हें। इन तीनों में से उन हिंदू शूरों ने तीसरा रास्ता अपनाया। अंग्रेजों ने कदम–कदम पर निष्ठुरता से इतने कत्ल किए कि मैदानों में स्थित वध–स्तंभ निरपराध हिंदू रक्त से भीगकर सड़ने लगे। फिर भी अंग्रेजों को उस रक्तपात से घृणा नहीं हुई। वध–स्तंभ–स्थायी वध–स्तंभ–जब रात–दिन काम करते वधिक थक गए तब तोपों के मुंह खोले गए। और जिस 55वीं रेजिमेंट ने अंग्रेजों के रक्त की एक बूंद भी नहीं बहाई थी उसका हर सिपाही तोप से उड़ा दिया गया। एक हजार हिंदू चुटकी बजाते गारद कर दिए गए। परंतु उस अंतिम समय में भी उन हिंदू वीरों ने अपना वीरत्व नहीं त्यागा। क्योंकि फांसी या तोप के प्रश्न के उत्तर में वे अटल होकर उत्तर देते–''कुत्ते फांसी पर नहीं मरेंगे–हमें तो तोप से उड़ाया जाना ही इष्ट है।''[60]

घोर जंगली आदमी से लज्जित हो जाए, ऐसी क्रूरता से उपर्युक्त शूरवीरों को काट डालने के लिए अंग्रेजी इतिहासकार कहते हैं–''यह दंड क्रूरतम था, इसमें कोई शंका नहीं; परंतु उस समय की क्रूरता ही सर्वकालीन भूतदया है। भूतदया के लिए ही वह क्रूरता करना इष्ट था।'' अंग्रेजी इतिहासकारों, तुम अपने ये बोल ध्यान में रखना, अच्छा! ''घड़ी भर की क्रूरता में सदैव के लिए मानवता का मंगल निहित था।'' इस वाक्य का जो अर्थ तुम अभी कर रहे हो वैसा ही वह तुम्हें क्या और थोड़ी देर बाद भी स्मरण रहेगा? सार्वकालिक भूतदया के लिए यह तात्कालिक क्रूरता कर रहे हो वह तो ठीक है, पर उधर कानपुर में हिंदुओं का नाना साहब बैठा हुआ है, यह भी थोड़ा ध्यान में रखना।

यहां एक बात और कहनी चाहिए कि क्रांतिकारियों द्वारा की गई मार–काट का वर्णन जो अंग्रेजी इतिहासकार कमाल की नाटकीयता से करते हैं वे ही (अंग्रेजी इतिहासकार) अंग्रेजों द्वारा किए गए अक्षम्य, अनन्वित एवं अमानुषिक अत्याचारों को जान–बुझकर छिपाने का प्रयास करने लगते हैं। उपर्युक्त दुर्दैवग्रस्त परंतु स्वाभिमानी रेजिमेंट का कत्लेआम जब चल रहा था तब उनके मृत्यु पूर्व तक अंग्रेजों के राक्षसी

[60] के द्वारा प्रस्तुत वृत्तांत।

विद्वेष ने उन्हें कैसी–कैसी यंत्रणाएं दी होंगी, वह केवल ईश्वर को ही ज्ञात होगा। क्योंकि उन भयानक कहानियों को इतिहास से पोंछ डालने के लिए अंग्रेजी इतिहासकारों ने उसका कोई संकेत भी अब रहने नहीं दिया है। स्वयं 'के', जो प्रमुख अंग्रेज लेखक है, कहता है–''यद्यपि मेरे सामने अंग्रेजों द्वारा की गई भयंकर क्रूरतापूर्ण यंत्रणाओं के वर्णन के ढेर सारे पत्र पड़े हैं, फिर भी यह विषय फिर से विश्व के सामने न आ पाए, इसलिए मैं उस हेतु एक अक्षर भी नहीं लिखता।'' ये हैं इतिहासकार! जिन लोगों ने दिल्ली के रास्ते पर गरीब और निरपराध ग्रामीणों के मुंह में मरने के पहले गाय का मांस ठूंसा, उन लोगों ने 55वीं रेजिमेंट के धर्मनिष्ठ सिपाहियों के मुंह में मरने के पहले गाय का मांस ठूसा, उन लोगों ने 55वीं रेजिमेंट के धर्मनिष्ठ सिपाहियों के मुंह में गाय का मांस ठूसकर ही उन्हें तोप से उड़ाया होगा, इसमें शंका की गुंजाइश कहां।

पेशावर की ओर ऐसी अमानवीय घटनाएं हो रही थी और इधर जालंधर की ओर विद्रोह की आग चेत रही थी। पंजाब में जॉन लॉरेंस नेटिव सिपाहियों को लगातार सपाटे से निःशस्त्र करता जा रहा था और उसी सपाटे में अब तक जालंधर और फिल्लौर भी पड़ जानेवाला था। परंतु फिल्लौर के नेटिव सिपाहियों ने जो आत्मसंयम और घटना चातुर्य दिखाया वह वास्तव में बड़ी चालाकी का था। पंजाब में सारे नेटिव सिपाहियों की जैसी एकदम उठने की तैयारी हुई थी वैसी ही जालंधर–दोआब में भी नेटिव सिपाहियों की जैसी एकदम उठने की तैयारी हुई थी वैसी ही जालंधर–दोआब में भी नेटिव सिपाहियों की थी। दिल्ली जीतते समय उस लड़ाई में घायल पड़े एक देशभक्त हवलदार ने स्पष्ट कहा है और सरकारी रिपोर्ट में यही मान्य है कि सारे जालंधर–दोआब भर में एकाएक विद्रोह करने का पक्का निर्णय हो चुका था। जालंधर की सेना ने एक टुकड़ी होशियारपुर भेजी और यह संदेश भी कि वहां 33वीं पैदल रेजिमेंट विद्रोह करे और वह न हो सके तो 33वीं पैदल रेजिमेंट वहीं रहे। (उसी तरह वे रहे भी) बाद में उन सब लोगों के फिल्लौर की ओर आते ही फिल्लौर की तीसरी रेजिमेंट विद्रोह करे और फिर सब मिलकर दिल्ली की ओर चलें। अन्य स्थानों पर भी ऐसी ही योजनाएं चल रही थीं। परंतु उसपर कार्यवाही का समय आने के पहले ही सब बात फूटने से अंग्रेज सावधान हो जाते। हां, फिल्लौर के रेजिमेंट ने अंत तक आश्चर्यजनक गोपनीयता बनाए रखी। दिल्ली के लिए जब सीजट्रेन ले जाई गई उस समय उसके टुकड़े कर देना। उनके हाथ में था। परंतु इससे सारी योजना ही न फूट जाए, इसलिए इस रेजिमेंट ने अंत तक ऊपरी शांति बनाए रखकर कमाल किया। आखिर में 9 जून को जालंधर की ओर पक्की सूचना दी गई–क्वींस रेजिमेंट के कर्नल के बंगले को आग लगाई गई। यह संकेत होते ही आधी रात को जालंधर के सिपाहियों का विद्रोह इतना अचूक और तेजी से हुआ कि उनकी कर्कश रणध्वनि होते ही अंग्रेजों का साहस टूट गया। अंग्रेज महिला, बच्चे, पुरूष अपनी–अपनी जान बचाने के लिए तेजी से भागने लगे। परंतु जालंधर के

सिपाहियों को अभी फिरंगियों को काटने के लिए समय ही नहीं था। उधर दिल्ली में स्वतंत्रता के निशान पर अंग्रेजी तोपें निशाना साधे हुए थीं, इसलिए हर एक का मन उधर दौड़ रहा था। ॲडर्जटेंट बागशा व्यर्थ में बीच में आ रहा था, इसलिए एक घुड़सवार ने दौड़कर उसे गोली मारकर समाप्त किया। परंतु जालंधर के सिपाही हमारे पूर्ण विश्वास के हैं, इसलिए उन्हें निःशस्त्र न करें, ऐसा वहां के अंग्रेजी अधिकारियों ने अंत तक सरकार को सूचित किया हुआ था और उनका सचमुच उन सिपाहियों पर विश्वास था। इस कारण भी सिपाहियों ने उन पर आक्रमण नहीं किया। इतना ही नहीं अपितु जालंधर छोड़ते समय भी उन्होंने उनके हाथ में आए अधिकारियों को जीवनदान दिया। जालंधर के सैनिकों ने अपनी योजना को कितना गुप्त रखा था, उस गुप्तता के झांसे में आकर ही जिन व्यक्तियों ने उन पर विश्वास किया था, उनके उस विश्वास के फलस्वरूप ही उन्हें जीवनदान देने की उदारता सिपाहियों ने दिखाई।[61] और उन व्यक्तिगत संबंधों को राष्ट्रकार्य

[61] अंग्रेजों ने एक झूठी गप उड़ाकर उसे 'कलकत्त की काल कोठरी' नाम दिया और अंग्रेजों के अपने कुटिल मस्तिष्क से निकले इस भयंकर शोधकार्य पर विश्वास कर सारा विश्व सिराजुद्दौला की स्मृति को गाली–गलौज करता है। वास्तविक अर्थ में 'काल कोठरी' नाम जिसके लिए सार्थक है, सुनते ही रक्त जम जाए, अंग्रेजों के ऐसे एक शूर कृत्य का वृत्तांत उसमें सम्मिलित एक क्रूर कर्मी ने ही अपने मुंह से बयान किया है–''हथियार रखवा लिये जाएं, इस सकारण भय से भाग रहे सिपाही, जिपर केवल आशंका में ही गोलीबारी चालू थी, ऐसे कुछ सिपाही पंजाब में अजनाला के पास एक द्वीप में छिपे बैठे थे। इन सारे दो सौ बयासी सिपाहियों को कूपर पकड़कर अजनाला ले आया। अब इनका क्या करना है, यह प्रश्न उसके सामने आ खड़ा हुआ। जहां उनकी कायदे से छानबीन करनी थी, वहां तक वाहन न होने से उन्हें ले जाना संभव नही था। परंतु इन लोगों को एक साथ ही मृत्यु का दंड दिया जाए तो अन्य टुकड़ियों और विद्रोह करनेवालों मं भी उससे दहशत बैठने से आगे होनेवाला संभावित रक्तपात अपने आप टल जाएगा। पर 'यह अपने सिर बड़ी जोखिम होगी, 'इस बात की अनुभूति कूपर को थी। फिर भी उन सबको मार डालने का निर्णय उसने लिया। दूसरे दिन प्रातः उन्हें दस–दस की टोली में बाहर निकलवाकर सिखों से उनपर गोलियां चलवाई गई। इस तरह दो सौ सोलह लोगों को किनारे लगा दिया गया। परंतु अभी भी तहसील की गढ़ी में बंद छियासठ लोग रह गए थे। यह जानते हुए कि प्रतिरोध होगा, फिर भी कपूर ने दरवाजे खोलने का आदेश दिया। परंतु कोठरी से हलचल की कोई ध्वनि सुनाई नहीं दी। अंदर देखा गया तो छियासठ में से पैंतालीस के शव पड़े थे। इसका कारण, जो कूपर को ज्ञात नहीं था, वह यह था कि उस कोठरी की खिड़क–दरवाजे आदि इतने पक्के बंद कर दिए गए थे कि उन अभागे सिपाहियों के लिए वह गढ़ी काल कोठरी ही साबित हुई। शेष जीवित बचे इक्कीस भी गोलियों से भून दिए गए (दिनांक 1.8.1857)। कूपर द्वारा किए गए इस कार्य पर अज्ञानी भूतदया प्रेरित लोगों ने भारी हल्ला–गुल्ला कर उसका विरोध किया। परंतु कूपर के इस आचरण से ही लाहौर की टुकड़ियों में असंतोष का प्रसार टल सका, ऐसा बलपूर्वक कहकर रॉबर्ट मोंटगुमरी अट्टहास के साथ प्रतिपादित करता है कि कूपर एकदम सही था।'' –होम्स कृत–'हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्युटिनी', पृष्ठ 393

में बाधा न बनने देकर यद्यपि अपनी रेजिमेंट पर सरकार खुश थी, तब भी मातृभूमि की स्वतंत्रता के युद्ध का शंखनाद होते ही उस उदात्त कर्तव्य पर उन्होंने कैसा आत्मार्पण किया, यह पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

उस आधी रात को विद्रोह शुरू करने के पहले ह ीवह समाचार फिल्लौर के देशवीरों को बताने के लिए एक घुड़सवार दौड़ता गया था। जालंधर से स्वतंत्रता के इस दूत के आते ही फिल्लौर के सैनिकों ने विद्रोह किया। अब केवल जालंधर के लोगों के फिल्लौर पहुंचाने भर की देरी थी। पर अंग्रेजों के तोपखाने और घुड़सवारों को अनदेखा कर जालंधर से फिल्लौर आना कोई सरल काम नहीं था। परंतु अंग्रेजों में इतना गड़बड़ घोटाला फैल गया था और विद्रोहियों का नक्शा इतना सही था कि जालंधर के सारे सिपाही अपना अनुशासन बनाए हुए फिल्लौर पहुंच गए। अपने इन हजारों स्वदेश बंधुओं को अपनी ओर आते देखकर फिल्लौर पहुंच गए। अपने इन हजारों स्वदेश बंधुओं को अपनी ओर आते देखकर फिल्लौर के सिपाही प्रेम से उमड़ पड़े तथा अपनी लाइनें छोड़ भागकर आलिंगनबद्ध हुए और वह विशाल सेना स्वदेशी जमादारों, सूबेदारों की आज्ञा में दिल्ली की ओर चल पड़ी। रास्ते में एक नदी थी और उसके पर लुधियाना शहर था, जो उन देशवीरों की चरणधूलि की बाट जोह रहा था।

लुधियाना शहर में उस दिन प्रातः ही अंग्रेज अधिकारियों के पास जालंधर विद्रोह का तार आ गया था। पर वह जब तक मिले तब तक उस शहर के सिपाहियों को कब्जे में रखने की सारी आशा नष्ट हो चुकी थी; क्योंकि यह तार आने के पहले ही अपने भाइयों के जालंधर छोड़कर निकल पड़ने का समाचार उन्हें मिल गया था। लुधियाना के अंग्रेज अधिकारियों ने फिल्लौर से आ रही सेना को दोनों शहरों के मध्य स्थित सतलुज नदी पर रोकने का निश्चय किया। उस नदी का नावोंवाला पुल तोड़कर यूरोपियन, सिख और नाभा द्वारा सहायता के लिए भेजा लश्कर—ये सब नदी किनारे की सुरक्षा करने लगे। क्रांतिकारियों को जब पुल तोड़े जाने का समाचार मिला तो वे वहां से चार मील दूर जाकर नदी के पर उतरने लगे। उनकी कुछ सेना नावों द्वारा उस पार हो गई थी, कुछ हो रही थी और कुछ किनारे पर ही खड़ी थी। यह अवसर उचित व अनुकूल समझकर अंग्रेजों और सिखों ने उन पर तोपखाने से हमला शुरू कर दिया। यह समय रात के दस बजे का था, इसलिए अंग्रेजों की सेना निकट ही है, इस बात का क्रांतिकारियों को अनुमान नहीं लग रहा था। उनकी तोपें भी अभी नदी पर नहीं हुई थीं। ऐसी कठिन परिस्थिति में फंसे उन क्रांतिकारियों पर तोपखाने के साथ अंग्रेज और सिख अचानक आ टूटे थे। परंतु उनके हमले का पहला जोर समाप्त होते ही सिपाहियों ने तनिक भी पीछे न हटते हुए उन पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। अंग्रेजी तोपों और सिखों की मार के सामने नदी उतरते वे बिखरे हुए सैनिक अडिग होकर लड़ रहे थे। इतने में अंग्रेज सेनापति विलियम के सीने में एक सिपाही की सनसनाती हुई गोली आ धंसी और वह

मरणासन्न हो गिर पड़ा। तभी उस भयंकर रणभूम में आधी रात का अंधियारा दूर करने और स्वतंत्रता–भक्तों के संतप्त सिरों पर शीतल चंद्रिका की वर्षा करने हेतु रजनीनाथ का आकाश में उदय हो गया था। इस चंद्र प्रकाश से क्रांतिकारियों को अंग्रेजों की सारी व्यूह रचना समझ में आ गई और वे अपना स्थान छोड़कर अंग्रेजों पूरी शक्ति से टूट पड़े। इस अद्भूत आक्रमण के सामने अंग्रेजी सेना, सिख और अन्य राजनिष्ठ अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए।

अपनी इस आधी रात की विजय और जल्दी ही उदित उषःकाल की सुंदर प्रभा से और अधिक खिली वीरश्री से वे सारे क्रांतिकारी सैनिक दूसरे दिन दोपहर के लगभग लुधियाना शहर में घुसने लगे। लुधियाना में एक मौलवी अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होकर स्वराज्य–संस्थापना करने के लिए लगातार उपदेश करता घूमता रहता था। उस मौलवी के प्रचार से लुधियाना शहर पंजाब में क्रांतिकारियों का एक सशक्त केंद्र बन गया था। गुलामी की बेड़ियां तोड़ने के लिए अंतिम चोट करने का समय आ गया है, ऐसी सूचना मिलते ही वह सारा शहर 'दीन' की गर्जना करता उठ खड़ा हुआ। सरकारी भंडार लूटे गए; येरोपियन चर्च, यूरोपियन के घर, अंग्रेजी अखबारों के छापाखाने–ऐसे सारे स्थान जलाकर खाक कर दिए गए और जब सिपाही अंदर घुसने लगे तो उन्हें साथ लेकर यूरोपियनों के प्रमुख स्थानों और विशेष रूप से सरकार के आगे दुम हिलानेवाले सारे नेटिव कुत्ते खोज निकालने के लिए नागरिकों में स्पर्धा शुरू हो गई। कारावास तोड़े गए। जो कुछ भी सरकारी था या जो कुछ अंग्रेजों का था वह वह अग्नि की भेंट न चढ़ पाया तो चूर–चूर कर दिया गया और इस तरह लुधियाना शहर विद्रोह की आग में जलने लगा।

विद्रोहियों का दिल्ली जाना आवश्यक था; जबकि लुधियाना के किले पर रहकर पंजाब का वह नाका पकड़े रहना भी आत्यावश्यक था। यदि दिल्ली की भांत लुधियाना भी विद्रोह का केंद्र हो जाता तो उससे अंग्रेजी सत्ता को जोरदार धक्का लगा होता । हालांकि विद्रोही यह समझते नहीं थे, सिपाही; न उनका कोई सेनापति था, न ही कोई नेता। उनके पास यात्रा हेतु आवश्यक सामग्री भी नहीं थी। ऐसे समय में वहां कोई नाना साहब, खान बहादुर या मौलवी अहमद शाह होता तो उसने लुधियाना को कभी न छोड़ा होता। परंतु उन सबके न होने के कारण उन्हें दिल्ली की ओर जाने के सिवाय दूसरा मार्ग ही नहीं था और इसीलिए–स्वराज्य या गुलामी, इसका अंतिम निर्णय अब दिल्ली की प्राचीर पर ही होगा–ऐसी गर्जना करते हुए वे दिल्ली की ओर दिन–दहाड़े गाते–बजाते जा रहे थे, फिर भी उनका पीछा करने की किसी में हिम्मत नहीं थी।

मेरठ के विद्रोह के कोई तीन हफ्ते बाद तक क्रांतिकारियों को जो शांति बनाए

रखना अनिवार्य हो गया था, उस शांति का लाभ अंग्रेजों ने पंजाब में पूरी तरह उठाया। पंजाब में यूरोपियन सेना अधिक होने के कारण वहां की नेटिव रेजिमेंटों को या तो निःशस्त्र करना या असमय और अपरिपक्व अवस्था में विद्रोह करने को बाध्य करके उनका सहज नाश करना बहुता ही सुलभ हो गया। राज्य क्रांति के पक्ष से सिख रियासतदार और अन्य सिख लोग मिलकर अपने से ही मिल रहे हैं, यह देखकर ही वे सरहद से सतलज तक पंजाब में जितने भी हिंदुस्थानी थे उन्हें वहां से भगाकर पंजाब में विद्रोह का बीज समाप्त कर सके। इस समय लश्कर में ही नहीं अपितु गावों और शहरों में आराम से रह रहे हजारों हिंदुस्थानी लोग पंजाब से अंग्रेजों की इच्छा के कारण सीमा पार कराए गए और इस तरह पंजाब हाथ में आते ही वहां की यूरोपियन सेनाओं को दिल्ली की ओर तीव्रता से भेजा जाने लगा।

पंजाब के अंग्रेजों के पूर्ण नियंत्रण में रहने के दो मुख्य कारण थे। एक तो यह कि सिखों ने अंग्रेजों का साथ दिया। इन लोगों ने उस समय केवल चुप्पी ही साध ली होती तो अंग्रेजों के हाथों में पंजाब एक दिन भी नहीं रह पाता। इन सिख लोगों को क्रांतिकारियों ने अपनी ओर करने के लिए प्रयास नहीं किए, ऐसा भी नहीं था। दिल्ली के स्वतंत्र होते ही बादशाह के एक 'ईमानदार सेवक' ने उन्हें पंजाब के सारे समाचार सूचित करने के लिए एक लंबा, विस्तृत एवं बहुत ही मार्मिक पत्र लिखा था। उसमें वह ईमानदार पत्र–लेखक ताजुद्दीन लिखता है–"पंजाब के सारे सिख सरदार कायर, डरपोक और हिंदुस्थानी लोगों का साथ न देकर फिरंगियों के कुत्ते बने हुए हैं। मैं स्वयं उनसे मिला, उनसे संवाद किया और उनको जी–जान से कहा कि फिरंगियों से मिलकर जो तुम देशद्रोह कर रहे हो वह किसलिए? स्वराज्य में तुम्हारा लाभ नहीं है? फिर अपने इस लाभ के लिए ही तुम्हें बादशाह से मिलना चाहिए। इसपर वे मेरे सामने कहते हैं–देखिए, हमस ब अवसर की प्रतीक्षा में हैं। दिल्ली के बादशाह का आदेश लेकर घुड़सवार सिख राजाओं के पास आए तब उन्होंने उन्हें मरवा दिया। पंजाब पर नियंत्रण रखना अंग्रजों को सुलभ हुआ, उसका यह पहला और विशेष कारण है। सिखों के इस विरोध की परवाह न कर पंजाब से अंग्रेजों को भगाना किसी तरह भी संभव नहीं, ऐसा नहीं था। अंग्रेज जिस विलक्षण ढीलेपन से मई माह तक रहते थे उस ढीलेपन का लाभ उठाकर पूर्व संकल्प के अनुसार सब ओर एक साथ विद्रोह हुआ होता तो सिखों पर भी क्रांतिकारियों का आतंक छाने से कम–से–कम उनमें फूट तो निश्चित ही पड़ जाती। विशेषकर पंजाब के नेटिव सिपाहियों को एक–एक कर पकड़कर अंग्रेज जिस तरह उन्हें नरम कर सके वैसा बिल्कुल नहीं हो पाता। पंजाब में स्वराज्य की इच्छा नहीं थी। ठाणेश्वर के ब्राह्मण, लुधियाना के मौलवी, फिरोजपुर के दुकानदार और पेशावर के मुसलमान–सभी 'स्वराज्य

और स्वधर्म के लिए जंगी जेहाद करो', ऐसा उपदेश देते हुए घूम रहे थे। उपर्युक्त पत्र लेखक भी लिखता है–"बादशाह के दरबार से यदि कोई सरदार सेना के साथ इधर भेजा जाए तो पंजाब चुटकी बजाते ही स्वतंत्र हो जाएगा। सारी हिंदुस्थानी सेना विद्रोह कर उनके झंडे के नीचे आ जाती और सिखों का भागना मुश्किल हो जाता। मेरा ऐसा विश्वास है कि सारे हिंदू और मुसलमान आपके भाग्यशाली सिंहासन का प्रेम मुजरा करेंगे। और यह भी कि जून माह में ही विद्रोह करना इष्ट है, क्योंकि अंग्रेज सोल्जरों को धूप की गरमी में लड़ना बहुत कठिन होता है। वे लड़ने के पहले ही चटाचट मरने लगते हैं। इसलिए पत्र देखते ही आप कोई सरदार पंजाब में भेजे।

पंजाब के लोकमत का झुकाव दिल्ली की ओर होते हुए भी वह दिल्ली का लाभ नहीं ले सका, इसका कारण यह था कि दिल्ली में विद्रोह हो जाने के बाद तीन सप्ताह तक क्रांति की लहर का ठहरी रहना अपरिहार्य हो गया था। यही विद्रोह यदि पहले से निश्चित संकेतों के अनुसार एक सप्ताह में होता तो अंग्रेज कहीं भी हलचल नहीं कर सकते थे। पंजाब में अकेली एक–एक और अनाथ सेनाएं निःशस्त्र नहीं की जा सकती थीं। क्रांति की लहर निरंतर उबलने से सिखों जैसे अनिश्चित विचार के लोग भी उसमें बह सकते थे और प्रारंभ में ही विजय प्राप्त हो जाने पर जिनके मन क्रांति की ओर झुके हुए थे, पर क्रांति में सम्मिलित होने से डरते थे, उन्हें भी जोश आ जाता।

सारांश यह है कि सिख लोगों के देशद्रोह के कारण और अधपकी स्थिति में अंग्रेजों ने इन तीन सप्ताहों में चारों ओर यथासंभव बंदोबस्त करके कलकत्ता से इलाहाबाद तक यूरोपियन सेनाओं का निरंतर प्रवाह चालू रखा था। बंबइ, मद्रास, राजपूताना और सिंध प्रांत में विद्रोह से सहानुभूति रखनेवाले कोई हैं या नहीं, इसकी बारीकी से जांच कर उनको पंजाब की भांति ही समय रहते पूरी तरह नष्ट कर डालने के प्रयास आरंभ हो गए थे। और इस अग्रिम सूचना के लिए ईश्वर का आभार मानते हुए अब विद्रोह की ज्वालाएं स्थान–स्थान पर समाप्त कर दी गई हैं, यह विश्वास भी उन्हें होने लगा। इन तीन हफ्तों में अंग्रेजों की कार्यवाहियों के चलते क्रांति पक्ष की ओर से इक्का–दुक्का विद्रोह को छोड़कर सब ओर यथासंभव गोपनीयता रखी गई थी।

30 मई तक दोनों पक्षों की ऐसी स्थिति थी। यह स्थिति मई की 30 तारीख के बाद किस तरह पलट गई, अंग्रेजों के मन में उत्पन्न होता विश्वास कैसे चकनाचूर हुआ और तीन हफ्तों में हुई हानि की परवाह न करते हुए क्रांति की ज्वालाएं कैसे एकाएक भड़क उठी, यह देखना आवश्यक है। राज्य क्रांतियां किसी सूत्रबद्ध नियम से नहीं

चलतीं। राज्य क्रांति कोई घड़ी की तरह ठीक–ठीक चलनेवाला यंत्र नहीं है। राज्य क्रांतियां स्वैर संचारप्रिय होती हैं। उनपर सिद्धांतों का बंध नही रह सकता है, बाकी फुटकर नियम उनके अपूर्व धक्के से गिर जाते हैं। राज्य क्रांति का एक नियम है और वह यह कि उसकी पकड़ बनी रहनी चाहिए। मध्यांतर में चाहे नई और अकल्पित परिस्थितियां उत्पन्न हों, परंतु उनके कारण रूके बिना उन्हें एक तरफ करते हुए आगे बढ़ना होगा। राज्य क्रांति एक विचित्र पक्षी है, जो बहुत दिनों बाद पिंजरे से बाहर निकलने पर गंतव्य को जाने के पहले आकाश में देर तक उड़ान भरता है। जिसे उस गरूड़ जैसे पक्षी पर बैठकर इच्छित स्थान को पहुंचना हो वह उसकी पीठ पर अटल आसन लगाए। उड़ान भरकर उसकी मस्ती ठंडी हो जाने के बाद तक जो उसकी पीठ पर जमकर बैठा है उसी के पूरे नियंत्रण में वह आ जाता है।

मेरठ के लोगों ने इस राज्य क्रांति के पंछी को पिंजरे से कुछ पहले ही उड़ा दिया था; फिर भी उससे न घबराए श्रीमंत नाना साहब, लखनऊ के मौलवी, झांसी की बिजली छबीली आदि धुरंधर उस्तादों ने उस पक्षी की कैसे पकड़ की, वह सब हे इतिहास! अब तू हमें बता। उस गरूड़ पक्षी को पकड़े रखने की दृढ़ता हिंद भूमि के सब हाथों में न होने के कारण वह गरूड़ आकाश में कैसे उड़ गया, हे इतिहास! यह तू हमें बता। तू हमारे साथ पहले वर्ग के स्तुति गीत गा और दूसरे वर्ग के लिए हमारे साथ–साथ आक्रोश करने लग!

प्रकरण–5

अलीगढ़ और नसीराबाद

मेरठ में उत्पन्न भूकंप का धक्का जैसे ऊपर अंबाला और पंजाब की ओर सारा प्रदेश ध्वस्त कर रहा था वैसे ही उस भूकंप के धक्के की दूसरी लहर मेरठ के निचले प्रदेश की उस सारी भूमि को कंपित कर रही थी। दिल्ली के नीचे अलीगढ़ शहर में नौवीं नेटिव पैदल रेजिमेंट थी। इस रेजिमेंट को अलीगढ़ के मुख्य थाने के साथ–साथ मैनपुरी, इटावा और बुलंदशहर में भी रखा हुआ था। इस रेजिमेंट पर सरकार का इतना विश्वास था कि चाहे हिंदुस्थान के सारे सिपाही विद्रोह कर जाएं, फिर भी 9वीं रेजिमेंट राजनिष्ठ बनी रहेगी। बुलंदशहर के बाजार में राज्य क्रांति के गुप्त षड्यंत्र प्रारंभ होने का समाचार कानों में आ जाने के बाद भी इस क्रांति से 9वीं रिजिमेंट के सिपाही निश्चित ही अलग रहेंगे, ऐसा समझकर बुलंदशहर के अधिकारी सबकुछ सुरक्षित अनुभव करते रहे।

मई माह के करीब बुलंदशहर के आसपास के गावों ने अपने में से एक मानवीय, विश्वस्त एवं स्वातंत्र्य–प्रिय ब्राह्मण चुना और उसे तत्काल बुलंदशहर भेज दिया। एक ओर जिसकी राजनिष्ठा पर अंग्रेजों का अपना पूरा विश्वास है और दूसरी ओर जिसे मातृभूमि अपने अश्रुपूरित नेत्रों से अपलक देख रही है–ऐसी उस बुलंदशहर की सैनिक छावनी की ओर वह ब्राह्मण भयानक कल्पनाओं और अपने भावी यश–अपयश के बादलों से घिरा अपना हृदय लिए तेजी से जाने लगा। मातृभूमि की स्वतंत्रता और स्वधर्म की रक्षा के लिए क्या मेरे स्वदेश बंधु मेरा निवेदन मानेंगे? क्या स्वराज्य के उच्चतर

वातावरण में उड़ान भरने में सक्षम पंख इन सैनिक बंधुओं के पास हैं? मेरे इस भविष्यवाद को धिक्कारकर गुलामी के अंधियारे के गह्वर में सोये सुंदर उषःकाल के दर्शन हेतु मैं उनकी उस नींद को भंग कर रहा हूं। इसलिए मेरे सिर पर ये देशबंधु आघात ही करेंगे! मनोविकारों की ऐसी उथल–पुथल ह्रदय में चलते हुए भी जिसके चेहरे पर मूर्त शांति विराजमान थी, ऐसा वह ब्राह्मण अपना विलक्षण संदेश लिये लश्कर में प्रवेश कर गया। उन सिपाहियों को दीक्षा देते हुए उसने कहा कि एक बड़ी सी बरात निकालकर उस हल्ले–गुल्ले में आप सब विद्रोह देते हुए उसने कहा कि एक बड़ी सी बरात निकालकर उस हल्ले–गुल्ले में आप सब विद्रोह करें और सारे अंग्रेजों को मौत के घाट उतारकर दिल्ली की ओर चलें। अंग्रेजों का राज्य उलटने के सिद्धांत का विरोधी कोई था ही नहीं; पर उसमें भी उस सिद्धांत को यथार्थ में कैसे बदला जाए, इस प्रश्न का हल भी सुनकर उसकी ग्राह्यता–अग्राह्यता पर विचार चल रहा था। तभी उस रेजिमेंट के तीन सिपाहियों ने अंग्रेजों को यह समाचार देकर उस ब्राह्मण को कैद कर लियां तत्काल बुलंदशहर से उस ब्राह्मण को रेजिमेंट के मुख्य थाने की ओर रवाना किया गया और उन सब सिपाहियों के सामने फांसी पर लटकाने का दंड दिया गया। यह घटना जब अलीगढ़ में घटित हो रही थी, तभी इधर बुलंदशहर के उन तीन राजनिष्ठों पर सब ओर से थू–थू होने लगी।

उनपर गालियों की बौछार करते हुए बुलंदशहर का सारा लश्कर अधिकारियों की अनुमति न लेते हुए जिस स्थान पर वह क्रांतिदूत ले जाया गया था, उस अलीगढ़ शहर की ओर चल दिया। दिनांक 20 मई की शाम को उस ब्राह्मण को फांसी दी गई। बगल में सारी रेजिमेंट खड़ी की गई थी। अब क्या करें? दिनांक 31 मई तक रूकें तो ब्राह्मण निकलता नहीं, निकल ही गया है और फांसी पर उसकी मृत देह प्रतिशोध का बीभत्स व्याख्यान देती लटकी हुई है। भयानक व्याख्यान! शब्द के स्थान पर जहां रक्त की धाराएं स्खलित बह रही हैं। उस भयानक वक्ता ने जीवित रहते जो व्याख्यान कभी न किया हो, वह आज फांसी पर लटके एक शब्द भी न बोलते हुए कर दिया था। क्योंकि आधे क्षण में ही उन असंख्य सिपाहियों की भीड़ में से उछलकर एक सिपाही आगे आया और अपनी तलवार उस फांसी पर लटकते ब्राह्मण की ओर करके चिल्लाया, ''अरे यार, यह शहीद रक्त में नहा रहा है।'' बारूद के ढेर पर चढ़ी चिंगारी भी किंचित् देर से सुलगती, पर उस शूर सिपाही के मुंह से छूटी तेजस्वी चिंगारी को उन हजारों सिपाहियों के ह्रदय में घुसने में उतना भी समय नहीं लगा। उन्होंने अपनी तलवारें बाहर निकालीं और 'फिरंगियों का नाश हो' की गर्जना करते क्रोध से पगलाए वे हजारों नाचने लगे।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह देखते ही अंग्रेज कर्मचारी भयभीत हो गये। राजनिष्ठ 9वीं रेजिमेंट विद्रोह कर उठी। इतना ही नहीं, उसने अंग्रेजों को सूचित किया कि अपने प्राण बचाने हों तो तत्काल अलीगढ़ छोड़ दें। इस उदारता का लाभ लेकर अलीगढ़ के सारे अंग्रेज अधिकारी, उनकी पत्नियां, बच्चे, लेडी आउटॅरम आदि सारे–के–सारे अंग्रेज चुपचाप उस शहर से निकल गए। रात बारह बजे तक अलीगढ़ में

अंग्रेजी सत्ता का नामोनिशान न रहा।

अलीगढ़ स्वतंत्र हो जाने का समाचार 22 मई की शाम को मैनपुरी पहुंचा। मैनपुरी में 9वीं रेजिमेंट का कुछ हिस्सा रहता था, यह पहले ही बताया जा चुका है। उन सिपाहियों के मन में क्या था, यह अलीगढ़ की ओर से बंधुओं के समाचारों से स्पष्ट है। मई की 10 तारीख को मेरठ में क्रांति होने के बाद अंग्रेजों से लड़े सिपाही राजनाथ सिंह के अपने गांव जीवंती लौटने का समाचार मैनपुरी के अधिकारियों को मिलने पर उन्होंने अपनी 9वीं रेजिमेंट के कुछ सिपाहियों को उसे पकड़ने के लिए भेजा। परंतु उन सिपाहियों ने राजनाथ सिंह को पकड़ने की जगह सुरक्षा के साथ उसे जीवंती के बाहर पहुंचा दिया और अंग्रेजों को सूचना दी कि जीवंती में राजनाथ सिंह नाम का कोई व्यक्ति रहता ही नहीं। सिपाही रामदीन सिंह ने आदेश की अवहेलना की, इसलिए उसे कैद कर अंग्रेज अधिकारियों ने सिपाहियों के पहरे में अलीगढ़ भेज दिया। परंतु आधे रास्ते में आने के बाद पहरे के सिपाहियों ने रामदीन सिंह को मुक्त कर दिया। उन्होंने उसकी बेड़िया काट डाली और वे चुपचाप मैनपुरी लौट आए।[62]

इस स्थिति तक पहुंचा वह नेटिव लश्कर केवल संकेत समय के लिए रूका हुआ था और उस एक निश्चित समय के पूर्व शत्रु को अपने पैर काट डालने का अवसर न मिले, इसलिए ऊपर से इतना शांत व्यवहार कर रहा था कि यह 9वीं रेजिमेंट 'राजनिष्ठतम गिनी हुई। परंतु ऊपर बताये गए ब्राह्मण के दौरे के बाद से सिपाहियों का ही नहीं अपितु अलीगढ़ की सारी जनता का गुस्सा अतिरेक की सीमा चला गया था। यह 9वीं रेजिमेंट अलीगढ़ में फैलते जा रहे असंतोष को दबाने जब शहर में भेजी गई तब शहर से निकलते समय बाजार के खटीक और कसाई लोगों ने उन सिपाहियों से पूछा कि यूरोपियनों को कब मारेंगे और स्वतंत्रता के लिए कब उठेंगे? खटीक और कसाई भी जिसके लिए जल्दी कर रहे हों वह कृत्य अब भी टालना सिपाहियों को अच्छा कैसे लगे! और तभी अलीगढ़ का समाचार आया। रेजिमेंट के अन्य लोगों द्वारा विद्रोह कर देने के बाद अब केवल अपना ही रूका रहना निंदनीय है, यह देखकर मैनपुरी का लश्कर विद्रोह कर उठा। उन्होंने भी अलीगढ़ के अपने भाइयों की भांति अंग्रेजों को जीवनदान दिया, शस्त्रागार से शस्त्र और भरपूर गोला–बारूद ऊंटों पर लादकर उन सारे सिपाहियों ने 23 मई को दिल्ली की ओर तत्काल कूच किया।

इसी समय इटावा की टुकड़ी में भी धुआंधार हो रही थी। इस इटावा शहर के मुख्य मजिस्ट्रेट डेनियल की सहायता से पड़ोस के रास्ते पर गश्त करने को एक चुनी हुई सेना तैयार की। 19 मई को मेरठ से आए कुछ सिपाही इस सेना से मिले। वे मुट्ठी भर सिपाही शरण में आ गए और उन्हें कुछ थोड़े लोगों के सशस्त्र पहरे में रखने का आदेश मिला। यह आदेश हमारे सिरमाथे है, ऐसा दिखाते हुए मेरठ के उन सिपाहियों ने

[62] चार्ल्स बाल, खंड 1, पृष्ठ 134।

अपने शत्रु को पूरी तरह असावधान कर दिया और फिर वे ही शस्त्र लेकर उन्होंने उन सबको कत्ल कर दिया। यह समाचार फैलते–न–फैलते वे सिपाही पड़ोस के एक हिंदू देवालय में जा घुसे और अंदर शस्त्र–सज्जित हो घात लगाकर बैठ गए। इटावा शहर का कलेक्टर मि. एलन ह्यूम यह समाचार पाते ही मि. डेनियल के साथ कुछ नेटिव सेना लेकर उस मंदिर पर हमला करने निकला। ह्यूम को यह विश्वास था कि उसके सिपाहियों के हमला करने के पूर्व उन विद्रोहियों को गांववालों ने उनका सफाया करना छोड़ उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें ढेर सारी रसद पहुंचा दी थी। गांववालों ने हमें धोखा दिया; पर कम–से–कम अपने साथ आए सिपाही और पुलिस तो धोखा नहीं देंगे, इस विश्वास से मंदिर पर आमने से आक्रमण करने आए ह्यूम साहब उन सिपाहियों को उनके मंदिर में छोड़कर इटावा की ओर भाग गए।

उस दिन अर्थात् तारीख 19 मई को ही इटावा की नेटिव सेना विद्रोह करेगी, ऐसी खबर सब ओर थी। परंतु उस सेना का मुख्यालय अलीगढ़ में होने से और उधर से विद्रोह का आदेश अभी न मिलने से इटावा की नेटिव सेना अवश्य ही चुप होकर बैठ गई होती, परंतु मध्यांतर में ही उस शहीद ब्राह्मण के आत्मयज्ञ की ज्वालाएं एकाएक भड़क उठने का समाचार इटावा में 22 तारीख को पहुंच जाने से वहां के सिपाहियों को विद्रोह करना आवश्यक हो गया। दिनांक 23 मई को वहां की सारी सेना ने 'हर–हर–महादेव' की घोषणा कर दी और एक हाथ में तलवार तथा दूसरे हाथ में जलती कब्जे में ले लिया। कारावास तोड़ दिए गए और सारे अंग्रेजों को कह दिया गया कि वे तुरंत भाग जाएं, अन्यथा एक सिरे से उनका कत्ल होगा। यह अभूतपूर्व एवं भयप्रद समाचार सुनते ही भयभीत हुए अंग्रेज लोग अपनी पत्नी–बच्चों को सहित जिधर रास्ता सूझा उधर दौड़ पड़े। स्वयं एलन ओ. ह्यूम ने नेटिव सिपाहियों की उदारता का लाभ लेकर, एक नेटिव महिला का वेश धारण कर 'यः पलायति स जीवति' का आश्रय लिया।[63] इस ह्यूमबाई के भागते ही इटावा पूर्ण स्वतंत्र हो जाने की मुनादी पीटी गई और बाद में वे सारे सिपाही दिल्ली की ओर जानेवाली अपनी रेजिमेंट के मुख्य भाग से मिल गए।

इस तरह यह पूरी रेजिमेंट एक व्यक्ति के कारण एकाएक विद्रोह कर उठी। इतना ही नहीं अपितु खजाना लूटना, देश स्वतंत्र करना, विदेशियों को अपनी तलवार की

[63] रेड पैंफलेट, खंड 2, पृष्ठ 70 ।

नोंक पर रहते हुए भी जीवन–दान देना और बढ़ जाना, इस सारे कार्यक्रम का अभ्यास अलीगढ़, बुलंदशहर, मैनपुरी और इटावा जैसे दूर–दूर के भाग में भी एक साथ करने, दिल्ली का सारा नेटिव लश्कर विद्रोह कर दे, फिर भी वे विद्रोह नहीं करेंगे–जिसपर यह विश्वास सरकार का था वहीं रेजिमेंट कोई और नहीं उठा, उससे पहले तलवार निकालकर उठ खड़ी हुई। यह सब समाचार मिलने के बाद अंग्रेजों को अपने जीवन का तनिक भी भरोसा नहीं रह गया था।

अजमेर से कोई छह कोस पर नसीराबाद नाम का गांव है। वहां अंग्रेज सिपाहियों की छावनी थी और वहां 30वीं नेटिव पैदल रेजिमेंट, नेटिव तोपखाना, पहली बंबई लांसर और मेरठ से वहां लाई गई 15वीं रेजिमेंट–इतनी सेना इकट्ठा थी। मेरठ से कुछ दिनों पूर्व ही लाई गई इस रेजिमेंट में अंग्रेजी सरकार के प्रति अति द्वेष और उसे उतार फेंकने की उत्कट लालसा पूरी तरह भरी हुई थी। मेरठ की गुप्त सभाओं में जो–जो प्रस्ताव हुए वे सब आमने–सामने नसीराबाद के सिपाहियों को समझाकर कहने को प्राप्त हुआ। यह दुर्लभ अवसर मेरठ के उन एक जहार राजनीतिक प्रचारकों (उपदेशकों) ने व्यर्थ गंवाया होता तो ही आश्चर्य होता। बंबई लांसर्स के कुछ गैर नेटिवों को छोड़कर सारा नेटिव लश्कर एकमत हो गया, क्योंकि उस दिन तोपखाने का प्रभाव बहुत ढीला हो गया था। अतः निर्धारित संकेत मिलते ही मेरठ की 15वीं रेजिमेंट ने पहले तोपखाना हथिया लिया। उसे वापस लेने बंबई के लांसर्स के साथ अंग्रेज अधिकारी आगे बढ़े। परंतु कुछ ही देर में उस लांसर्स के सिपाही मैदान से भाग गए और उनके अंग्रेज अधिकारी प्रेत बनकर भूमि पर गिर गए। इतना ही नहीं, उनके शरीरों के टुकड़े–टुकड़े कर दिए गए। कर्नल पेनी, कैप्टन स्पॉटिस वुड भी इस लड़ाई में मारे गए। फिर उस शहर से आशा छोड़कर सारे अंग्रेज बोरिया–बिस्तर लिये भाग खड़े हुए। विद्रोहियों ने खजाना अपने नियंत्रण में कर लिया और उनमें से सर्वसम्मति से चुने गए नेटिव सेनापति ने दिल्ली के बादशाह के नाम से सिपाहियों में इनाम बांटे। यूरोपियनों के घर जलाए गए, नसीराबाद स्वतंत्र हो जाने की घोषणा की गई। विद्रोहियों का दो–तीन हजार लोगों का वह समुदाय अपने शस्त्र चमकाता लश्करी ठाट से अपने स्वदेशी नए सेनापति के अधीन लश्करी बैंड बजाता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ चला।

प्रकरण–6

रूहेलखंड

रूहेलखंड प्रदेश की मुख्य राजधानी का शहर बरेली है। इस राज्य में रोहिला जाति के पठानों का राज था और उसे जब से अंग्रेजों ने छीना, तभी से इस अपमान का बदला लेने के लिए घात लगाए बैठे शूर, बलिष्ठ और क्रूर मुसलमानों की एक बड़ी बस्ती वहां थी। सन् 1857 के आसपास अंग्रेजों के शिकंजे से छूटने के लिए विद्रोह की चर्चा जिन किन्हीं प्रदेशों में रंग ला रही थी उसमें रूहेलखंड की और उसकी राजधानी की भी गिनती करनी होगी। बरेली में इस समय 9वीं इर्रेग्यूलर घुड़सवार, नेटिव पैदल की अठारह और 68वीं रेजिमेंट तथा नेटिव तोपखाने की एक बैटरी–इतनी नेटिव सेना थी। इस ब्रिगेड का ब्रिगेडियर सिवाल्ड था। अप्रैल में कुछ सिपाहियों ने कारतूसों के संबंध में आशंका व्यक्त की थी। परंतु उधर ध्यान न देते हुए सरकार ने सिपाहियों ने कारतूसों को एक–एक में अलग करके उनसे कारतूस चलवाए। आगे भी एक–दो बार गड़बड़ होने से सिपाहियों में क्षोभ बढ़ ही रहा था; फिर भी सरकार को उनके चेहरों पर संतोष ही दिखता रहा।

इसी समय 14 मई को मेरठ विद्रोह का समाचार बरेली आ पहुंचा। यह समाचार आते ही अंग्रेजों ने अपने बाल–बच्चे नैनीताल भेजकर घुड़सवारों को तैयार रहने का आदेश दिया। यह घुड़सवार पलटन नेटिव ही थी, पर थी सरकार के पूर्ण विश्वास की। इस घुड़सवार रेजिमेंट के साथ बरेली की सभी नेटिव सिपाहियों को परेड पर बुलाकर अंग्रेज अधिकारियों ने दिनांक 14 मई को उनहें उत्तम आचरण रखने का आदेश किया। नए कारतूस अब काम में नहीं लाए जा रहे हैं, सिपाहियों को जो पसंद हैं वही पुराने

कारतूस वे काम में लाएं। नए कारतूस यदि दिखाई दिए तो मैं उनका चूरा कर दूंगा, ऐसा स्पष्ट कहते हुए एक अधिकारी ने सिपाहियों में व्याप्त कारतूसों का डर दूर करने का प्रयास किया। वास्तव में देखें तो अब सिपाहियों के भय पर व्याख्यान देते समय कारतूसों की बात करना विषयांतर ही था। ˙ ˙ ˙ स्वयं कमांडर–इन–चीफ द्वारा सारे हिंदुस्थान में सिपाहियों को सैनिक आदेश से यह घोषित कर दिया गया था कि आगे से नए कारतूस काम में लाना सरकार ने बंद कर दिया है। मरेठ के विद्रोह के बाद जब सरकार ने स्वयं ही कदम पीछे हटा लिया और जिन कारतूसों के लिए मई माह के पहले इतनी जिद की थी–वे ही कारतूस काम में लाना स्वयं ही बंद किया तो–इस आदेश में सरकार की भयग्रस्तता और दुर्बलता के सिवाए सिपाहियों व लोगों को कुछ और नहीं दिखा। कारतूसों के कारण सिपाही भड़के हैं, यह समझने में सरकार से जो गलती हुई उसका पूरा विस्फोट बरेली में होने का अवसर आ गया था। ब्रिगेडियर ने यह कहकर कि नया कारतूस दिखते ही मैं उसे चूरा कर दूंगा, उनका डर दूर करने का प्रयास किया। परंतु अब इस तरह के आदेश से शांति स्थापित होने के दिन नहीं रहे थे; क्योंकि सिपाहियों को डर कारतूसों का नहीं था, वहां कारतूसों के संबंध में कैसा भी आदेश दिया जाए, तो भी उसका क्या उपयोग? अंग्रेजों को आदेश देने का अधिकार रहे या न रहे, यही जहां चर्चा थी वहां नया आदेश देने से वह चर्चा बंद न होकर उलटे अधिक तीव्र होनी थी; अब कारतूसों के प्रकरण में अच्छा या बुरा, कैसा भी व्याख्यान देना विषयांतर ही था; क्योंकि दिल्ली में स्थापित स्वकीय सिंहासन की ओर से हिंदुस्थान का स्वातंत्र्य ध्वज थामे रखने के लिए रूहेलखंड के लोगों के लिए आग्रहपूर्ण और एक आवश्यक निमत्रंण आया हुआ है। अब इस निमत्रंण–पत्रिका को ठुकराना है क्या?

''दिल्ली के फौजी बहादूरों की ओर से बरेली के फौजी बहादुरों को प्रेमालिंगन! भाई, दिल्ली में अंग्रेजों से लड़ाई हो रही है। परमेश्वर की कृपा से अपनी एक पराजय भी उनकी दस पराजय के बराबर हानि कर रही है। अनगिनत स्वदेशी वीर इधर आ रहे हैं। ऐसे समय आप वहां भोजन कर रहे हों तो हाथ धोने यहां आना। शाहों का बादशाह और वैभव का आगर जो अपना दिल्ली का बादशाह है, वह आपका बढ़िया मान–सम्मान करेगा और आपकी सेवा का उत्तम पुरस्कार भी देगा। आपकी तोपों की गड़गड़ाहट के लिए हमारा कार्य और आपके दर्शनों के लिए हमारे नेत्र चातक की तरह बाट जोह रहे हैं। आइए, जल्दी आइए! क्योंकि बंधु! भवदागमन के वसंत के बिना यहां गुलाब कैसे खिलेगा? दूध के सिवाए बच्चा कैसे जिएगा?[64]

अब ऐसी निमंत्रण–पत्रिका को कैसे ठुकराया जाए? ऐसे निमंत्रणों के बीच रूहेलखंड के अंतिम स्वतंत्र रोहिला सरदार हाफिज रहमत का वंशज भी बरेली में गुप्त षड्यंत्र के ताने–बाने बुन रहा था। इस खानबहादुर खान को अंग्रेजों की ओर से वह हाफिज रहमत खां का वंशज होने के नाते 'एक' और वह अंग्रेज सरकार में जज था,

[64] असली पत्र : कॉलिंस नैरेटिव, पृष्ठ 33 ।

इसलिए 'दूसरी'–ऐसी दो पेंशनें मिलती थीं। अंग्रेज अधिकारियों का मुंह–लगा रहने में खान बहुत ही कुशल है, उधर यह कहा जाता था। सरकार का भी उसपर वैसा ही विश्वास था और बरेली के सारे गुप्त षड्यंत्रों का प्राण भी यही था।

बरेली स्थित सारे नेटिव सिपाही और रूहेलखंड की स्वतंत्रता–प्रेमी जनता से इस निमंत्रण पत्र द्वारा जल्दी दिल्ली आने का आग्रह यद्यपि किया गया था, तब भी पहले से निश्चित 31 मई के दिन की राह में बरेली के सारे सिपाही अंग्रेजों के लश्करी आदेशों का पालन पूरी तरह करते हुए अपने–अपने काम कर रहे थे। इस बीच मेरठ से चले सौ सिपाही चुपके से लाइन में कुछ दिन रहकर और उधर के उत्क्षोभक समाचारों से क्रांति की हवा अधिक भरकर चले गए। फिर भी सिपाहियों ने ऊपर से शांति बनाए रखी थी। यूरोपियन लोग अपने बाल–बच्चे वापस बुला लें, यह निवेदन उसमें सिपाहियों के सूबेदार कर रहे थे। परंतु यह निवेदन माना जाने से पहले ही 29 मई को ऐसी भूमिका बनी कि प्रातः नदी पर नहाते समय उस दिन दोपहर को दो बजे ही यूरोपियनों को कत्ल करने की शपथ सिपाहियों ने ले ली। तत्काल अंग्रेजों ने अपने भरोसे की घुड़सवार रेजिमेंट तैयार की। वह भी बिना ना–नुकुर किए तैयार हो गई। परंतु वह पूरा दिन बीत गया, पर सिपाही उठे नहीं। यह समाचार झूठ निकला; फिर भी एक बात सिद्ध हो गई कि घुड़सवार पूरी तरह अपने अधीन हैं, यह कहते हुए अंग्रेज रात को लौट गए। फिर दूसरा पक्का समाचार आया कि घुड़सवार रेजिमेंट ने तो पहले ही शपथ ले ली है कि हम अपने देशबंधुओं पर शस्त्र नहीं उठाएंगे और फिरंगियों की ओर से नहीं लडेंगे। ऐसे में किस बात पर विश्वास किया जाए, यह अंग्रेजों की समझ में नही आ रहा था। इस तरह 29 मई ही नहीं, 30 मई भी निकल गई और उस दिन तो सिपाहियों का आचरण इतना राजनिष्ठ हो गया था कि वैसा शायद कभी नहीं था। ऐसे में सैनिक–असैनिक–सारे अंग्रेज अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि संकट टल गया है और अब डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

31 मई उदित हुई। उस दिन कैप्टन ब्राउन लो के घर को एकाएक आग लग गई थी। परंतु अंग्रेजों के मन में डर उत्पन्न हो, ऐसा कोई विशेष कारण नहीं था। वह दिन रविवार का था। रविवार को होनेवाली लश्करी हाजिरी हो गई। नेटिव अधिकारियों की रिपोर्ट आ गई। अंग्रेज अधिकारियों को यह भी लगा कि आज सिपाही लोगों में विशेष संतोष और शांति दिख रही है। चर्च में अंग्रेजों ने प्रार्थना भी की। कहीं अणु मात्र भी गड़बड़ नहीं दिखी। घड़ी ने दोपहर के ग्यारह बजाए।

तभी सिपाहियों की लाइन से एक तोप छूटी। तोप छूटते ही बंदूकों की आवाजें और चिल्ल–पों से आकाश भर गया। बरेली की क्रांति इतनी सूत्रबद्धता से की गई थी कि क्रांति आरंभ होते ही कौन किस यूरोपियन का खून करेगा, यह पहले ही ठहरा लिया

गया था। ग्यारह बजते ही 68वीं पैदल सेना ने अपनी लाइन के पास के यूरोपियनों पर आक्रमण किया। छोटी–छोटी टुकड़ियां अलग–अलग बंगलों की ओर तुरत–फुरत चल पड़ीं। बाकी बचे सिपाहियों ने इधर–उधर भागना चाहनेवाले अंग्रेजों की व्यवस्था करने, उनके घर लूटने, उनमें आग लगाने की दौड़ लगाई। उन कर्कश चीत्कारों को सुनकर डरे–सहमे यूरोपियन लोग घुड़सवारों की लाइन की ओर दौड़े। वहां आश्रयार्थ इकट्ठे होने की सारे मुलुकी और लश्करी अधिकारियों की योजना पहले से बनी थी। वहां जाते ही नेटिव घुड़सवार रेजिमेंट को विद्रोहियों पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पर उस रेजिमेंट का मुख्य नेटिव अधिकारी मोहम्मद शफी विद्रोहियों से मिला था। घुड़सवारों को अपने पीछे दौड़कर आने का आदेश देता वह विद्रोहियों की ओर दौड़ चला। उसने घुड़सवारों को–'स्वधर्म के लिए बलिदान दो। देखो, वह हरा निशान तुम्हें बुला रहा है। 'ऐसा चिल्लाकर कहा और सारे घुड़सवार दौड़ पड़े। फिर भी, जो कोई शेष रहे उन्हें लेकर अंग्रेजों ने एक बार परेड की ओर आने का प्रयास किया। पर विद्रोहियों की मार के आगे एक क्षण भी रूकना असंभव होने के कारण उन्होंने उधर से पीठ फेरी और सबके सब नैनीताल की ओर भागने लगे। ब्रिगेडियर सिवाल्ड इस पहले ही हमले में मारा गया। कैप्टन कर्बी, लेफ्टिनेंट फ्रेजर, सार्जेंट वाल्डन, कर्नल ट्रूप, कैप्टन रॉबर्ट्सन आदि जो भी अधिकारी विद्रोहियों के हाथ लगे, उन्हें उन्होंने काट डाला। इस कत्लेआम से बचकर लगभग बत्तीस अधिकारी नैनीताल तक सही–सलामत पहुंच सके। इस तरह छह घंटों के अंदर बरेली में अंग्रेजी शासन का अंत हो गया।

अंग्रेजी निशान उतार फेंककर बरेली में स्वतंत्रता का झंडा फहराते ही नेटिव तोपखाने के मुख्य सूबेदार बख्त खान ने सारी नेटिव सेना का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। बख्त खान का नाम आगे दिल्ली की लड़ाई में हमको सुनने को मिलेगा। इस सेनापति ने सारे नेटिव सिपाहियों को स्वतंत्रता के बाद किस तरह व्यवहार करना है और नवस्थापित स्वराज्य में क्या–क्या कर्तव्य करने चाहिए, इसपर एक भाषण दिया और बाद में अंग्रेज ब्रिगेडियर की बग्घी में बैठकर यह स्वदेशी ब्रिगेडियर बरेली के रास्ते से जाने लगा।[65] उसके साथ अलग–अलग अंग्रेज अधिकारियों की गाड़ियों में नवनियुक्त अधिकारी भी चल दिए। खानबहादुर खान के नाम का जयघोष करके दिल्ली के बादशाह के सूबेदार की हैसियत से उन्होंने रूहेलखंड का शासन अपने हाथ में लिया। बरेली में स्थित यूरोपियनों के घर–द्वारों को जलाकर, लूटकर भस्म करने के बाद फिर कैद किए गए यूरोपियनों को खानबहादुर ने अपने सामने बुलवायां अंग्रेजी शासन में जज का काम करने से उन्हें न्याय कैसे किया जाता है, यह ज्ञात ही था। इसलिए उन्होंने उन यूरोपियन अपराधियों की जांच के लिए एक कोर्ट नियुक्त किया। इन अपराधियों में

[65] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 175 ।

वायव्य प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर का दामाद डॉ. 'हे' भी था। बरेली के सरकारी कॉलेज का प्रिंसिपल डॉ. कर्सन भी था। बरेली का जिला मजिस्ट्रेट भी था। एक दिन पूर्व ही राजनिष्ठ खानबहादुर खान इसके गले में गलबहियां डालकर बैठे थे। आज ये सिंहासन पर और वह अपरधी के पिंजरे में था। ज्यूरी की शपथ लेकर रीति अनुसार न्यायासन पर बैठे। अलग–अलग आरोप अलग–अलग अपराधियों पर लगातार उन्हें फांसी का दंड सुनाया गया और उन छह यूरोपियन लोगों को तुरंत फांसी पर चढ़ा दिया गया। तुरंत ही खानबहादुर के आदेश से एक विज्ञापन छापा गया कि यूरोपियन कमिश्नर भाग गया है। उसे जो पकड़कर लाएगा या उसका सिर काट लाएगा, उसे एक हजार रूपए का पुरस्कार सरकार के खजाने से दिया जाएगा। इस तरह यूरोपियन रक्त और मांस से अपना सिंहासन पक्का जमाने के बाद खानबहादुर ने सारा रूहेलखंड स्वतंत्र होने का समाचार दिल्ली भेजा। उस दिन विद्रोह ग्यारह बजे आरंभ हुआ और शाम को सूर्यास्त के पूर्व सारा प्रांत स्वतंत्र हो जाने की घोषणा दिल्ली की ओर चल दी।

वह सारा प्रांत स्वतंत्र हो जाने की घोषणा केवल शाब्दिक थी, ऐसा भी नहीं है। उधर बरेली में विद्रोह की तोपें अपनी गड़गड़ाहट से अंग्रेजी सत्ता को कंपा रही थीं, इधर शाहजहांपुर में भी गोरे रक्त का छिड़काव होने लगा था। बरेली से शाहजहां लगभग चालीस मील की दूरी पर है। वहां 28वीं नेटिव पैदल रेजिमेंट थी। मेरठ की खबर शाहजहांपुर 14 मई को पहुंची। परंतु अंग्रेज अधिकारियों को पता चल जाए, ऐसा एक भी खुला कृत्य न होने से 31 मई का दिन भी अन्य दिनों की तरह बड़ी शांति, संतोष और उल्लास में उदय हुआ। वह रविवार का दिन था। सारे अंग्रेज चर्च में भी गए। उनकी प्रार्थना अभी आधी ही थी कि चर्च की ओर सिपाही तीव्रता से दौड़ते हुए आने लगे। उस चर्च का चॅप्लेन बाहर आया तो उसका हाथ सिपाहियों ने उड़ा दिया और विद्रोह की शुरूआत हो गई। शहर का मजिस्ट्रेट रिफेट्स भागते हुए मारा गया। सर बाडोर को चर्च के अंदर ही कुचल दिया गया। चर्च पर आक्रमण करने एक टोली इधर आई;तभी दूसरी एक टोनी कैंटोनमेंट में यूरोपियनों को मारने के लिए भेजी गई थी। उसने उधर आग लगाने और लूटने का काम चालू कर दिया था। असिस्टेंट मजिस्ट्रेट जान बचाने भागा तो बरामदे में ही काट डाला गया। सिपाहियों से दो बातें कहने का प्रयास डॉ. बाउलिंग ने किया और सिपाही भी उसकी बात सुनने लगे; परंतु दुर्भाग्य, उसने उनको 'राजद्रोही' कह दिया। उसके मुंह से यह शब्द निकलना था कि एक गोली सनसनाती हुई आई औ वह चल बसा। चर्च की ओर जो विद्रोही गए थे वे केवल तलवारें और लाठियां लेकर गए थे, इसलिए वे बंदूकें लेने लाइनों की तरफ आए। इसी बीच सिख सिपाही और बावरची आदि नौकरों ने कुछ अंग्रेज स्त्री–पुरूषों को पास के एक राजा के यहां पहुंचाया। पर राजा द्वारा अपनी असमर्थता व्यक्त कर उन्हें निकाल देने पर वे उघड़े बदन, नंगे पैर महमंदी की ओर निकल गए। इस तरह 31 मई की संध्या

तक शाहजहांपुर भी स्वतंत्र हो गया।

बरेली से वायव्य दिशा में लगभग अड़तालीस मील की दूरी पर मुरादाबाद जिला मुख्यालय है। वहां 29वीं नेटिव पैदल रेजिमेंट और नेटिव तोपखाने की आधी बैटरी–इतनी सेना थी। मेरठ के समाचार के बाद इस सेना के मन में कितनी राजनिष्ठा है, यह देखने का एक अपूर्व अवसर आया। मरेठ के कुछ सिपाही मुरादाबाद के पास ही ठहरे हुए हैं, ऐसा समाचार अंग्रेज अधिकारियों को 18 मई को मिला तो उन्होंने उनपर रात में ही छापा मारने का आदेश उस रेजिमेंट को दिया।

उस आदेश को सिर–माथे लेकर उन सिपाहियों ने उस रात मेरठ के जंगल में सो रही सेना पर बहुत जोर का आक्रमण किया। परंतु जाने क्या हुआ कि मेरठ की उस मुट्‌ठी भर सेना पर सोते हुए–आकस्मिक और प्रबल आक्रमण होने पर भी उसमें से एक को छोड़ सारे सैनिक जीवित भाग गए। पर सिपाही उसके लिए क्या करें? उस रात ॲधियारा भी विकट था। अंग्रेज अधिकारियों ने कहा, ''सिपाहियों ने कमाल का आक्रमण किया; पर ॲधियारे के कारण ही शत्रु जीवित भाग सका।'' अब यह ज्ञात हुआ कि मेरठ की सेना पर मुरादाबाद के सिपाहियों ने दिखावे का आक्रमण किया था। इतना ही नहीं, उस रात भागे हुए मेरठ के कुछ सिपाही मुरादाबाद के सिपाहियों की लाइन में ही आकर रहने लगे थे। परंतु अंग्रेजों का 29वीं रेजिमेंट पर उस कमाल के आक्रमण से भारी विश्वास तक कुछ भी घटित नहीं हुआ।

31 मई उदित हुई और परेड पर सिपाही पूरे अनुशासन में एकत्र होने लगे। ओदश के बिना तुम लोग यह क्या कर रहे हो? ऐसा अंग्रेज अधिकारी जो पूछने लगे तो सिपाहियों ने उन्हें आदेश दिया कि ''कंपनी का राज समाप्त हो गया है, अतः आप प्रदेश छोड़कर भाग जाएं, नही ंतो आपको कत्ल कर दिया जाएगा। तुरंत नहीं जा सकते तो दो घंटे की मोहलत दी जा सकती है। परंतु उतनी देर में मुरादाबाद खाली करना होगा।'' सैनिकों के इस ओदश के साथ ही मुरादाबाद की पुलिस ने भी अब अंग्रेजों के आदेशों का पालन न करने की घोषणा की और शहर के नागरिकों ने भी उससे सहमति जताई। एक ही समय तीनों ओर से चेतावनी मिलते ही मुरादाबाद के जज साहब, कलेक्टर साहब, मजिस्ट्रेट साहब, सर्जन साहब और अन्य सारे साहब अपने बाल–बच्चें लेकर एक पल भी विलंब न करते हुए मुरादाबाद में दिखे उन्हें काट डाला गया। मि. पॉवेल आदि कुछ लोगों ने इस्लाम धर्म अपनाया और अपने प्राण बचाए। सैनिकों ने खजाने पर कब्जा किया। सारी सरकारी संपत्ति पर भी कब्जा किया गया और मुरादाबाद पर 31 मई की शाम से पूर्व ही हरा झंडा लहराने लगा। [66]

[66] चार्ल्स बाल, भाग 1 ।

बरेली और शाहजहांपुर–इन दो शहरों के बीच बदायूं नामक जिले का मुख्यालय है। उस जिले का कलेक्टर और मजिस्ट्रेट मि. एडवर्ड्स उसी शहर में रहता था। अंग्रेजी राज के प्रारंभ से पुराने जमींदारों की दुर्दशा और लगान वसुली के लिए झटपट की जानेवाली नीलामी में हाथ से जाती हुई जमीनों से पूरे रूहेलखंड के बड़े–बड़े जमींदार और किसान बहुत त्रस्त हो गए थे। उसमें भी बदायूं में लगान पद्धति का इतना अत्याचार था कि यह जिला अंग्रेजी राज को मिटा देने के लिए किसी भी अवसर की ताक में था। यह बात स्वयं एडवर्ड्स को भी ज्ञात थी और इसलिए उसने बरेली से सेना की सहायता मांगी थी। परंतु स्वयं बरेली के उस समय क्या हाल थे, यह पहले बताया ही जा चुका है। फिर भी बरेली से यह लिखित प्राप्त हुआ कि 1 जून को हम यूरोपियन अधिकारी के अधीन सेना भेज रहे हैं। यह समाचार आते ही एडवर्ड्स बहुत खुश हुआ। वह 1 जून को बरेली के रास्ते की ओर आंखें गड़ाए बैठा रहा। उस रास्ते पर कोई सरकारी आदमी दौड़ता आ रहा है, वह भी उसे दिखने लगा। अर्थात् बरेली से आनेवाली सहायता का यह हरकारा ही है, यह मान एडवर्ड्स ने उतावली में उससे प्रश्न किए। परंतु प्रश्न के उत्तर में में बरेली से बंदायूं को सेना सहायता के लिए आ रही है, यह न बताते हुए यह बताया गया कि बरेली में ही अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गई है। बदायूं में खजाने की सुरक्षा के लिए कुछ सिपाही रखे हुए थे। उसके अधिकारी से एडवर्ड्स ने पूछा, ''बरेली सवतंत्र हो गई। बदायूं का क्या होगा? '' अधिकारी ने कहा, ''मेरे सिपाही राजनिष्ठ हैं। कोई डर नहीं है।'' उसने उसने यह आश्वासन दिया ही था कि शाम को बदायूं में विद्रोह हो गया। खजाने के सैनिक, पुलिस और नागरिक–सबने फिरंगी राज डूब जाने की घोषणा कर दी और वह सारा जिला खानबहादुर खान के नियंत्रण में चला गया। सैनिकों ने खजाना लेकर दिल्ली की ओर कूच किया और बदायूं के ारे अंग्रेज अधिकारी रात में ही जंगलों में होकर भागने लगे। खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं–ऐसी स्थिति में छिपते–छिपते कभी–कभी किसी गांववाले के घर भैंसों के पीछे, जहां गोबर की दुर्गंध से नाक फट रही थी वहां हफ्ते–हफ्ते बिताते अंग्रेज महिलाएं, अंग्रेज कलेक्टर, मजिस्ट्रेट अपने प्राण बचाते भाग रहे थे। कुछ मारे गए, कुछ मर गए, कुछ दयालु नेटिवों के कृपाश्रय में प्राण बचाए बने रहे।

इस तरह पूरा रूहेलखंड एक दिन के अंदर विद्रोह कर उठा। बरेली, शाहजहांपुर मुरादाबाद, बदायूं आदि जिलों के शहरों में स्थित सेना, पुलिस और जनता ने एक चेतावनी में ही दो घंटे के अंदर ब्रिटिश सत्ता को सीमा पर कर दिया। ब्रिटिश सिंहासन औंधा हुआ, उसपर स्वकीय सिंहासन विराजमान हुआ। ब्रिटिश झंडा उतारकर उसके स्थान पर हरे झंडे लगाए गए। ब्रिटिश कोर्ट, कार्यालयों और थानों से हिंदुस्थान पर अधिकार करनेवाला इंग्लैंड अपराधी के कठघरे में खड़ा हो गया। ऐसा यह विलक्षण

परिवर्तन सारे प्रदेश में दो घंटे में हो गया। रूहेलखंड से अंग्रेजी शासन का उन्मूलन रकने के लिए स्वदेशी रक्त की एक बूंद भी खर्च नहीं करनी पड़ी। यह कितना बड़ा आश्चर्य था। रूहेलखंड गुलाम है, यह न कहकर रूहेलखंड स्वतंत्र है, ऐसा सबने कहा और वह स्वतंत्र हुआ। सेना, सिपाही, नागरिक–सबके विद्रोह करते ही हर जिले के मुख्य शहर से दो–चार यूरोपियन अधिकारियों को निकाल देने से अधिक उस प्रदेश को स्वतंत्र करने को कुछ भी अधिक काम नहीं करना पड़ा। गुप्त कार्यक्रम , मजबूत संगठन और उसके द्वारा की गई त्वरित कौशलपूर्ण कार्यवाही–इन बातों के आधार पर अंग्रेजों के कब्जे से निकलते ही रूहेलखंड ने खानबहादुर खान का शासन स्वीकार किया। पहले बताया गया है कि यहां के सारे सैनिक बरेली के तोपखाने के सूबेदार बख्त खान की अधीनता में दिल्ली की ओर लड़ने चल दिए। उसके बाद खानबहादुर खान ने प्रदेश का बंदोबस्त रखने के लिए नई सैनिक भरती चालू की और राजधानी के अधिकतर पहले के लोग ही रखे गए और वरिष्ठ स्थानों पर नए स्वदेशी अधिकारियों की नियुक्ति की गई। सरकारी पैसा दिल्ली के बादशाह के नाम पर वसूल किया जाने लगा। न्याय देने के लिए पहले जैसे ही कोर्ट खोले गए और पहले के ही नौकर नियुक्त कर दिए गए, संक्षेप में, जहां यूरोपियन अधिकारी होते थे वहां हिंदुस्थानी नियुक्त करने के सिवाय किसी भी विभाग में राज्य क्रांति के धक्के से अन्य तरह का परिवर्तन नहीं हुआ। खानबहादुर खान ने अपने सूबे की यह सारी जानकारी दिल्ली के बादशाह को लिखकर भेज दी और रूहेलखंड में निम्नलिखित राजकीय घोषणापत्र लगाया गया।

''हिंदुस्थान देश के वासियों! स्वराज्य–प्राप्ति का दुर्लभ अवसर तुम्हें प्राप्त हो गया है। उसको स्वीकार करोगे या अनादर? इस अपूर्व और असाधारण अवसर का तुम लाभ लोगे या उसे हाथ से फिसल जाने दोगे? हिंदू बंधुओं और मुसलमान भाइयों! यह ध्यान में रखना कि यदि अपने हिंदुस्थान देश में इन अंग्रेजों को तुमने रहने दिया तो ये तुम्हारे देश का सत्यानाश और तुम्हारे धर्म का विनाश किए बिना कभी भी रहनेवाले नहीं हैं।[67] अंग्रेजों के फरेब के कारण आज तक हिंदुस्थान के निवासियों ने अपनी गरदन अपनी ही तलवार से काटी है। अतः वह गृह–क्लेश की गलती हमें अब ठीक कर लेनी चाहिए। मुसलमानों से लड़ने की सलाह हिंदुओं को देना और हिंदुओं के विरूद्ध चलने

[67] हिंदू एवं मुस्लिम बंधुओं, भलीभांति समझ लो कि यदि तुमने अंग्रेजों को हिंदुस्थान में रहने दिया तो वे निश्चित रूप से तुम्हारा धर्म भ्रष्ट करेंगे और तुम्हारा नरमेध भी होगा। ... अंग्रेज अब भी हमारे साथ कुटिलता की नीति का ही पालन करेंगे। वे हिंदू को मुसलमान के विरूद्ध उभारने में कदापि नहीं चूकेंगे। ..'' –द दफ्टर ऑफ खानबहादुर खान, ट्रांसलेटेड बाइ क्रासॉफ्ट विल्सन

की बात मुसलमानों को कहना–इस कपट नाटक का प्रयोग अंग्रेज लोग अब भी करना चाहेंगे। परंतु हिंदू बंधुओं, आप उनके जाल में मत फंसना। चतुर हिंदू बंधुओं से यह कहना आवश्यक नहीं कि अंग्रेज लोग अपने वचन का कभी भी पालन नहीं करते। झूठी–सच्ची बातें कहकर बहलाने में वे उस्ताद हैं। वे पृथ्वी से अन्य धर्मियों का नाश करने के लिए आज तक प्रयास करते रहे। उन्होंने दत्तक संतान के अधिकार छीने, देशी राजाओं के प्रदेश और राज्य उन्होंने डुबो दिया। हिंदू और मुसलमान दोनों को ही उन्होंने पैरों तले कुचला। मुसलमान भाइयों, तुम्हें कुरान की परवाह हो और हिंदुओं, आपको गो माता की चिंता हो तो अब आपस के भेदभाव भूलकर इस जिहाद में सब लोग सम्मिलित हो जाओ। एक झंडे के नीचे लड़ते–लड़ते मैदान में कूद पड़ो और हिंदुस्थान से अंग्रेजों का नाम रक्त के प्रवाह से धो डालो। हिंदुस्थान से फिरंगियों को नष्ट करने के लिए यदि हिंदू लोग मुसलमानों के साथ लड़ेंगे, यदि स्वदेश की मुक्ति के लिए वे रणांगण बनाएंगे तो उनके देशाभिमान के इनाम–स्वरूप गो माता का वध बंद किया जाएगा। इस धर्मयुद्ध में जो स्वयं लड़ेगा या दूसरों को लड़ने के लिए द्रव्य सहायता करेगा, वह ऐहिक और पारमार्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। परंतु यदि कोई इस स्वदेश युद्ध के विरूद्ध जाएगा तो ·· ·तो वह स्वयं के सिर पर आघात करके आत्महत्या का अपराधी होगा।

प्रकरण—7

बनारस और इलाहाबाद

कलकत्ता से लगभग चार सौ साठ मील दूर श्री जाह्ववी के किनारे बनारस शहर अपने पुरातन वैभव के साथ बसा हुआ है। भागीरथी के पवित्र, शीतल और धवल जल में प्रतिबिंबित होने का महद्भाग्य जिन शहरों को है, बनारस उन सब शहरों की पटरानी लगता है। गंगा के घाट से एक पर एक चढ़ती भुवनराजि, उनके मस्तकों पर सुवर्ण मुकुटों—से चमकते ऊंचे—ऊंचे मंदिरों के कलश, उनपर चंवर जेसे डोलते फल—पुष्पों से भरे घने वृक्ष, भिन्न—भिन्न दिवालयों में बजते हजारों घंटों के अलग—अलग स्वर एक—दूसरे से मिलकर उनसे उत्पन्न होनेवाली कर्ण—मधुर एक तान और सारी सुंदरता पर स्थापित श्री काशी विश्वेश्वर के अधिष्ठान आदि से बनारस शहर को अनन्य शोभा प्राप्त हुई है। आसक्ति के लिए भोग—विलासाकांक्षी, भक्ति क्षेत्र में अपने—अपने साध्य की सिद्धि पाते हैं। जग में वैभव का उपभोग कर पूर्णकाम हुए लोगों का काशी क्षेत्र वानप्रस्थाश्रम यर संन्यासश्रम है। इस जग में सारी आस और उपभोग दुष्ट दुर्जनों के मत्सर या दीप्ति के कारण छिन्न—भिन्न हो जाते हैं। ऐसे भाग्यहीन और वैभवविहीन लोगों का काशी क्षेत्र और वहां की भी भागीरथी का प्रसन्न जल—तुषार—श्रम—परिहारक शांति भवन हैं।

ऐसे इस शांति भवन में अपना श्रम—परिहरण करने के लिए आनेवाले भाग्यहीन लोगों की सन् 1857 में अंग्रेजों की कृपा से बिलकुल कमी नहीं थी। दिल्ली की अमीरी

बंद होने से अशरण हुए कितने की राजपुत्र और अन्य कितने ही मुसलमान, सिख और मराठों के नष्ट–वैभव हुए राजकुल उस बनारस शहर में अपने दुःखों की कहानी मंदिर–मंदिर और मस्जिद–मस्जिद में कहने बैठे हुए हैं। ऐसे इस शहर में हिंदुस्थान में चल रही स्वधर्म की दुर्दशा और स्वराज्य का नाश आदि पर चर्चा हिंदू और मुसलमानों में विशेष जोर–शोर से चले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। बनारस से कुछ ही दूरी पर स्थित सिक्रोली गांव में उस प्रदेश के लश्कर की छावनी थी। वहां नेटिव पैदलों की 37वीं रेजिमेंट, लुधियानवी सिख रेजिमेंट और एक घुड़सवार पलटन भी रखी हुई थी। वहां का तोपखाना अवश्य रूप से स्वराज्य और स्वधर्म के लिए विद्रोह करने की लालसा गुप्त रीति से उत्पन्न हुई थी। जैसे–जैसे सन् 1857 का साल करीब आने लगा वैसे–वैसे बनारस के लोक–समुदाय में विलक्षण खलबली मचने के चिह्न स्पष्ट होने लगे। उस शहर का मुख्य ममिश्नर टक्कर, जज म्यूबिन, मजिस्ट्रेट लिंड आदि स्थानीय अधिकारियों और कैप्टन ओलफर्ट, कर्नल गॉर्डन आदि लश्करी गोरे अधिकारियों ने पहले से ही बनारस में रह रहे अंग्रेज लोगों के संरक्षण की बहुत व्यवस्था की हुई थी; क्योंकि उस शहर में लोक–क्षोभ–कभी–कभी गोपनीयता की सामा के बाहर फूटने से–का जोर रोकना कठिन हो जाता। पुरबिया लोग 'हे रामजी! इन फिरंगियों की गुलामी से मुक्त करो' कहते हुए खुलेआम मंदिरों में प्रार्थना करने लगे।[68] अन्य स्थानों की तैयारी कितनी क्या हुई, इसकी पक्की जानकारी ज्ञात करने हेतु समितियां स्थापित की गई। मई माह आते ही सैनिक छावनियों में मुसलमान मौलवियों का जमघट बढ़ गया। शहर की दीवारों पर और सार्वजनिक चौतरों पर लौक–शक्ति प्रचंड विद्रोह करे, इस हेतु घोषणाएं जिय और फिरंगियों का नाश हो, इस हेतु सार्वजनिक प्रार्थना करने लगे। उसी समय बाजार में अनाज के भाव बहुत अधिक बढ़ने लगे। भाव इतने अधिक बढ़ गए तो अनाज व्यापारियों की ही अंतिम हानि कैसे है, यह अर्थशास्त्रीय सिद्धांतज ब बाजार में घूमकर अंग्रेज अधिकारियों ने समझाना चालू किया तब लोग उनसे मुंह पर ही पूछने लगे कि हमारे देश में मंहगाई कर अब हमें ही उपदेश देने क्यों तैयार हुए हो? बनारस शहर में इस लोक–क्षोभ का विराल रूप देखकर अंग्रेजों को इतना डर हो गया कि विद्रोह होने से पहले ही बनारस छोड़कर जाने का आग्रह स्वयं ओलफर्ट और कैप्टन वॉटसन करने लगे। अंत में म्यूबिन ने बेचैन होकर उनसे कहा, I will go on my knees to you not to leave Beneares!' (बनारस न छोड़ें, मैं आपके पांव पड़ता हूं।) इस पैर पकड़ने के प्रभाव से बनारस छोड़कर जाने का विचार तात्कालिक रूप से रद्द कर दिया गया–और वह क्यों न किया जाता। कारण, बनारस के सिख स्वयंसेवकों की टोलियां

[68] 1. ''रिपोर्ट ऑफ द जॉदंट मजिस्ट्रेट', मि, टेलर।
2. रेड पैंफलेट, पृष्ठ 55।

बना ली गई थी। वारेन हेस्टिंग्स के लतियाए चेतसिंह का वंशज भी क्या आज अंग्रेजों की ओर नहीं जा मिला था! इतनी राजनिष्ठा कायम होने पर अंग्रेजों के लिए बनारस छोड़कर जाने का कोई कारण ही नहीं था।

परंतु इस राजनिष्ठा पर सवार होकर अंग्रेज लोग बनारस में अपना आसन अटल करने की बात सोच ही रहे थे कि पड़ोस के आजमगढ़ से भंयकर गर्जना सुनाई देने लगी। आजमगढ़ बनारस से लगभग साठ मील दूर बसा था। वहां 17वीं देशी रेजिमेंट रखी हुई थी। इस रेजिमेंट में 31 मई से रोज भयानक खलबली मचने लगी। उसे शांत करने के लिए वहां का मजिस्ट्रेट मि. हार्न रोज सैनिकों को व्याख्यान देने लगा। पर ऐसे व्याख्यानों से दिल बहलने के दिन अब नहीं रहे थें 31 मई उदय हुई । उस प्रांत के सिपाहियों ने विद्रोह की सूचना देने के लिए बनारस में बैरकों को ही आग लगा दी। अतः जून के पहले हफ्ते में विद्रोह हो जाना है। आज 3 जून है। यह मुहूर्त कोई बुरा नहीं है; क्योंकि गोपालपुर में आ रहे खजाने में आजमगढ़ का खजाना मिलाकर 7 लाख रूपयों का खजाना बनारस की ओर जा रहा है। इससे उत्तम मुहूर्त कौन सा होगा।

तारीख 3 जून क संध्या काल की प्रभा रात्रि में विलीन हो रही थी। सारे गोरे सैनिक अधिकारी अपने क्लब में इकट्ठा होकर खाना खा रहे थे और उनके बाल–बच्चें वहीं हंस–खेल रहे थे। इतने में धूम–धड़ाके का क्या अर्थ होता है, यह जून के पहले हफ्ते में अंग्रेजों को जुबानी याद था। उनकी भयभीत शांति 'विद्रोह हुआ', ऐसा एक–दूसरे को कहने लगी। तभी नगाड़ों और दुंदुभि की ध्वनि शुरू हो गई। एक क्षण भी नहीं गया और जिनके हृदय में मेरठ की स्मृतियां ताजा थीं वे गोरे लोग सिर पर पैर रखकर भागने लगे। औरतें–बच्चे, अधिकारी–सबने प्राणों की आशा छोड़ दी। पर आजमगढ़ के सैनिकों ने इस तरह मरे हुए–से लोगों को देखकर अधिक प्रतिशोध लेने का विचार छोड़ दिया था। उन्होंने उन गोरे लोगों को जीवित रखने के लिए अपने कब्जे में ले लिया और आजमगढ़ छोड़कर तुरंत चले जाने को कहा। परंतु कुछ भीमकाय सैनिकों ने अंग्रेजी रक्त चखने की भीषण प्रतीज्ञा की हुई थी, उनकी उस भीष्म प्रतीज्ञा का क्या हो?[69] तो लेफ्टिनेंट ने हचिंसन साहब और क्वार्टर सार्जेंट लुई साहब, कम–से–कम तुम्हारे शरीर में तो ये हमारी गोलियां घुसनी ही चाहिए। बस, अब शेष चाहें तो भाग जाएं। वे दौड़कर नहीं जा सकते हों तो गाड़ियों में बैठकर आजमगढ़ छोड़ दें। फिर भी, हमें कुछ कहना नहीं है। पर यूरोपियन अधिकारी और उनकी पत्नियां कहने लगीं–''पर हमें अब गाड़ियां भी कौन देगा?'' सैनिकों ने कहा, ''उसकी चिंता न करें। हम देते हैं गाड़ियां।'' ऐसी विलक्षण उदारता देख कर्ण भी सिर नवाए, इसमें कोई शंका नहीं। सैनिकों ने स्वयं गाड़ियां मंगवाई और उसमें उन कैदी अंग्रेजों को मुक्त कर बैठाया। साथ में कुछ संरक्षक सैनिक भी दिए और आजमगढ़ की अंग्रेजी सत्ता के नाम–निशान के साथ वे सारे बनारस की ओर चल दिए। उध रवह 7 लाख का खजाना, अंग्रेज सैनिकों का तोपखाना, अंग्रेजी

[69] सर कॉलिंन कैंपबल कृत–'नैरेटिव्स', पृष्ठ 38।

सत्ता की मुहर जिसपर थी वह जेल, कार्यालय, रास्ते, बैरकें–सब पर जो सैनिकों ने अधिकार किया उसकी अगुवाई किसने की? विद्रोह का समाचार मिलने पर यदि सैनिक विद्रोह कर ही दें तो अपनी सुरक्षा हो सके, इसलिए जिन अति विश्वसनीय सिपाहियों को अंग्रेजों ने नियुक्त किया था, उन सिपाहियों ने। यह पुलिस विभाग भी सेना की तरह अंदर से खोखली सुरंग थी। संकेत मिलते ही उन्होंने यूरोपियन घरों और कारागृह पर स्वराज्य का निशान लगाना प्रारंभ किया। बनारस की ओर जाती गाड़िया में जिन्हें जगह न मिली, ऐसे कितने ही अंग्रेज गाजीपुर की ओर भाग गए और दूसरे दिन का सूर्य अपनी अनुपस्थिति की अल्पावधि में हुए इस विलक्षण रूपांतर की ओर साश्चर्य देखते–देखते आजमगढ़ पर फहराते हरे निशान को प्रकाशित करने लगा।[70] जो हृदय में डोल रहा था वहीं हिंदुस्थान का हरा निशान आज अपने सिर पर भी मंडरा रहा है, यह देखकर विजयी रंग में रंगे सारे सैनिकों ने एक बड़ा भारी सैनिक जुलूस निकाला और लश्करी बैंड के ताल–सुर पर अपना हरा निशान लहराते हुए वे फैजाबाद की ओर चले गए।

आजमगढ़ स्वतंत्र होने का समाचार बनारस पहुंचते ही उस शहर की हलचलों से अंग्रेजों में उत्पन्न हुए भय का निराकरण होने के संकेत दिखने लगे। मेरठ के विद्रोह का समाचार सुनकर पंजाब से जॉन लॉरेंस और कलकत्ता से लॉर्ड केनिंग यूरोपियन सेना को विद्रोह के मुख्य स्थान की ओर भेजने के लिए अश्रांत श्रम कर रहे थें उत्तर की ओर से भेजी गई गोरी सेना दिल्ली को घेरकर बैइी होने से दिल्ली को घेरकर बैठी होने से दिल्ली के निचले हिस्से में सभी ओर असहायता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी और अंग्रेज अधिकारी कलकत्ता को–कृपा करके यहां यूरोपियन भेजो ,(For God sake send us Europeans), यह मांग बिलकुल रोते हुए कर रहे थे। इस समय लॉर्ड केनिंग ने मद्रास, बंबई तथा रंगून से यूरोपियन सेना कैसे मंगाई और चीन पर होनेवाली चढ़ाई रद्द क रवह सारी सेना हिंदुस्थान में ही कैसे रोककर रखी, इसका वर्णन पहले आ चुका हैं उस जगह–जगह से मंगाई गई यूरोपियन`सना में से मद्रास के फ्युसिलियर के साथ जनरल नील इस समय बनारस तक आ पहुंचा था। यूरोपियन सेना की यह पहली कुमुक और वह भी जनरल नील जैसे बहादुर, साहसी और कठोर सेनापति के अधीन आ जाने से बनारस के अंग्रेजों में बहुत धीरज आ गया। इसी समय दानापुर की अंग्रेजी सेना भी बनारस आ गई। बनारस के लोगों की विलक्षण बेचैनी और वहां के सिपाहियों का शहर के लोगों से सहयोग होने के स्पष्ट प्रमाणों आदि की जानकारी के आधार पर वहां के अंग्रेज अधिकारियों ने विद्रोह को उसके गर्भाशय में ही मसल डालने का निश्चय किया। जनरल नील की यूरोपियन सेना और बनारस के सिख सरदार और सिख सिपाहियों एवं तोपखाने की सहायता से विद्रोह को मसल डालने की योजना सहज ही सिद्ध हो जायेगी, इसका अधिकारियों को पहले से ही पूरा भरोसा था। आजमगढ़ का समाचार 4 तारीख को बनारस में पहुंचते ही

[70] 'नैरेटिव्स' में सर कॉलिंन कैंपबल ने लिखा है– "The green flag was mastered on the right of the 3rd."

बनारस के नेटिव सिपाही विद्रोह करें, इसके पहले ही उन्हें निःशस्त्र कर दिए जाने का निश्चय बहुत चर्चा के बाद हुआ और उस दिन दोपहर को जनरल परेड का आदेश दिया गया।

यह आदेश सुनते ही आगे क्या होगा, सिपाहियों को स्पष्ट दिखने लगा। अंग्रेज तोपखाना तैयार करके लाए हुए हैं, यह गुप्त समाचार भी उन्हें मिल गया था। परेड के मैदान पर अंग्रेज अधिकारी शस्त्र नीचे रखने का आदेश देकर हमें निःशस्त्र कर तोपों से उड़ा देनेवाले हैं, यह उन्हें स्पष्ट दिख गया और इसलिए शस्त्र नीचे रखना छोड़ उन्होंने समीप के शस्त्रागार पर ही हल्ला बोल दिया और कर्कश गर्जना करते हुए वे अंग्रेज अधिकारियों पर ही टूट पड़े। उनपर दबाव बनाए रखने के लिए मंगाई गई सिख रेजिमेंट भी वहां आ गई। उन सिख सिपाहियों में राजनिष्ठा का उफान इतने जोरों पर था कि वे हिंदुस्थानी सैनिक ने हमला किया और कमांडर न्युइस तत्काल मर गया। उसके स्थान पर ब्रिगेडियर जनरल हडसन अभी आ भी न पाया था कि तभी एक सिख सिपाही को जोश आया और उसने उसे गोली मार दी। परंतु यह अक्षम्य अपराध सहन न होने से उसके पास खड़े एक सिख सिपाही ने अंग्रेज को मारना चाहनेवाले सिख को तत्काल काट डाला। इस राजनिष्ठा के कृत्य को क्या पुरस्कार मिलता है, यह देखने के लिए दूसरे सिख उत्सुक थे–तभी उन सब पर अंग्रेजी तोपखाना बरसने लगा। सिख सिपाहियों में हिंदुस्थानी सिपाहियों द्वारा मचाई घालमेल देखकर सिख रेजिमेंट ही विद्रोही हो गई है–ऐसी गलतफहमी अंग्रेज अधिकारियों को होने पर उन्होंने हिंदुस्थानी रेजिमेंट के साथ सिख रेजिमेंट पर भी गोलीबारी करनी शुरू कर दी। अब उन अभागे सिखों को विद्रोहियों से मिल जाने के सिवाय दूसरा रास्ता ही नहीं बचा। उन सब भारतीय लोगों ने मिलकर अंग्रेजी तोपखाने परतीन हमले किए। हिंदू मुसलमान और सिख मिलकर अंग्रेजी तोपों पर टूटे पड़ रहे हैं–सन् 1857 के इतिहास में ऐसा अकेला अवसर यही था। प्रसन्नता की बात यह कि इस अवसर पर हो रहे पाप का शमन करने के लिए उसी समय बनारस शहर में सिख लोग अश्रांत प्रयास कर रहे थे। क्योंकि सिपाहियों और अंग्रेजों की जब बैरकों की ओर लड़ाई हो रही थी तब शहर के लोग भी विद्रोह करेंगे, इस डर से अंग्रेज अधिकारी, उनके बाल–बच्चे सारे रास्तों पर भाग रहे थे, उस समय उन्हें आश्रय देने के लिए सिख सरदार सूरतसिंह आगे आया। बनारस के खजाने में लाखों रूपया जमा था और उसी में सिख लोगों की भूतपूर्व पटरानी से अंग्रेजों के छीने हुए बहुत मूल्यवान रत्नालंकार भी भरे हुए थे और उस खजाने पर सिखों का कड़ा पहरा था। अर्थात् यह खजाना अपने कब्जे में लेकर, सीमा पर की हुई अपनी रानी के अलंकार वापस लेने की अनिवार्य इच्छा सिखों के मन में

उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं था। परंतु उनका नेता राजनिष्ठ सूरतसिंह आगे आया और उसने खजाने से एक दमड़ी भी बाहर न जाने देने की पक्की व्यवस्था अपने जात भाइयों को वहां से हटाकर की। और जल्दी ही वह खजाना यूरोपियन सेना को सुरक्षित सौंप दिया गया। इसी समय एक बड़ पंडित गोकुलचंद भी अंग्रेजों के पक्ष में मिल गया था और स्वयं बनारस के राजा ने भी अपनी शक्ति, सारी संपत्ति, सारे अधिकार सबकुछ अपने प्रभु के –काशी विश्वनाथ नहीं अपितु अंग्रेज के चरणों में अर्पित कर दिए। सिपाही तोपों के सामने भी न झुकते हुए लड़ते–लड़ते अंग्रेजों की मार से बाहर सारे प्रांत में फैल गए।

अंग्रेज लोगों ने जॉन लॉरेंस की पंजाबी युक्ति अपनाकर बनारस शहर का विद्रोह गर्भावस्था में ही मसल दिया, यह बात सच थी; परंतु इस मसल डालने के समाचार से अधिक बनारस में विद्रोह हुआ, यह समाचार सारे हिंदुस्थान में बिजली–सा फैला और बनरारस से संकेत प्राप्त करने आंखे गड़ाए बैठे उस प्रांत के सारे क्रांति केद्रों ने विद्रोह का धूम–धड़ाका शुरू कर दिया।

बनारस से निकले सारे सिपाही मंजिल–दर–मंजिल बढ़ते जौनपुर आ रहे हैं, यह समाचार ज्ञात होते ही वहां के अंग्रेजों ने जौनपुर की सिख टूकड़ी को राजनिष्ठा पर व्याख्यान देना प्रारंभ किया। परंतु वह व्याख्यान समाप्त होते–न–होते बनारस के सिपाहियों की पदचाप सुनाई देने लगी। जौनपुर में जो थोड़े सिख सिपाही थे वे सब बनारस की सिख रेजिमेंट के ही थे, सो वे तत्काल विद्रोहियों से मिल गए और सारा जौनपुर शहर विद्रोही ज्वाला में जलने लगा। यह देखकर जॉइंट मजिस्ट्रेट क्यूपेज फिर से एक बार व्याख्यान देने खड़ा हो गया। परंतु तभी तालियों की जगह एक गोली सूं ऽ ऽ ऽ करते हुए श्रोताओं में से बाहर आई और मजिस्ट्रेट साहब की मृत देह गिर पड़ी। कमांडिंग ऑफिसर लेफ्टिनेंट 'मारा' भी गोली लगकर गिरा। यह देखते ही विद्रोहियों ने खजाने पर हमला किया और यूरोपियनों को जौनपुर छोड़ देने का आदेश दिया। अब तक बनारस के घुड़सवार भी शहर में घुस गए थे। यूरोपियन दिख जाए तो उसे जीवित नहीं छोड़ना है, ऐसी कठोर प्रतीज्ञा उन्होंने की थी। एक बूढ़ा डिप्टी कलेक्टर भागता दिखा–घुड़सवार दौड़े। जौनपुर के कुछ लोग बीच–बचाव करने लगे–''इस गरीब को छोड़ दो, यह बहुत दयासागर है।'' सिपाहियों ने उत्तर दिया, ''ऐसा कुछ नहीं, यह यूरोपियन है और इसे मरना है।''[71]

इस जोश से भरे माहौल में भी विद्रोहियों ने यूरोपियनों को शस्त्र नीचे रखकर चुपचाप भाग जाने की जो अनुमति दी उसका लाभ लेकर सारे अंग्रेज लोग जौनपुर खाली कर भागने लगे। उन्होंने बनारस की ओर भागने के लिए गंगा किनारे नौकाएं कीं।

[71] चार्ल्स बाल कृत –'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 245 ।

परंतु आधे प्रवाह में आने के बाद मल्लाहों ने उन सब अंग्रेजों को लूटकर रेत पर ले जाकर छोड़ दिया। इधर जौनपुर में 'दीन–दीन' का नारा लगा सारा शहर सड़कों पर आ गया। उन्होंने सारे यूरोपियन घरों को लूटकर जलाकर नष्ट किया। अंग्रेजी शासन की, उनके बहते रक्त के सिवाय, सारी पहचान धूल में मिला दी और जितना हो सके उतना खजाना लेकर सिपाही अवध की ओर बढ़ने लगे। बाद में शहर की वृद्ध महिलाएं और जीवन में दमड़ी भी जिसने नहीं देखी उन कंगालों को यह खजाना दिया गया, जिसपर उन्होंने जमकर स्वराज्य और दिल्ली के बादशाह का मन से आभार व्यक्त किया।

इस तरह 3 जून को आजमगढ़, 4 जून को बनारस और 5 जून को जौनपुर के उठते ही बनारस का सारा प्रांत क्रांति–ज्वाला में जोर नहीं रहता। परंतु राजधानी के ऊपर राज्य क्रांति जैसे अनिश्चित अवसर पर अवलंबित रहना क्रांतिशास्त्र में बहुत नाशकारी दोष माना जाता है। मैजिनी कहता है–''जहां हमारा निशान लहराए वहीं हमारी राजधानी। अपनी राजधानी जिधर विद्रोह हो उधर ले जानी चाहिए। विद्रोह राजधानी के पीछे रहे, यह अच्छी बात नहीं।'' राज्य क्रांति के नक्शे पहले कितने भी सोच–विचारकर बनाए हुए हों–बिलकुल वैसे ही घटनाएं घटित होना असंभव होता है। इसलिए चाहे राजधानी में क्रांति दुर्बल पड़ जाए, पर प्रांत को उसे छोड़ नहीं देना चाहिए। इस नियम का पालन बनारस प्रांत में बहुत मजबूती से हुआ, इसमें कोई शंका नहीं देना चाहिए। क्योंकि उस प्रांत की राजधानी बनारस शहर अंग्रेजों के अधीन होते हुए भी बनारस प्रांत में चुटकी बजाते ही राज्य क्रांति की आंधी दस दिशाओं को धुंधला करती बह रही थी। जमींदार, किसान, सिपाही सब लोगों ने फिरंगी शासन को गोमांस की तरह आपत्तिजनक मान लिया। छोटे–छोटे गांवों में अपनी सीमा में गोरों के आने की खबर लगते ही उन्हें मार–पीटकर भगा दिया जाता।[72] विशेष बात यह कि केवल अंग्रेज लोगों के लिए ही नहीं अपितु उनके द्वारा किए गए हर काम के लिए लोगों में इतनी घृणा थी कि वे काम भी उन्हें आंखों से सुहाते नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा नियुक्त जमींदारों–फिर वे कैसे भी हों–को निकालकर पुरानी पीढ़ी के जमींदारों को वहां लाकर बैठाया। अंग्रेजों की लगान पद्धति, उनके कारावास ,उनके न्यायसन सबको एक हफ्ते में बदल दिया गया। तारयंत्रों को तोड़ दिया, रेल और यातायात के रास्ते खोद दिए गए। हर टेकरी और हर झाड़ी के

---

72 ''सैनिकों में विद्रोह की बढ़ती हुई अवस्था में चारों ओर फैला हुआ गहन द्वेष, तथाकथित अन्याय के प्रतिशोध का कभी भी शांत न होनेवाला भाव बढ़ता गया, यह तथ्य स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। लूट–खसोट की इच्छा तो उसे द्वेष तथा प्रतिशोध की भावना की ही उपज थी, जिससे विभिन्न स्थानों पर रहनेवाले अंग्रेज अधिकारियों को भांति–भांति की आपदाओं क शिकार होने के लिए बाध्य होना पड़ा और उनपर आपदाओं के घन आ गिरे।'' –चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 245

पीछे गोरों के रक्त और धन के लिए ललचाए गांववाले छिपकर बैठे रहते और अंग्रेजों को रसद तो दूर की बात, कोई समाचार भी न मिलने देने को खेत–खेत में पहरेदार हरे और जरी के झंडों के साथ गश्त लगाते रहे। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों का दम घुटने लगा। यद्यपि बनारस शहर अंग्रेजों के कब्जे से छूटते–छूटते रह गया था और सारे सिपाही विद्रोह होते ही अवध की ओर निकल गए थे।[73]

बनारस शहर का 4 जून का प्रयास असफल रह जाने पर वहां हुई पकड़–धकड़ में एक महत्त्वपूर्ण बात प्रकट हुई। ऐसी ही फुटकर बातों से 1857 के साल में वह रचना–चक्र किस तरह घुमाया जा रहा था, यह ज्ञात होना संभव है। बनारस शहर के तीन भारी क्रांतिकारी नेताओं और एक लखपति साहूकार को पकड़ा गया। उनके घर में क्रांति पक्ष के मुख्य केंद्र से प्राप्त कठोर परंतु सांकेतिक भाषा में लिखे अनेक पत्र सरकार के हाथ लगे। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र एक प्रमुख अधिपति की ओर से आए हुए थे और उनका सारांश था–''बनारस के नागरिक शीघ्र विद्रोह करें–बाकर, गिबन, लिंड और जितने भी यूरोपियन हों उनको काट डाला जाए। इस काम के लिए आवश्यक राशि नगरसेठ, कोठीवाले ... की ओर से दी जाएगी।'' इस कोठीवाले के घर पर छापा डाला गया तो वहां से एक सौ तलवारों और बंदूकों का संग्रह मिला।

बनारस प्रांत के विद्रोह की यह संक्षिप्त जानकारी मैंने दी। जगह–जगह के सिपाहियों ने इस प्रांत में मेरठ या दिल्ली के लोगों की तरह यूरोपियनों को अंधाधुंध नहीं काटा था। इस सारे प्रांत में एक भी यूरोपियन लेडी नहीं मारी गई थी। इतना ही नहीं अपितु राष्ट्र–क्षोभ के इस प्रचंड प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए ही लोगों ने स्वयं गाड़ियां देकर अंग्रेजों को उनके अधिकारियों के साथ विदा किया था। यह चित्र देखें और आगे आनेवाला चित्र भी देखें।

जनरल नील विद्रोह के समय बनारस में आ चुका था, यह पहले ही कहा है। बनारस प्रांत के स्वराज्य के लिए विद्रोह हेतु खड़ा हो जाने पर उसे प्रोत्साहित करने की ऐसी महानता मनुष्य जाति में मिलना दुर्लभ है और इंगलिश राष्ट्र में तो असंभव ही है।

परंतु अंग्रेजों को कम–से–कम जैसे को तैसा, इस न्याय के अनुसार उनकी समझ से जो विद्रोही थे उनके साथ व्यवहार करना चाहिए था। विद्रोहियों और सारे हिंदुस्थान को उनकी 'क्रूरता' के लिए अश्लील शब्दों और नरकगामी शापों की लाखों गालियां देनेवाले

[73] 1- ''ज्यों ही काशी में विद्रोह होने का समाचार अन्य जिलों मे। फैला कि संपूर्ण प्रांत एक साथ उठ खड़ा हुआ। आसपास के स्थानों से यातायात के मार्ग तोड़ दिए गए। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सिपाही जिस कार्य को नहीं कर सके थे उसे साफल्य मंडित करने का प्रयास जनता और जमींदारों द्वारा संसुक्त रूप से किया जा रहा था।''
2. सर कॉलिन कैंपबल द्वारा प्रस्तुत 'भारतीय विद्रोह का वृत्तांत', पृष्ठ 64 ।

अंग्रेजों की ससुभ्य सेना के बहादुर सेनापति ने बनारस प्रांत के लोगों के साथ कैसा व्यवहार किया, यह प्रकाशित साहित्य से प्राप्त जानकारी देने के बाद और अधिक एक शब्द भी लिखने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

बनारस प्रांत के विद्रोह के बाद जनरल नील ने आस–पड़ोस के गांवों में बंदोबस्त करने के लिए यूरोपियन और सिखों की टोलियां भेजी। निराश्रित और खेतों पर उपजीविता चलानेवाले छोटे–छोटे गांवों में ये टोलियां घुस जाती और जो कोई भी रास्ते में दिखे उसे या तो वहीं काट डाला जाता था या फांसी पर लटकाया जाता था। इस फांसी पर चढ़नेवालों की संख्या इतनी होती थी कि एक फांसी रात–दिन चलाकर पूरा न पड़ने पर फांसी के खंभों की स्थायी पंक्तियां लगाकर रखनी पड़ी। इस लंबी पंक्ति में लोग रात–दिन अधमरे करके फेंके जा रहे थे, फिर भी फांसी पर चढ़नेवाले उम्मीदवारों की भीड़ थी। फिर अंग्रेज अधिकारियों ने पेड़ काटकर खंभे बनाने की गंवारू पद्वति छोड़ दी और सीधे पेड़ को एक से अधिक शाखाएं क्या बिना कारण ही दी है! अतः पेड़ों की हर शाख पर नेटिवों की गरदनें बांध उन्हें लटकते छोड़ दिया जाता। यह 'लश्करी कर्तव्य' और ईसाई मिशन हर दिन और हर रात लगातार चलाते–चलाते वे बहादुर अंग्रेज उकताने लगे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। अतः फिर इस धार्मिक और उदार कार्य में जो गंभीरता थी उसे थोड़ा कम करके मनोरंजन करने के लिए कुछ नवीनता मिलाई गई। सिर्फ उठाया और पेड़ पर टांग दिया, इस भोंडी पद्वति को अब थोड़ा कलात्मक बनाया गया। ''अब नेटिवों को पहले हाथी पर बैठाया जाता, फिर हाथी को ऊंचे पेड़ की शाखा तक ले जाया जाता और उसके ऊपर बैठे नेटिव की गरदन शाख से बांधने के बाद हाथी को हटा लिया जाता। हाथी निकल जाने पर उन अगणित छटपटाहट मरते लोगों के ऊंटपटांग लटकते शव दिखाई देते। पर इस रतह वहां से गुजरते अंग्रेजों को एक मनहूस साम्यता दिखाई देती थी, इसलिए नेटिव को पेड़ पर सीधे लटकाकर फांसी देने की बजाय अलग–अलग आकृति बनाकर टांगा जाता। कोई अंग्रेजी आठ (8) जैसा बांधा जाता तो कोई नौ (9) जैसा।''[74]

परंतु इस तरह प्रयास करने के बाद भी काले लोग हजारों–लाखों में जीवित–के–जीवित। अब इतनों को फांसी चढ़ाने की बात सोचें तो उन्हें बांधने के लिए इतनी रस्सी कहां से लाएं? ऐसी अजीब गुत्थी इंग्लैंड जैसे विकसित ईसाई राष्ट्र के सामने आ पड़ी। परमेश्वर की कृपा से अंत में एक युक्ति उन्हें सूझी और उसका प्रयोग इतना सफल रहा कि–अब आगे फांसी के स्थान पर उस शास्त्रीय युक्ति को ही काम में लाने की बात निश्चित हुई और एक घंटे में पूरा गांव–का–गांव फांसी चढ़ने लगा। आग की

[74] के एवं मैलसन कृत–'दि इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 177 ।

लपटों से उसकी गरदनें कसकर बांध देने पर और चारों ओर तोपें रखने पर गरीब नेटिवों के हजारों घर जलकर राख होने में फिर कितनी देर! इन गांवों को चारों ओर से अग लगाकर उन्हें कहीं से भी न निकलने देकर जला डालने में कितने ही अंग्रेजों को इतना आनंद आता कि उन्होंने उन दृश्यों के हास्यास्पद वर्णन लिखकर इंग्लैंड भेजे। गांव को आग इतनी जल्दी और पूरी तरह से लगाई जाती कि उसमें से बाहर निकलने का नाम भी नहीं लिया जा सकता। गरीब किसान, विद्धान, विकलांग–सारे आग की ज्वाला में जलकर राख हो जाते। गोद के दूध–पीते बच्चे के साथ उनकी माताएं जलकर राख हो जाती। बिस्तर से लगी बूढ़ी औरतें और पुरूष अपने चारों ओर धधकती आग की ज्वाला में जरा सी सरकने की शक्ति न होने से बिस्तर पर ही जलकर राख हो जाते।[75] और कोई जलकर राख नहीं हुआ? तो एक अंग्रेज अपने पत्र में लिखता है–"You will] however, be gratified to learn that 20 villages are razed to ground." (आज के हमले में हमने बीस गांव राख कर दिए हैं–यह सुनकर आपको संतोष हुए बिना नहीं रहेगा)

उपर्युक्त दानवी सच्चाई, 'जनरल नील के प्रतिशोध के बारे में कुछ न लिखना ही अच्छा', ऐसी स्पष्ट प्रतिज्ञा करनेवाले अंग्रेज इतिहासकारों के उदार इतिहास में हुई चूक के कारण जो जानकारी बाहर आई है, यह उसका सारांश है।

बस, इससे अधिक एक शब्द भी लिखना क्रूरता के इस नंगे चित्र को खराब करना है।

इसलिए अब हताश आंखों से श्री भागीरथी और कालिंदी के प्रीति संगम की प्रेम लहरों की ओर दृष्टिपात करें। इलाहाबाद शहर बनारस से कोई सत्तर मील की दूरी पर बसा हुआ है। इस प्रयाग क्षेत्र की धार्मिक पवित्रता को वहां अकबर के शासनकाल में निर्मित विस्तीर्ण किले की अपूर्व भव्यता ने बढ़ाया है। कलकत्ता से पंजाब और दिल्ली

[75] 1 चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', भाग 1, पृष्ठ 242–43 ।
2. वही, पृष्ठ 244 ।
3. वही , पृष्ठ 242 ।

आदि बड़े–बड़े प्रांतों को जानेवाले सारे महत्त्वपूर्ण रास्तों का यह इलाहाबाद नाका हाने से इन सब प्रांतों की हलचलों पर निगरानी रखने के लिए नियुक्त किसी ऊंचे भीमाकृति और उग्र सेनापति जैसा वह इलाहाबाद का किला अपनी गंभीरता से शोभित है। सन् 1857 की क्रांति के समय में जिसके हाथ में यह किला हो उसके हाथ में यह सारा विस्तीर्ण प्रांत होगा, ऐसी स्थिति होने से यह महत्त्व का स्थान अपने अधिकार में रखने के लिए दोनों ही ओर से जोरदार प्रयास चल रहे थे। इलाहाबाद में जो सिपाही थे उनके साथ सारा शहर एक ही समय में विद्रोह करे, यह क्रांति पक्ष का विचार था। इस कार्य के लिए जब गुप्त रचना चल रही थी तब शहर के नागरिकों में स्वराज्य–प्राप्ति के लिए उठने की प्रबल लालसा उत्पन्न करने में हिंदू पंडों का बहुत उपयोग हुआ। केवल इलाहाबाद के हिंदू नागरिकों में नागरिकों में स्वराज्य–प्राप्ति के लिए उठने की प्रबल लालसा उत्पन्न करने में हिंदू पंडों का बहुत उपयोग हुआ। केवल इलाहाबाद के हिंदू नागरिकों में ही नहीं अपितु उस सारे प्रांत के हिंदू लोगों में उनके वजनदार धर्मगुरू स्वातंन्त्र्य युद्ध के बीजों की कितने ही दिनों से अखंड बुआई कर रहे थे। हिंदू लोगों में स्नान संकल्प के साथ ही मानो यह धार्मिक और पवित्र राज्य क्रांति का संकल्प भी लिया जा रहा था। वैसे ही उस शहर की विस्तीर्ण मुसलमान बस्ती में भी मुल्लाओं की चहल–पहल बढ़ गई थी। दीन और देश की मुक्ति के लिए शरीर के रक्त से समरभूमि का सिंचन करने को दृढ़संकल्प हजारों मुसलमान संकेत समय की राह देख रहे थे। इसमें अंग्रेजों को कुछ भी नया नहीं था, सारा हिंदुस्थानी मुसलमान अपना शत्रु ही रहेगा, यह सारे अंग्रेजी लेखकों की पक्की धारणा थी, जो स्पष्ट दिखती है। Red pamphlet का प्रसिद्ध लेखक कहता है।

"The Mohamedans have shown that they cherish in their hearts the proselytizing doctrines of their religion and that as cheristians, they for ever detact and take advantage of coming opportunity of destroying Europeans." यह बात सार्वजनिक रीति से जितनी सत्य है उससे भी अधिक वह इस शहर विशेष में सत्य हुई थी। इलाहाबाद में मुसलमानों के कदम हिंदुओं से भी आगे पड़ रहे थे। इतना ही नहीं अपितु इस शहर में क्रांति–केंद्र के संचालन में वे ही प्रमुख भूमिका में थे। हिंदू और मुसलमानों में अपनी जन्मभूमि की मुक्ति के लिए चल रहे प्रयासों का स्वरूप यह बना कि शहर के न्यायधीश और मुंसिफ भी गुप्त रीति में क्रांति मंडल में सम्मिलित हो गए थे।[76]

इलाहाबाद में किले की रक्षा के लिए और इसके प्रांत का मुख्यालय होने से अंग्रेजों को वहां बहुत मजबूत बंदोबस्त रखना आवश्यक था। परंतु सन् 1857 के मई माह के बिलकुल शुरू में भी सारे देश में क्या आंदोलन चल रहे हैं, यह ज्ञात न होने से इलाहाबाद में बहुत ढील चल रही थी। इलाहाबाद में क्रांति की ज्वालाएं चारों ओर से सुलगाते हुए नेताओं ने इतनी चतुराई से गोपनीयता रखी हुई थी कि यहां एक भी

[76] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', भाग 1, पृष्ठ 65 ।

यूरोपियन सिपाही रखने की आवश्यकता सरकार को नहीं पड़ी। मेरठ का समाचार जब आया तब इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान पर सिपाहियों की 6वीं रेजिमेंट और सिखों की फिरोजपुर रेजिमेंट की कोई दो सौ लोगों की टुकड़ी—इतनी ही सेना थी। जल्दी ही अवध से घुड़सवार लाए गए और वह किला, उसकी प्रचुर शस्त्र सामग्री सहित उन नेटिव सिपाहियों के अधिकार में ही दिया गया, इन सिपाहियों पर जो अंग्रेज अधिकारी थे उन्हें अपने सिपाही राजनिष्ठा की जीवित मूर्तियां लगते थे। विशेषकर 6वीं रेजिमेंट ने तो राजनिष्ठा की हद कर दी थी, इसमें बिलकुल भी शंका नहीं। उन्होंने दिल्ली का समाचार मिलने के बाद एक दिन सरकार को संदेश भेजा कि हमें उस अवसर की राह देख रहे हैं। इस अप्रतिम राजनिष्ठा की हर तरफ तारीफ होने लगी। स्वयं गवर्नर जनरल की ओर से इस अद्वितीय ईमानदारी और राजनिष्ठा के लिए 6वीं रेजिमेंट अंदर से पूरी—की—पूरी विद्रोही हो गई है। यह समाचार सुनते ही राजनिष्ठा का प्रदर्शन करने के लिए 6वीं रेजिमेंट ने दो क्रांतिदूतों को पकड़कर अधिकारियों को सौंप दिया। अब शंका की बात ही कहां रही! परंतु सरकार को अभी भी हमारी राजनिष्ठा पर शंका हो तो हमारे हृदय कितने निर्मल हैं—देखना चाहे तो अंग्रेज अधिकारी भी 6वीं रेजिमेंट में आएं—और देखें, कहां—कहां, राजनिष्ठा का सागर लहरा रहा है। इतना ही नहीं अपितु अंग्रेज अधिकारियों के पास दौड़ते हुए पहुंचकर सिपाहियों ने आलिंगन दिए और प्रेम का प्रदर्शन करते हुए उनके दोनों गाल चूमें।[77]

¨ और उसी रात को 6वीं रेजिमेंट के सारे—के—सारे सिपाही 'मारो फिरंगी को' कहते हुए तलवार तान उठे!

क्रांति—योजना का बनारस की तरह समय पूर्व ही विध्वंस न हो और सिपाहियों को निःशस्त्र न किया जा सके, इसलिए सिपाहियों के गुप्त प्रयास जब चल रहे थे, तभी अंग्रेजों ने अपने काफी कुछ परिवार किले में ले जाकर उनका संरक्षण करने कुछ सिखों और घुड़सवारों के दल वहां तैनात कर दिए थे। बनारस का समाचार 5जून को इलाहाबाद आ धमका। उस दिन शहर में ऐसी अपूर्व गड़बड़ी प्रारंभ हुई कि अंग्रेजों ने कुछ तोपें बनारस की ओर के पुल निशाना साधकर रख दीं और किले के दरवाजे बंद कर लिये। रात के समय सिपाहियों ने जिन्हें कुछ समय पूर्व ही चूमा था, वे सारे अंग्रेज अधिकारी नाचते—कूदते खाना खाने मैस में गए ही थे कि तभी कुछ दूरी पर संकटसूचक बिगुल बजने लगा। वह बिगुल शायद राजनिष्ठ 6वीं रेजिमेंट के विद्रोही हो उठने का

[77] नैरेटिव्स' में सर सी. कॉलिन ने लिखा है—"Sepoys hung themselves about the necks of their European officers and kissed them on both cheeks."

भयानक समाचार बजा रहा था!

बनारस के पुल पर सुरक्षा के लिए रखी गई तोपें किले में पहुंचाने का आदेश उस दिन शाम को ही हो गया था। परंतु अंग्रेज आदेश दें और सिपाही पालन करें, यह आज तक का राजनिष्ठ नियम उस शाम को एकाएक बदला–बदला दिखाई देने लगा। क्योंकि सिपाहियों ने एक दूसरा आदेश जारी किया कि तोपें किले की ओर न ले जाकर कैंट की ओर ले जाई जाएं। यह विचित्र ढंग देखकर उन उद्दंड सिपाहियों को दंड देने के लिए अवध के घुड़सवार बुलाए गए। ले. कर्नल अलेक्जेंडर नामक युवा अंग्रेज अधिकारी अपने नेटिव घुड़सवारों को तैयार कर लेफ्टिनेंट हार्वड के साथ तुरंत उन सिपाहियों पर दौड़ पड़ा। इस समय चंद्र प्रकाश से दिशाएं प्रकाशित हो रही थी। घुड़सवार पलटन को उन उद्धत सिपाहियों पर हमला करने का अंग्रेजी अधिकारियों ने आदेश दिया और अब अपने पीछे हजारों दौड़ते घोड़े आकर मुट्ठी भर सिपाहियों को लतिया डालेंगे,ऐसे विश्वास से अंग्रेज अधिकारी स्वयं आगे बढ़ टूट पड़े। पर आश्चर्य! पीछे सारे घुड़सवार अपने स्वदेश बंधुओं पर शस्त्र उठाने से मना कर जहां–के–तहां खड़े रहे। यह देखते ही सिपाही जय–जयकार कर उठे। कर्नल अलेक्जेंडर सीने में गोली लगने से नीचे गिरा। उसके शरीर के टुकड़े किए गए और वे सारे भारतीय सिपाही एक–दूसरे के गले लगते तोपों के साथ कैंट की ओर चल दिए। इस समय पहले ही दौड़कर आए दो घुड़सवार ने कैंट पर यह समाचार अपने भाइयों को बता भी दिया था। फिर क्या था, परेड मैदान पर जो घटना घटित हुई वह अभूतपूर्व ही थी। अंग्रेज अधिकारी के मुंह से आदेश निकलता और उसे गोली लगती। प्लैंकेट मरा, अडज्युटंट इन्नेस मरा। क्वार्टर मास्टर हावस मरा, पिंगले मरा, मैनरो मरा, बर्च मरा, लेफ्टिनेंट इन्नेस मरा। परेड मैदान से वह क्रोधित सैन्य समूह अब आग लगाते इधर–उधर फैल गया था। मैस हाउस में खाने–पीने के लिए बहुत अंग्रेज लोग आएं हैं, यह ज्ञात होते ही उस मैस हाउस पर हमला किया गया और वहां के सारे अंग्रेज गिन–गिनकर काटे गए। पहले ही कहा था कि इलाहाबाद में मुख्य बात किला हथियाना थी। उस किले में अंग्रेज महिला–बच्चे, भरपूर गोला–बारूद को पूरी तरह सिख सिपाहियों के हाथों सुरक्षा के लिए सौंपा गया था और ये सिख सिपाही भारतीय लोगों की तरह ही विद्रोह करेंगे और किले में से फिरंगी भगाए जाने की खुशखबरी देनेवाली तोप जल्दी ही छूटेगी, यह उत्सुकता सारे सिपाहियों को थी।

परंतु किले के सिखों ने सच्ची राजनिष्ठा दिखाई। उन्होंने किले से फिरंगी झंडा उखाड़ फेंकने से तो मना किया ही, साथ ही किले के नेटिव सिपाहियों को निःशस्त्र करके बाहर भगा देने के लिए अंग्रेजी अधिकारियों की पूरी सहायता की। इस समय सिख लोग अपनी तरफ किस तरह बने रहे, अंग्रेजों को इस बात का आश्चर्य अभी भी है।[78]

[78] स्वयं नील कहता है–"How the plan has not taken, by the Sikhs] is a wonder!"

एकाध घंटे में इलाहाबाद का यह विस्तृत किला क्रांतिकारियों के हाथ में पड़ जाता, पर सिखों ने वह आधा घंटा अपने स्वदेश बंधुओं और अपनी मातृभूमि के शरीर को चूर–चूर करने में ही खर्च कर दिया। किले के अंदर स्थित भारतीय सिपाहियों ने बार–बार प्रयास करेन में ही खर्च कर दिया। किले के अंदर स्थित भारतीय सिपाहियों ने बार–बार प्रयास किया, पर उनका साथ न देकर अंग्रेज अधिकारियों के आदेशों पर उन्हें निःशस्त्र कर सिख सिपाहियों ने किले के बाहर भगा दिया और इस तरह किला अंग्रेजों के कब्जे में बना रहा।

परंतु उन चार सौ सिखों से ही वह इलाहाबाद शहर नहीं भरा था। सिपाहियों के विद्रोह का समय होते–न–होते इलाहाबाद शहर विद्रोह कर उठा। इधर परेड की ओर भयानक गर्जनाएं हो रही थीं, तभी उसकी प्रतिध्वनि शहर के उस घनघोर कंठ से निकलने लगी। पहले शहर की नाकेबंदी कर यूरोपियन घरों का सत्यानाश किया गया और फिर सिपाही और नागरिकों ने इकट्ठे होकर कारागृह को खोल दिया। उस कारागृह के कैदियों के मन में अंग्रेजों के प्रति इतना द्वेष भरा हुआ था जितना किसी के मन में नहीं होगा। कारागृह से छूटते ही कर्कश आवाज और चीत्कार करते पहले वे यूरोपियनों की बस्ती का ओर दौड़े। विशेषकर तारयंत्र और रेलों पर क्रांतिकारियों का बड़ा गुस्सा था। रेल के दफ्तर, पटरी, तार, खंभे, इंजन सारा कुछ क्रांतिकारियों के हाथ लग ही गए। वे एक–एक झटके में जो भी गोरा मिलता उसका सफाया कर देते। जो गोरे भी पिटने लगे। विद्रोह करने को जो तैयार नहीं थे उन सबके घरों पर हमले हुए और जिन्होंने 'हम दिल्ली के बादशाह के प्रति राजनिष्ठ रहेंगे और फिरंगियों से लड़ेंगे–ऐसी शपथ ली, केवल उन्हें ही प्राणदान मिला। 7 जून के प्रातः क्रांतिकारियों ने इलाहाबाद का खजाना कब्जे में लिया। इस खजाने में कोई 30 लाख रूपए थे। फिर दोपहर के समय एक बड़ा सा हरा झंडा ले जाकर शहर की मुख्य कोतवाली पर लगाया गया और उसे सारे नागरिकों ने सलाम कि। जिस दिन शहर और किला इस विद्रोह की ज्वाला में सुलग रहा था उसी दिन सारा इलाहाबाद प्रांत मानों एक व्यक्ति–सा उठ खड़ा हुआ। इधर कहीं मानो फिरंगियों का राज था ही नहीं, एसो लगने लगा। हर गावं ने हरा या जरी का झंडा फहराया और आसपास के गोरे अधिकारियों को भगा दिया, अधिकतर को मार ही डाला जिससे वहां फिरंगियों की गुलामी जड़–मूल से उखाड़ फेंकने जैसी स्थिति हो गई। अरे रे, सौ वर्ष तक जिसके जड़–मूल गहरे बैठाने के लिए प्रयास किए गए उस गुलामी की जड़ें इतनी उथली होती हैं! वास्तव में केवल तलवार से जोती हुई भूमि में कुछ भी पैदा नहीं होता–यह सच है और उसमें गुलामी जैसा नकली बीज तो कभी जमता नहीं। रे विश्व, तू अब भी यह पाठ सीख सकेगा क्या?

इलाहाबाद प्रांत में अधिकतर तालुकेदार मुसलमान थे, पर उनकी प्रजा हिंदू थी। ऐसी दोनों परस्पर विरोधी जातियों में एकता होगी और अपने विरूद्ध सामान्य जनता में विद्रोह जन्म लेगा, यह अंग्रेजों के लिए असंभव लगता था। परंतु जून के पहले हफ्ते में ऐसी कितनी ही असंभवनाएं संभव हो गई थी। इलाहाबाद का विद्रोह सुनने के लिए न रूकते हुए उस प्रांत के सारे–के–सारे गांव एक ही समय में स्वतंत्र हो गए। मुसलमान और हिंदू–हमस ब स्वदेश माता के एक ही दूध से पोषित हैं, दोनों इसी प्रतिक्रिया से विद्रोह कर उठे और वे सबके सब फिरंगियों के शासन पर प्रहार करने को तत्पर हो गए। नौकरी में लगे मजबूत सिपाही ही नहीं, पेंशनभोगी बूढ़े सैनिक भी स्वयंसेवक हो गए। वे अपनी सफेद मूंछों पर ताव भरते तरूणों की सेना तैयार करते और जो अति बुढ़ापे के कारण कुछ भी प्रत्यक्ष कृति करने में असमर्थ थे, अपने बिस्तर पर पड़े–पड़े लड़ाई के दांव–घात समझाते और संकट की बातों पर सलाह देते।[79] पेंशनभोगी सिपाहियों को भी जिस उद्देश्य से बुढ़ापे में यौवन की उमंग आने लगती है उस स्वराज्य और स्वधर्म की दिव्य चेतना की हवा अन्यत्र भी लोगों में भर गई थी, इसमें कोई शंका नहीं। दुकानदार, मारवाड़ी, बनिया इनको भी उस लोक–क्षोभ से इतना साहस भर गया था कि उनके द्वेष के संबंध में जनरल नील ने अपनी रिपोर्ट में विशेष रूप से उल्लेख किया है–''अनेक प्रमुख व्यापारियों एवं अन्य लोगों ने भी हमारे प्रति प्रचंड द्वेष–भावना अभिव्यक्त की। इतना ही नहीं, उनमें से अनेक ने तो हमारे विरूद्ध सक्रिय युद्ध में भी भाग लिया।''

(नील का द्वितीय पत्र)

पर इतना हो जाने के बाद भी किसान हमारी ओर होंगे, यह बात अंग्रेज बड़ी बड़ाई से कर रहे थे। परंतु इलाहाबाद ने यह भ्रम भी तोड़कर उसकी ठिकारियों बना दी। हिंदुस्थान में आज तक किसी भी आंदोलन में इतनी अगुवाई किसानों ने नहीं की जितनी इस सन् 1857 क्रांति–युद्ध में की। अपने पुराने लालुकेदारों (अंग्रेज द्वारा नियुक्त नहीं) के झंडों के नीचे अपने हाथों के हल जहां–के–तहां फेंककर ये किसान हवा की भांति स्वतंत्रता युद्व के लिए दौड़ पड़े। उन्होंने कंपनी से अपना आड़ा–टेढ़ा परंतु स्वराज्य अधिक अच्छा है, यह पक्की तरह से दिख गया थां इसलिए उन्होंने नियत समय पर आज तक के अपमान का भयानक प्रतिशोध लेना प्रारंभ किया। जहां–तहां स्वराज्य की जय–जयकार होती, गुलामी के मुंह पर गली–कूंचों में बच्चे भी थूकने लगे। सचमुच

[79] ''कल तक जो सिपाही हमारे हाथ सहलाते थे, वे ही आज उन पेंशन प्राप्त वृद्धों के साथ, जो रणभूमि में जाने के सर्वथा अयोग्य थे, अन्य लोगों को कायरता और क्रूरता के कार्य करने में नितांत तत्परता सहित बढ़ावा दे रहे थे। ''
–के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 193 तथा रेड पैंफलेट भी देखें

लड़कों ने थूका। क्योंकि बारह–चौदह वर्ष के बच्चों ने स्वराज्य के हरे जरीदार झंडे लगाए और ताशे बजाते हुए उन झंडों को उठाए उन्होंने जुलूस भी निकाले। ऐसे ही एक जुलूस को पकड़कर अंग्रेजों ने उसमें सम्मिलित तरूणों को फांसी पर लटकाया। यह दंड दिए जाने पर एक अंग्रेज अधिकारी भी इतना लज्जित हुआ िकवह अश्रुपूरित नेत्र लेकर मुख्य कमांडर से उन बच्चों को छोड़ देने का निवेदन करने लगा। परंतु उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और स्वतंत्रता के झंडे को लेकर चलनेवाले उन तरूण लड़कों को दिन–दहाड़े फांसी दी गई। इन तरूण देवदूतों पर किया गया जुल्म उन जालिमों के सिर पर आघात करने से कैसे चूक सकता है? सारी सृष्टि भूकंप–जैसी डोलने लगी। किसान और तालुकेदार, हिंदू और मुसलमान, वृद्ध और तरूण, पुरूष और महिला–सारे–के–सारे राजनीतिक दास्य का उच्छेद करने के लिए 'हर–हर' कर उठा। ''केवल गंगा पार के लोग ही नहीं अपितु गंगा और यमुना के मध्य में स्थित भूखंड की जनता भी उठा, किसान भी सन्नद्ध हुए और दोनों धर्मों का एक भी अनुयायी ऐसा नहीं रह गया जो हम (अंग्रेजों) पर प्रहार करने के लिए बेचैन न हो उठा हो।''[80] इस बहुजन समाज के प्रचंड प्रयासों को सफलता मिले और श्रीमती भारतभूमि स्वराज्य–संपन्न हो जाए–इसके लिए प्रयाग के पंडे और मुल्ला अपना पवित्र आशीर्वाद उस क्रांति के माथे पर बरसाने लगे।

हिंदुस्थान के इतिहास में इतनी उत्क्षोभक, विद्युत वेगी, भयानक एवं सर्वत्र व्याप्त राज्य क्रांति दूसरी दिखना बहुत कठिन है। लोक–शक्तियां जिसमें भड़भड़ाकर जाग उठीं और अपने देश की स्वतंत्रता के लिए एकाएक गर्जना करते मेघों की तरह रक्त की मूसलधार वर्षा करने लगीं। यह सन् 1857 जैसी प्रचंड राज्य क्रांति हिंदुस्थान के इतिहास में अभूतपूर्व बात थी। उसमें भी हिंदू और मुसलमान अपने भाई–भाई होने का रिश्ता पहचानकर हिंदुस्थान के लिए इकट्ठा होकर लड़ने लगे, यह दृश्य बहुत ही अपूर्व एवं आश्चर्यकारी था। यह अपरिचित प्रचंड तूफान उत्पन्न करने के बाद उसपर नियंत्रण रख पाने में हिंदुस्थान धोखा खा गया, इसमें कौन सा आश्चर्य! आश्चर्य है तो यह कि जिसपर कोई दोषारोपण न किया जा सके, ऐसा तूफान हिंदुस्थान ने निर्मित किया! क्योंकि राज्य क्रांति पर नियंत्रण रखना तो किसी भी राष्ट्र के लिए संभव नहीं हुआ। अधिक क्या कहें, यदि फ्रेंच राज्य क्रांति से तुलना कर देखें तो अत्याचार, अंधाधुंधी, आपाधापी, अव्यवस्था, अंधस्वार्थता, लूटपाट आदि क्रांति जैसे अनिवार्य प्रलय में अनिवार्य तथा घटित हुई–ऐसा दिखता है। हिंद–भू का वह पहला प्रयत्न नहीं, प्रयोग था और इसीलिए उस प्रयोग में जहां इलाहाबाद में इतनी विजय प्राप्त हुई वहीं त्रुटियां, धोखे या अंधाधुंधी भी हुई। इसमें आश्चर्य का कोई कारण नहीं है। जमींदारों के आनुवंशिक झगड़े, गुलामी के कारण प्राप्त दरिद्रता आदि और शताब्दियों पुराने हिंदू–मुसलमानों का

[80] के कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 195।

वैर एकाएक नामशेष करने के प्रयास में स्वाभाविक रूप से एकाएक उठी भ्रांतियों के कारण विद्रोह के पहले झटके में ही इधर–उधर अनियंत्रण आरंभ न होना बहुत कठिन था। सृष्टि के पहले प्रलय होना चाहिए। उसे रोक पाना ईश्वर के लिए भी असंभव था। जिन्हें राज्य क्रांतियां चाहिए उन्हें ऐसे संकट रास्ते में मिलेंगे ही।

पर लूटपाट और आगजनी का पहला हफ्ता गुजर जाने के बाद अंधाधुंधी के सारे संकट दूर हो इलाहाबाद में क्रांति होती हैं वहां–वहां क्रांति क्षण के बाद पहली समस्या नेता की होती है। परंतु यह बाधा इलाहाबाद में जल्द ही टल गई; क्योंकि मौलवी लियाकत अली नामक एक कट्टर स्वतंत्रता–भक्त जल्दी ही उस क्रांति का नेता बन गया। इस पुरूष की जो संक्षिप्त जानकारी मिलती है वह यह कि यह जुलाहों का प्रमुख धर्मगुरू था। क्रांति के पहले उसने विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया था। इसकी धर्मशील पवित्रता से इसपर लोगों की श्रद्धा हो गई थी। विद्रोह के बाद जनता द्वारा इलाहाबाद स्वतंत्र करते ही कुछ दिनों में चौबीस परगना के जमींदारों ने इस मौलवी को इलाहाबाद में लाकर प्रांत का मुख्य अधिकारी नियुक्त किया और बड़े समारोह के साथ दिल्ली के बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में उसे नाम की डौंड़ी पीट दी गई। इस मौलवी ने अपना मुख्यालय खुसरो बाग में बनाया। इस बाग के चारों ओर एक मजबूत दीवार थी। फिर उसने सारे प्रांत के विद्रोहियों को संगठित करना प्रारंभ किया। उसने जल्दी ही सारे सरकारी काम और षड्यंत्र व्यवस्था से प्रारंभ करवाएं। ''मैं दिल्ली के बादशाह का सूबेदार हूं'', केवल वह कहता ही नहीं रहा, ऐसा इलाहाबाद के सारे समाचार और घटनाओं की सरकारी रिपार्ट अंत तक दिल्ली के बादशाह को भेजता भी रहा।

मौलवी लियाकत अली को इलाहाबाद का किला अपने अधीन करने का काम सबसे पहले करना था। उसके अधीन जो सेना इकट्ठी हो गई थी उसे किले पर हमला करने के लिए सज्जित करने के प्रयास और प्रबंध उसने चालू किए थें उसी समय जनरल नील के बनारस से इलाहाबाद की ओर घूम जाने का सामचार आ पहुंचा। यदि उन चार सौ सिखों को सुबुद्धि आई होती तो तोपें, शस्त्र, गोला–बारूद सहित वह प्रचंड किला एक भी गोली चलाए बिना विद्रोहियों के हाथ पड़ जाता। जनरल नील के हृदय में वह बात लगातार चुभ रही थी, इसलिए उसने रात को दिन बनाते हुए सेना के साथ इलाहाबाद की ओर कूच किया। 11 जून को नील इलाहाबाद आया। उसके अपने तक किला और उसमें रह रहे अंग्रेजों का सिख लोग संरक्षण करेंगे, इसकी नील को बिल्कुल आशा न थी, अतः जब उसने किले पर अंग्रेजी झंडा फहराते देखा तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अपने साथ की यूरोपियन सेना को तत्काल किले की सुरक्षा के लिए लगाकर उन राजनिष्ठ सिखों को किले के बाहर निकाल लड़ाई के काम में लगा दिया। नील का

यद्यपि सिखों पर बिलकुल विश्वास नहीं था, फिर भी सिखों को उसपर पूरा विश्वास था। क्योंकि उन्होंने उस अपमान के बाद भी विद्रोहियों से मिलने से मना किया और नील के साथ पास–पड़ोस के गांवो को बेचिराग करने के लिए वे तत्काल तैयार हो गए। 17 जून को अंग्रेजी सेना शहर में घुसने लगी। उस समय की घटनाओं के संबंध में अपने बादशाह को भेजी रिपोर्ट में मौलवी कहता है–''जो देशद्रोही, पापी उन फिरंगियों से मिल गए हैं उनमें से कुछ ने शहर में ऐसी गप उड़ा दी है कि सारा शहर अंग्रेज लोग तोपों से उड़ाने वाले हैं और ये सबको सच लगे, इसके लिए उन्होंने ऐसी घोषणा कर दी है कि हम अपने घर छोड़कर जान बचाने भाग रहे हैं। इस कारण सारा शहर डरकर मेरे सुरक्षा आश्वासन पर ध्यान न देते हुए वीरान हो रहा है।'' मौलवी की यह अभागी रिपोर्ट तैयार होकर दिल्ली की ओर चली ही थी कि खुसरो बाग पर अंग्रेजों का आक्रमण होने लगा। उस दिन का आक्रमण विद्रोहियों ने नाकाम कर दिया। परंतु किला उनके पास होने से एक खंडहर बाग में बैठकर इलाहाबाद संभाले रहना शुद्ध पागलपन ही था, यह जानकर मौलवी अपने अनुयायियों के साथ 17 जून की रात को कानपुर की ओर निकल गया। दिनांक 18 जून को अंग्रेजों ने इलाहाबाद शहर में अपने सिख राजनिष्ठों के साथ प्रवेश किया।

बनारस की तरह ही इलाहाबाद फिर से अंग्रेजों के हाथ लग गया। परंतु इससे विद्रोहियों का धीरज तिल भर भी कम नहीं हुआ। मुख्य किले में अंग्रेज सुरक्षित हैं, यह देखकर उस प्रांत के कट्टर लोगों को अधिक ही जोश चढ़ने लगा और हर गांव अपनी–अपनी गढ़ी को किला बना उसे लड़ाने की तैयारी में लग गया। ऐसे कृत निश्चयी लोगों को घूस देकर फांसने के दिन नहीं रहे थे। वह युद्ध सिद्धांत के लिए लड़ा जा रहा था। इसलिए छोटे–छोटे नेता पकड़कर लाने के लिए नील ने हजारों रूपए के पुरस्कार घोषित किए, फिर भी कंगाल किसान तक वह काम करने को तैयार नहीं थे। लोगों की इन अपूर्व निष्ठा के लिए उस समय के अंग्रेज अधिकारियों ने अपने पत्रों में भी बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया है। एक गांव के संबंध में एक अधिकारी लिखता है–''मजिस्ट्रेट ने किसानों में सुपरिचित एक क्रांतिकारी नेता का सिर काटकर उपस्थित करने पर एक हजार रूपए का पुरस्कार देने की घोषणा की। किंतु हम (गोरों) से भारतवासियों को इतना अधिक द्वेष था कि एक भी व्यक्ति ने उसे बंदी बनाने के लिए आगे आने तक की चेष्टा नहीं की।''–चार्ल्स बाल, खंड 1। नेता पकड़कर देना ही नहीं, पैसा लेकर अंग्रेजों को माल बेचना तक बहुत बड़ा पाप माना जाता था। यदि किसी ने यह अपराध किया तो उसे समाज की ओर से भयानक दंड तत्काल दिया जाता। ''कोई भी ऐसा व्यक्ति जो यूरोपियन के लिए कुछ भी करता था, उसे ये हत्यारे मार ही डालते थे। . . . एक निर्धन पाव रोटीवाले ने हमारे लिए पाव रोटी भेज दी थी तो बाद में देखा गया कि उसके दोनों हाथ ही काट

लिये गए हैं और नाक भी साफ कर दी गई है।'' ऐसा 23 जून की यह उपर्युक्त रिपोर्ट कहती है। ऐसे राष्ट्रीय और शास्त्रीय बहिष्कार के कारण अंग्रेजों की कठिनाइयों की सीमा नहीं रही। इलाहाबाद का किला तो ले लिया। परंतु वहां से आगे–पीछे कदम बढ़ाना अंग्रेजों को असंभव हो गया। उन्हें बैला नहीं मिलते, उन्हें गाड़ियां नहीं मिलती, उन्हें दवाइयां भी नहीं मिल रही थीं। बीमार सोल्जरों को डोलियां नहीं मिलती–डोली उठानेवाले कहार नहीं मिलते थे। इस कारण जगह–जगह पड़े बीमार लोगों की कर्कश कराहें इतनी भयानक होती कि उन्हें सुनकर ही अंग्रेज महिलाएं चटपट मरने लगीं। वे दिन धूप के थे और जून माह में विद्रोह करके हम अंग्रेजों को अपने देश के सूर्यताप से मार डालेंगे, विद्रोहियों का यह जो दांव था, उसका अनुभव होने लगा। सिर पर गीला कपड़ा बार–बार रखने में ही सारे अंग्रेज निमग्न थे। उस पर अन्न न मिलना। अनाज का एक दाना भी कोई अंग्रेजों को बेचने के लिए तैयार नहीं था–'' आज तक हमें नितांत ही अल्प भोजन पर अपने दिन गुजारने पड़े हैं। वस्तुतः कल मुझे अपने नाश्ते में जितना भोजन मिला था उससे तो एक श्वान का भी अपना पेट नहीं भर पाता।'' ऐसा इलाहाबाद का एक अंग्रेज अधिकारी लिखता है। अपने कुत्ते को भी जो खाना मैंने न खिलाया होता, वह खाना कलम" स्वयं खा रहा था। गरमी और भुखमरी से अंग्रेजों में हैजा शुरू हो गया और उसमें भी अंग्रेज सोल्जरों ने दारू पीकर धुत्त पड़े रहने का सिलसिला चालू रखा। सारा अनुशासन बिगड़ गया। नील के आदेश को भी वे शराबी ऐसे ठुकरा देते कि अब मैंने उनमें से एक–दो को फांसी देने का निश्चय किया है, ऐसा उसने केनिंग को सूचित किया। इन अनंत संकटों से घिरी अंग्रेजी सेना जहां–की–तहां बंधी रह गई। कानपुर से तुरंत सहायता भेजने के संदेश–पर–संदेश आते रहे, फिर भी जनरल नील जैसे साहसी योद्धा को इलाहाबाद में जुलाई की पहली तारीख देखनी पड़ी।

जनरल नील और उसकी फ्युजिलियर सेना मद्रास की ओर से आई हुई थी–यह बात महत्त्वपूर्ण है। यदि इस समय मद्रास की ओर विद्रोह की गप भी उड़ जाती तो अंग्रेजों को उसका तनाव सहना एक दिन भी असंभव हो जाता। परंतु इलाहाबाद के कृतनिश्चयी हिंदुस्थानी लोगों ने यद्यपि अंग्रेजी योद्धाओं को मानो कमरे में बंद करके मार डालने का इतना सफल प्रयास किया था, फिर भी अंग्रेजों को उससे डरने की वास्तविक आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि मद्रास, बंबई, राजपुताना, पंजाब, नेपाल आदि सारा हिंदुस्थान अभी तक मृत–सा निश्चल पड़ा था, जब उसमें से कुछ भाग चैतन्य हुआ तो वह पिशाच बनकर विद्रोहियों पर ही टूट पड़ा। इलाहाबाद और बनारस में अंग्रेजों के साथ हजारों सिख सिपाही थे ही। फिर क्यों घबड़ाया जाए! दूसरे कुछ भी करें, पर इलाहाबाद के पंडों और मुल्लाओं ने, तालूकदार और किसानों ने, छात्रों और शिक्षकों ने दुकानदारों और ग्राहकों ने अनंत बाधाएं सामने खड़ी होते हुए भी सबको एक छाने के

नीचे ला सके, ऐसा कोई करामती नेता न होते हुए भी और पराजय से लोगों में हताशा और अंधाधुंधी मची होते हुए भी, गुलामी के प्रति जो दीर्घ द्वेष प्रदर्शित किया और स्वराज्य एवं स्वतंत्रता के उच्च ध्येय के लिए जो स्वार्थ—त्याग किया इससे उन सब देशभक्तों के लिए इतिहास हमेशा—हमेशा गौरव गान ही करेगा।

क्योंकि उन सब देशभक्तों को अंग्रेजी दासता के विरूद्ध उठ खड़े होने के लिए बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा था।[81] बनारस और इलाहाबाद प्रांत में जनरल नील ने जो क्रूर व्यवहार किया उसका जंगली इतिहास में भी कोई सही उदाहरण मिलना कठिन है। यह मैं आलंकारिक भाषा में नहीं लिख रहा, अंग्रेजों के ही वर्णन पढ़कर मेरी आत्मा यह कहती है। नील ने वृद्धों को जलाया, नील ने अर्भकों को जलाया, नील ने पलने में सो रहे मुन्ने को उसके पालने में और गोद में दूध पीते मुन्ने को उसकी मां की गोद में ही भून डाला। सैकड़ों स्त्रियों को, कुमारियों को, माताओं और पुत्रियों को—जिनकी संख्या भी न गिनी जा सके—जिंदा जला दिया। परमेश्वर और मनुष्य जाति के सामने मैं यह कथन कर रहा हूं। इसमें का एक अक्षर भी मिटाने की किसी में हिम्मत है तो वह सामने आकर

[81] एक ब्रिटिश अधिकारी ने अपने प्रयाग के क्रियाकलापों के संबंध में यह विवरण प्रस्तुत किया था—''हां, यह प्रवास तो मुझे बहुत ही रूचिकर प्रतीत हुआ। जब सिख सैनिकों के साथ फ्युजिलियर्स सिपही नगर पर आक्रमण करने गए तो हम अपनी बंदूकों सहित जहाजों पर सवार हुए। जहाज चल रहा था और हम अपने दाएं—बाएं तटों पर गोलियों की बौछार करते आगे बढ़ रहे थे। जब हम एक खराब स्थान पर आए तो गोली वर्षा करते हुए ही तट पर उतर पड़े। मेरी दुनाली बंदूक से बरसती गोलियों का आहार अनेक 'काले' लोग बन रहे थे। मैं प्रतिशोध लेने की भावना से उन्मादग्रस्त—सा हो गया था। दाएं—बाएं और आसपास के स्थलों पर जब हमने अग्नि वर्षा की तो पवन के प्रवाह से भड़की अग्नि ज्वालाओं ने आकाश तक अपनी सैकड़ों जिह्वाएं फैला दीं। अब राजद्रोही दुष्टों से पूरा—पूरा प्रतिकार लिया जा रहा था। यह देखकर हम हर्ष और आनंद से सुधबुध भी खो बैठे। प्रतिदिन विद्रोहियों के ग्रामों को अग्नि की भेंट चढ़ाने के लिए हमारी टोलियां निकलती थीं और हम पूर्णतः प्रतिशोध ले रहे थे। मक्कारों ने सरकार और अफसरों के साथ अपराधपूर्ण व्यवहार किया था, उनकी जांच हेतु जिस समिति का गठन किया गया था, मैं उसका अध्यक्ष था। प्रतिदिन ही हम आठ—दस व्यक्तियों को तो निश्चित रूप से ही फंसाते थे। अब इन लोगों के प्राण हमारे चुंगल में थे। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हमने किसी के भी प्रति तनिक सी भी उदारता का प्रदर्शन नहीं किया। पैरवी की प्रक्रिा तो बड़ी ही सामान्य सी थी। दंडित अपराधी को अपने गले में फंदा डालकर, एक गाड़ी पर चढ़ाकर वृक्ष से बांध दिया जाता था। गाड़ी को आगे बढ़ाया कि उसकी देह वक्ष से झूल गई।'' —चार्ल्स बाल कृत—'इंडियन म्युटिनी, खंड1, पृष्ठ 257 और ऐसा कितने दिन तक चलता रहा—''तीन मास तक आठ शव ढोनेवाली गाड़िया सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक उन शवों को एकत्रित करने के लिए चक्कर लगाती थीं, जो राजमार्गों और बाजारों में लटकाए जाते थे। इस प्रकार लगभग छह हजार व्यक्तियों को सामान्य सुनवाई के उपरांत प्राणदंड देकर उन्हें चिर निद्रा में सुलाया गया था।'' —के कृत—'इंडियन म्युटिनी खंड 2, पृष्ठ 203

एक क्षण के लिए तो खड़ा रहे। इन सबका अपराध क्या था? तो वह अपने देश की स्वतंत्रता के लिए सारे कष्ट भोगने को तैयार हो गए थे। फिर भी, अभी कानपुर का कत्लेआम नहीं हुआ था। कानपुर के कत्लेआम के प्रतिशोध में नील ने यह कत्लेआम नहीं किया था, उलटे नील के कत्लों के प्रतिशोध में कानपुर का कत्लेआम हुआ था।

सन् 1857 में सारे हिंदुस्थान में जितने अंग्रेज पुरूष, महिला और बच्चे कत्ल नहीं हुए उतने अकेले नील ने केवल इलाहाबाद में किए थे। ऐसे सैकड़ों नील हजारों गांवों में उस वर्ष नेटिवों को सरेआम कत्ल कर रहे थे। अंग्रेजों के एक–एक आदमी के लिए हिंदुस्थान का एक–एक गांव जीवित जलाया गया है।

इसके लिए अंग्रेज इतिहासकार कया कह रहे हैं? वे पहले तो यह घटना पूरी तरह छोड़ देते हैं और वह भी कह–सुनकर यदि थोड़ी–बहुत बातें लिखीं तो उससे नील कितना साहसी, कट्टर और बहादुर था, यह सिद्ध करते हैं। ऐसी प्रासंगिक क्रूरता से व्यक्त होता है, ऐसा कुछ लोगों को कहना है। मानव जाति के लिए नील के ह्रदय में कितनी ममता भरी हुई थी, इस मानवी कल्याण के लिए सके द्वारा दिखाई गई क्रूरता से व्यक्त होता है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। पार्लियामेंट की रिपोर्ट में भी यह कहा गया है। अंग्रेजों के इस प्रतिशोध के कारण ही कानपुर का कत्लेआम हुआ, यह आशंका 'के' व्यक्त करता है। पर वह कहता है, नेटिवों की उद्धतता के कारण ब्रिटिशों का सिंह रूप प्रकट होना स्वाभाविक ही था। इस क्रूरता के लिए नील क विरूद्ध 'के' ने एक अक्षर भी नहीं लिखा है, उलटे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा करने का साहस न करते हुए वह उसे ईश्वर को सौंप देता है। परंतु नाना के संबंध में लिखते समय उसकी लेखनी अश्लीलता को भी लज्जित करती है। चार्ल्स बाल नील की अपरिमित स्तुति करता है। स्वयं नील कहता है–''परमात्मा साक्षी है कि मैंने कुछ अधिक क्रूरता प्रदर्शित की है; किंतु इन संपूर्ण परिस्थितियों पर सामूहिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सभी कुछ क्षम्य है। मैंने जो कुछ भी किया, अपने देश के लिए, उसके कल्याण के लिए किया है। मैंने यह कार्य अपनी साम्राज्य सत्ता का आतंक बैठाने तथा उसे पुनः स्थिरता प्रदान करने के लिए किया है।'' ''स्वदेश के लिए मैं यह अघोर अत्याचार कर रहा हूं, इसलिए परमेश्वर मुझे क्षमा करें'', जनरल नील का उपर्युक्त वाक्य देकर जो अंग्रेज इतिहासकार उसकी स्तुति करते हैं वे ही श्रीमंत नाना के और सिपाहियों के जोश को नरकगामी कहते हैं। इंग्लैंड के स्वदेशाभिमान की व्याख्या भी विचित्र है!

होम नामक इतिहासकार कहता है–''बूढ़े लोगों को और गोद में दूध पीते अर्भकों को लिये बेसहारा महिलाओं को भी इस भयानक प्रतिशोध में बलि चढ़ाया गया,

पर वह सुख के लिए नहीं—यह पवित्र कर्तव्य था, इसलिए किया गया, जनरल नील के सम्मान में यहां यह कहना होगा।''[82]

उपर्युक्त उद्धरण में निष्पक्ष इतिहास और सच्चे परमेश्वर को (नील के परमेश्वर को नहीं) यदि किसी के द्वारा की गई आम हत्याएं किसी को यथार्थ और न्यायपूर्ण लगती हों तो वह अंग्रेजों द्वारा की गई हत्याएं न होकर विप्लवकारियों द्वार की गई हत्याएं हैं। स्वतंत्रता के लिए की गई हत्याएं क्षम्य हैं या नहीं, इस प्रश्न का निर्णय परमेश्वर पर छोड़ दें—परमेश्वर मुझे क्षमा करे। क्योंकि मैं जो कर रहा हूं वह अपने देश का प्राकृतिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए है—यह वाक्य नील की अपेक्षा नाना साहब के मुंह से अधिक शोभा देता। स्वदेश के लिए विप्लवी लड़ रहे थे, अंग्रेज नहीं। इसीलिए क्रूर हत्याएं करते हुए यदि कोई पवित्र कर्तव्य कर रहा था तो वह स्वधर्म और स्वराज्य इस महान् उपलब्धि के लिए झगड़नेवाले और सौ वर्ष के अत्याचारों से पीड़ित मातृभूमि का प्रतिशोध लेने का तत्पर क्षुब्ध देशवासी ही थे।

परंतु अब इस तत्त्वज्ञान का उपयोग ही क्या? नील ने इलाहाबाद में भयानक क्रूरता के जो बीज बोए उसकी फसल उधर कानपुर के खेतों में लहलहा उठी है। ऐसे समय में उस फसल की कटाई के लिए जल्दी से कानपुर की ओर जाना ही उचित है।

[82] ''वृद्ध व्यक्तियों ने तो हमें कोई हानि नहीं पहुंचाई थी। असहाय अबलाओं के आंचल से अबोध शिशुओं को भी हमारे प्रतिशोध की लपट उतनी ही प्रखरता से निगल गई थी जितनी तीव्रता से उसने घोर अपराधियों को चाटा था। किंतु उस परम श्रद्धेय नील के संबंध में यह तथ्य स्मरण रखना होगा कि ऐसे कठोर दंड देने में उसे तनिक सी भी सुखानुभूति नहीं होती थी, अपितु वह तो अपने कठोर दायित्व का पालन मात्र ही कर रहा था।''
—होम्स कृत—'सेपॉस वार', पृष्ठ 229—30

प्रकरण–8

कानपुर और झाँसी

दासता के नरक में पड़े अपने पितरों का उद्धार करने के पवित्र हेतु से अत्यंत वेग से बह रहे क्रांति भागीरथी के रक्त–प्रवाह को उत्तरी हिंदुस्थान के विस्तृत मैदान पर धमा–चौकड़ी करते छोड़कर अब कुछ देर हमें उस क्रांति भागीरथी के मुख्य स्रोत हरिद्वार में क्या चल रहा है–उसे देखना चाहिए। श्रीमंत नाना साहब के बाड़े में मेरठ के विस्फोट के समय जितने कार्यकर्ता इकट्ठे हुए थे उतने उस समय लखनऊ के राजमंदिर में, बरेली प्रांत में या स्वयं दिल्ली के दीवान–ए–खास में भी मिलने कठिन थे। इस ब्रह्मवर्त के महल में सन् 1857 की क्रांति का गर्भ संभव हुआ और वहीं वह गर्भ विकसित हो रहा था। वहीं उस विचार–गर्भ के द्रवीभूत रस का संगठन होने लगा और फिर पूर्ण गर्भ का उद्भव भी यदि यथाकाल ब्रह्मवर्त में ही होता तो निश्चय ही वह अल्पायु जीन होता। परंतु जब बीच में ही समय पूर्व मेरठ की गड़बड़ाहट से वह क्रांति गर्भ निकलकर बाहर आ गिरा तब उस कच्चे गर्भ का परित्याग न करते हुए उस कठिन परिस्थिति में ही उसकी उचित अभिवृद्धि करने के लिए इधर ब्रह्मवर्त क महल में क्रांति की तैयारी जोर–शोर से चल रही थी।

उस महल में नाना साहब के भाई श्री बाबा साहब व श्री बाला साहब और उनके भतीजे श्री राव साहब अपने मालिक के क्रांति के उदात्त हेतु को सफल करने के लिए अपना तन–मन–धन अर्पण करने को तैयार थे। वैसे ही नाना के गुरू जिन्होंने खिदमतगार की अत्यंत कनिष्ठ स्थिति से अपनी दक्षता और चतुराई से अपने को राज्यमान्य के पद

तक पहुंचाया था, जिन्होंने यूरोप खंड की राजनीति एवं संग्राम भूमि का अध्ययन कर अपनी स्वदेश भूमि को गुलामी से मुक्त करने के धर्मयुद्ध में उसका किस तरह उपयोग किया जाए—यह बड़ी चतुराई से प्रत्यक्ष अवलोकन किया था, जिन्होंने इस क्रांति का विस्तृत नक्शा सबसे पहले अपने मनःपटल पर बनाया था और जिन्होंने स्वयं मुसलमान होते हुए भी अपनी भारत माता की स्वतंत्रता के लिए एक हिंदू राजा के अभ्युदय के लिए अपना जीवन अर्पण कर 'परैस्तु विग्रहे प्राप्ते वयं पंचशतोत्तरम्' (संकट पड़ने पर हम एक सौ पांच हैं)—महाभारत के इस उपदेश की सार्थकता स्वआचरण से की थी, वे देशभक्त अजीमुल्ला खान भी फिरंगियों की गुलामी छोड़ने के लिए वहां हाथ में तिलांजलि लेकर खड़े थे। उसी महल में झाँसी की बिजली भी अपनी तेजपुंजता से उस गहरे अंधियारे में लगातार चमक मार रही थी।

परंतु ऐसे इतिहास—प्रसिद्ध राजमहल के शस्त्रागार में कसौटी के पत्थर पर तलवार को धार लगाने में कौन सा योद्धा तल्लीन है—यह तो देखें जरा!

प्रिय पाठक! शस्त्रागार में शमशीर को पानी चढ़ाने में तल्लीन वह सतेज मराठा तात्या टोपे है। शिव छत्रपति के अखाड़े का अंतिम जवां मर्द मराठा है यह। जवां मर्दी जिनमें होती है ऐसे बहुत लोग होते हैं, परंतु इस अंतिम मराठा है यह। जवां मर्दी जिनमें होती है ऐसे बहुत लोग होते हैं, परंतु इस अंतिम मराठा की जवां मर्दी अपनी स्वतंत्रता के लिए अपनी हिंद देवी की म्यान से बाहर निकाली हुई तलवार थी। तलवार मर गई,परंतु उसका 'वार' नहीं मरा—वह कभी मरनेवाला भी नहीं है। तात्या टोपे जैसी तलवार, जिसे काल द्वारा जीर्ण और शत्रु द्वारा विदीर्ण की हुई म्यान में से स्वेच्छा मात्र से निकाला जा सकता है, उस हिंद—भू की अक्षय कोख को नमस्कार करें।

हिंदभूमि की इसी आदरणीय कोख से सन् 1814 के आसपास वीरवर तात्या टोपे का जन्म हुआ।[83] उनके पिता का नाम पांडुरंग भट था। पांडुरंग भट को कुल आठ पुत्र थे और दूसरे पुत्र का नाम रघुनाथ था। यही रघुनाथ हिंदुस्थान के इतिहास के तारामंडल में 'तात्या' नाम से चमकता स्वतंत्रता का दिव्य तारा था।

पांडुरंग राव टोपे देशस्थ ब्राह्मण थे और अंतिम बाजीराव के पास ब्रह्मवर्त में वे दानाध्यक्ष के पद पर थे। उस ब्रह्मवर्त को एक समय कितना अलभ्य लाभ हुआ था! उसके आंगन में नाना साहब, झाँसी की छबीली, तात्या टोपे आदि की समकालीन स्नेह लीला हुई थी। बचपन से ही श्रीमंत नाना की तात्या से बड़ी प्रीति थी। जिस महान् कार्य में उन्हें वीर चरित्र की भूमिका करनी थी उस महान् कृत्य की शिक्षा बाल वय से ही इन दोनों विभूतियों को सृष्टि देवी की ओर से एक ही शाला में दी जा रही थी। 'रामायण', 'महाभारत' के पारायण जिन्होंने एक साथ किए, मराठों की जवां मर्दी का इतिहास जिन्होंने एक साथ पढ़ा और उस वीर रस को पीकर उनके बाल—बाहू एक साथ ही

[83] सन् 1849 में श्री तात्या टोपे अपनी जबानी कहते हैं—"मेरा नाम तात्या टोपे हैं। मेरे पिताजी का नाम पांडुरंग है और मैं यवला मरगना पालोडात्र, जिला नगर का निवासी हूं। मैं बिठूर में रहता हूं और मेरी आयु लगभग पैंतालीस वर्ष है और मैं नाना साहब की सेना में तैनात हूं।"

फड़क उठे थे–वही दो सिंह शावक अपनी देशमाता के लिए इकट्ठा लड़ें। किसी एक सदी में ऐसी एक ही शाला खुलती है जिसमें नाना, राव और छबीली जैसे बालक साथ–साथ शिक्षा लेते हैं, साथ–साथ मुस्कराते और साथ–साथ खेलते हैं; किसी एक सदी में ऐसी एक ही परीक्षा होती हैं कि जिसमें ये सारे महानुभव बालक संग्राम पत्रिका पर अद्भुत वीर चरित्र एकमत से लिखते हैं, ऐसी असाधारण शाला का और ऐसी असाधारण परीक्षा का सम्मान ब्रह्मवर्त के राजमहल को प्राप्त हुआ था।

अप्रैल के अंत में क्रांति पक्ष के संगठन को एकमत करने के लिए हिंदुस्थान के प्रमुख शहरों में स्वयं प्रवास करने के बाद अजीमुल्ला खान और नाना साहब संकेत समय की प्रतीक्षा करते हुए बहुत सावधानी से रूके हुए थे। तभी 18 मई को मेरठ के विप्लव और दिल्ली स्वतंत्र हो जाने का समाचार कानपुर आ पहुंचा। इस असमय हुए विप्लव के कारण ब्रह्मवर्त के राजमहल में किसी भी तरह की बेचैनी दिखाई नहीं दी। राज्य क्रांतियां सहस्त्रशः अलग–अलग भागों में चलती हैं–इसलिए उनमें से कुछ भाग जल्दी से तो कुछ मंद गति से, कुछ पूर्व संकेत के अनुसार तो कुछ आकस्मिक तेज से ही गतिमान हो जाते हैं। ब्रह्मवर्त के राजमहल के ध्यान में यह बात तत्काल आ गई और उसने मेरठ के विद्रोह का पूरा लाभ लेने का निश्चय किया। परंतु वह लाभ लेने के लिए तत्काल दिल्ली के पीछे–पीछे विद्रोह करें या जून के पहले हफ्ते में पूर्व संकेतों के अनुसार विद्रोह करें? इन दोनों में से दूसरा ही रास्ता ठीक समझ उसके अनुसार मई के उत्तरार्ध में ब्रह्मवर्त के अंतर्बाह्य दांव–घात चलने लगे। ब्रह्मवर्त से कानपुर बिलकुल पास है। इस शहर में बहुत दिनों से अंग्रेजी सेना का महत्त्वपूर्ण शिविर था। सन् 1857 के मई माह में वहां पर पहली 53वीं एवं 56वीं पैदल सिपाहियो की पलटन और घुड़सवार सिपाहियों की दूसरी पलटन–ऐसी कोई तीन हजार नेटिव सेना थी। वहां का तोपखाना अंग्रेजों के कब्जें में था और उसपर कोई साठ अंग्रेज और अन्य सौ–सवा सौ सोल्जर–इतने गोरे रहते थे। सारी सेना का कमांडर सर हो व्हीलर था। व्हीलर आयु से वृद्ध और सिपाहियों में बहुत लोकप्रिय अधिकारी था। इस वृद्ध अधिकारी ने सिख युद्ध में और अफगानिस्तान की मुहिम में अच्छी सेवा की थी। कानपुर की नेटिव सेना इस अधिकारी से बहुत खुश है, यह अंग्रेज सरकार को पूरी तरह ज्ञात होने के कारण कानपुर के सिपाहियों की पंक्तियों में कुछ पक रहा है, इसकी आशंका किसी में मन को छू तक न सकी।

15 मई को कानपुर शहर में इधर–उधर एक विशेष हलचल दिखने लगी। मेरठ के विप्लव का समाचार पहुंच जाने से सिपाहियों की पंक्तियों में पहले की स्तब्धता हटकर चंचलता आई थी। परंतु सिपाहियों को ज्ञात वह समाचार अंग्रेज अधिकारियों को 18 मई तक ज्ञात नहीं हुआ था। दिल्ली के समाचार देनेवाले तारयंत्र तोड़–फोड़ डाले गए थे, इसलिए सर हो व्हीलर ने समाचार ज्ञात करने के लिए कुछ दूत भेजे। उन्हें रास्ते में दिल्ली से आ रहा एक सिपाही मिला। परंतु फिरंगी को समाचार देने से उसने साफ मना किया। सन् 1857 में दूर–दूर के समाचार नेटिव लोगों को तत्काल कैसे ज्ञात हो

जाते थे और तारयंत्र कान से लगाए अंग्रेज उस संबंध में कैसे अज्ञानी रहते थे, यह अंग्रेज अधिकारियों के लिए बड़ा कूट प्रश्न था।[84] कानपुर के नेटिव सिपाहियों को मेरठ में हुए विद्रोह का समाचार विद्रोह होने के बाद तार से सूचित करने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि वह विद्रोह से एक दिन पूर्व ही जीवित तारों से ज्ञात हो चुका था। कानपुर के अंग्रेज अधिकारियों को जब यह समाचार विदित हुआ तब कानपुर शहर और सिपाहियों की पंक्तियों में क्या कुछ पक रहा है, इसका आभास उन्हें होने लगा। परंतु अद्भूत समाचार के कारण उत्पन्न चंचलता जनमानस से जल्दी ही निकल जाएगी इस आशा से सर हो व्हीलर काफी कुछ निश्चित थे। इधर कानपुर शहर और सिपाहियों में अंग्रेजी शासन की समाप्ति का समय पास आ गया है–यह हर कोई अनुभव करने लगा। हिंदू और मुसलमानों की होनेवाली बड़ी–बड़ी सभाएं, सिपाहियों की होने वाली गुप्त बैठकें, विद्यार्थियों और उनके शिक्षकों में चलनेवाले संवाद और बाजार व दुकानों–दुकानों में चर्चाओं आदि से लोकक्षोभ की चिनगारियां उड़ने लगी थी। फिरंगियों को मार डालने की बातें लोग राह चलते करने लगे थे और सिपाही अपने स्वदेशी सूबेदार के आदेशों को छोड़ दूसरों के आदेश टालने लगे। बाजार में एक अंग्रेज महिला कुछ वस्तुएं खरीदने हमेशा की ऐंठ में जा रही थी कि कोई राहगीर भौंहें चढ़ाए उसके पास आया और बोला, ''अब यह ऐंठ बहुत हो गई। हिंदुस्थान के बाजार में एक अंग्रेज महिला कुछ वस्तुएं खरीदने हमेशा की ऐंठ में जा रही थी कि कोई राहगीर भौंहें चढ़ाए उसके पास आया और बोला, ''अब यह ऐंठ बहुत हो गई। हिंदुस्थान के बाजार से अब आपकी जल्दी ही विदाई होने वाली है–समझीं?'' अंग्रेजों को ऐसे कड़वे बोल सुनने का यह पहला ही अवसर था। अब ऐसे अवसर पर शांत बैठे रहने के कोई लाभ नहीं है, यह सोच कमांडर सर हो व्हीलर ने विद्रोह के पहले ही सुरक्षा की तैयारी आरंभ कर दी।

सबसे पहले संकट के समय आश्रय मिल सके, ऐसा एक स्थान तैयार रहे, इस हेतु गंगा के दक्षिण और सिपाहियों की पंक्तियों के पास ही एक स्थान उसने चुना। उस स्थान को मजबूती देने के लिए चारदीवारों और तोपें रखने के लिए स्थान बनवाकर सर व्हीलर ने अनाज भरने का आदेश भी दिया। ऐसी अफवाह है कि नेटिव कांट्रेक्टर ने अनाज आदि रसद व्हीलर की नजर बचाकर ओदश से बहुत कम भरी थी। इस चारदीवारी से घिरे स्थान का उपयोग कर सिपाही विद्रोह करें तो भी अधिक नहीं करना पड़ेगा–ऐसा भरोसा व्हीलर और अन्य अंग्रेज अधिकारियों को था। क्योंकि अन्य स्थानों की तरह ही कानपुर के सिपाही भी जगह–जगह मारकाट न कर दिल्ली की ओर ही निकल जाएंगे और उनके दिल्ली की ओर बढ़ते ही गंगा उतरकर इलाहाबाद में अंग्रेजी सेना से

[84] 1. वस्तुतः इस विद्रोह की एक उल्लेखनीय बात यह है कि अत्यंत निश्चित तथा नितांत वेग सहित सुदूर स्थित स्थानों के समाचार भारतीय सैनिकों तथा अन्य लोगों को किस प्रकार हो जाते थे। सामान्य संदेश प्रेषण का प्रमुख माध्म हरकारे ही थे, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर असाधारण फुरती सहित संदेश पहुंचाते थे।'' देखें–'मिलिट्री नैरेटिव्स', पृष्ठ 23

2. नानकचंद की डायरी।

मिलने का सुअवसर उन्हें मिल जाएगा, यह उनकी पक्की धारणा थी। कानपुर के अंग्रेज लोगों की सुरक्षा के लिए चारदीवारी का मजबूत स्थान बनाकर ही व्हीलर चुप नहीं बैठा और उसने लखनऊ में सर हेनरी लॉरेंस ही सहायता के लिए चिल्ला रहा था। फिर भी उसने चौरासी गोरे सोल्जर, लेफ्टिनेंट ॲशे के नेतृत्व में गोरा तोपखाना और कुछ घुड़सवार–इतनी सेना कानपुर की ओर तुरंत भेजी।

अंग्रेज लोगों की सुरक्षा के लिए सर व्हीलर ने ये दो उपाय किए, यह कोई विशेष बात नहीं थी। परंतु अंग्रेजी के हिंदुस्थानी शासन पर आया यह संकट टालने के लिए उसने जिस तीसरी युक्ति की योजना की थी, उसके जैसी अब अद्भुत लगनेवाली, परंतु उस समय की क्रांति रचना के कौशल की यथार्थ कल्पना देनेवाली ऐसी दूसरी विलक्षण बात इस इतिहास में नहीं लिखी गई उसकी प्रार्थना थी। मेरठ का आकस्मिक समाचार सुनते ही लश्कर के छोटे सिपाहियों और बाजार के साधारण लोगों में तत्काल चंचलता और क्षोभ उत्पन्न हो गया था। परंतु ब्रह्मवर्त का समुद्र पहले जितना शांत, गंभीर और सहनशील दिखाई देता था उतना ह ीवह आज भी था। उसके ह्रदय में घुमड़ते प्रचंड बादलों का संकेत उसके जलपृष्ठ पर रत्ती भर दिखना असंभव था। कानपुर की सेना की चचंलता से सर व्हीलर चौंका था, फिर भी उसे इसकी तिल भर शंका नहीं हुई कि ब्रह्मवर्त का राजा अपने विरूद्ध है। जिसके मस्तक का मुकुट अभी क्षण भर पहले पैरों से कुचला है, एक क्षण पहले ही जिस नाना की पूछ को जान–बुझकर मसला है, उसी नाना को अंग्रेजों ने अपनी सुरक्षा की विनती कर कानपुर बुलाया। नाना सहनशील हिंदू है, वह मन में द्वेष पालनेवाला जहरीला नाग नहीं, ऐसा अंगेजों को लगता था तो कोई एकदम गलता भी नहीं था। क्योंकि आज तक अंग्रेजों को लगता था तो कोई एकदम गलत भी नहीं था। क्योंकि आज तक अंग्रेजों के पैरों तले कुचले, निर्जीव, निरूपद्रवी और नपुंसक केंचुए क्या हिंदुस्थान में कम थे? उन्हीं केंचुओं जैसा केंचुआ नाना भी होगा, इस भ्रम में पड़कर ही सर व्हीलर ने ब्रह्मवर्त की बांबी में बैठे नाग को और चाहिए ही क्या था! उसने दो तोपें, तीन सौ निजी सिपाही, पैदल और घुड़सवारों के साथ दिनांक 22 मई को कानपुर में प्रवेश किया। कानपुर में अंग्रेजी सैनिक और असैनिक अधिकारियों की बहुत बड़ी बस्ती थी–उसी के बीचोबीच जाकर नाना ने अपना शिविर बनाया। कानपुर में विप्लव होते ही पहला हमला खजाने पर होगा, तो उसकी सुरक्षा की क्या व्यवस्था हो? अच्छा तो खजाना दे दो नाना के कब्जे में। बारूदखाना और शस्त्रागार की सुरक्षा? इन्हें नी नाना की निगरानी में रहने दो। जल्दी ही इस निगरानी में नाना के दौ सौ सिपाहियों का पहरा बैठ गया। कलेक्टर हिल बर्डन ने नाना और तात्या को धन्यवाद ए; और सारी अंग्रेज महिलाएं

और बच्चे चाहें तो ब्रह्मवर्त के राजमहल में जाकर रहें, यहां तक बातें होने लगीं। इसी का नाम है मराठी कावा (दाँव)! अंग्रेजों की सुरक्षा करने और स्वदेश–स्वतंत्रता के लिए युद्धरत अपने सगे भाइयों से लड़ने सेना–तोपखाने के साथ नाना को कानपुर बुलाया गया। अंग्रेजी बस्ती में उनका शिविर लगा। अंग्रेज उन्हें लाखों रूपयों का खजाना सौंप दे और इस तरह सहायता देने के लिए धन्यवाद दे–इसी सबका नाम है मराठी दाँ! और ये सारे बातें उस प्रचंड विस्फोट के एक हफ्ते पहले की हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सन् 1857 में अंग्रेज सरकार को अंधकार में टटोलते रखकर एकाएक कैसे गड्ढे में गिराया गया। स्वतंत्रता की अनिवार्य इच्छा–यही साध्य और उसकी प्राप्ति हेतु संग्राम–यह साधन। इन दो बातों का स्पष्ट ज्ञान सारे समाज को दिया हुआ था। परंतु उसका नेता कौन हो? विद्रोह का पक्का दिन कौन सा हो? क्रांति के मुख्य केंद्र कहां होंगे? ये सब बातें इतनी चतुराई से गुप्त रखी गई थीं कि उसकी भनक अंग्रेजों को तो खैर क्या होती, उस जनसमूह को भी पक्की पता नहीं थी। मुख्य गुप्त केंद्र के नेता और उनके विश्वसनीय सहयोगियों को ही पूरे नाम आदि की जानकारी थी। पीछे कहा था कि हर रेजिमेंट में एक समिति बनाई गई थी, उसका भेद भी यही था। काशी में पकड़े गए पत्र में एक नेता की ओर से इतने ही हस्ताक्षर थे। इस क्रांति रचना के अनुरूप ऐसा ही व्यवहार उसके उत्तरदायी नेताओं की ओर से रखा गया था। दिल्ली के बादशाह, झाँसी की रानी या नाना साहब की योजना के बारे में विद्रोह होने के पहले दिन तक अंग्रजों को तिनके के बराबर भी भनक नहीं मिली। परंतु इस सब में ब्रह्मवर्त के बाड़े की विशेष करामात! इतिहासकार 'के' कहता है–''मराठा राज्य–संस्थापक शिवाजी के चरित्र का अध्ययन नाना ने यों ही नहीं किया था।

कानपुर में गुप्त मंडली का जो, जाल बिछा था उसका मुख्य केंद्र सूबेदार टीका सिंह के घर में स्थापित था। बैठक करने का दूसरा स्थान शम्सुद्दीन खान सिपाही के घर में था।[85] इन गुप्त बैठकों में होनवाली मंत्रणा में नाना की ओर से ज्वाला प्रसाद और महमूद अली नामक ब्रह्मवर्त के राजमहल के विश्वसनीय नौकर उपस्थित रहते थे। सूबेदार टीका सिंह और ज्वाला प्रसाद की सहायता, उत्कट स्वातंत्र्य इच्छा और निष्कलंक सच्चाई के कारण सारी सभा पर उनका प्रभाव था और इस सभा के निर्णयों के अनुसार सेना एकमत से व्यवहार करे, यह निश्चित था। इस कारण सूबेदार टीका सिंह का जो मत होता वही सारी सेना का होता था। ऐसे नेता और नाना की भेंट होना, आमने–सामने

[85] कानपुर में विद्रोह शांत हो जाने पर एकत्रित साक्ष्य तथा नानकचंद नामक एक वकील की डायरी–इन दो आधारों पर G. D. Trevelyan द्वारा लिखित 'Cawnpore' नामक पुस्तक से उपर्युक्त सारी जानकारी ली गई है । इन सबूतों से भी उस समय की परिस्थितियों की कल्पना करना बहुत कठिन नहीं है।

सारी बातें होना अति आवश्यक था। उसमें भी मेरठ के आकस्मिक विद्रोह से अस्त–व्यस्त हुए कार्यक्रम को फिर से एक बार सही करना अनिवार्य था, इसलिए नाना की और सूबेदार टीका सिंह की भेंट निश्चित हुई। पहली भेंट में सूबेदार और नाना की मंत्रणा बहुत देर तक हुई। ''सेना के हिंदू और मुसलमान–ये दोनों ही स्वराज्य और स्वधर्म के लिए एकमत से विद्रोह करने को सज्जित हो गए हैं और हमव ह करने के लिए तैयार हैं।'' सूबेदार के ऐसा विश्वास दिलाने पर अन्य फुटकर बातें निश्चित करने को दूसरी अधिक सावधान और सावकाश भेंट की बात निश्चित कर सूबेदार वापस लौटे। जून की पहली तारीख को संध्या समय श्रीमंत नाना अपने बंधु बाला साहब और मंत्री अजीमुल्ला खान के साथ गंगा किनारे आए। सूबेदार टीका सिंह अपनी केंद्र मंडली के साथ वहां आए हुए थे ही।ये सारे लोग एक नाव में बैठकर में बैठकर गंगा के सुधा धवल जलाशय में घुस गए। अपने स्वदेश–संरक्षण के लिए घनघोर संग्राम करने की प्रतिज्ञा उस गंगाजल को हथ में लेकर करने के बाद कोई दो–तीन घंटे तक उनकी चर्चा चलती रही। भावी कार्यक्रम का पक्का निर्णय हो जाने पर वे सब लोग लौट आए। उनकी वहां क्या चर्चा हुई, यह गंगा नदी के पाट को ही ज्ञात होगा। इतना सच है कि दूसरे दिन शम्सुद्दीन ने अपनी प्रियतमा को यह स्वतंत्रता का समाचार यूंह ी नहीं सुनाया था। क्योंकि स्वराज्य के लिए शम्सुद्दीन की आत्मा जितनी फड़फड़ा रही थी उतनी ही इस सुंदरी की भी। अजीजन सिपाहियों की अतिप्रिय संग्राम के बाजार में देशप्रेम के पुरस्कार के रूप में बांटना शुरू कर दिया था। अपने सुंदर मुख और भृकुटी की एक–एक सिकुड़न से उसने अनेक भगोड़ों को फिर से रण में भेजा है, यह किस्सा शीघ्र ही आगे आएगा।

क्रांति पक्ष की योजनाएं इधर इस ऊंचाई तक पहुंच रही थी और उधर अंग्रेज लोगों को हर नए पल इतनी घबराहट हो रही थी कि क्या पूछने? लखनऊ से सहायता आने और श्रीमंत नाना साहब की सुरक्षा में खजाना एवं गोला–बारूद पहुंच जाने के बाद सर व्हीलर के मन को थोड़ा धीरज बंधा था। पर अंग्रेज बस्ती को बिल्कुल धीरज नहीं था। 24 मई को मुसलमानों की ईद थी। उस दिन सब ओर विद्रोह होगा–ऐसा डर हर शहरी अंग्रेज को था। परंतु ऐसे सहज ध्यान में आ जानेवाले दिन सार्वजनिक विद्रोह होगा, ऐसा सहज में लग सकता है उस दिन शांति बनाए रखना और जिस दिन विद्रोह होने की बिल्कुल भी संभावना न हो उस दिन उछल पड़ना–ये दांव–घात ही तो विद्रोह की सफलता के मुख्य कारण थे, इसीलिए कानपुर में ईद के महोत्सव में किंचित् भी गड़बड़ी नहीं होने दी गई। उस दिन सुबह आंग्रेज इतना घबराया हुआ था

कि सर व्हीलर ने लखनऊ को तार भेजा–''आज विद्रोह किसी भी तरह नहीं रूक सकता। परंतु इस महोत्सव के दिन शाम को जब सारे मुसलमानों ने परंपरा के अनुसार साहब लोगों से ईद मिलन किया तब सर व्हीलर को फिर से एक बार बहुत संतोष हुआ। परंपरा के अनुसार रानी के जन्मदिन पर उसे तोपों की सलामी दी जाती थी, परंतु कदाचित् उस आवाज से सिपाहियों में बेकार ही गड़बड़ी होगी, इसलिए वह सलामी नहीं दी गई। अंग्रेजों की महारानी में बेकार ही गड़बड़ी होगी, इसलिए वह सलामी नहीं दी गई। अंग्रेजों की महारानी को उसके जन्ददिन पर स्वयं उसकी सेना में ही सलामी देने की शक्ति न हो, इसके लिए बहुत से अंग्रेज अधिकारियों को बड़ा दुःख हुआ। पर क्या करते बेचारे! विद्रोह होने पर सुरक्षा के लिए जो चारदीवारी का स्थान बनाया गया था–जैसा पीछे कहा है–उस स्थान क ओर ध्यान दें तो अंग्रेजों के कैसी दयनीय स्थिति हो गई थी, यह तत्काल समझ में आ जाता है। 'भेड़िया आया रे भेड़िया', ऐसी गप यदि कोई उड़ा सकता तो अंग्रेजों के परिवार अस्त–व्यस्त दौड़–भाग करने लगते। एक अंग्रेज अधिकारी लिखता है–

''मैं जब वहां था तो मैंने देखा कि बग्घियों, गाड़ियों, डोलियों आदि सवारियों की भीड़ सहसा ही लग जाती थी और उनमें लेखकों, व्यापारियों, महिलाओं–जो बालकों को छाती से चिपकाए होती थी–बालकों, धायों और अधिकारियों आदि सभी को पहुंचा दिया जाता था। सार रूप में कहा जाए तो यह कहना उपयुक्त होगा कि ज्यों कि किसी प्रकार के उपद्रव की आशंका होती अथवा समाचार प्राप्त होता तो वहां हमारा अभिनंदन करनेवाला भी कोई न होता; क्योंकि उपर्युक्त दृश्यों से हम भारतीयों को यह स्पष्टत; दिखा चुके थे कि हम कितने कायर हैं और हमारी दशा कितनी दयनीय हैं।''

अंग्रेजों द्वारा अपने व्यवहार से दरशाया गया यह डरपोकपन, उपर्युक्त अधिकारी कहता है वैसे वास्तव में नेटिवों ने पहचान लिया था। परंतु वह कोई आज की की नई बात नहीं। जब चारदीवारी बनाने का काम प्रारंभ हुआ, तभी अजीमुल्ला खान ने एक लेफ्टिनेंट से मुसकराते हुए यही तो कहा था। उस लेफ्टिनेंट से अजीमुल्ला खान ने अपनी हमेशा जैसी मधुर वाणी में पूछा, ''सच में अभी मुझे ठीक के सूझता नहीं है।'' आंखें मटकाते उस चतुर अजीमुल्ला खाने ने कहा, ''रख लीजिए–'निराशा का किला'।''

मई के अंत में एक दिन एक शरारती तरूण अंग्रेज ने शराब के नशे में एक सिपाही पर गोली चला दी। यह गोली चूक गई और उस सिपाही ने सोल्जर को निरपराध मान छोड़ दिया गया और कहा गया कि शराब के नशे में बंदूक गलती से चल गई।

यह हमेशा का निर्णय था, पर अब स्थिति हमेशा की नहीं थी।[86] यह अपमानजनक समाचार फैलते ही सारी सेना गुर्राने लगी—''ठीक है! हमारी बंदूकें भी अब जल्दी ही गलती स`चल जाएंगी।'' यह वाक्य सिपाहियों के बीच एक उत्क्षोभक नरसिंह मंत्र ही हो गया था। एक—दूसरे को मिलते ही 'अब बंदूक गलती से चलेगी ना!' ऐसी व्यंग्यात्मक सलामी सेना में दी जाने लगी। फिर भी मेरठ की तरह जल्दी न कर संकेत समय आने तक उन्होंने सारा गुस्सा मन—ही—मन पी जाने का निश्चय किया था।

इस भयानकता को और भयानक करने के लिए ही शायद उसी समय एक अंग्रेज और उसकी पत्नी—दोनों के शव गंगा प्रवाह में बहते—बहते कानपुर आ गए। ऊपर किसी शहर के विद्रोहियों के लिए कृत्य का साक्ष्य कानपुर से क्या—क्या भयंकर संवाद करेगा? गंगा को अभी ऐसे कितने ही शव बहाने हैं।

'भेड़िया आया रे भेड़िया'—ऐसी अफवाह उड़ाकर अब तक अंग्रेजों का इतनी बार चकित किया गया था कि अब यदि भेड़िया आया तो भी वे सचमुच सोते रहनेवाले थे। जून क पहली तारीख को स्वयं सर हो व्हीलर लॉर्ड केनिंग को लिखता है—''क्षोभ और डर रहा नहीं। कानपुर सुरक्षित है। इतना ही नहीं, मैं लखनऊ को जल्दी ही सहायता भेजे देता हूं।'' इलाहाबाद से आई हुई गोरी फौज वास्तव में लखनऊ की ओर जाने लगी और वह भी कब? 3 जून को। जिस षड्यंत्र में तीन हजार सिपाही और वेश्या सहित कानपुर का सारा शहर लगा हुआ था उस षड्यंत्र में तीन हजार सिपाही और वेश्या सहित कानपुर का सारा शहर लगा हुआ था उस षड्यंत्र का समाचार अंग्रेजों और उनकी सहायता करनेवाले नानकचंद जैसे कुल्हाड़ी के बेंटे से भी इतनी मुहरबंद रहे—यह कितना बड़ा आश्चर्य था!

यह मुहर 4 जून की रात को टूटी। सार्वजनिक कार्यक्रम के अनुरूप रात के अंधेरे में कुछ बंदूकें चलीं और निश्चित भवनों को आग लगी। रक्तपात, नाश और मृत्यु की दौड़ शुरू हो जाने की वह करतल ध्वनि थी। सबसे पहले टीका सिंह का घोड़ा कर्कश रीति से हिनहिनाया और उसी के साथ हजारों घोड़ें एक क्षण में टापों की आवाज करते सरपट दौड़ते निकले। कुछ अंग्रेजी पगड़ियों और घरों को आग लगाने निकले, कुछ अन्य रेजिमेंटों को बुलाने गए और कुछ लश्करी निशानों और झंडों को कब्जें में लेने निकले। ये झंडे जिसके कब्जे में थे, वह वृद्ध सूबेदार मेजर नेटिव होते हुए भी विद्रोहियों के विरूद्ध जाता—सा दिखाई दिया, अतः एक तलवार का वार उसके सिर पर पड़ा और

[86] ट्रेवेलियन ने लिखा है—''निम्न स्तर के यूरोपियनों की क्रूरता तथा सैनिक अधिकारियों द्वारा न्याय के नाम पर की जानेवाली धींगामस्ती से सिपाही भलीभांति परिचित थे। किसी अन्य अवसर पर तो संभवतः उन्हें इस प्रकार के न्याय पर किसी प्रकार का आश्चर्य न होता; किंतु अब तो उनका रक्त खौल उठा था, उनका आत्माभिमान जाग्रत् हो चुका था, जिससे किसी एंग्लों—सेक्सन वंशज को ऐसा अधिकार एवं सैनिक न्यायलय की विवेचना शक्ति की प्रखरता को मान्यता देने के लिए वे तत्पर नहीं थें।''

—'कानपुर', पृष्ठ 93

तुरंत उसका धड़ नीचे गिर गया। ''पहली पैदल रेजिमेंट के सूबेदार को सूबेदार टीका सिंह का सलाम है और वह पूछता है, घुड़सवार फिरंगियों के विरूद्ध चल पड़े हैं फिर पैदल को देर क्यों?'' दो घुड़सवारों के यह सुनाते ही पहली पैदल रेजिमेंट 'दीन और देश' कहते बाहर निकली। यह देखते ही उसका अधिकारी कर्नल एवर्ट कहने लगा—''हां—हां, मेरे प्रिय बच्चों, (बाबा लोगों) यह क्या? यह तुम्हारे राजनिष्ठ शील को शोभा नहीं देता। ठहरो बच्चों, ठहरो!! कहां का ठहरो और क्या! कुछ ही देर में वह सारी रेजिमेंट सैनिक अनुशासन में घुड़सवारों से जाकर मिल गई और फिर सारी सेना नवाबगंज की नाना की छावनी की ओर युद्ध गीत गाते हुए निकली!

नवाबगंज खजाने पर नाना के सिपाही तैयार थे। उन्होंने सामने से आते स्वदेश बंधुओं को बाहुओं में जकड़ लिया और तभी वह लाखों रूपयों स भरा खजाना और लाखों शस्त्रास्त्र से भरा बारूदखाना क्रांतिकारियों के हाथ आ गया। नवाबगंज में रात को यह हो रहा था, तभी उधर जो दो रेजिमेंट बाकी थीं—कम—से—कम उन्हें कब्जे में रखने के लिए अंग्रेजों ने तत्काल परेड पर बुलाया। अंग्रेजों के हाथ में तोपखाना होने से वे दोनों रेजिमेंट उस सारी रात परेड पर अपने यूरोपियन अधिकारियों के साथ सशस्त्र खड़ी रहीं।

सूर्योदय होते ही यूरोपियन अधिकारियों को विश्वास हो गया कि ये सिपाही तो कम—से—कम विद्रोही नहीं हैं। इसलिए उन्हें फिर से लाइन में जाने की अनुमति दी गई। और यूरोपियन अधिकारी भी जाने लगे। अब सही अवसर आ गया है, यह जान उनमें से एक ने आगे बढ़ चिल्लाकर कहा, ''ईश्वर सत्य की ओर है। भाइयो, उठो, चलो!'' यह आदेश होते ही इधर—उधर तलवारें बजने लगीं और अंतिम समय आया जान अंग्रेजी तोपें भी चलने लगी। परंतु सिपाही अब उनकी मार के बाहर निकल गए थे। इस समय अंग्रेज अधिकारियों को काट डालना संभव होते हुए भी सिपाहियों ने उन्हें नहीं छेड़ा और वे अवसर मिलते ही अपने देशबंधुओं की ओर निकल गए। और इस तरह 5 जून को कानपुर के तीन हजार सिपाही अंग्रेजी गुलामी को फेंककर नवाबगंज में नाना की छावनी के पास जाकर जमा हो गए। यह समाचार सुन सर व्हीलर को एक तरह का संतोष हुआ कि एक भी अंग्रेज मरा नहीं। अब रीति के अनुसार सिपाही दिल्ली की ओर निकल जाएं तो समझो, कानपुर के ऊपर से जान का संकट टल गया।

अन्य स्थलों की तरह यदि योग्य और कर्मठ नेताओं की कानपुर में भी कमी होती तो सर व्हीलर के अनुमान के अनुसार सिपाही दिल्ली की ओर निकल जाते। परंतु उस समय नवाबगंज में सिरमौर नेताओं की कोई कमी नहीं थी। वहां श्रीमंत नाना साहब थे, वहां श्री बाबा साहब, बाला साहब और राव साहब पेशवा थे। वहां तात्या टोपे थे। वहां अजीमुल्ला खान थे। इतनी अलग—अलग शक्तियां सौभाग्य से एक स्थान पर होने पर सिपाहियों को नेताओं की खोज में दिल्ली की ओर जाने का कोई कारण नहीं था।

विद्रोह की शुरूआत में ही सारी सेना दिल्ली में ही जमा हो जाए तो वास्तविक कार्यक्रम सिद्ध नहीं होना था। स्थान–स्थान पर अंग्रेजी की खिंचाई करने में ही भला था। उसमें भी कानपुर, पंजाब, कलकत्ता और दिल्ली प्रांत के बीच की कड़ी होने से उसपर आघात कर अंग्रेजी यातायात को तोड़ना अति आवश्यक था। ये सारी बातें सिपाहियों को उनके सूबेदारों एवं नाना के मंत्रियों के समझाने पर कानपुर की ओर ही वापस लौटने की योजना सर्वसम्मति से बनी। उन तीन हजार सिपाहियों ने श्रीमंत नाना साहब को अपना राजा चुना और उनके प्रत्यक्ष दर्शन की तीव्र इच्छा प्रदर्शित की। श्रीमंत नाना साहब को देखते ही उनके नाम से सब ओर जयघोष होने लगा और उन सभी ने उस स्वयं वृणीत महाराजा के भक्तिभाव से मुजरे किए। श्रेष्ठ का चयन होते ही नाना की सहमति से अपने लश्करी अधिकारी चुनने का काम शुरू हुआ।

लश्कर के सारे नए नियम प्रचारित किए गए। कानपुर के क्रांति केंद्र के प्राण सूबेदार टीका सिंह को उसके जनरल का पद दिया गया। वैसे ही जमादार दलगंजन सिंह को 53वीं रेजिमेंट का कर्नल और सूबेदार गंगादीन को 56वीं रेजिमेंट का कर्नल नियुक्त किया गया। फिर हाथी की पीठ पर एक बड़ा भारी स्वातंत्र्य ध्वज खड़ा कर उसका जंगी जुलूस निकाला गया और उस दिन से श्रीमंत नाना साहब पेशवा का शासन आरंभ हो जाने की घोषणा कर दी गई।

परंतु यह चुनाव होते ही श्रीमंत नाना ने एक क्षण भी गंवाया नहीं और विप्लवी सिपाही दिल्ली की ओर न जाकर बीच में ही रूक गए हैं, यह समाचार सुनते ही जनरल व्हीलर सहित सारे अंग्रेज लोग अपनी उस चारदीवारी के किले में जाकर और तोपें तानकार बैठ गए। उनके पुरूष, महिला, बच्चे मिलकर संख्या कोई 1,000 थी। वह किला जीतना सबसे पहला कर्तव्य था, अतः श्रीमंत नाना ने सारी सेना को उधर चलने का आदेश दिया। विप्लवी उनपर हमला करेंगे, यह विश्वास अंग्रेजों को न था। परंतु 6 जून की भोर में एक चिट्ठी सर व्हीलर को मिली। वह चिट्ठी श्रीमंत नाना ने ही भेजी थी और वह ऐसी थी–''हम जल्दी ही आक्रमण करने वाले हैं, आपको उसकी अग्रिम सूचना जानबूझकर भेजी है।''हम जल्दी ही आक्रमण करने वाले हैं, आपको उसकी अग्रिम सूचना जानबूझकर भेजी है।'' यह लड़ाई का आह्वान पाते ही सर व्हीलर ने सारे अधिकारियों और सोल्जरों को सज्जित कर स्थान–स्थान पर नियुक्त किया। तोपों पर गोलंदाज बत्ती के साथ बैठ गए और लड़ाई की यथासंभव तैयारी कर ली गई।

लड़ाई प्रारंभ करने से पहले श्रीमंत नाना ने अंग्रेजों को, किसी भी प्रकार की विशेष आवश्यकता न होते हुए भी, अग्रिम लिखित सूचना दी थी। यह बात अति महत्त्व की है। अंग्रेज यदि नाना के स्थान पर होते तो इतनी उदारता उन्होंने निश्चित ही न दिखाई होती। श्रीमंत नाना के नाम पर अमानुषता का दाग लगाना चाहनेवाले लोगों को उनके हृदय की यह सहज वीरता देख लज्जा से सिर झुका लेना चाहिए। कानपुर व्रिदोह के

प्रारंभ में अंग्रेज अधिकारियों को दिया जीवनदान और आक्रमण करने के बारह घंटे पूर्व दी गई लिखित सूचना–प्रारंभ की ये दो बातें ही ध्यान में रखकर फिर अंतिम लड़ाई का अध्ययन किया जाए तो कानपुर की खरी स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

अंग्रेजों को लड़ाई की सूचना भिजवाते ही सूबेदार टीका सिंह–अब जनरल टीका सिंह–बारूदखाने की ओर गए और वहां सेवरा होने तक शस्त्रास्त्र की व्यवस्था देखी। वे उसे आक्रमण के स्थान पर भेजने में लगे रहे। उस शस्त्रागार से तोपें और बारूद नदी और जमीन से अंग्रेजों की चारदीवारी तक ले जाया गया औरवहां लश्करी कौशल से उसकी रचना भी की गई। इसी समय कानपुर शहर में दंगा हो गया था। बाजार का हर छोटा–बड़ा कारीगर–हम्माल से लेकर सेठ–महाजन तक–हाथ में जो मिले उसे लेकर यूरोपियन लोगों को खोजते फिर रहे थे। कचहरी, कोर्ट और उसके अंदर के सारे अंग्रेजी नए–पुराने दफ्तर जला दिए गए और चारदीवारी में जो यूरोपियन नहीं पहुंचे थे उन्हें एक साथ मार डाला गया। इस तरह दोपहर के बारह बज गए। एक बजने तक अंग्रेजों की चारदीवारी को घेरा जाने लगा और शाम तक तोपों की गर्जना के साथ वह भयानक युद्ध निश्चित से प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजों के साथ आठ तोपें थीं और उन्होंने विपुल गोला–बारूद चारदीवारी के अंदर पहले से ही गाड़ रखा था। विद्रोहियों के हाथ में पूरा बारूदखाना, शस्त्रागार और बड़ी–बड़ी तोपें लग जाने से उन्हें भी सामग्री की कोई कमी नहीं थी। जनरल टीका सिंह ने पहले से तोपखाने की व्यवस्था अति उत्तम रखी थी। उनकी तोपों की भारी मार से अंग्रेजों की चारदीवारी के अंद के भवन धड़ाधड़ गिर रहे थे। 7 जून को जब विद्रोहियों की ओर से लगातार गोले बरसने लगे तब उस भयंकर परिस्थिति का कभी भी अनुभव न होने से महिलाएं और बच्चे जोर–जोर से आक्रोश करते यहां–वहां दौड़ने लगे। परंतु परिचय से मृत्यु की उग्रता भी कम हो गई और जैसे पंछियों के इधर–उधर उड़ने से कुछ डर नहीं लगता वैसे ही तोप के लाल–लाल गोले सिर के ऊपर तेजी से जाते देख अद्‌भुतता या भयानकता कुछ भी लगना बंद हो गया।

आक्रमण के दो दिन बाद ही अंग्रेजों को पानी की कमी पड़ने लगी। उस चारदीवारी के अंदर एक कुआं उपयोग में लाने लायक था। पर विद्रोहियों की उस कुएं पर अंग्रेजी सोल्जर से अधिक आंख थी। धूप और गरमी की तपन भी इतनी प्रखर थी कि सोल्जर खड़े–खड़े लू के कारण ही मर जाते। सबके हृदय पत्थर की तरह कड़े हो गए। स्त्री–पुरूषों के बीच का सर्व भेदाभेद और जन लज्जा छूट गई। मरे हुओं को गाड़ने की बात तो छोड़ो, कौन मरा या कौन जीवित है, इसकी भी खबर रखना कठिन हो गया; क्योंकि जीवित लोगों की सूची में नाम लिखते–लिखते उसे काटने की बारी आ जाती। ऐसे अवसर का यथार्थ वर्णन करने का एक ही उपाय था और वह था एक घंटे की अवधि

का चित्र जैसा है बनाना–कैप्टन थॉमस स्वयं के अनुभव लिखता है–''आर्मस्ट्रांग घायल होकर गिरा, उसका हाल देखने लेफ्टिनेंट प्रोल वहां गया। वह दो–चार संतोष की बात कहे इतने में सामने से आती बंदूक की गोली उसकी जांघ में लगी और वह नीचे गिरा। उसका एक हाथ अपने कंधे पर रख और उसकी कमर में हाथ डालकर मैं उसे सर्जन के पास ले जाने को उठाकर एक–दो कदम चला, इतने में गूं–गूं करती एक गोली मेरे कंधे में लगी और मैं और प्रोल दोनों भूमि पर मरणासन्न होकर गिर गए। यह देखते ही गिलबर्ट बक्स हमारी ओर दौड़ा। परंतु उसके साथ ही दौड़ती आ रही शत्रु की एक गोली उसक शरीर में घुसी और वह मृत्यु के मुंह में जा गिरा।'' यह एक घंटे का इतिहास उन इक्कीस दिनों के इतिहास की ठीक कल्पना दे सकता है। जनरल सर हो व्हीलर का लड़का घायल हो गया, इसलिए कमरे में उसकी खटिया के पास उसकी दो बहनें और मां उसका उपचार कर रही थीं। परंतु औषधि पेट में जाने के पहले ही धड़ाम की ध्वनि के साथ आए तोप के गोले ने उस लड़के का सिर उड़ा दिया। मजिस्ट्रेट हिलर्स्टन की पत्नी का डर से गर्भपात हो गया। उससे वह बरामदे में खड़ा बातें कर ही रहा था कि तभी बीस पौंड का गोला उसके सिर पर पड़ा और उसकी चटनी बना गया। दो–चार दिन बाद वही दीवार जिससे टिककर वह नूतन विधवा खड़ी थी, गिर जाने से वह भी उसके नीचे अपने पति की देह जैसी चटनी हो मर गई। चारदीवारी के पास की खंदक में सात गोरी महिलाएं बैठी थीं। एक बम ऊपर से गिरा और उसमें सातों मर गई। इतना ही नहीं, जिसने विद्रोह के पहले सिपाही पर अकारण गोली चलाई थी और जो छूट गया था वह गोरा सोल्जर भी मर गया। अर्थात् सिपाहियों की बंदूकें भी गलती से चल ही गई। और जब चल गई तब ऐसी चलीं कि फिर यावच्चंद्र दिवाकरौ, उनके वह भयानक आघात दारू के नशे में भी अंग्रेज लोग भूलेंगे नहीं!

इस भयंकर घेरे में अंग्रेजों से ईमानदारी बनाए रखना जिन्हें अपना कर्तव्य लगता था, ऐसे कितने ही नेटिव उस चारदीवारी के केवल राजनिष्ठा से मृत्यु दाढ़ों में हाथ डाले खड़े थे। अंग्रेजों के एक बच्चे को दूध पिलाती एक नेटिव दाई के दोनों हाथ गोले ने उड़ा दिए। अपने मालिक को गरमागरम खाना मिले, इसके लिए गोलियों की बरसात में भी नेटिव बटलर यहां से वहां दौड़ते मरते जा रहे थे। अंग्रेजों को पानी पिलाते नेटिव भिश्ती अपने प्राण दांव पर लगाए थे। पानी इतना कम था कि अच्चे चमड़ा ही चबाते रहते थे। हैजा, बीमारी और त्रिदोष ने भी अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने में कमी नहीं की। सर जॉर्ज पार्कर, कर्नल विलियम, लेफ्टिनेंट रूनी एक के बाद दूसरा सड़कर–सड़कर मर गए। जो बीमारी या गोली से नहीं मरे वे इस जीवित श्मशान की भयानकता से गल गए। और इस अनर्थ से भी भयंकर अनर्थ करने के लिए अब अकाल का तांडव शुरू हुआ। कहर ऐसा हुआ मानो सौ साल किए अन्याय का खरा प्रतिशोध कानपुर की चारदीवारी के अंदर

काल की दाढ़ बनकर सबको चबाता इक्कीस दिनों तक तांडव करता रहा।

अंग्रेजों की चारदीवारी के अंदर ऐसा कहर हो रहा था, तभी चारदीवारी के बाहर रखी गई उनकी तोपों ने अच्छी लड़ाई चला रखी थी। तोपखाने के प्रमुख अधिकारी ॲशे, कैप्टन थॉमसन आदि अंग्रेज बहादुरों ने साहस और पराक्रम की सीमा लॉघी। लखनऊ या इलाहाबाद से जल्दी ही सहायता आएगी, ऐसी अंग्रेजों को बहुत आशा था। विद्रोहियों के मजबूत बंदोबस्त से कहीं भी पत्राचार भेजा करना असंभव हो गया था। फिर भी एक–दो बार व्हीलर द्वारा पंछियों के पंखों में दबाकर भेजा फ्रेंच, लैटिन एवं अंग्रेजी भाषा में लिखा एक पत्र नेटिव जासूस ने लखनऊ पहुंचाया था। उसमें ं ं ंसहायता, सहायता, सहायता! सहायता भेजो नही ंतो मरते हैं। सहायता आ गई तो हम फिर से लखनऊ को मुक्त करेंगे, ऐसा लिखा था। पर विद्रोहियों की व्यवस्था इतनी कड़ी थी कि अंगेजों की ओर से आया काला या गोरा दूत कदाचित् ही लौट पाता और कोई लौटा तो उसकी नाक, कान कटा हुआ होता। विद्रोहियों के शिविर में गद्दारी कराने अंग्रेज लौटकर संदेश देने, कसम खाने के लिए कोई न बचा। उदाहारणार्थ एक जासूस की स्वयं ही लिखी बात देखें–''मिल्स शेफर्ड की पत्नी और कन्या जब मर गई तब उसने विद्रोहियों का समाचार लाने और कानपुर में गद्दारी कराना स्वीकार किया। एक नेटिव रसोइए का वेश धारण कर बाहर आया। कुछ दूर आया ही था कि उसे पकड़कर नाना साहब के सामने लाया गया। उससे अंग्रेजों की स्थिति के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए। पहले से पढ़ाए अनुसार वह झूठे और बढ़ा–चढ़ाकर उत्तर देने लगा। परंतु उसी के पहले पकड़ी हुई दो महिलाओं ने अंग्रेजों की वास्तविकता दुर्दशा का समाचार दिया है, यह देखते ही वह घबरा गया। पहले उसे कोठरी में रखा गया फिर 12 जुलाई को न्यायालय में छानबीन करके तीन वर्ष के सश्रम कारावास का दंड दिया गया,'' इस दंड से नाना साहब ने उस युद्ध के गर्जन–तर्जन में भी न्याय करने की कितनी दक्षता रखी थी–यह दिखता है। अंग्रेजों के जासूसों की ऐसी फजीहत हो रही थी, पर विद्रोहियों के जासूस अपने काम बढ़िया कर रहे थे एक दिन एक नेटिव भिश्ती अंग्रेजी चारदीवारी के पास के एक टीले पर खड़ा होकर चिल्लाया, ''अपने मन में बसी हुई प्रीत के कारण मृत्यु के भय की भी परवाह न करते हुए एक खुशी का समाचार देने आया हूं, गंगा पार साहब लोगों की एक सेना तोपों के साथ आई हुई है और वह कल तुम्हारी मुक्ति के लिए आनेवाली है। इस कारण इन हरामखोर विद्रोहियों के शिविर में बड़ी घबराहट और आपाधापी मची हुई है और हम जैसे सारे राजनिष्ठ लोग अंग्रेजों से मिलने को तैयार हैं।'' यह सुनकर अंग्रेजों को लगा कि उनके द्वारा भेजे गए दूत की विजय के कारण विद्रोहियों में फूट पड़ गई होगी और इसी समय लखनऊ से यूरोपियन भी आ गए होंगे। दूसरे दिन वही भिश्ती

ऊपर आया और चिल्लाया, ''साहब लोगों की जय! गंगा में आई बाढ़ के कारण येूरोपियन सेना को आने में देर हो गई थी, परंतु अब सब ठीक–ठाक होकर वे निकल पड़े हैं। इस दिन के अंत तक साहब लोगों की जय–जयकार होगी।'' वह दिन गया, परंतु अंग्रेजों की दृष्टि में यूरोपियन सेना भी नहीं आई और वह राजनिष्ठ भिश्ती भी नहीं दिखा। अजीमुल्ला खान द्वारा चाही संख्या में अंग्रेजी सेना की दुर्दशा कर देने के कारण फिर से अपनी जान खतरे में डालने की उस भिश्ती को कोई आश्यकता नहीं थी। शत्रु की ओर के जासूसों द्वारा बार–बार किए जाते ऐसे छल के कारण अंग्रेज उदास हो जाते।

6 जून को आक्रमण की अग्रिम सूचना अंग्रेजों को देने के बाद उदास हो जाते। अपना शिविर उस युद्ध स्थल के बहुत पास ही लगा लिया था। चारदीवारी के पास ही उनका तंबू खड़ा हुआ था और उसके पस ही जनरल टीका सिंह का तंबू भी तना हुआ था। कानपुर स्वतंत्र हो जाने का समाचार सुनकर उस सारे प्रांत में सब ओर क्रांति की एक लहर उठ रही थी। रोज नए–नए जमींदार और रियासतदार अपने–अपने आदमियों को लेकर नाना साहब के साथ होने लगे। मीर नवाब नामक रियासतदार जिस दिन संयुक्त धर्मध्वज का जुलूस लेकर दो हजार सैनिकों के साथ नाना से आकर मिले, उस दिन नागरिकों ने आनंद उत्सव मनाया। कानपुर के हलवाइयों ने उन स्वदेश–रक्षकों में मिठाई बांटी। श्रीमंत के झंडे तले लगभग चार हजार सेना एकत्रित हो गई थी। परंतु उसमें से तोपखाने के अधिकारी अपना काम बहुत मुस्तैदी से पूरा कर रहे थे। इस तोपखाने पर एक जगह एक हरा झंडा लहरा रहा था और वहां नन्हें नवाब अपने विशाल तंबू में दिन रात बैठे हुए थे। इस नवाब के घर पर विद्रोह के प्रारंभ में जप्ती ले जाई गई थी। परंतु उसमें से तोपखाने के अधिकारी अपना काम बहुत मुस्तैदी से पूरा कर रहे थे। इस तोपखाने पर एक जगह एक हरा झंडा लहरा रहा था और वहां नन्हें नवाब अपने विशाल तंबू में दिन–रात बैठे हुए थे। इस नवाब के घर पर विद्रोह के प्रारंभ में जप्ती ले जाई गई थी। परंतु जल्दी ही बात सुलट गई और आज इस धर्मरक्षक समर में इस नवाब को हर ओर से ध्न्यवाद दिए जा रहे हैं। उनके अधीन तोपखाने पर उस प्रांत के सारे वृद्ध पेंशनर गोलंदाज इकट्ठा हो गए थे। अंग्रेजों की चारदीवारी के भवनों को आग लगाने के लिए विद्रोहियों के प्रयास चल रहे थे, तब इस नवाब के अधीन लड़ रहे एक नौसिखिया गोलंदाज ने एक नया ज्वालाग्रही सम्मिश्रण खोज निकाला और उसका प्रयोग इतना सफल रहा कि अंग्रेजों के बहुत काम की बैरकें तुरंत ही भस्म हो गई। इस तोपखाने की बैटरी पर स्वराज्य प्राप्त करने के लिए इतनी प्रतियोगिता थी कि पुरूषों के साथ स्त्रियां और तरूणों के साथ वृद्ध लोग भी जुटे हुए थे। उस उदात्त चैतन्य के अवसर पर लोक शक्तियां कितनी बेचैन थीं– यह उस समय के एक वाक्य से समझ में आ जाएगा। एक नेटिव ईसाई कहता है–''मुसलमान क रूप धरकर एक ऊंचाई पर मैं बैठा था, तब देखा–लड़ते वीरों को पानी पहुंचानें के लिए भाग–दौड़ कर रहे हैं। इतने में एक मेरे पास आया और बोला–उधर अपने देशबंधु लड़ रहे हैं। इतनें में एक मेरे पास आया और बोला–उधर अपने देशबंधु लड़ रहे हैं और तेरे तरूण मुसलमान यहां मक्खियां मारते बैठे, यह लज्जाजनक है। चल उधर, तोपखाने पर स्वयं सेवा करने।

उसने मुझे यह भी कहा कि करीम अली नाम के काने पेंशनर सूबेदार के युवा लड़के ने आज बड़ा पराक्रम किया। उसने खोजकर अंग्रेजों के भवनों को आग लगा दी। उसके इस शोर्य के लिए उसे नब्बे रूपए और एक दुशाला इनाम दिया गया।''

स्वदेश के लिए लड़ना छोड़ बैठकर मक्खियां मारना, यह केवल तरूणों के लिए ही अति लज्जाजनक माना जा रहा था, ऐसा नहीं, क्योंकि कानपुर की महिलाओं ने अपना जनाना स्वरूप छोड़ समर भूमि में प्रवेश किया था। परंतु उन सारे युवा पुरूषों और मर्दाना स्त्रियों को एक बिजली अपनी चमकार से लज्जित कर रही थी। यह बिजली और कोई नहीं–पीछे जिसका परिचय दिया वह वेश्या अजीजन थी। उसने अपने माशूक वेश को लश्करी पेशे में ढाल लिया था। गाल पर लाली चढ़ी थी। होंठों पर हास्य था और वह घोड़े पर सवार थी। वह सशस्त्र भी थी और तोपखाने के सिपाही उसकी मुद्रा की ओर देखकर अपनी थकान भूल जाते। नानकचंद अपनी डायरी में लिखता है–''सशस्त्र होकर अजीजन बिजली–सी दमक रही थी। कभी–कभी थके और घायल सिपाहियों को वह मिठाई बांटती रास्ते में खड़ी रहती।''

इधर ऐसी लड़ाई चल रही थी, उधर श्रीमंत नाना राज्य व्यवस्था की रचना करने में यथासंभव जुटे थे। राज्य क्रांति जैसे अशाश्वत और अद्भूत अवसर पर व्यवस्था और अनुशासन बनाए रखना बहुत कठिन होते हुए भी नाना ने प्रथमतः शहर के लोगों का यथान्याय संरक्षण देने के लिए राज्य व्यवस्था करना प्रारंभ किया। कानपुर शहर के प्रमुख नागरिकों को इकट्ठा बुलाकर उनके बहुमत से चुने गए होला सिंह नामक व्यक्ति को मुख्य मजिस्ट्रेट के अधिकार दिए गए। होला सिंह अनुशासनहीनता सिपाहियों के या लुटते ग्रामीणों के अत्याचारों से नागरिकों का संरक्षण करे, यह नाना का कड़ा आदेश था। लश्कर को अन्न का संभरण करने का काम 'मुल्ला' नामक नागरिकों को सौंपा गया था।

नागरिक और सैनिक मुकदमों का न्याय करने के लिए स्थापित किए गए न्यायासन पर ज्वाला प्रसाद, अजीमुल्ला खान और अन्य मंत्रिमंडल की नियुक्ति कर उसका अध्यक्ष श्री बाबा साहब को बना दिया गया। इस न्यायासन के सामने प्रस्तुत जो थोड़े–बहुत कागज प्राप्त हुए हैं उनसे बिना कारण छल या अंधाधुंधी करनेवालों को कड़ा दंड देकर प्रजा में शांति करने के लिए क्या व्यवस्था की जाती थी यह समझ में आता है। चोरी की–यह सिद्ध हो जाने पर उसका दाहिना हाथ काट डाला गया। गाय का वध किए जाने पर एक मुसलमान कसाई को भी ऐसा ही कठोर दंड दिया गया। गांव में उठाईगिरी जैसे मामूली अपराध करते घूमनेवाले को गधे पर बैठाकर घुमाया जाता। फ्रांस की राज्य क्रांति में स्थापित की गई 'The committee of public safety' की तरह इस न्यायलय का अधिकार धीरे–धीरे सभी विभागों पर चलने लगा। बारूद की कमी होने पर उसकी पूर्ति करना, सेना को कपड़े की रसद पहुंचाना। अंग्रेजों के पकड़े गए जासूसों की

छानबीन करना या भागना चाहनेवाले शत्रु को दंडित करना आदि काम इसी न्यायलय में किए जाते और जो कोई गोरे आदमी को खोजकर इस न्यायलय में लाए, उसको वहीं पुरस्कार दिया जात।

12 जून को अंग्रेजों की चारदीवारी पर विद्रोहियों ने पहला हमला बोला। अंग्रेजों की चारदीवारी को हमला करके जीत लेने की अपेक्षा उन्हें चारों ओर से घेरकर, तोपों की मार से भूनकर नरम करने के सामान्य विचार से विद्रोही चल रहे थे। पर फिर भी बीच–बीच में सीधी हमला भी वे कर रहे थे। दोनों ओर के कुछ लोग मर जाने के बाद विद्रोही लौट आते। विद्रोहियों के तोपखाने ने जितनी दृढ़ता और साहस इस युद्ध में दर्शाया उतना पैदल और घुड़सवारों ने नहीं दिखाया, यह दोष ध्यान में रखने योग्य है। दिल्ली और लखनऊ के घेरे में इस दोष का प्रकटीकरण विशेष रूप से दिखेगा। परंतु कानपुर की लड़ाई में भी तोपों पर सारा बोझ डालकर सिपाही आमने–सामने के युद्ध के लिए अधिक तैयार नहीं होते थे, यह सत्य दिखता है। सारे ही सिपाही मृत्यु से डरते थे, ऐसा नहीं था। 18 जून को अवध के सिपाहियों ने अंग्रेजों की चारदीवारी पर जो हमला बोला वह साहस और शूरता के कृत्य इतिहास का गौरव ही थे। उस दिन सिपाहियों ने तोप के गोले भी पीछे छोड़कर शत्रु की छावनी पर सीधा हमला किया। उस चारदीवारी पर वे चढ़ गए, अंग्रेजों की एक तोप दबाकर उलटी घुमाई और कुछ देर के लिए ऐसा रंग दिखा िकवह संयुक्त धर्म का निशान और वह भगवा झंडा अब किसी तरह भी लौटकर नहीं आता। परंतु ऐसे शूर सिपाहियों की सहायता करना तो दूर, उलटे कारण न होते हुए भी एकदम भागमभाग मचाकर सब ओर गढ़बड़ी फैलाने का कुछ सिपाहियों ने मानो ठेका ही ले रखा था। उनके इस अवसान घात के कारण दूसरों को भी वापस आना पड़ता था। उनके इस अवसान घात के कारण दूसरों को भी वापस आना पड़ता था। अवध के शूर सिपाहियों की तरह उदात्त ह्रदय, शीश और बाहु दूसरों की राह न देखकर स्वयं जो हो सके वह देश–सेवा करते वीर मुक्ति प्राप्त करते रहे। एक दिन हमला विफल हुआ तो भी एक सिपाही मरने का स्वांग धरे मैदान में वैसे ही पड़ा रहा। अंग्रेजी सेना में शूरता के लिए ख्यात और लड़ाई में अनेक बार टूट पड़नेवाला कैप्टन जैक्सन निर्भयता से दौड़ता जा रहा था, तभी उसपर उस मरे हुए सिपाही ने हमला बोल उस कैप्टन की गरदन पर गोली मारकर उसे गिरा दिया।

अब जून की 23 तारीख आ गई थी। सौ वर्ष पूर्व इसी जून की 23 तारीख को अंग्रेजों ने प्लासी के मैदान पर अपने साम्राज्य की नींव खोदी थी। जून की 23 तारीख को ही हिंदुस्थान पर अंग्रेजी तलवार का पहला वार पड़ा था। अपनी स्वतंत्रता का मंगलसूत्र टूट जाने के कारण 23 जून को ही हिंद माता प्लासी के मैदान पर फूट–फूटकर रोने लगी। उस 1757 की 23 जून के अमंगल दिन लगा अपमान का घाव हिंदुस्थान के ह्रदय को इतना जला रहा है कि–सौ वर्ष हो गए तब भी वह अशुभ दिन और उसकी

वह अमंगल स्मृति हिंद–भू हृदय में ताजा है। पर दासता का वह 23 जून को हुआ भयानक घाव सौ वर्ष गुजर गए तब भी भरा नहीं है। उसे भरने के लिए आवश्यक मलहम अभी मिला नहीं है। शमप्रधान और क्षमाशील हिंद भूमि का यह कैसा द्वेष! यह कैसा वैर! सौ वर्ष बीत गए तब भी प्लासी मिलता रहता है। यह गुरू परंपरा आज सौ वर्ष से चलते हुए आज सन् 1857 के 23 जून का उदय हुआ है। इस दिन तेरा प्रतिशोध पूरा किया जाएगा–ऐसे आश्वासन हिंदभूमि को भविष्यवक्ताओं ने दिया है। नाना साहब, उसकी पूर्ति करना या न करना–यह यद्यपि ईश्वराधीन है फिर भी उसके लिए तुम्हारा जो कर्तव्य है वह तुम पूरा करोगे न!

और यह कर्तव्य पूरा करने का शुभ अवसर न गंवाने के लिए ही इस दिन नाना की सेना में बड़ा हल्ला–गुल्ला मचा हुआ था। आज तक जैसा कभी नहीं किया ऐसा जोरदार हमला करने का निश्चय कर यद्यपि लश्कर का हर व्यक्ति नहीं फिर भी सारे–के–सारे भाग सज्जित हो गए थे। तोपखाना, घुड़सवार और पैदल–सारे लश्कर उस ऐतिहासिक दिन के स्मरण से स्फूर्तिमान होकर रणांगण में उतर पड़े। उनमें जो बहुत बहादुर थे उन्होंने एक तरफ जाकर गंगा का पानी हाथ में लेकर या कुरान पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा ली कि आज या तो स्वतंत्रता प्राप्त करनी है या मारते–मारते मर जाना है। घुड़सवारों ने ऐसी दौड़ लगाई कि शत्रु की गोलाबारी की परवाह न करते वे चारदीवारी तक जाकर भिड़ गए। पैदल सेना ने कपास के बड़े–बड़े गट्ठों को धकेलते–धकेलते उसके सहारे से चारदीवारी पर गोलियों की बौछार चालू की। विद्रोहियों की सेना से आसपास के गांववाले भी आकर मिल गए थे। अंग्रेजों ने भी चारदीवारी से गोलियों और तोप–गोलों की बौछार चालू रखी थी। विद्रोहियों की सेना को रोकना यद्यपि उन्हें असंभव हुआ, फिर भी उन्होंने उन्हें चारदीवारी पर चढ़ने नहीं दिया। लड़ाई का जोश भी जल्दी ही ठंडा पड़ गया और प्लासी के दिन का आधा बदला लेकर विद्रोही स्वयं ही लौट आए।

परंतु कानपुर का यह अंतिम आक्रमण बिलकुल ही व्यर्थ नहीं गया। उस दिन के हमले से अंग्रेजों की सारी आशाएं विनष्ट हो गई। उनका सारा धीरज भी टूट गया और इसके आगे नाना के हाथ से बच पाना असंभव है, ऐसा उनका स्पष्ट दिखाई दिया। 23 जून नहीं, 25 जून को अंग्रेजों ने संधि के लिए झंडा लगा दिया।[87] यह झंडा देखते ही श्रीमंत ने युद्ध रोकने का आदेश दिया और जेलबंद अंग्रेजों में से एक महिला के साथ जनरल व्हीलर को यह चिट्ठी भेजी–''क्वीन विक्टोरिया की प्रजा को–डलहौजी की

[87] अधिकतर अंग्रेज इतिहासकार यह बात छोड़ देते हैं, यह बात ध्यान में रख्ने की है। श्री तात्या टोपे की जबानी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है–''जनरल व्हीलर ने शांति की पताला फहराई और युद्ध बंद हो गया।

राजनीति से जिनका किसी भी तरह का संबंध नहीं हो और जो शस्त्र नीचे रखकर शरण आने को तैयार होंगे उन्हें इलाहाबाद सुरक्षित पहुंचाया जाएगा।'' यह चिट्ठी अजीमुल्ला खान के हस्ताक्षरों और नाना के आदेश से लिखी हुई है।

यह चिट्ठी आते ही जनरल व्हीलर ने उस पर विचार करने के सारे अधिकार कैप्टन मूर एवं व्हाइटिंग को दिए और उन दोनों अधिकारियों ने नाना के सामने आत्मसमपर्ण करने का निश्चय पक्का किया। दूसरे दिन 23 जून को नाना की ओर से ज्वाला प्रसाद और अजीमुल्ला खान, अंग्रेजों की ओर से मूर, व्हाइटिंग और रोचे मिले। अंग्रेज अपनी सारी तोपें, खजाना, गोला–बारूद और शस्त्रास्त्र नाना को सौंप दें और नाना उन्हें खाने–पीने की सामग्री देकर इलाहाबाद पहुंचा दें–यह तय हुआ। ये शर्तें एक कागज पर लिखी गई और श्रीमंत नाना के हस्ताक्षर लेने अजीमुल्ला खान आदि लौट आए। इस भेंट में आरंभिक भाषण अंग्रेजी में होने के बाद शेष भाषण हिंदुस्थानी में हुए।[88] दोपहर के समय अंग्रेज उसी रात निकलें, या प्रातः निकलें इस संबंध में थोड़ी बातचीत होकर यह तय हुआ कि उस रात सारा कब्जा नाना के हाथ में दिया जाए और अंग्रेज दूसरे दिन भोर में निकलने की तैयारी करें। इस तरह दोनों पक्षों के मध्य निश्चित संधिपत्र को लेकर मि. टॉड (नाना के महल का अंग्रेजी वाचक) श्रीमंत के पास आया। उसे नाना ने बहुत आदर से बैठाया और कुशल–क्षेम की पूछताछ की। उसी रात अंग्रेजों ने अपने शस्त्र नीचे रखे, तोपें नाना को सौंप दी गई और ब्रिगेडियर ज्वाला प्रसाद ने अपने दो अनुचरों के साथ उस चारदीवारी में अपना शिविर बनाया। उस रात कानपुर के मजिस्ट्रेट होला सिंह और तात्या टोपे ने मल्लाहों को पैसा देकर लगभग चालीस नौकाएं तैयार की। उनका निरीक्षण करने हाथी पर बैठकर आए अधिकारियों ने शिकायत की, इसलिए सौ मजदूर तुरंत लगाकर नौकाओं पर आच्छादन और बैठने के लिए बांस के फर्श बनाए गए। अनाज और अन्य आवश्यक सामग्री भी उस पर चढ़ा दी गई।

परंतु इधर जब अंग्रेजों की जाने की तैयारी चल रही थी तब उधर कानपुर में कौन–कौन आने लगा है यह देखने के अतिरिक्त उस जावक पक्ष के साथ ही आवक पक्ष का भी ब्योरा न दिया जाए तो हिसाब बराबर ध्यान में नहीं आएगा। श्रीमंत जाना साहब ने स्वतंत्रता का ध्वज कानपुर में लगा दिया, यह समाचार चारों ओर फैल जाने के बाद से सारे धर्मवीर और देशवीर बाढ़ की तरह वहां आने लगे थे। गांव–गांव से युवा स्वयंसेवक उधर आ रहे थे। जिस गांव से स्वयंसेवक भेजना संभव नहीं था, उस गांव से धन की सहायता आ रही थी। परंतु केवल इन स्वयंसेवकों की भीड़ ही कानपुर की ओर आ रही थी, ऐसा नहीं था। विद्रोह में विफल और हारे हुए अनाथ, अंग्रेजी दासता से बेजार हुए लोग भी, नाना के झंडे के नीचे फिरंगियों से प्रतिशोध लेना चाहिए, ऐसी

[88] रेड पैंफलेट, भाग 1 ।

गर्जना करते रात–दिन आ रहे थे। जलाए गए गावों का धुआं वहां आ गया। मृत व्यक्तियों की आत्मा के विकृत भूत भी वहां आए थे। इलाहाबाद और काशी के सिपाहियों पर और उनके बीवी–बच्चों से क्रूर प्रतिशोध लिये जाने की खबरों के साथ वहां के सैकड़ों सिपाही गत हफ्ते कानपुर आए थे। जिनके बूढ़े बाप पेड़ों पर अंग्रेजी अंक आठ (8) के आंकड़े बनाकर अंग्रेजों ने टांगे थे, ऐसे सैकड़ों भारतीय तरूण पुत्र वहां आए थे। जिनकी युवा पत्नियों को उनके पालने में सोए बच्चे सहित नील ने जीवित जलाया था उनके पति भी वहां आए थे। जिनकी बच्चियों के घुंघराले बालों और कपड़ों को आग लगाकर उसे देख–देखकर सोल्जर तालियां पीट रहे थे–ऐसे बाप वहां इकट्ठा हो गए थे। जिनका देश बेचिराग हुआ था, जिनका धर्म पैरों से कुचला जाता था जिनके राष्ट्र की स्वतंत्रता छीन ली गई थी–ऐसी बेचैन आत्माएं–इसका प्रतिशोध लेना है–इसका बदला लेना है, ऐसा कहती हुई उस राष्ट्रध्वज के चारों ओर हल्ला–गुल्ला कर रही थी। और अब यह विजय दिवस आने पर भी जब श्रीमंत नाना साहब अंग्रेजों को इलाहाबाद पहुंचा देने का वचन देने लगे तब उन सिपाहियों और लोगों के मन में आशा भंग होने से बादल गरजने लगे। नदी पर नौकाओं की तैयारी देखने आए हुए अंग्रेज अधिकारियों को भागीरथी के तीर पर इधर–उधर डेरा लगाए सिपाहियों में–कत्ल–कत्ल की चल रही फुसफुसाहट स्पष्ट सुनाई दे रही थी। ऐसा कहते हैं कि राजमहल के एक पंडित ने राष्ट्र के साथ विश्वासघात करनेवालों और हत्यारों का शिरश्छेद करने में धर्म की कोई रोक नहीं है, यह भी सिपाहियों को समझा दिया था।[89]

इस भयानक वातावरण में जून की 27 तारीख का उदय हुआ। सत्तीचौरा घाट से अंग्रेजों को संदेश दिया जाना था। उस घाट के इधर–उधर तोपें तनी हुई थीं और घुड़सवार और पैदल सेना भी वहां भीड़ किए थी। कानपुर शहर के हजारों नागरिक गंगा किनारे आज क्या देखने को मिलेगा, इस संबंध में अपने–अपने मन में भिन्न–भिन्न चित्र बनाते हुए सवेरा होते ही उस घाट की ओर चल पड़े थे। अजीमुल्ला खान, श्रीमंत बाबा साहब और सेनापति तात्या टोपे भी उस घाट के पास एक मंदिर के चबूतरे पर जाकर खड़े थे। उस मंदिर का नाम भी उस प्रलय काल को शोभा देनेवाला था। मानो सारे प्रदेश का अधिपति पद उस मंदिर को दिया गया है, ऐसा लगता है। क्योंकि उस मंदिर में हरदेव की मूर्ति स्थापित थी।

चारदीवारी का स्थान छोड़कर गंगा किनारे अंग्रेजों को लाने के लिए नाना ने उत्तम वाहन भेज दिए थे। सर हो व्हीलर के लिए तो उत्तम रीति से सजे हाथी लेकर स्वयं नाना साहब के हाथी का महावत चारदीवारी के दरवाजे का आकर खड़ा हुआ था। उस हाथी पर अपना जुलूस निकलवाना सर व्हीलर के मन को नहीं जंचा,

[89] ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर'।

इसलिए उसने बाल—बच्चे हाथी पर चढ़ा दिए और स्वयं पालकी में बैठा। अंग्रेज महिलाओं को भी पालकियां दी गई थीं। ऐसे ठाट से यह जुलूस निकला। कानपुर की चारदीवारी पर लगा अंग्रेजी झंडा नीचे उतारा गया और वहां सद्धर्म का संयुक्त ध्वज और स्वराज्य का झंडा लहराने लगा। अंग्रेजी अभिमान के हुए अपमान से दिल जलते हुए भी मृत्यु की कराल दाढ़ से छूटने का आनंद अंग्रेजों को हुआ था। उस आनंद के भाव में वे चारदीवारी पीछे छोड़ जाने को तैयार हो गए—पर कहां? और अब सुरक्षा का व्यवहार मिलेगा, ऐसा उनको विश्वास हो गया। पर डलहौजी की राजनीति से जिसका कुछ भी संबंध नहीं है, क्या ऐसा मनुष्य इस समूह में एक भी है? लेकिन इस प्रश्न की चर्चा अभी करने का कोई लाभ नहीं। गंगा घाट अभी डेढ़ मील दूर है। डेढ़ मील तक चलकर जानेवाला यह जुलूस गंगा की रेत पर उतरते ही उसके पीछे सिपाहियों की पंक्तियों ने पीछे का रास्ता रोक दिया। पालकी से उतरते या हाथी से उतरकर नाव पर चढ़ते अंग्रेजों को उस दिन हाथ का सहारा देने कोई नेटिव तैयार नहीं हुआ। नहीं, ऐसा नहीं। एक—दो विशेष स्थानों पर पालकी से उतरते समय सहायता मिली, परंतु वह हाथ का सहारा देने नहीं, हाथ दिखाते समय थी। कर्नल एवर्ट घायल था, अतः उसे एक डोली में डालकर ले जाया जा रहा था। उसकी वह डोली बीच में ही रोककर एक सिपाही बोला, ''क्यों कर्नल साहब, ये परेड आपको कैसी लगी? रेजिमेंट की वरदी कैसी है?'' ऐसी बात करते—करते उसने उसे नीचे खींचा और तलवार से उसके टुकड़े कर दिए। उस कर्नल की स्त्री पास ही खड़ी थी। उसे कुछ लोग कहने लगे, ''तू स्त्री है, इसलिए तुझे जीवनदान दिया!'' पर एक क्रूर साथी चिल्लाया, ''अरे हटो! स्त्री! पर यह गोरी है न? फिर कर दो टुकड़ें'' वाक्य समाप्त होने के पहले उस वाक्य के भयानक अर्थ की पूर्ति हो चुकी थी।

नदी में सारी नौकाएं अनाज आदि से भरी तैयार थीं, यह बात अंग्रेजों की समिति ने ही खोज के बाद सिद्ध की है। उन नौकाओं पर पानी में चलकर कुछ लंगड़ाते हुए अंग्रेज लोग जाकर बैठने लगे। इधर—उधर स्तब्धता थी। नौकाएं भर गई थीं। मल्लाह नौकाओं पर चढ़ गए थे। नौकाएं आगे बढ़ें, इसलिए श्रीमंत नाना ने अपना हाथ हवा में आगे—पीछे घुमाकर आदेश दिया। इतने में एक कोने से उस भयप्रद शांति को भंग करने के लिए किसी ने एक बिगुल जोर से फूंका। उस घाट के श्री हरदेव का प्रलयकाली डमरू तो नहीं तो नहीं डमडमाया? क्योंकि उस बिगुल का कर्कश—हुंकार—होते ही तोपें, बंदूकें, तलवारें, कटारें, बैनट एकदम चलने लगे। मल्लाह नौका से कूदकर भूमि पर आ गए और सैनिक भूमि पर से पानी में कूद पड़े। ''मारो फिरंगी को,'' ''छांटो गनीम को।'' इसके सिवाय एक शब्द कोई बोल नहीं रहा था। इतने में सारी नौकाएं जलने लगीं। अंग्रेजी पुरूष, स्त्रियां, बच्चे सारे गंगा में छलांगे लगाने लगे। कोई तैरने लगा, कोई

डूबने लगा, कोई जलने लगा और सारे–के–सारे जल्दी या देर में गोलियों से चित हो गए। मांस के लोथड़े, कटे सिर, टूटे बाल, छिन्न हुए हाथ, टूटे पैर, रक्त की बाढ़। सारा गंगाजल लाल–लाल हो गया। पानी में से कोई अंग्रेज सिर उठाता कि उसे गोली लग जाती। पानी में सिर छिपाए तो घुटकर मर जाए, ऐसा हरदेव का कोप हुआ। प्लासी का ऐसा वार्षिकोत्सव मनाया गया।

यह प्रातः दस बजे का समय था। श्रीमंत नाना उस दिन उस समय अपने दीवानखाने में अकेले ही चक्कर लगा रहे थे, ऐसा कहते हैं। भागीरथी के तीर पर श्री हरदेव की अध्यक्षता में मनुष्य प्राणियों की उन दो भिन्न जातियों में सौ साल के हिसाब का मिलान हो रहा था तब श्रीमंत नाना दीवानेखाने में विचलित मन थे, इसमें आश्चर्य क्या था। ऐसे क्षण इतिहास के एक–एक अध्याय के अंतिम अक्षर होते हैं। एक–एक युग की वह समालोचना होती है। ऐसे क्षण का कर्तव्य जिसकी ओर आया था वह नाना उस समय दीवानखाने में चक्कर लगाते समय उनके मन में जो विचार आ रहे हों वह करें। परंतु उन्हें विचार करने को बहुत समय नहीं मिला। क्योंकि उसी समय एक घुड़सवार दौड़ता आया और उसने–सत्तीचौरा घाट पर सिपाही अंग्रेजों को पूरी तरह काट रहे हैं–यह समाचार दिया। यह समाचार सुनते ही नाना ने उसको वापस लौटाया और उसके साथ सख्त आदेश दिया, ''गोरे पुरूषों को काटें, पर गोरी वापस लौटाया और उसके साथ सख्त आदेश दिया, ''गोरे पुरूषों को काटें, पर गोरी औरतों, बच्चों को हाथ न लगाएं।''[90] नाना के आदेश के दूसरे भाग का नील के आदेशों में अभाव ही मिलता है–यह जाते–जाते कहना ही होगा।

नाना का आदेश जब सत्तीचौरा पर पहुंचा, उस समय सिपाहियों के शिकार का खेल पूरे रंग पर था। नौकाओं के कड़कड़ाकर गिरते ढेर में गोरे जल रहे थे तो कितने ही तैरकर पार निकले जाने के प्रयास में थे। उनके पीछे शिकारी कुत्तों–से आपे से बाहर क्रोध से गुर्राते सिपाही भी तैरने लगे। दांत में तलवारें पकड़ और हाथ में पिस्तौलें लेकर पानी में सिपाहियों ने भयंकर शिकार का खेल किया। जनरल व्हीलर पहले झटके में ही मारा गया। हेंडरसन मारा गया। पर कितने मार डाले गए, इसकी सूची देने की अपेक्षा ऐसे स्थान पर कौन नहीं मारा गया, इसी की सूची देना अच्छा! नाना का संदेश आते ही सारी मार–काट बंद हो गई और करीब एक सौ पच्चीस महिलाएं, बच्चे जीवित बाहर निकाले गए। उन्हें सबदा कोठी की ओर कैद करके ले जाया गया और शेष रहे सारे यूरोपियन पुरूषों को एक कतार में खड़ा कर उनका शिरश्छेद करने का आदेश उन्हें पढ़कर सुनाया गया। उसमें से एक ने प्रार्थना के लिए समय मांगा, वह दिया गया। उन

[90] फोरेस्ट स्टेट पेपर्स तथा के एवं मैलसन कृत 'म्युटिनी' के खंड 2, पृष्ठ 258 पर भी यह अंकित है कि ''लगभग सभी इतिहासकारों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि नाना साहब को समाचार प्राप्त ही उन्होंने यह आदेश दे दिया था।''

सबने प्रार्थना की और वह पूरी होते ही सिपाहियों की तलवारों ने उनके सिर सटासट उड़ा दिए। उन चालीस में से एक नौका भाग गई और उस नौका में रास्ते के गांवों के हमले से बचे दो–चार अंग्रेज यदि रह गए तो वह दुर्विजय सिंह नामक जमींदार की करूणा से। इस जमींदार ने उन नंगे, मरते साहबों को घी–रोटी खिलाकर एक माह मेहमानी करके इलाहाबाद भिजवा दिया।

सारांश यह कि कानपुर में 7 जून को जो एक हजार अंग्रेज जीवित थे उनमें से चार पुरूष और एक सौ पच्चीस स्त्री–पुरूष ही 30 जून को जीवित थे। उनमें से ये एक सौ पच्चीस स्त्री, बच्चे नाना की कैद में थे और चार अधमारे पुरूष दुर्विजय सिंह के दीवानखाने में दवा–दारू करवा रहे थे। पर यह सुची अभी अंतिम नहीं हुई है, इसमें भी अभी जोड़–घटाव होना है। यह जोड़–घटाव होने तक अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को नाना ने कैद में डालने के बाद उनकी व्यवस्था कैसे क्या रखी गई थी, यह भी संक्षेप में कहने लायक है। इन स्त्रियों पर जबरदस्ती की गई, रास्ते में उनके स्तन काटे गए और स्वयं नाना ने उनपर बलात्कार करने का प्रयास किया आदि बेशर्मी के आरोप एवं तथाकथित 'सत्य जानकारियां' बड़े–बड़े उन अंग्रेजों के इन सब आरोपों की छानबीन करने के लिए नियुक्त कमीशन की रिपोर्ट में ये सारे बयान पूरे–के–पूरे झूठे हैं, यह स्पष्ट लिखा ही है।[91] फिर भी इतने से यह हकीकत समाप्त नहीं होती। उन स्त्रियों को नाना ने मार–काट से बचाकर–नील, रेनाल्ड, हैवलॉक इन सबको लज्जित किया। इतना ही नही अपितु उन स्त्रियों को कैद में रखकर उनको अमानुषिक यंत्रणाएं भी नहीं दी गई। इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने हिंदुस्थान में या ऑस्ट्रिया ने इटली में या स्पेन ने मूरिश लोगों को या ग्रीक ने तुर्की लोगों को ऐसी ही परिस्थिति में जितनी कठोरता से सताया है उसकी शतांश कठोरता भी अपने व्यक्ति, राष्ट्र या धर्म संबंधी कृतघ्न शत्रु जाति को उस सन् 1857 के उग्र प्रलय में नहीं दिखाई गई! यह अंग्रेजी इतिहास से प्रमाणित है। कानपुर हत्याकांड की इस पहली गड़बड़ी में कुछ घुड़सवारों ने चार अंग्रेज और कुछ धर्मांतरित स्त्रियों को भगाया था। नाना साहब को यह समाचार मिलते ही उन्होंने उन सवारों को पकड़वाकर उनकी भर्त्सना की और भगाई हुई औरतों को छोड़ देने के आदेश दिए।[92] कैदी स्त्रियों और बच्चों को रोटी और

[91] 1. म्योर का प्रतिवेदन तथा विल्सन का प्रतिवेदन; के और मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 267।

[92] 2. ट्रेवेलियन कृत–'कानपुर', पृष्ठ 299 ।

मांस बीच–बीच में दिया जाता था।[93] किसी भी तरह के कष्टकारी श्रम का काम बलपूर्वक कैदियों पर नहीं लादा जाता। बच्चों को दूध मिलता था। उनकी निगरानी के लिए बेगम नाम की एक महिला नियुक्त थी। कैद में हैजा और पेचिश शुरू हो जाने पर कैदियों को शुद्ध हवा मिले, इसलिए रोज तीन समय खुले में लाया जाता।[94] फिर भी फिरंगियों के प्रति लोगों में कैसा भयंकर क्षोभ था यह दरशाने के लिए यहां एक कहानी प्रस्तुत कर रहा हूं। कैदखाने की दीवार पर से एक ब्राह्मण में झांककर देखा कि आज तक जो स्त्रियां पालकी के सिवाय एक कदम भी उठाती नहीं थीं वे सवयं के कपड़े धो रही हैं। ब्राह्मण को उनपर दया आ गई और उसने पड़ोसी से कहा, ''उनके कपड़े धोबी को क्यों नहीं दिए जाते?'' उस ब्राह्मण द्वारा बिना बात दिखाई गई इस मानवता के प्रति घृणा से उस पड़ोसी ने ब्राह्मण को एक चांटा मारा। कैद की कुछ ही स्त्रियों से चक्की पिसवाई जाती और उसके बदले में उनको एक रोटी का आटा दिया जाता। स्वयं जीवित रहने के लिए कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं–इसका पाठ उन्हें मिला। ऐसी कैद का अंत क्या हुआ और उसके लिए क्या कारण घटित हुआ, इसका खुलासा यथा अवसर आने तक इन महिलाओं और बच्चों को उस कैद में ही छोड़कर अधिक महत्त्व की बातों को देखें।

25 जून को कानपुर के अंग्रेजी शासन का पूर्ण निर्मूलन हो जाने के बाद लगभग पांच बजे श्री नाना ने एक विशाल दरबार आयोजित किया। उस राजदरबार के सम्मानार्थ उस समय उपस्थित सारे लश्कर की भी परेड बुलाई गई। पैदल सेना की छह पूरी रेजिमेंट और घुड़सवारों की दो रेजिमेंट उस समारोह में उपस्थित थीं। इसके अतिरिक्त गांव–गांव से इस स्वदेशीय युद्ध के लिए आई हुई स्वयंसेवकों की टोलियां भी अपने–अपने निशान लेकर खड़ी थी। जिसके पराक्रम से कानपुर जीता जा सका था उस मुट्ठी भर परंतु शौर्ययुक्त तोपखाने का मान इस दिन यथार्थ में प्रथम रखा हुआ था। बाला साहब सेना में पहले से ही प्रिय होने से उनके आते ही उनको 'खड़ी तालीम' दी गई। प्रथमतः दिल्ली के बादशाह के नाम एक सौ एक तोपें दागी गई। सन् 1857 में हिंदू–मुसलमानों ने कितने आदर से और बंधुत्व भाव से एक–दूसरे से अंत तक व्यवहार किया–यह यहां ध्यान में रखने लायक है। बाद में श्रीमंत नाना साहब की सवारी मैदान में आई, यह देखते ही सबने महाराज की जय–जयकार की और उन्हें भी इक्कीस तोपों की सलामी दी गई। लड़ाई के इक्कीस दिनों के लिए ये इक्कीस तोपें थीं–ऐसा अनेक कहते हैं । उस सम्मान के लिए महाराज ने उस विशाल सेना का आभार माना और वे

93 'नैरेटिव्स', पृष्ठ 113 ।

94 नील ने स्वयं अपने प्रतिवेदन में लिखा है–''प्रारंभ में बंदियों को ठीक भोजन नहीं मिलता था; किंतु बाद में उन्हें अच्छा भोजन दिया गया और उनकी सेवा के लिए नौकर भी नियुक्त कर दिए गए।''

बोले, ''यह आज की विजय आप सबकी है, इसलिए इसमें आप सबका भी समान सम्मान हैं॰॰ ।''[95] बाद में इस संयुक्त धर्मयुद्ध की उस विजय के लिए नाना ने एक लाख रूपए उस लश्कर को पुरस्कार देने का आदेश दिया है, यह घोषित होते ही इक्कीस तोपों की और सलामी हुई। बाद में नाना के भतीजे राव साहब और बाला साहब प्रत्येक को सोलह–सत्रह तोपों की सलामी दी गई। ब्रिगेडियर ज्वाला प्रसाद और सेनापति तात्या टोपे को भी ग्यारह–ग्यारह तोपों का सम्मान मिला। इस तरह उस दिन के सूर्यनारायण को स्वातंत्र्य समर में विजयी तोपों के धमाके सुनाकर सारी सेना को अपने शिविर में भेज दिया गया।

लश्कर की यह परेड हो जाने के बाद श्रीमंत नाना साहब श्रीमंत बाला साहब के साथ ब्रह्मवर्त के उस इतिहास–प्रसिद्ध राजभवन की क्या शोभा होगी! पेशवाओं का वह पुरातन सिंहासन समारोहिपूर्वक सुमंत्रित कर दरबार में लाया गया। श्रीमंत नाना साहब के मस्तिष्क पर राजतिलक लगाया गया और हजारों नागरिकों और तोपों के धमाकों–जयघोषों में श्रीमंत नाना साहब पेशवा एक स्वतंत्र और स्वकष्टार्टित, स्वदेश–सम्मत और स्वधर्म–प्रतिपालक सिंहासन पर चढ़ गए। उस दिन कानपुर से हजारों लोगों ने नाना को नजराने और उपहार भेजे थे।[96] हिंदू लोग खुला कहने लगे–'आज से अब राजा रामचंद्र की विजय होगी।[97] स्वधर्म और स्वराज्य की मंगल सुगंध बहुत दिनों बाद बह रही है। मराठों की जिस गद्दी को रायगढ़ से अंग्रेजों ने धकेला था, वह अंग्रेजी रक्त और मांस से ब्रह्मवर्त में पुनर्भूर्त हुई हैं।

आज उसके समृद्ध वृक्ष को उसमें स्वराज्य का फल लगा देखकर नाना को क्या लगा होगा?

पर नाना की बालसखी छबीली उधर क्या कर रही है? नाना को घोड़े पर बैठते देख जो घोड़े पर बैठती थी, नाना हाथी पर बैठें तो वह भी हाथी पर बैठे बिना न रहती थी, वह कानपुर में नाना के स्वातंत्र्य तिलक से विभूषित सिंहासन पर विराजमान होने के पश्चात् झांसी में स्वकीय सिंहासनरोहण किए बिना–भूमि पर थोड़े ही बैठेगी। स्वतंत्रता के रण पट पर सिंहासन का भयानक दांव लगाने के लिए नाना साहब ने जिस दिन अपना पासा कानपुर में फेंका उसी दिन रानी ने भी अपना पासा झांसी में फेंका। इसी का नाम है साथी'गुइयां! 4 जून को इधर कानपुर में स्वातंत्र्य घोषणा की भयानक गड़गड़ाहट होने लगी, तभी उधर झांसी की चपला भी समर आकाश में कड़कने लगी।

झांसी में सन् 1857 के मई माह में नेटिव पैदल सेना की 12वीं रेजिमेंट, 14वीं

[95] ट्रेवेलियन कृत– 'कानपुर', पृष्ठ 293 ।
[96] वही, पृष्ठ 294 ।
[97] सर कॉलिन कृत–'नेटिव' ।

घुड़सवार और एक तोपखाना–इतनी सेना रखी हुई थी और इस सेना का मुख्य अधिकारी कैप्टन डनलप था। मई माह के प्रारंभ में उस सेना में कुछ गुप्त योजना चलने का उड़ता समाचार अंग्रेज अधिकारियों के कानों में आने लगा। झांसी के मुख्य कमिश्नर स्कीन और डिप्टी कमिश्नर गार्डन के हाथ में सिपाहियों के कुछ पत्र लग जाने से यह स्पष्ट दिखने लगा कि रानी के किसी ब्राह्मण नौकर लक्ष्मणराव ने 12वीं रेजिमेंट से संपर्क साधा हुआ है और सिपाही विद्रोह कर अपने अधिकारियों को गारद करें, इसके लिए उसके लगातार प्रयास चल रहे हैं।[98] यह ब्राह्मण–लक्ष्मणराव पांडे–बाद में स्वतंत्र झांसी का दीवान बना। झांसी के धनवान ठाकुर लोगों में एक तरह की खलबली मची है और वे अंग्रेजी राज उलटने की चर्चा कर रहे हैं–पर यह बात कोई बहुत महत्त्व की नहीं है, क्योंकि ये ठाकुर कभी किसी सरकार के राजनिष्ठ रहे ही नहीं।

फिर भी झांसी की सेना राजनिष्ठ रहेगी, यह अंग्रेजों का दृढ़ विचार था। सेना की राजनिष्ठा के साथ ही रानी राजनिष्ठा के संबंध में भी कुछ संशय करने का कोई कारण नहीं था। क्योंकि अभी कुछ समय पूर्व ही उसने समय आने पर अंग्रेजों की यथासंभव सहायता करना कबूल किया है। इतना ही नहीं अपितु वह सहायता कर सके, इसलिए अपने पास की सेना बढ़ाने की अनुमति उसने मांगी है। ऐसी स्थिति में झांसी विद्रोह की ज्वाला से निर्भय है। मई माह की 31 तारीख को भी वरिष्ठ अधिकारियों को झांसी के अंग्रेज ऐसी रिपोर्ट करें तो उसमें क्या हर्ज है।

तरीख 1 जून को झांसी में कुछ अंग्रेज अधिकारियों के बंगलों को आग लगी। यह आग जून के पहले हफ्ते को इतना संदेश देकर निकल गई कि जिस दिन उधर कानपुर उठा उसी दिन 4 जून को झांसी भी विद्रोह कर उठी। सिपाहियों की एक टोली ने अपने हवलदार के इशारे पर अकस्मात् चढ़ाई कर स्टार फोर्ट को उसमें स्थित बारूदखाने और शस्त्रागार सहित हथिया लिया। कैप्टन डनलप ने घुड़सवारों और शेष बचे हुए पैदल और तोपखाने को परेड पर बुलाकर घटना की जानकारी दी तो सारे नेटिव सिपाहियों ने राजनिष्ठा और कंपनी की जय–जयकार कर कहा कि हम कंपनी के लिए जान देने में भी नहीं हिचकेंगे। राजनिष्ठा का ऐसा प्रदर्शन इधर चल रहा था तो उधर अंग्रेजों ने अपने बाल–बच्चे किले में पहुंचाकर उस किले को लड़ाने की तैयारी शुरू कर दी और सहायता के लिए नौगांव अंग्रेजी छावनी को तथा अन्य स्थानों पर भी तत्काल पत्र भेजे। ये पत्र डालने डनलप साहब डाकघर की ओर जाने लगे तो उन्हें परेड के मैदान पर 12वीं पलटन के सिपाहियों ने गोली से मार डाला। एनसाइन टेलर भी मारा गया। तब सारे अंग्रेज डर के मारे किले की ओर चले गए। उस किले में अंग्रेजों ने सुरक्षा के लिए तोपें निशाने पर लगाकर बारूद की व्यवस्था की हुई थी और उनका यह निश्चय था कि

[98] चार्ल्स बाल, खंड 1, पृष्ठ 271।

बाहर से सहायता आने तक एक हफ्ते तक किला बड़ी सहजता से लड़ाया जा सकता है। सिपाहियों ने, छावनी में जो यूरोपियन मिले, उन्हें मारकर फिर किले पर चढ़ाई की। अंग्रेजों ने रानी की सहायता प्राप्त करने के लिए स्कॉट और पर्सेल बंधु जैसे तीन आदमी भेजे थे। उन्हें रास्ते में ही पकड़कर मार डाला गया। 7 जून को विद्रोहियों ने किले पर जोरदार आक्रमण किया। उनके पास अच्छी तोपें न हाने से किला जीतना बहुत कठिन होने लगा। फिर भी उनका संख्या बल अधिक होने से वे वैसे ही आगे बढ़ते रहे। किले में अंग्रेजों के साथ कुछ विश्वासपात्र नेटिव भी घुसे हुए थे। उनमें से एक किले दरवाजे को बंद करेन के लिए बनी दीवार चुपचाप गिराने लगा। उनमें से एक किले दरवाजे को बंद करने के लिए बनी चुपचाप गिराने लगा। लेफ्टिनेंट पावस ने यह देखते ही उस सेवक पर गोली मारी, तभी दूसरे सेवक ने लेंफ्टिनेंट को तलवार से काट डाला। लेंफ्टिनेंट को गर्गेस ने उस सेवक का काम तमाम किया। अंग्रेजों ने अपने को छिपाकर तोपों और बंदूकों का हमला चालू रखा था। कमिश्नर गार्डन ऐसे ही चोरी से बंदूकें चला रहा था तो उसके चेहरे से परिचित एक विद्रोही ने सीधे तीर चलाकर उसे मार डाला। गार्डन साहब के मरते ही किले के अंग्रेजों का धीरज टूटने लगा और बाहर विद्रोहियों का उत्साह बढ़ने लगा। अंग्रेजों की गोलीबारी की परवाह न करते हुए घुड़सवारों का रिसालदार काले खान और झांसी का तहसीलदार अहमद हुसैन–इन दो बहादूर योद्धाओं ने विद्रोहियों का झंडा किले की दीवार तक जा भिड़ाया और अब विद्रोही सेना किले में पल–दो–पल में घुसेगी, ऐसा रंग दिखने लगा। तब अंग्रेजों ने किले पर संधि का झंडा लगाया और लड़ाई बंद हो गई। दूसरे दिन विजयी विद्रोहियों के प्रतिनिधि झांसी का प्रसिद्ध हकीम सालेह मोहम्मद से अंग्रेजों ने बातचीत शुरू की और जीवनदान मांगा। यह शर्त सालेह मोहम्मद ने कुरान पर हाथ रखकर स्वीकार की और अंग्रेजों ने तुरंत किले के दरवाजे खोल दिए। अंग्रेजों को शस्त्र नीचे रखने के आदेश हुए। उन्होंने शस्त्र नीचे रखे और वे हतभागी गोरे लोग बाहर आने लगे और सिपाही उन्हें देखते ही 'मारो फिरंगी को' कहते हुए उनपर टूट पड़े। 8 जून को अंग्रेज पुरूषों के हाथ बांधकर उनका एक जंगी जुलूस शहर में से निकाला गया। उस जुलूस में ही झांसी का मुख्य कमिश्नर स्कीन अधोमुख चल रहा था। जोगन बाग के पास आते ही रिसालदार साहब ने आदेश दिया–''एक–एक गोरा काटा जाय।'' झांसी के कैदखाने के मुसलमान दारोगा ने स्कीन साहब का सिर कलम किया और तत्काल ही पुरूष, महिला, बच्चे मिलाकर साठ गोरे सिर गेंद की तरह उछलकर खड़े थे। वे औरतें, उनकी गोद के छोटे बच्चे और सटकर खड़े बड़े बच्चे भी गोरे रंग अपराध के कारण काले रंग की तलवार से 'सटाक' काटे गए। एक क्षण में रक्त की तेज धार बहने लगी। झांसी के घनीभूत अन्याय का ऐसा द्रवीकरण हुआ।

झांसी के गुस्सैल जबड़े में पचहत्तर अंग्रेज पुरूषों, बारह महिलाओं और तेईस बच्चों की विद्रोहियों ने बलि ली। 4 जून को झांसी ने विद्रोह किया और 8 जून को अंग्रेजी राज्यसत्ता का झांसी से अंत हो गया। और अंग्रेजों की ओर से अपने को वारिस कहनेवाला कोई न बचने से विद्रोही सिपाहियों ने रानी साहब लक्ष्मीबाई को झांसी के स्वातंत्र्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और वीर रानी के नाम से नारा लगाया—''खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का और शासन रानी लक्ष्मीबाई का।''[99]

[99] झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र पर एक ग्रंथ मराठी में श्री पारसनीस ने लिखा है। उस विद्धान ग्रंथकार ने सैकड़ों सबूतों से प्रस्तुत कर यह दिखाया है कि अंग्रेजों के इस हत्याकांड को उस युवा रानी ने रत्ती भर भी नहीं भड़काया था। श्री पारसनीस का ग्रंथ मराठी पाठकों के अच्छे परिचय का ग्रंथ है और उसका अन्या भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है और इसीलिए हमने उसे यहां उद्धृत किया है।

प्रकरण–9

अवध का रण

अवध का राज डलहौजी द्वारा अधिगृहीत किए जाने के बाद से उस प्रदेश की प्रजा की दुर्दशा बढ़ती ही जा रही थी। अवध की स्वतंत्रता नष्ट हो जाने के बाद नवाब के राज्य में अंग्रेज अधिकारियों की नियुक्ति होने के कारण बड़े–बड़े पद–सम्मान से सारे स्वदेशी लोगों को पदच्युत होना पड़ा था। नवाब की सेना समाप्त कर दी गई। उसके सरदार दरिद्रता में धकेल दिए गए। उसके सरदार और मंत्री वैभव–विहीन होकर उपजीविका की कनिष्ठ सीढ़ी पर पहुंच गए। जिस गुलामी के कारण यह दुर्दशा उत्पन्न हुई थी उससे सबके मन में उसके प्रति भारी द्वेष बढ़ने लगा। राजधनी और राजदरबार में ही केवल दासता के ये पाश कसने लगे थे, ऐसा नहीं था। उस सारे प्रदेश में बड़े–बड़े जमींदारों और राजाओं के पीढ़ी–दर–पीढ़ी जो अधिकार, जागीरें, इनाम आदि चले आ रहे थे वे सब अंग्रेजों ने छीन लिये–इस कारण उन सब बड़े–बड़े राजाओं और जागीरदारों को अत्यंत कनिष्ठ स्वराज्य और अति श्रेष्ठ गुलामी में पहला कितना श्रेयस्कर, सम्मानपूर्ण और अभिनंदनीय होता है, यह पहचान हो गई थी। लगान बढ़ जाने से किसान नाराज हो गए। अंग्रेजी लश्कर के हिंदुस्थानी सिपाही, जो अधिकांश अवध के ही थे, उनके मन में भी मातृभूमि की इस दुर्दशा और दासता से व्यापक असंतोष बढ़ने लगा। युवा वाजिद अली शाह से अंग्रेजों ने कैसा घोर विश्वासघात किया था, इसे स्मरण करते हुए हर कोई अपनी तलवार पर हाथ धरे अपने होंठ चबाने लगा था।

अवध के बड़े–बड़े जमींदार शूरता, उदारता और कृतज्ञता आदि गुणों से भरपूर राजपूत वंशों में उत्पन्न हुए थे। अंग्रेजों ने उनके राजा पर जो अत्याचार किए थे उसके कारण उनमें बहुत गुस्सा उत्पन्न हो गया था। अवध अधिग्रहण करने के बाद अंग्रेजों ने अपने अधीन कार्य करने के लिए जब उनसे कहा तब उन स्वतंत्रता–प्रेमी लोगों में से सैंकड़ों उग्र पुरूषों ने अंग्रेजों को कहा,''हमने स्वराज्य का अन्न खाया है, अतः गुलामी के अन्न को छूना भी हराम है।''

अवध का राज्य अधिगृहीत करने के बाद उस राज्य के सर्वाधिकारी पद पर सर हेनरी लॉरेंस को नियुक्त किया गया। हेनरी लॉरेंस जॉन लॉरेंस का बड़ा भाई था, जिसने अपने जोश और कूटनीति से पंजाब में विद्रोह के बीज अंकुरित होने के पहले ही नष्ट कर दिए थे। पंजाब के चीफ कमिश्नर ने जैसे पंजाब को बचाया वैसे ही अवध के चीफ कमिश्नर ने भी अवध को बचाने के उपाय बहुत पहले से करने प्रारंभ कर दिए थे। सन् 1857 की चोट से हिंदुस्थान में ब्रिटिश शासन बचाने का श्रेय यदि किसी को देना हो तो इन लॉरेंस बंधुओं को देना होगा। सर हेनरी लॉरेंस ने अवध में पैर रखते ही वहां की परिस्थिति का सही–सही अनुमान लगाया और हिंदुस्थान में किसी भी अंग्रेज के ध्यान में आने के पूर्व ही उसने विद्रोह होने की आशंका प्रदर्शित की। अवध की मुख्य राजधानी लखनऊ होने से सर हेनरी लॉरेंस वहीं रहता था। उसने असंतुष्ट जमींदारों को मीठा बोलकर शांत करने का प्रयास किया । लखनऊ में दरबार आयोजित कर उसमें मान–सम्मान, इनाम आदि देकर जनता में पनप रही स्वराज्य की अनुभूति को भुलाने के लिए काफी प्रयास किए। जनता को शांत करने के अपने प्रयासों के साथ ही संकट के समय असावधान रहे, ऐसा नासमझ नहीं होने से उसने लोगों के विद्रोह से अपने को बचाने के लिए अलग–अलग योजनाएं भी प्रारंभ कर दीं।

सर हेनरी लॉरेंस का शासन यद्यपि उसके पूर्ववर्ती अंग्रेज अधिकारियों के शासन से अच्छा था, फिर भी अवध के लोगों को अब अंग्रेजों के अच्छे शासन से बुरे शासन जैसी ही घृणा हो गई थी। स्वराज्य स्थापित कर उसपर वाजिद अली शाह को फिर से बैठाए जाने से कम में उनकी महत्त्वकांक्षा शांत होनेवाली नहीं थी। अंग्रेजी राज्यसत्ता की जंजीरों को तोड़कर सारा हिंदुस्थान फिर से एक बार स्वतंत्र करने के सिवाय उन्हें और कुछ भी सूझ नहीं रहा था। उनका धर्म कल श्रेष्ठ पद पर आसीन हो चुका था। कल तक वह धर्म राजधर्म की प्रतिष्ठा पा चुका था। परंतु आज वह हीन सेवाधर्म हो गया था। यह उनकी मुख्य पीड़ा थी और उसका समाधान अच्छे शसन से नहीं, विदेशी शासन की समाप्ति से ही हो सकता था। मान सिंह जैसे प्रबल हिंदू राजा और सिकंदर शाह जैसे मुसलमानों के अधीकारी दोनों ही धर्म के देशभक्त नेताओं ने स्वतंत्रता के लिए अपना सबकुछ समर्पित करने का निश्चय किया था। हजारों मौलवी और पंडित इस जिहाद का गुप्त और खुला उपदेश करते हुए सारी अवध में घूमने लगे। लश्कर, पुलिस, जमींदार और सारी जनता अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई करने को शपथबद्ध करने का प्रचंड षड्यंत्र

खड़ा किया गया जिससे इधर–उधर लोक क्षोभ की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। इस अग्नि क चिनगारियां बीच में ही गलती से कैसे उड़ी, यह पहले कहा है। खुद मौलवी सिकंदर शाह को राजद्रोह के अपराध के कारण पहले फांसी और बाद में कारावास का दंड दिया गया और 7वीं रेजिमेंट को निःशस्त्र किया गया। सर हेनरी लॉरेंस ने लश्कर को यथासंभव नियंत्रण में रखने के लिए 12 मई को एक बड़ा दरबार आयोजित किया। उसमें स्वयं उसने हिंदुस्थानी भाषा में एक कौशलपूर्ण व्याख्यान दिया, राजनिष्ठा का महत्त्व बतलाया। महाराजा रणजीत सिंह द्वारा किए गए मुसलिम धर्म के अपमानों और औरंगजेब द्वारा किए हिंदू धर्म के अपमानों का स्पष्ट प्रतिपादन करने के बाद अंग्रेज सरकार ने इस परस्पर द्वेष से हिंदू–मुसलमानों को कैसे बचाया–यह बात विस्तार से कही और बाद में जिस किसी सिपाही ने 7वीं रेजिमेंट की निःशस्त्रीकरण विधि में उत्तम राजनिष्ठा प्रदर्शित की थी उन्हें तलवारें, शॉल, साफे आदि पुरस्कार स्वयं लॉरेंस ने अपने हाथ से दिए। लेकिन कितना विरोधाभास! इन पुरस्कार प्राप्त राजनिष्ठों को ही कुछ समय बाद विद्रोह के षड्यंत्र में सम्मिलित सिद्ध होने पर फांसी दी गई।

राजनष्ठिा का यह दरबार 12 मई को हुआ और 13 मई को खबर आई कि मेरठ शहर ने विद्रोह किया और 14 मई को समाचार आया–दिल्ली पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया है और वहां स्वतंत्रता की घोषणा हो गई है।

ये समाचार आते ही सर हेनरी लॉरेंस ने लखनऊ शहर के पास के मच्छी भवन और रेजिडेंसी–ये दो स्थान चुनकर उन्हें अंग्रेजों के रहने योग्य बनाना प्रारंभ किया। अंग्रेजों की सारी महिलाएं, बच्चें वहां ले जाए गए और गैर लश्करी अधिकारी, बाबू व्यापारी आदि सभी वयस्क पुरूषों को लश्करी कवायद, अनुशासन और शस्त्र आदि का प्रशिक्षण देकर तैयार किया गया। मेरठ की ओर बगावत हो जाने के बाद वहां के असैनिक अधिकारियों आदि को भी तत्काल ऐसा ही फौजी प्रशिक्षण देकर कोई दस दिन में युद्ध के लिए तैयार किया गया था। सर हेनरी लॉरेंस को ही पूरे प्रदेश का मुख्य फौजी अधिकारी बनाया गया। अवध का प्रदेश नेपाल से लगा होने के कारण लॉरेंस का प्रयास नेपाल के राजा जंग बहादुर को अपनी सहायता के लिए सेना लेकर बुलाने का चल रहा था।

इन सारी व्यवस्थाओं के चालू रहते सर लॉरेंस को रोज यह पक्का समाचार मिलता कि आज विद्रोह होगा। ऐसा समाचार मिलते ही लॉरेंस विशेष बंदोबस्त करने लगता। पर दूसरा दिन उदय हो जाने के बाद भी विद्रोह न होता–ऐसा बार–बार होता रहा। 30 मई को लॉरेंस को किसी अधिकारी ने समाचार दिया कि आज रात नौ बजे विद्रोह होगा।

30 मई का सूर्यास्त हो गया। हेनरी लॉरेंस अपने साथियों सहित भोजन करने बैठा था, तभी रात नौ बजे की तोप की आवाज हुई। जिसने इस बार विद्रोह होने का पक्का समाचार दिया था वह पहले की तरह ही गलत हुआ, इसलिए लॉरेंस ने उसकी

ओर झुककर कहा, ''तुम्हारे मित्र समय–पालन में पक्के नहीं है।'' 'समय–पालन में पक्के नहीं है!'' यह वाक्य हेनरी लॉरेंस कह भी न पाया कि 71वीं पैदल पलटन द्वारा छोड़ी गई बंदूकों की आवाज उसके कानों में आने लगी। इस रेजिमेंट के पहले से बनाए गए कार्यक्रम के अनुसार नौ बजे की तोप छूटते ही उसकी अलग–अलग टोलियां यूरोपियनों के बंगलों पर टूट पड़ी। 71वीं रेजिमेंट के मेस हाउस को आग लगाकर उन्होंने यूरोपियनों पर बंदूकों से गोलियों की झड़ी लगानी शुरू की। इस रेजिमेंट का लेफ्टिनेंट ग्रांट भागा जा रहा था तो किसी ने उसे खाट के नीचे से खींचकर सिपाहियों ने गारद किया। लेफ्टिनेंट हार्डिंग कुछ घुड़सवारों के साथ रास्ता रोकने आया तो उसे भी तलवार ने साफ कर दिया। पूरा कैंटोनमेंट सुलग गया। ब्रिगेडियर हर्डस्कोम भी मारा गया। रात भर अंग्रेजी झंडे को थामे रहे नेटिव और गोरे सोल्जर विद्रोह को रोके रहे। सुबह अर्थात् 31 मई को हेनरी लॉरेंस ने विद्रोहियों पर अपने मातहत यूरोपियन और अभी भी राजनिष्ठ बनी हुई नेटिव सेना को लेकर हमला किया। परंतु रास्ते में ही उसके साथ की 6वीं घुड़सवार रेजिमेंट ने विद्रोह किया, इसलिए सर हेनरी उन सब सिपाहियों को वहीं छोड़कर लौट गया। लखनऊ में यूरोपियनों की 32वीं रेजिमेंट पूरी गोरी होते हुए और गोरे तोपखाने का सहयोग होते हुए भी 31 मई की शाम के पहले नेटिवों की 71वीं पैदल रेजिमेंट, 48वीं पैदल रेजिमेंट, 7वीं घुड़सवार रेजिमेंट और अधिकतर इर्रेग्यूलर सेना ने विद्रोह का झंडा गाड़ दिया।

लखनऊ से इक्यावन मील दूर अवध की वायव्य दिशा का मुक्ष्य शहर सीतापुर है। इस शहर में सन् 1857 में 41वीं पैदल, 9वीं इर्रेग्यूलर पैदल पलटन ऐसी तीन नेटिव रेजिमेंट थी। वहां उसका कमिश्नर और अन्य बड़े–बड़े यूरोपियन अधिकारी भी रहते थे। 27 मई को अंग्रेजों की एक बस्ती में आग लगा दी गई थी। परंतु यह आग विद्रोह की अग्रिम सूचना है, यह अनुमान अभी तक युरोपियनों को न होने से उन्होंने उस आग को भुला दिया। और क्या कहें, स्वयं सिपाहियों ने ही उसे बुझाने में अथक श्रम किया था। इस अग्रिम सूचना ने दो काम किए। एक यह कि षड्यंत्रकारियों को समय हो जाने की सूचना और दूसरा अंग्रेज अधिकारियों के भोलेपन की जांच। जून की दूसरी तारीख को एक नई घटना हुई। सिपाहियों को दी गई नमक की बोरियों को उन्होंने यह कहकर नहीं लिया कि उसमें हड्डियों का चूरा है। इतना हीनहीं, उन्हें तत्काल गंगा में डाल दिया जाए, ऐसी जिद भी की। अंग्रेजों ने इसीलिए वे बोरियां नदी में फेंक भी दी। अब और भी मजा आ गया, उसी दिन दोपहर के समय यूरोपियन लोगों के बगीचों में एकाएक सिपाही घुस गए और चाहे जिस पेड़ पर चढ़कर आनंद से फल खाने लगे। अंग्रेज अधिकारी चिल्लाते रहे, पर सिपाहियों का फलाहार किसी तरह भी रोका न जा सका।

इस तरह भयंकर फलाहार करने के बाद उसे हजम करने के लिए उतना ही भयंकर व्यायाम शुरू हो गया। 3 जून को सिपाहियों की एक टोली ने खजाने पर हमला

कर उसे कब्जे में ले लिया और बाकी के सिपाही कमिश्नर के बंगले की ओर बढ़े। रास्ते में कर्नल बर्च और लेफ्टिनेंट ग्रोव्स मिले तो उन्हें मार डाला गया। एक इर्रेग्यूलर ने भी अपने अंग्रेज अधिकारी काट डाले और सारे–के–सारे सिपाही ''यूरोपियन शासन खत्म हुआ'', ऐसा चिल्लाते–चिल्लाते गोरे लोगों पर टूट पड़े। एक नदी के रास्ते में कमिश्नर अपनी पत्नी को लेकर भागने लगा। उसे उसकी पत्नी और लड़के को लेकर नदी पर जोन से पहले ही मार डाला गया। थॉर्नहिल और उसकी पत्नी भी गोली लगने से मर गए। रामकोट के जमींदार की शरण में चले गए और आठ–आठ, दस–दस माह तक सुरक्षित रखकर लखनऊ पहुंचाए गए। सीतापुर के सारे सिपाही फिर फर्रूखाबाद की ओर चले गए। वहां के यूरोपियनों ने जिस किले का आश्रय लिया था वह किला बहुत प्रयास से जीतने के बाद उन्होंने सारे यूरोपियनों को काट डाला। नवाब तफुज्जुर हुसैन खान को अंग्रेजों द्वारा अधिगृहीत गद्दी पर फिर से बैठाया गया। इस नवाब ने भी अपने प्रदेश में मिले हर यूरोपियन को पकड़वाकर मार डाला। इस तरह फर्रूखाबाद प्रदेश में 1 जुलाई को एक भी अंग्रेज शेष नहीं रहा।

सीतापुर के उत्तर में चौवालीस मील पर बसे मलान शहर में जो अंग्रेज अधिकारी थे उन्हें सिपाहियों और नागरिकों के षड्यंत्र तथा सीतापुर का समाचार मिलते ही वे घोड़ो पर बैठकर भाग गए और वह जिला बिना रक्त की एक बूंद बहाए स्वतंत्र हो गया। तीसरा जिला महम्मदी है। वहां के यूरोपियनों ने अपनी महिलाएं मिटौली के राजा के यहां भेजीं तो उस राजा ने उनसे कहा कि तुम्हें मेरे जंगल में छिपकर रहना पड़ेगा। तुम्हारी खुली सुरक्षा करने की क्षमता मुझमें नहीं है; क्योंकि पूरे अवध के सिपाहियों ने विद्रोह करने की शपथ ली हुई है। उस राजा के पास अपनी महिलाएं पहुंचाने के बाद महम्मदी के अंग्रेज अधिकारियों ने वहां के किले में शरण ली। इसी दिन–जैसाकि पहले कहा गया है–रूहेलखंड के शाहजहांपुर से भागते हुए अंग्रेज महम्मदी पहुंच गए। पर महम्मदी में सुरक्षा न होने से वहां के अधिकारियों ने सीतापुर को संदेश भेजा कि वे इन अनाथ अंग्रेजों को सीतापुर ले जाएं। सीतापुर में तब तक विद्रोह नहीं हुआ था, इसलिए वहां से सिपाहियों की एक टोली गाड़ियों के साथ उन अनाथ अंग्रेजों को लेने के लिए पहुंची। परंतु सीतापुर के ये सिपाही महम्मदी में विद्रोह के बीच आए थे। उन्होंने सारे अंग्रेजों को गड़ियों से भरा, सीतापुर के आधे रास्ते तक सुरक्षित लाए और वहां उन्हें गाड़ियों से उतारकर मार डाला। इसमें सात–आठ महिलाएं, चार बच्चे, आठ लेफ्टिनेंट, चार कैप्टन और कुछ अन्य पुरूष थे। इधर महम्मदी में बचे हुए अंग्रेज अधिकारी तत्काल भाग गए और इस तरह उस पूरे जिले में जून की चौथी तारीख को ब्रिटिश राज्यसत्ता का कोई चिह्न न रहा।

अवध प्रांत के सीतापुर से लगा हुआ जिला है बहराइच। यहां का कमिश्नर विंगफील्ड था और उसके अधिकार में चार शहर सिकोरा, मालापुर, गोंडा और बहराइच थे। इसमें से सिकोरा में नेटिवों की दो पैदल रेजिमेंट और एक तोपखाना था। वहां विद्रोह होने के संकेत दिखते ही अंग्रेज स्त्री–बच्चों को लखनऊ भेज दिया। 9 जून की प्रातः अंग्रेजों में से बहुत से अधिकारी घोड़े पर बैठकर स्वयं की बलरामपुर के राजा के यहां चले गए। केवल तोपखाने का अधिकारी बोन्हम अपने अधीनस्थ सिपाहियों पर पूरा भरोसा कर डटा रहा। परंतु शाम को उसे सिपाहियों ने साफ–साफ कहा कि ''यद्यपिह म आपको तनिक भी क्षति नहीं पहुंचाएंगे, फिर भी हमने अंग्रेजी गुलामी छोड़ दी है और हम अपने देशबंधुओं पर कभी भी गोलियां नहीं चलाएंगे।'' यह सुनते ही हारकर वह अधिकारी भी स्थान छोड़कर निकल गया। उसे सिपाहियों ने यह भी बता दिया कि सुरक्षित राह कौन सी है और वह सुरक्षित लखनऊ पहुंच गया। सिकोरा स्वतंत्र होने की सूचना गोंडा में आते ही वह शहर भी विद्रोह कर उठा। यह देखते ही स्वयं कमिश्नर विंगफील्ड के साथ सारे अंग्रेज लोग बलरामपुर के राजा के पास भाग गएं इस राजा ने कोई पच्चीस अंग्रेज शरणार्थियों को शरण दी और उन्हें उचित अवसर पर ब्रिटिश छावनी में पहुंचा दिया।

सिकोरा और गोंडा स्वतंत्र हो जाने का समाचार बहराइच में पहुंचते ही वहां स्थित अंग्रेज अधिकारी विद्रोह होने की राह न देख उस मुख्य शहर को छोड़कर 10 जून को ही लखनऊ की ओर भाग खड़े हुए। पर इस समय सारे अवध प्रांत में विद्रोहियों कीचौकियां स्थान–स्थान पर बन जाने के कारण नेटिव लोगों के स्वांग धरे और एक नाव में बैठकर घाघरा नदी पार करने लगे। पहले उनकी ओर किसी ाक ध्यान नहीं गया, पर आधी नदी पार होते–होते 'फिरंगी–फिरंगी' की आवाजें आने लगीं। मल्लाहों ने नौकाएं छोड़ दीं और वे अंग्रेज अधिकारी मार डाले गए। इन अधिकारियों के साथ ही उस बहराइच प्रांत से ब्रिटिश सत्ता समाप्त हो गई। मालापुर में अभी तक लश्करी छावनी नहीं थी फिर भी वह जिला छोड़कर भाग जाने के सिवाय अंग्रेजों को कोई गति नहीं रही–इतना लोकक्षोभ वहां था। वे जब भाग रहे थे तब एक राजा ने उन्हें जितना बना उतना संरक्षण दिया। परंतु जल्द ही विद्रोहियों की तलवार या वनवास के कष्टों ने उनकी बलि ली।

अवध प्रांत के पूर्व भाग का मुख्य शहर फैजाबाद था और उसका कमिश्नर गोल्डवे भी वहीं रहता था। फैजाबाद विभाग में सुललानपुर, सलोनी और फैजाबाद तीन जिले आते थे। फैजाबाद शहर में इस समय 22वीं पैदल और 6वीं इर्रेग्यूलर पैदल रेजिमेंट, कुछ घुड़सवार और तोपखाना था। कर्नल लेनाक्स इन सबका सेनापति था। फैजाबाद विभाग में जुल्म बहुत बढ़ गया था। सर हेनरी स्वयं लिखता है–''तालुकेदारों से क्रूरता का व्यवहार किया गया है। फैजाबाद प्रांत में उनके आधे गांव छीन लिये गए हैं और कहीं–कहीं तो पूरे ही छीने गए हैं'' ऐसे अत्याचारों का प्रतिशोध जल्द ही

लिया जाएगा, यह डर फैजाबाद के अंग्रेजी अधिकारियों को मेरठ का समाचार सुनने के बाद लगने लगा और उस संकट से कैसे बचा जाए, इस चिंता ने उन्हें बेचैन कर दिया। अपने बाल–बच्चे लखनऊ की ओर भेजें तो लखनऊ के रास्तों पर विद्रोहियों की पक्की नाकाबंदी होने से उधर जाना कठिन था और फैजाबाद शहर में दो–दो हाथ करने की तैयारी की जाए तो वहां पूरी सेना नेटिव थी। ऐसी विकट विवशता में फंसे फैजाबाद के अंग्रेज अधिकारी अंत में राजा मान सिंह की शरण गए। अवध प्रांत के सारे हिंदू लोगों का राजा मानसिंह की तलवार म्यान के बाहर ही रहती थी। सन् 1857 के मई माह में इस राजा को किसी वसुली प्रकरण में कारावास में डाल रखा था। परंतु अब मेरठ के विद्रोह के कारण अंग्रेजों की कमर टूट सी जाने से उन्होंने राजा मान सिंह को मनाने को उसे कैदखाने से मुक्त कर दिया। उसने अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को अपने लोगों को आश्रय दे रहा हूं, यह बात लोगों को पसंद नहीं आएगी। इतना ही नहीं, इसके लिए वे मुझपर भी प्रहार करने से नहीं चूकेंगे।'' 7 जून को मान सिंह के यहां अंग्रेज अधिकारियों के परिवार आश्रय के लिए गए और उसके शाहगंज किले में सुरक्षित रहने लगे।

अंग्रेज लोग अपनी सुरक्षा की ऐसी तैयारी कर रहे थे, तभी फैजाबाद में आग लपटों में बदल गई। फैजाबाद में जो अनेक तालुकेदार थे उनमें से एक का नाम मौलवीअहमद शाह था। यह नाम इतिहास में अजर–अमर होने को था। यह नाम देशभक्तों, देशवीरों की माला में गूंथा जानेवाला था। इस नाम ने अपने तालुके की तालुकेदारी ही नहीं, अपने देश की देशदारी करने का कंकण भी अपने हाथ में बांधा था।देश के दरवाजे पर पहरा देने के लिए रतजगा किया था और उस दरवाजे से देश में घुसना चाहनेवाली विदेशी सत्ता को रोकने के लिए अब उसने हाथ में अपना सर्वस्व स्वदेश और स्वधर्म को अर्पण किया और वह मौलवी स्वयं हिंदुस्थान भर राज्य क्रांति का उपदेश देते हुए पर्यटन करने निकला। यह राजनीतिक संन्यासी जिस–जिस प्रदेश में अपनी चरणरज डालता गया वहां–वहां लोकशक्ति में कुछ विलक्षण चेतना का संचार होता गया। क्रांति पक्ष के बड़े–बड़े नेताओं से वह स्वयं मिला। अवध के राजपरिवार में उसकी सलाह के बिना पत्ता भी नहीं हिलता था। उसने आगरा में गुप्त मंडली की स्थापना की। उसने लखनऊ में ब्रिटिश सता को उखाड़ फेंकने का खुला उपदेश दिया। अवध प्रदेश के जनपदों की उस पद बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। शरीर, मन, वाणी एवं बुद्धि से स्वदेश की स्वतंत्रता के उपदेश और गुप्त संगठनों के जाल बुनने का अश्रांत श्रम करने के बाद

उसने लेखनी पकड़ी और राज्य क्रांतिकारक लेखों को वह सारे अवध प्रांत में फैलाने लगा। एक हाथ में तलवार और एक हाथ में लेखनी! ऐसे लोकोत्तर पुरूष के तेज से स्वराज्य की ज्वाला भड़कने लगी है—यह देखकर अंग्रेजों ने उसे पकड़ने का आदेश जारी किया। परंतु अवध की पुलिस ने उस लोकनाथ को नहीं पकड़ा। तब सेना भेजकर उसे पकड़ा गया। राजद्रोह का आरोप लगाकर उसकी छानबीन की गई और उसे फांसी का दंड देकर फैजाबाद के कारावास में रखा गया।

मौलवी की और अंग्रेजी सत्ता की एक—दूसरे को फांसी पर चढ़ाने की जंगी प्रतियोगिता शुरू हो गई। मौलवी अंग्रेजी सत्ता को फांसी देने की तैयारी कर रहे थे तो अंग्रेजी सत्ता मौलवी को फांसी चढ़ाने का स्थान बनाने की जल्दी कर रही थी। परंतु इस जल्दी में उन्होंने मौलवी का फैजाबाद कैद में रखकर अपने लिए ही फांसी के खंभे खड़े किए; क्योंकि मौलवी को फैजाबाद कैद में रख ने से क्रांति की बारूद से ठसाठस भरी गुप्त सुरंग पर मानो चिंगारी पड़ी। वह शहर वहां के लश्कर के साथ 'हर—हर महादेव' की घोषणा के साथ विद्रोह कर उठा। सिपाहियों को काबू में रखने के लिए अधिकारी परेड पर गए तो सिपाहियों ने उन्हें साफ कहा कि अब हम स्वदेशी अधिकारियों के अधीन हैं और हमारा नेता सूबेदार दिलीप सिंह है। सूबेदार दिलीप सिंह ने सारे अधिकारियों के घर पर पहरा बैठा दिया और उन्हें बारह कदमों से अधिक इधर—उधर हिलने पर कड़ी रोक लगा दी और फिर नागरिकों और सिपाहियों ने उस लोकनाथ की ध्वनि से खुला और मौलवी अहमद शाह टुकड़े—टुकड़े हुई श्रंखलाओं को फेंककर जय—जयकार से आकर मिले। मौलवी का पुनर्जन्म हुआ था। उन्हें अंग्रेज सत्ता फांसी पर चढ़ाने वाली थी, उन्होंने अंत में उसे ही फांसी पर चढ़ा दिया था। उन्होंने अपनी मुक्ति होते ही नेतृत्व स्वीकार किया और अंग्रेजों की दी हुई फांसी का प्रतिशोध लेने के लिए पहला काम यह किया कि पहरे में बंद मुख्य अंग्रेज अधिकारी लेनाक्स को संदेश भेजा कि मेरे कारावास की अवधि में मुझे हुक्का भिजवाने के लिए मैं आभारी हूं। वज्रादपि कठोरराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

फांसी का दंड जिन्होंने दिया उसने हुक्का दिया, इसलिए आभार व्यक्त करते हुए मौलवी अहमद शाह ने अंग्रेज अधिकारियों के सुरक्षार्थ फैजाबाद शहर में विद्रोह होते ही दूसरे स्थानों पर जो लूटमार होती थी वह न हो, इसलिए सिपाहियों की टोलियां भेजकर नोकबंदी कर दी। सार्वजनिक भवन और बारूदखानों पर पहरा बैठाया गया। 15वीं रेजिमेंट के सिपाहियों ने एक युद्ध समिति बनाकर यह तय किया कि अंग्रेज अधिकारियों को मार डाला जाए, परंतु पहले दिए हुए वचन के अनुसार ऐसा करना ठीक नहीं, यह

बड़े अधिकारियों ने तय कर अंग्रेजों को जीवित छोड़ दिया। उन्हें सूचित किया गया–'6आप में से जिनकी इच्दा हो वे अपनी निजी संपत्ति ले जाएं, पर सार्वजनिक संपत्ति में सुतली का टुकड़ा भी आपको नहीं ले जाने दिया जाएगा, क्योंकि वह अब अवध के वाजिद अली शाह की संपति है।''[100] इसके बाद विद्रोहियों ने अंग्रेजों को नौकाएं दिलवाई, उन्हें पैसा दिया और फिर सिपाहियों से विदा लेकर वे सारे अधिकारी नौकाओं में बैठ घाघरा नदी से चले गए। 9 जून का प्रातः फैजाबाद स्वतंत्र हो गया और कंपनी का राज वहां समाप्त करके वाजिद अली शाह का राज शुरू हो जाने की डोंड़ी पीटी गई।

जिन चार नौकाओं में बैठकर अंग्रेज जा रहे थे उनपर 17वीं रेजिमेंट की नजर पड़ी। उस रेजिमेंट को फैजाबाद से सिपाहियों ने पत्र भेजा था कि वहां से जा रहे फिरंगियों को मार डालें। उसी के अनुसार उन नौकाओं पर हमला हुआ। फैजाबाद का मुख्य कमिश्नर गोल्डवे मारा गया। लेफ्टिनेंट थॉमस, रिचे मेल, एडवर्डर्स, कैरी आदि सारे अंग्रेज मौत के घाट उतारे गए। महोबा गांव में जो थे उन्हें भी वहां की पुलिस ने मार डाला। एक नौका बच गई। उसका सहब भूसे में अंत तक छिपा रहा, इसलिए और मल्लाहों की कृपा से अंग्रेजी पलटन में सुरक्षित पहुंच गया। अपने घर में छिपे अंग्रेजों के स्त्री–बच्चों की कैसे रक्षा करें, यह चिंता राजा मान सिंह को थी। तभी बहुत से अंग्रेज पुरूष भी वहां आश्रय के लिए आ गए। मान सिंह उस समय अवध में था। उसने लिख भेजा कि मैंने विद्रोहियों को यह समझा दिया है कि यदि अंग्रेज स्त्री–बच्चों को रखने की अनुमति आप देंगे तो अंग्रेज पुरूषों को मैं आश्रय नहीं दूंगा। इस शर्त का पालन मान सिंह करता है या नहीं, देसरे दिन इसकी जांच करने की बात भी तय हुई। तब उसके किले में छिपे अंग्रेज संकटों से जूझते हुए जो बचे वे गोपालपुर के राजा के यहां पहुंचे। उन 29 अंग्रेजों को बहुत सम्मान के साथ रखकर उस राजा ने उन्हें अंग्रेजी ठिकाने पर पहुंचा दिया। इस सन् 1857 के साल में जो अंग्रेज मरते–मरते बचे उनमें से अधिकतर लोगों ने राष्ट्र की उदात्त मनोवृति के जीवंत स्मारक हैं। अवध में इतना द्वेष व्याप्त होते हुए भी विद्रोहियों की ओर से लड़ रहे राजाओं के घर शरण में आए अंग्रेज मजे में थे। ऐसे हजारों उदाहरण घटित हुए हैं। बुशर लिखता है–''आज मैं अकेला जीवित बचा हूं। भागते–भागते एक गांव में मैं पहुंचा । उसमें घुसते ही जो पहला आदमी मिला वह ब्राह्मण था। मैंने पीने को पानी मांगा। मेरी दुर्दशा देख उसे दया आ गई और उसने कहा–इस गांव में सभी ब्राह्मण हैं, तुझे कोई मारेगा नहीं ̈। बुली सिंह पीछा करते

[100] "Might take with them all private property but no public property, as that all belongs to thekind of Oudh."&Charles Ball, Vol. II, Page 394

आया। मैं एक गली में भागा–वहां मुझे एक बुढ़िया मिली। उसमें झोपड़ी की ओर अंगुली की। मैं वहां गया और वहां लगे भूसे के ढेर में छिप गया। कुछ ही देर में बुली सिंह के लोग वहां आए और तलवार के सिरे इधर–उधर घुसेड़ने लगे। जल्दी ही मैं मिल गया। उन्होंने मुझे बाल पकड़कर खींचते हुए बाहर फेंक दिया। गांव के लोगों ने फिरंगियों पर गालियों की बौछार शुरू की। फिर बुली सिंह मुझे वहां से निकाल दूसरी ओर ले चला। हर गांव में मैं घुटने टेक शरणागत भाव दिखाता और मुत्यु टल जाती। इस तरह मैं बुली सिंह के बाड़े में पहुंचा। वहां से मुझे बहुत दिनों बाद अंग्रेजों की ओर पहुंचा दिया गया। कर्नल मेनॉक्स लिखता है–'6जब हम भाग रहे थे तब हमें नाजिम हुसैन खान के आदमियों ने पकड़ लिया। उसमेमं से एक पिस्तौल निकाल दांत भींचता बोला, ''फिरंगियों को चुटकी बजाते गारद करेन की मेरे हाथ फड़फड़ा रहे हैं। परंतु क्या करूं?' वे हमें उस नाजिम के पास ले गए। वह दरबार में मसनद से टिका बैठा था। उसमें हमें कहा कि आप आराम फरमाओं और थोड़ा शरबत पियो। डरो नहीं। हमें रहने को कौन सा स्थान दिया जाए? यह प्रश्न उपिस्थत हुआ तो एक गुस्सैल नौकर बोला, 'घोड़ों का तबेला कुछ बुरा नहीं है।' उसकी इस बात पर नाजिम क्रोधित हुआ। परंतु इतने में दूसरे ने कहा, 'इतना झंझट ही क्यों उठाएं, मैं इन फिरंगी कुत्तों को मार ही डालता हूं।'' इसपर नाजिम ने डपटकर सबको चुप किया और हमें अभय वचन दिया। विद्रोहियों के डर से हम जनानखाने के पास छिपे रहे। हमें उत्तम अन्न, वस्त्र और आराम मिलता रहा। बाद में हम सबको नेटिवों के वेश में नाजिम ने अंग्रेजी छावनी में पहुंचा दिया।''

फैजाबाद शहर से अंग्रेज अधिकारियों के भागते ही उस प्रांत के अन्य जिलों ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया। सुलतानपुर में उसी दिन अर्थात् 9 जून को ही विद्रोह हुआ। तीसरे जिला स्थान सलोनी में 10 जून को विद्रोह प्रारंभ हुआ। वहां के भागते हुए अधिकारियों में से कुछ के प्राण रूसतमशाह नामक सरदार ने और कुछ के राजा हनुमंत सिंह ने बचाए। अंग्रेज लोगों के शरणागत होने पर केवल उन्हें जीवनदान देकर ही ये अवध के शूर और उदार राजे रूके नहीं बल्कि उन्होंने उनकी यथायोग्य आवभगत भी की। वास्तव में उन प्रत्येक राजा और जमींदारों की अंग्रेजों ने बहुत हानि की थी और उनका अपमान भी किया था। उनका देव राज नामशेष हो गया था और उनके धर्म को नष्ट किया–ये बातें जमींदार और राजे भूल गए थे, ऐसा भी नहीं। अपने–अपने अनुयायियों को लेकर उन्होंने खुला रण किया और अंग्रेजों को हिंदुस्थान से भगा देने के पहले आराम नहीं करना है, उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की। परंतु इस वीरोचित स्वतंत्रता–प्राप्ति के साथ ही वीरोचित उदारता दिखाने में भी उन्होंने कमी नहीं की। लोक समाज बिना रूके गुस्से में काटता चल रहा था, तब भी उन्होंने अंग्रेज स्त्री–बच्चों को सम्मान देकर अपूर्व दयाशीलता

प्रदर्शित की। उनको जिन अंग्रेज अधिकारियों ने अभी हाल में ही प्रताड़ित किया था उन्हें भी कितनी बार शरण और जीवनदान दिया है। यही अधिकारी फिर भविष्य में उनसे लड़ने आ सकते हैं, इसलिए उनको छोड़ना उचित नहीं, सारी जनता की ऐसी पक्की समझ होते हुए भी उन्होंने वह उदारता प्रदर्शित की। हिंदुस्थान के सिवाए यह वीरता और यह उदारता–ऐसी प्रचंड राज्य क्रांतिकारी और लोकक्षोभक अवधि में अन्य कितने देशों में देखने को मिलेगी?

अवध की यह उदारता हतबलता का परिचायक नहीं थी। मई की 31 तारीख से जून का पहला हफ्ता समाप्त होते–न–होते सारा अवध प्रांत एक धड़ाके से विद्रोह कर उठा। उस अवध पद्रेश के अनेक जमींदार राजा अंग्रेजी सत्ता के अधीन थे। वे हजारों सिपाही, पैदल, घुड़सवार, तोपखाना, सरकारी और अन्य विभागों के सारे नौकर, किसान, व्यापारी एवं विद्यार्थी, हिंदू या मुसलमान, हाथ में हाथ थामे एक ही भूमि के दास्य विमोचन हेतु तलवार खींचकर उठ खड़े हुए। निजी वैर, धर्मभेद, जातिभेद, मान–सम्मान, सारे स्वदेश के लिए विलीन हो गए। एक पवित्र ध्येय के लिए न्याय–युद्ध में कूद रहे हैं, प्रत्येक को ऐसा जोश चढ़ा ाा। दस दिन के अंदर अवध प्रांत में वाजिद अली शाह का शासन लोकशक्ति ने स्वयं प्रेरणा से प्रस्थापित किया। अवध के लोगों के कल्याण के लिए मैंने वाजिद अली शाह को सिंहासन से भूमि पर गिराया, ऐसा डलहौजी ने जो कारण दिया था यह उसका कितना करारा उत्तर था। जून के पहले हफ्ते के अंत में ऐसा एक भी गांव शेष न रहा जहां डलहौजी को करारा उत्तर देने के लिए ब्रिटिश झंडे को फाड़कर टुकड़े नहीं किए गए।

इस पूरी परिस्थिति का सूक्ष्म चित्र देते हुए प्रसिद्ध इतिहास संशोधक फॉरेस्ट अपनी प्रस्तावना में लिखता है–''इस तरह दस दिन में अंग्रेजी शासन किसी स्वप्न को तरह था या नहीं था–ऐसा हो गया। उसका लेशमात्र भी न रहा। लश्कर ने विद्रोह किया, जनता ने जुआ उतार फेंका। परंतु इसमें बदला या क्रूरता कहीं भी नहीं। उन बहादुर और क्रोधित लोगों ने कुछ अपवाद छोड़कर राजपक्ष के शरणागत लोगों के साथ बहुत दयालुता से व्यवहार किया। जिन्होंने अपने शासनकाल में मदांध होकर अवध के इन्हीं सरदारों को बहुत गहरे घाव किए थे, आज उन्हीं सत्ताधारियों के पदच्युत होने पर उन सरदारों ने उनसे वीरोचित सम्मान का व्यवहार किया।''[101] अवध के इस वीरोदार्य से यदि बड़े–बड़े अनुभवी और मंजे हुए अंग्रेज अधिकारी जीवित न छूटते तो अवध को फिर से जीतने के लिए अंग्रेजों के नौसिखया लोग कितने काम आते?

जून की 10 तारीख तक अवध प्रांत के स्वतंत्र होते ही उस जिले में स्थान–स्थान पर स्थित सारे लड़ाके लोग और लश्कर के सिपाही लखनऊ की ओर बढ़ चले।

[101] फॉरेस्ट कृत–'भूमिका', खंड 2, पृष्ठ 37 ।

लखनऊ शहर में अंग्रेजों का धुरंधर अधिकारी हेनरी लॉरेंस मृत्यु की ओर बढ़ रह ब्रिटिश सत्ता में चैतन्य भरने का प्रयास गन से कर रहा था। सारा प्रदेश हाथ से निकल गया, तब भी राजधानी पर उसने अपना नियंत्रण ढीला नहीं होने दिया था। उसे विद्रोह की गंध बहुत दूर से बहुत पहले ही आ जाने के कारण उसने राजधानी के मच्छी भवन और रेजिडेंसी–ये दो स्थान हर तरह से मजबूत कर लश्करी शक्ति से पूर्ण कर लिये थे, यह पहले ही कहा है। लखनऊ की नेटिव सेना 31 मई को विद्रोह कर निकल जाने के बाद उसने सिख लोगों की एक उत्तम रेजिमेंट तैयार की और पक्के राजनिष्ठ नेटिव लोगों को लेकर एक और रेजिमेंट बनाई। इसके अतिरिक्त नेटिव लश्कर के जो–जो भाग अभी तक राजनिष्ठ बचे हुए थे वे सारे 12 जून तक विद्रोह कर निकल गए। इस विद्रोह से सर हेनरी को एक तरह का संतोष ही हुआ। क्योंकि इससे उसके शिविर में यूरोपियन सेना की रेजिमेंट, यूरोपियन तोपखाना और मंजे हुए राजनिष्ठ सिख और हिंदुस्थानी रेजिमेंट–ऐसा चुना हुआ और विश्वासपात्र लश्कर शेष रह गया था। सर हेनरी अब लड़ाई के लिए हर तरह से तैयार हो गया था।

लखनऊ के आसपास अवध प्रांत के विद्रोही सिपाही और लड़ाकू लोग इकट्ठा होते जा रहे थे। उनकी और अंग्रेजों की भिड़ते होने से पहले वे एक अलग ही दांव की राह देख रहे थे। उधर कानपुर का घेरा पूरी रंगत पर होने से लखनऊ के अंग्रेज या आसपास के विद्रोही कोई भी कानपुर का अंतिम समाचार आने तक एक–दूसरे का सामना नहीं कर रहे थे। कानपुर की जय या पराजय पर हर पक्ष की भावी आशा या निराशा टिकी हुई थी। ''यदि कानपुर की जय या पराजय पर हर पक्ष की भावी आशा या निराशा टिकी हुई थी। ''यदि कानपुर टिका रहा तो लखनऊ घेरा जाएगा या नहीं, यह शंका ही थी।'' सर हेनरी ने लॉर्ड केनिंग को आशंकित मन से 13 जून को यह सूचित किया था। 28 जून का लखनऊ समाचार मिला कि कानपुर में एक भी अंग्रेज जीवित नहीं बचा। विजय से उत्साहित होकर विद्रोही अंग्रेजों पर हमला करते चिनहट तक आ पहुंचे।

कानपुर में अंग्रेजों की इस भारी पराजय से अंग्रेजी सत्ता जड़ से डगमगाने लगी थी। इस पराजय का किसी भी तरह बदला लिये बिना न सिर्फ लखनऊ की रेजिडेंसी अपितु कलकत्ता के फोर्ट विलियम का जीवन भी सुरक्षित रहना कठिन है, यह जानकर सर हेनरी लॉरेंस ने कानपुर का अपमान विद्रोहियों के रक्त से धो डालने का निश्चय किया। 39 जून को प्रातः ही अंग्रेजी सेना लोहा पुल के पास एकत्र हुई। लगभग चार सौ अंग्रेज सोल्जर, चार सौ नेटिव राजनिष्ठ सिपाही और दस तोपों की चुनी हुई सेना लेकर सर हेनरी लखनऊ से निकला। चलते–चलते काफी आगे आ गया तो भी शत्रु दिखाई न दिया। परंतु अंत में शत्रु का सामना दिखने लगा। विद्रोहियों का सामना दिखते ही अपने दाएं हाथ की ओर एक महत्त्व का गांव जीत लेने का सर हेनरी ने नेटिव लश्कर को

आदेश दिया। उसने हमला किया और वह मौके का गांव इसमाइलगंज अंग्रेज सोल्जर ने अपने कब्जे में लिया। विद्रोहियों की तोपों पर भी अंग्रेजी तोपखाने के नेटिव और अंग्रेजी अधिकारियों ने इतने जोर की गोलाबारी की िकवे जल्द ही बंद पड़ने लगी। चिनहट की लड़ाई मानो अंग्रेजों ने जीती। इतने में उस बाएं बाजू के गांव में छिपते–छिपते आकर विद्रोहियों ने प्रवेश कर लिया है, यह समाचार उडत्रा और अंग्रेज सोल्जरों पर एक बार फिर इतने जोर का हमला हुआ कि उन्हें उस गांव से भगाकर विद्रोहियों ने उसपर अपना कब्जा कर लिया और वहां से अंग्रेजों पर पीछे और मध्य से बड़े वेग का हमला किया। अंग्रेज सोल्जर जैसे–जैसे हटते वैसे–वैसे विद्रोही उन्हें दबाते जाते। अंग्रेजी सेना उखड़ने लगी और अब खड़े रहे तो सारे मारे जाएंगे, यह देखते ही सर हेनरी ने लौट जाने का बिगुल बजाया। लौटते हुए भी अंग्रेजों का उस दिन बुरा हाल होने लगा; क्योंकि चिनहट की जीत के बाद भी न रूकते विद्रोहियों ने अब अंग्रेजों के पीछे लड़ते हुए चलने का उपक्रम किया। अंग्रेजों की ओर से तोपखाने पर जो नेटिव थे, अब वे लड़ने में टालमटोल करने लगे। परंतु शेष नेटिव घुड़सवार और पैदल सेना ने स्वयं अंग्रेजी सोल्जरों से भी अधिक शूरता से पिछाड़ी की रक्षा की। थोड़ी ही देर में पीछे हटना छोड़ भागना आरंभ हो गया। अंग्रेजी सेना हताश होकर अपने अपमान के साथ लखनऊ की ओर भाग खड़ी हुई। चार सौ सोल्जरों में से डेढ़ सौ सोल्जर उस दिन खेत रहे। नेटिव राजनिष्ठों की तो कोई गिनती नहीं। दो तोपें और एक बड़ी हाविट्जर तोप अंगेजों ने मैदान में ही छोड़ दी। कानपुर का बदला भी उन्हें रणांगण में छोड़ना पड़ा। इस तरह मार खाते–खाते सर हेनरी लॉरेंस लखनऊ की रेजिडेंसी में घुस रहा था, तब भी शत्रु उसके पीछे ही था। रेजिडेंसी की सुरक्षा के लिए रखी गई तोपों की सुरक्षा में जब अंग्रेजी राजनिष्ठ सिख–नेटिवों सहित आ गया तब चिनहट की लड़ाई समाप्त हुई।

परंतु उसका परिणाम अभी भी समाप्त नहीं हुआ था। अब रेजिडेंसी और मच्र्छा भवन इन दोनों स्थानों पर विद्रोहियों के शह दिए जाने से सर हेनरी ने मच्छी भवन भी छोड़ देने का निश्चय किया। उसमें संग्रह किए गए भरपूर गोला–बारूद के साि वहां का शस्त्रागार आग लगाकर जला दिया गया। सारे अंग्रेज अब रेजिडेंसी में ही आ गए। रेजिडेंसी में सर हेनरी ने बहुत बढ़िया तैयारी, रसद, शस्त्रास्त्र, गोला–बारूद संग्रह कर रखा था। उस स्थान में अब करीब एक हजार यूरोपियनों और आठ सौ नेटिव सिपाही थे, जो बाहर इकट्ठा हो रहे विद्रोहियों का प्रतिकार करने के लिए सुसज्ज थे। चिनहट की लड़ाई हारने के बाद मच्छी भवन हाथ से छूटते ही अंग्रेजी योद्धाओं ने रेजिडेंसी पर लड़ने के लिए वहां उत्साह से जमाव किया है, यह देखते ही विद्रोहियों ने उसे ही घेरना आरंभ किया।

इस तरह अवध प्रांत से अंग्रेजी सत्ता भागते–भागते अंत में इस छोटी सी रेजिडेंसी

में बंद कर दी गई थी।[102] शहर में अवध के वाजिद अली शाह के नाम से उसकी बेगम राज्य चलाने लगी। लखनऊ के घेराव में अंग्रेजों से लड़ने के लिए अनेक शूर नेता अपने–अपने अनुयायियों के साथ उधर आने लगे। जिन्होंने अंग्रेजों को शरणागत और अनाथ अवस्था में भागते हुए जीवनदान दिया था वे सारे जमींदार, जागीरदार और राजा इस समय अपनी उदारता झटककर स्वदेश की मुक्ति के लिए लखनऊ की ओर आने लगे। राजा मान सिंह, अन्य सरदार और अहमदशाह के साथ सारे मुसलमान सरदार हाथों में हाथ थामें अंग्रेजी झंडे पर टूट पड़े। राजा हनुमंत सिंह शरण आए हुए अंग्रेजों को विद्रोहियों से बचाने में जितना बढ़–चढ़कर प्रयास कर रहा था उतनी ही प्रमुखता स`अब स्वदेश–मुक्ति के लिए विद्रोहियों के साथ कंधा भिड़ाकर लड़ने लगा।

102 रेड पैंफलेट के सुपसिद्ध लेखक ने लिखा है–''संपूर्ण अवध प्रांत हमारे विरूद्ध हथियार लेकर खड़ा हो गया था। स्थायी सेना के सैनिक मात्र ही नहीं, भूतपूर्व शासक के साठ हजार सिपाही, जमींदार तथा उनके सिपाही और दो सौ पचास दुर्ग, जिनमें से अनेक बड़ी–बड़ी तोपों से सुरक्षित थे, हमारे विरूद्ध हो गए थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के राज्य की तुलना जनसाधारण ने अपने पुराने शासकों के शासन के साथ की और लगभग सर्वसम्मति से ही उन्होंने अपने पुराने शासकों के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया। जिन लोगों को सेना से पेंशन प्रदान कर दी गई थी, ऐसे सेवानिवृत्त सैनिक प्रकट रूप से ही हमारी भर्त्सना करते हुए विद्रोह में सम्मिलित हो गए हैं।''

प्रकरण–10

संकलन

दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली आदि मृतप्राय हुए राजसिंहासनों में फिर से स्वतंत्रता के पवन का संचार करनेवाले इस अद्भुत क्रांति विस्फोट का कुछ एक अंशों में जीवित रहीं अन्य रियासतों पर क्या और कितना प्रभाव हुआ?

सन् 1857 के वर्ष में लोक–मन को यह ज्ञात हो चुका था कि अपने देश पर जब तक विदेशी शासन है तब तक विलुप्त हुई रियासतें जितनी मृतवत् हैं उतनी ही बची हुई रियासतें भी मृतवत् हैं। इस पवित्रतम और महत्तम ध्येय से चैतन्य हुआ हिंदुस्थानी जन–सागर किसी विशेष रंक या राजा के लिए नहीं उफना था। व्यक्ति–रंक या राजा–जिए या मरे, देश या राज्य न मरे, मरने नहीं देना है। गुलामी के कालपाश को तोड़कर देश में स्वतंत्रता स्थापित करो, फिर उस लोक हेतु की प्राप्ति के लिए चाहे जितनी झोंपडियां और सिंहासनों की राख के ढेर पर से चलना पड़े, ऐसे लोक पद का रण–घंटा घनघनाया! एक राजा–जो देश को स्वतंत्रता दिलाए वह! अन्य सारे राजा–जो हो बात बराबर!

इसलिए ग्वालियर, इंदौर, राजपूताना, भरतपुर आदि अपना प्राण बचाए जी रही रियासतों के लोकमन को संपूर्ण स्वतंत्र प्रदेश की तरह ही क्रांति समर की चेतना हुई थी। अपना राजा और अपनी रियासत बनी है तो फिर दूसरों के लिए संकट क्यों लिया जाए, यह अमंगल विचार किसी को छू नहीं सका। पराया? एक माता के एक पुत्र को दूसरा पुत्र बाहर।

तो ग्वालियर के सिंधिया, अब आप हमें अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने का ओदश दें।

103

[103] 1857 का स्वातंत्र्य समर

केवल आदेश नहीं, आप हमारे नेता बनें। रणांगण में स्वदेश और स्वधर्म के मंत्र की गर्जना करें और महादजी का अपूर्ण हेतु पूर्ण करने रण–मैदान की ओर ससैन्य चलें। सारा देश एक जयाजी के शब्द पर अवलंबित है। आप युद्ध करें तो आगरा धराशायी हो जाए, दिल्ली खुल जाए, दक्षिण घन–गर्जना करता उठे, शत्रु देश पार हो! देश स्वतंत्र हो जाए और आप उसके स्वतंत्रतादाता। द्विदश करोड़ लोगों का जीना एक जीभ के हिलने पर अवलंबित है। ऐसा अवसर विश्व में कभी आया नहीं था।

पर सिंधिया की जीभ पहले तो बिल्कुल हिली ही नहीं और जब हिली तब 'युद्ध' कहने की जगह उसने 'मित्रता' कहा। सिंधिया की मित्रता देश के लिए नहीं, अंग्रेजों को बचाने के लिए है–यह देखते हुए कि सिंधिया युद्ध नहीं चाहते तो भी हम युद्ध करेंगे, देश माता को मुक्त करने तू नहीं चल रहा तो तेरे बिना, तेरे विरूद्ध हम दौड़ेंगे और उसे मुक्त करेंगे। आज 14 जून, रविवार है। आज तक हमने सिंधिया की राह देखी। आज रविवार को केवल सूर्यनारारण की राह देखेंगे। सूर्यास्त होते ही हर–हर महादेव! उस गाड़ी में बैठा कौन जा रहा है? कूपलैंड, मेम साहब! खबरदार किसी ने उसे सलाम किया तो ! गोरे को सलाम? आज जून की 14 तारीख को? इस गोरे को ही क्या आगे स्वयं ब्रिगेडियर साहब आ रहा है, परंतु कोई भी सिर या हाथ न हिलाए। ब्रिगेडियर? किसने बनाया इसे ब्रिगेडियर ? प्रासाद शिखरस्थोऽपि काको न गरूडायते अतः अपनी टोली उस ब्रिगेडियर की छाती पर से छाती तानकर चलाओ![104] और ग्वालियर कांटिंजेंट के सिपाही ब्रिगेडियर को सलाम न करते आगे निकल गए। ह्रदय गुहा में जाग्रत् हुए आर्यत्व का सिंह अब आभिजात्य के ऐसे खेल खेलने लगा। फिर भी, शाम तक कोई गड़बड़ी न करे। शाम हुई और एक बंगले को आग लगी। लो, अब आ गया गड़बड़ी करने का सही समय! अरे तोपखाने, तू विद्रोह कर, पैदलों चलो–एक हाथ में जलती मशाल की लपटें और दूसरे हाथ में चमचमाती तलवार लेकर दौड़ो भूत जैसे चिल्लाते, दसों दिशाओं को। जो–जो रास्ते में दिखाई दे–उसका रंग देखो, काला हो तो प्रेम से मिलो, गोरा हो तो चलाओ तलवार गले पर! मारो फिरंगी को। क्या घर में छिप गया? लगाओ घर में आग। घर जलते ही आएगा बाहर चटपट। देखो कौन है? गोरा! काटो उसका सिर! ये कौन–गोरी! ''मत मारो, मत मारो!'' जा, दिया प्राणदान। हम मेमसाब को नहीं मारेंगे। उस भयानक भूत का नाच चल रहा है जोर–जोर से। ग्वालियर के सिंधिया के राजमहल में भी कोई गोरा बचा न रहे। सारे गोरों को सिंधिया के राज्य के बाहर आगरा भगा दिया। गोरी महिलाओं को इकट्ठी कर कैद कर लिया। पर उनसे कुछ भी बात न की जाए, यह ठीक नहीं है। धूम से तिलमिलाती यह औरत सामने है। उससे बात करना चालू करें। आओ। एक नौकर इसीलिए उससे पूछता है–''क्यों मेम साहब, तुम्हें यहां की धूप कितनी अच्छी लगती है? अब तो खूब जलन हो रही है न? तुम अपने ठंडे देश में रही होती तो इस देश की धूप में क्यों जलना पड़ता?'' इस महिला को आंखें

[104] श्रीमती कूपलैंड द्वारा लिखित–'नैरेटिव्स'।

मटकाते हुए व्यंग्य भरा, devilish उपदेश देकर अब दूसरी महिला! देखें, उसे यह क्या कहती है? ''क्या आपको आगरा भेजें? आगरा? आगरे में तो तुम्हारे सारे गोरे पुरूष मारे गए। और अब आगरा दिल्ली के बादशाह के अधीन है। जाएंगी उधर?'' और वे खिलखिलाते हंसने लगे। सिंधिया को एक बेजान गुड़िया जैसा बनाकर ग्वालियर की कांटिंजेंट सेना ने विद्रोह किया। अंग्रेजों का रक्त तबीयत से बहाया। गोरी महिलाओं, गारे झंडे और गोरी सत्ता को ग्वालियर रियासत के बाहर भगाकर, ग्वालियर रियासत पूर्ण स्वतंत्र करके वे सिंधिया को आदेश देने लगे कि अब हिंदुस्थान देश स्वतंत्र करने के लिए, कानपुर और दिल्ली की ओर सेना सहित तू हमरा सेनापति बनकर निकले।''[105] सिंधिया ने उन्हें आज निकलता हूं, कल निकूंलगा—ऐसी गपों में उलझाकर और कुछ दिन चुप रखा। तात्या टोपे गुप्त रूप से ग्वालियर आया और उसके द्वारा इस भुलावे से सिंधिया की फौज को निकालने तक सिंधिया की सेना ऐसी ही निश्चय रही, इसीलिए अभी आगरा के अंग्रजों की जान में जान है। क्योंकि आगरा के वायव्य प्रदेश का मुख्य लेफ्टिनेंट गर्वनर सर कोलविन हर पल मृत्यु के आगमन की राह देखते कांपता खड़ा हुआ था। मेरठ के विद्रोह से प्रभावित सिपाहियों को उसने राजनिष्ठा पर एक व्याख्यान दिया था और माफीनामे की घोषणा भी की थी। माफीनामा! उससे माफी मांगने आगे आनेवाला एक भी गरीब सिपाही उसे नहीं मिला। इतना ही नहीं, उसके माफीनामें के उत्तर में उन्होंने 5 जुलाई को आगरा पर हमला किया। नसीराबाद और नीमच की विद्रोही रेजिमेंट आगरा पर आक्रमण करने गई है तो करौली और भरतपुर रियासतों की सेनाएं उनपर भेज दो। उन रियासतों द्वारा भेजी गई सेना ने अंग्रेजों से कहा, ''हमारी रियासत का आदेश है, इसलिए आपके विरूद्ध नहीं किया; लेकिन हम अपने स्वदेश बंधुओं पर हथियार बिलकुल नहीं उठाऐंगे।'' कोटा की कांटिंजेंट सेना ने तो विद्रोह किया ही। यह धोखा हुआ। नेटिव रियासत राजनिष्ठ पर उनका लोकमत और सेना—सब स्वदेश बंधुओं पर हथियार उठाने को तैयार नहीं। तब शेष बची गोरी सेना के साथ ब्रिगेडियर पॉलवल आगरे पर चढ़े आ रहे विद्रोहियों से लड़ने चल पड़ा। सिसीआ में दोनों पक्ष दिन भर एक—दूसरे से भिड़े रहे। अंत में विद्रोहियों की मार के आगे टिके रहना अंग्रेजों को कठिन हो गया और अंग्रेजी सेना पीछे लौट पड़ी। यह देखते ही विजयानंद से उत्साहित विद्रोही उन्हें पीठ पर मारते—कूदते आगे बढ़े। आगरा में वह

[105] ''उसके (शिंदे) के लिए अपने खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेने का यही सुअवसर था। वह यदि विद्रोहियों का प्रस्ताव मान लेना तो अंग्रेजों से प्रतिकार ले सकता था। यदि वह विद्रोहियों का नेतृत्व स्वीकार कर अपने सिद्धहस्त सैनिकों के साथ चल पड़ता तो हमारे (अंग्रेजों के) लिए इसका परिणाम नितांत ही भयावह होता। इसके कम—से—कम बीस हजार सैनिक थे, जिनमें से आधे के लगभग ने अंग्रेजों से पूर्ण सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। वे हमारे (अंग्रेजों के) कच्चे मोरचों पर टूट पड़ते । आगरा और लखनऊ से हम सर्वदा के लिए हाथ धो बैठते। प्रयाग के दुर्ग में ही हैवलॉक बंद हो जाता और या तो वह किला घेरा जाता अथवा उसे अलग छोड़ते हुए विद्रोही काशी होकर कलकत्ता पहुंच जाते।'' —रेड पैंफलेट, पृष्ठ 194

पराभूत अंग्रेजी सेना घुसते ही और उनके पीछे विद्रोहियों की विजय ध्वनि सुनकर आगरा को, जो अवसर वह चाहता था, मिल गया। यह 6 जुलाई का दिन था। आगरा विद्रोह कर उठा और उसकी अगुवाई का जिम्मा पुलिस ने लिया। ये सारे पुलिसवाले पहले ही गुप्त रूप से तैयार थे। उनका, नागरिकों का, धर्मनिष्ठ हिंदुओं और मुसलमानों का एक विशाल जुलूस निकला। शहर कोतवाल और पुलिस अधिकारी उस जुलूस के आगे–आगे चले, उन्होंने स्वधर्म और स्वराज्य की जय–जयकार करते हुए घोषणा की कि फिरंगी राज्य समाप्त हो गया है और दिल्ली का बादशाह हमारा राजा हो गया है।

इस तरह आगरा स्वतंत्र होते ही अंग्रेजों के साथ पराजय और अपमान के क्षुब्ध, चिंताग्रस्त सर कोलविन किले में जाकर बैठ गया। उसे अब एक ही डर था कि शिंदे क्या करता है? शिंदे विद्रोहियों से मिल गया, केवल इतने समाचार भर से वह प्रचंड किला व्रिदोहियों के हाथ लग जाता। परंतु सिंधिया विरूद्ध नहीं है–यह उसके द्वारा भेजे जानेवाले पत्रों और रसद से स्पष्ट होते ही आगरे के अंग्रेजी झंडे में जान आ गई। परंतु उस झंडे के भार से कोलविन 9 सितंबर, 1857 को मार गया और अंग्रेजी राज्यसत्ता को दुःखी छोड़ गया।

ग्वालियर से हुई लोकपद की इस क्रांति–चेतना का इंछौर में भी ऐसा ही भयानक विस्फोट हुआ। इंदौर के पास स्थित महू छावनी की सारी सेना और इंदौर की राज्यसत्ता का गुप्त व्यवहार निरंतर चालू था और विद्रोह का विचार भी इसी से बना। 1 जुलाई को इंदौर दरबार के एक मुसलमान सरदार सादत खान ने रेजिडेंसी के फिरंगियों पर टूट पड़ने का सेना को आदेश दिया। महाराज की मुझे यही आज्ञा है, ऐसा भी उसने कहा। पर इस कथन की जिसे कोई आवश्यकता नहीं थी, उस इंदौरी सेना ने विद्रोह का झंडा तत्काल खड़ा किया और रेजिडेंसी पर तोपों के साथ हमला कर दिया। रेजिडेंसी की नेटिव सेना ने अंग्रेजों की ओर से स्वदेश बंधुओं पर गोली चलाने से मना कर दिया। अंग्रेज बलहीन हो गए। उन्होंने चुपचाप अपनी गठरी बांधी और इंदौर से जान बचाकर भाग खड़े हुए। उनकी प्राणरक्षा की जिम्मेदारी उनकी नेटिव सेना ने ली हुई थी और इस तरह अंत तक उन्होंने उनकी सुरक्षा की। महाराज होलकर अंग्रेजों के अनुकूल थे या प्रतिकूल, यह सिद्ध करने का प्रयास अंग्रेज ग्रंथकार बहुत करते हैं, परंतु सन् 1857 की स्थिति और 1857 का इतिहास थोड़ी गहराई से देखनेवाले को यह तुरंत समझ में आ जाएगा कि अधिकतर नेटिव रियासतों ने उस क्रांति में ऐसा संशय का व्यवहार जान–बूझकर किया था। मनुष्य के हृदय में प्राकृतिक रूप से बैठी स्वतंत्रता की इच्छा उनमें मनुष्यता के साथ ही थी। अतः उन्होंने क्रांति की विजय हाने पर भी अपना हित सुरक्षित रहे, इसलिए पूरी तरह अंग्रेजों का साथ नहीं दिया और परिणाम उलटा हो जाए तो भी हित बना रहे, इसलिए पूरी तरह क्रांति का भी साथ न देने का दांव चलाया था। लोग और सेना अपनी

रेजिडेंसी से अंग्रेजों को भगा देना चाहते हैं तो उन्हें वैसा करने दिया जाए, जिससे राज्य स्वतंत्र हो जाए; परंतु इधर अंग्रेजों से मित्रता की बातचीत चालू रहे, जिससे उनकी जीत हो तो भी जो था वह तो न जाए। कच्छ, ग्वालियर, इंदौर, बुंदेला, राजपुताना आदि अधिकतर रियासतों का यह व्यवहार दिखाई देता है। इस स्वार्थी व्यवहार से ही क्रांति का नाश हुआ। उन्होंने 'स्वतंत्रता या मृत्यु'–ऐसी करारी गर्जना की होती तो स्वतंत्रता मिलती ही। स्वतंत्रता और स्वार्थ ऐसी आधी कच्ची, उदात्तनुदात्त, ऊपर–नीचे लुका–छुपी करने से सारा शुभत्व विफल हुआ और अशुभ का दर्शन हुआ। स्वदेश से उन्होंने पटियाला आदि रियासतों जैसा द्रोह नहीं किया–परंतु यह अप्रत्यक्ष द्रोह किया कि केवल स्वतंत्रता के शुभ अस्तित्व की आशा में स्वार्थ का अशुभ भाव मन में रखा। इसीलिए वह सिपाहियों का विद्रोह विफल और देश पराजित हुआ।

राज आचरण की इस शुभ–अशुभता ने या अशुभ–शुभता ने लोक आचरण को स्पर्श नहीं किया और इस लोकवर्तन के तेजस्वी आघात से ही पेशावर से कलकत्ता तक रक्त की बरसात हुई। प्रचंड आग जली, ज्वालामुखी की भयंकर ध्वति के कारण अंग्रेजी सत्ता–मंदिर गिरकर ध्वसत हो गया।[106]

परंतु यह ऐसा प्रलयी धक्का होगा, इसकी कलकत्ता और इंग्लैंड को कैसी अपूर्ण कल्पना थी। मेरठ के समाचार से पहले सरकार के विचार से हिंदुस्थान में पूर्ण शांति का राज था। यह छोड़ें, मेरठ में विस्फोट के बाद दिल्ली में नए साम्राज्य की घोषणा हुई, इस विस्फोट का अर्थ कलकत्ता की समझ में नहीं आया था। मेरठ के 10 मई के विस्फोट से 31 मई के सार्वजनिक विस्फोट तक विद्रोह की जलहर कहीं चली ही नहीं, यह देखकर हिंदुस्थान में कहीं भी गड़बड़ी नहीं है, यही कल्पना कलकत्ता से सिर में मजबूती से बनी रही। 25 मई को गृह सचिव ने खुले रूप में घोषित किया–''कलकत्ता से 600 मील की दूरी तक हर स्थान पर पूरी शांति है। बीच में लगा क्षण भर का विरल संकट अब नष्ट हो गया है और 'थोड़े ही दिनों' में सब ओर शांति और निर्भयता होगी, ऐसी आशा है।'' ये थोड़े दिन भी बीत गए, 31 मई आ गई। इधर–उधर शांति और निर्भयता

---

[106] जहां भी भारतीय नरेशों ने क्रांति में योगदान देने में संकोच किया, उनकी प्रजा पर से उनका नियंत्रण हट गया। प्रजा अपने राजा का जुआ भी उतारकर फेंक देने को संकल्पबद्ध हो गई। प्रजा की इस विचित्र मानसिक दशा को देखकर ही मैलसन ने कहा था, ''ग्वालियर और इंदौर के समान ही यहां भी यह परिलक्षित हुआ कि जब पूरब के लोगों की धर्मभावना पूर्णतः उभार दी जाती है तो उनका स्वामी उनका राजा भी, जिसे वे पिता तुल्य ही नहीं प्रभु का अंश भी मानते हैं, वह भी उन्हें उनकी श्रद्धा के विरूद्ध झुका पाने में सफल नहीं हो पाता। जयपुर तथा जोधपुर नरेश की सेनाओं ने अपने देश–बांधवों के विरूद्ध संघर्ष करने से स्पष्ट शब्दों में इंकार कर दिया था। वे अपने राजाओं के आदेश पर भी ऐसा करने का तैयार नहीं हुए।'' मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 3, पृष्ठ 172

दिखने लगी। लखनऊ की रेजिडेंसी के चारों ओर कानपुर के मैदान में, झांसी के झोकन बाग में, इलाहाबाद के बाजार में, बनारस के घाट पर, सब ओर शांति और निर्भयता। तारयंत्र के राई–राई से टुकड़े, रेलगाड़ियां, लोहे की पटरियां और रेल के पुल टूटे–फूटे धूल में मिले हुए, हर नदी में यूरोपियनों के शव बहते हुए, रास्ते–रास्ते में रक्त के ताल तलैया–सब ओर शांति और निर्भयता।

तब कलकत्ता का मोहभंग हुआ। 12 जून, को सारे यूरोपियना नागरिकों ने स्वंयसेवकों की टोलियां बनाना चालू किया। यूरोपियन दुकानदार, बाबू, लेखक, असैनिक अधिकारी आदि सारे गोरों को लश्कर में भरती कर उनको कवायद सिखाना शुरू किया गया। तीन हफ्ते के अंदर नूतन शिक्षित स्वयंसेवकों की एक ब्रिगेड तैयार हो गई। घुड़सवार, पैदल और तोपखाना आदि की सहायता और शक्ति से कलकत्ता शहर की सुरक्षा करने की पूरी शक्ति आ जाने से उन्हें वह काम दिया गया और वहां के लश्करी यूरोपियन सोल्जरों को बाहर विद्रोह के स्थानों पर भेजने की सुविधा सरकार को मिली।

तारीख 13 जून को लॉर्ड केनिंग ने स्वयं विधान परिषद् जाकर नेटिव पत्रकारों के विरूद्ध एक बहुत कठोर और भयानक विधेयक पारित करा लिया' क्योंकि विद्रोह शुरू होते ही बंगाल के नेटिव पत्र खुलेआम विद्रोहियों की सहानुभूति में उत्साहवर्धक लेख लिखने लग गए थे।

तारीख 14 जून, रविवार के दिन कलकत्ता में शांति और निर्भयता का वास्तविक महोत्सव मनाया गया। उस दिन का वर्णन अंग्रेजी लेखक ही करें। ''जहां–तंहा भय, दहशत, आपाधापी और भागम–भाग। बहुत विचित्र समाचार! सबको यह विश्वास हो गया कि बैरकपुर के सिपाही कलकत्ता पर आक्रमण करने आ रहे हैं। रास्ते के सारे गांववाले विद्रोहियों से मिल रहे हैं, अवध का नवाब और उसके अनुयायी गार्डन रीच के बगीचों में चाकू चलाते घूम रहे हैं, अवध का नवाब और उसके अनुयायी गार्डन रीच के बगीचों में चाकू चलाते घूम रहे हैं। जो मुख्य अधिकारी थे वे ही सबसे अधिक घबराए हुए थे, सरकार के सेक्रेटरी कौंसिल के सदस्यों की ओर भाग रहे हैं।, पिस्तौल भर रहे हैं, हर दरवाजे के पीछे कबाड़ खड़ा कर रहे हैं। कौंसिल के सदस्य परिवार के साथ घरबार छोड़कर भाग रहे हैं। जहाजों पर चढ़कर जान बचा रहे हैं। उनसे निचले दर्जे के अधिकारी भी वरिष्ठ जनों की राह पकड़कर अपनी–अपनी मूल्यवान चीजें इकट्‌ठा कर किले में घुसकर तोपों के आश्रय में शरण पाने की भिक्षा मांगने लगे। गोरे लोग घोड़ों, गाड़ियों, पालकियों, हर तरह और प्रकार के वाहनों में भर–भरकर जान बचाने के लिए इधर–उधर भाग रहे थे। शहर के बाहर का हर ईसाई घर खुला पड़ा था। आध दर्जन निश्चयी धर्मांध रहे होते तो शहर का तीन–चौथाई भाग जलाकर रख कर देते।''[107]

अंग्रेज सरकार की राजधानी में केवल एक बाजारू गप से इतनी 'शांति और

[107] रेड पैंफलेट, पृष्ठ 105।

निर्भरता' व्याप्त हो गई। उस शांति–निर्भयता के उत्पादक बैरकपुर के सिपाहियों और कलकत्ता में रह रहे अवध के नवाब के वजीर अली नक्की खान का उच्चाटन करने के लिए सरकार ने कमर कसी। 14 जून की रात को बैरकपुर के सिपाही विद्रोह करेंगे, यह समाचार उन्हीं में से एक के द्वारा मिलने पर 14 जून को विद्रोह होने के पूर्व ही उनको तोपखाने के सामने लाकर निःशस्त्र किया गया और 15 जून को अवध के नवाब और उसके वजीर को तत्काल जाकर 'राज्य की सुरक्षा' के लिए पकड़ा गया । उनके जनानखाने से लेकर सारी जगहों की छानबीन की गई; पर उसमें कुछ भी सबूत नहीं मिला। फिर भी नवाब और उसके वजीर को कलकत्ता के किले में कैद कर दिया गया। इस तरह कलकत्ता शहर में जमा हो रहा बारूद का भंडार चिंगारी पड़ने से पहले ही खाली कर दिया गया।

बंगाल प्रदेश भर के सिपाहियों में क्रांति–रचना की गुप्त तैयारी करने वाला और कलकत्ता के एक निरूपद्रवी बाग में बैठकर अवध के राजसिंहासन को पुनः स्थापित करने के लिए इस विद्रोह का भयानक जाल बुननेवाले वजीर नक्की खान के किले में कैद होते ही बंगाल प्रांत की क्रांति का मानो सिर ही कट गया। किले में बंद होकर विद्रोहियों को गाली देनेवाले अंग्रेजों को वजीर ने एक बार साफ–साफ ही सुनाया–''हिंदुस्थान में रचा गया यह भयानक विद्रोह मेरी दृष्टि से न्यायिक है, अवध की स्वतंत्रता छीनने का यह जैसे–को–तैसा प्रतिशोध है। न्याय का राजमार्ग छोड़कर तुम धोखे और स्वार्थ के कंटीले रास्ते पर जान–बूझकर घुसे हो तो लहूलुहान होने लगो तो इसमें आश्चर्य क्या है? प्रतिशोध के बीज बोए–तब तुम हंस रहे थे, अब उसकी फसल पक गई है तो उसका दोष लोगों पर क्यों डालते हो?''[108]

यदि कलकत्ता को सन् 1857 के इस अति उग्र विद्रोह की ऐसी अधूरी, धुंधली और अस्पष्ट कल्पना थी तो कलकत्ता से आनेवाली डाक रिपोर्ट पर पूरी तरह अवलंबित इंग्लैंड देश की कल्पना पहले कितनी अज्ञानजनक सुरक्षा में सोई होगी और बाद में एकाएक ज्ञात होने पर कैसे भतबाधाग्रस्त बौराई–सी हो गई, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। पार्लियामेंट में बैरकपुर, रामपुर, दमदम आदि से विद्रोह के समाचार आने के बाद हिंदुस्थान की ओर सबकी आंखें लग गई थी। पंरतु मध्यांतर में कुछ भी महत्त्वपूर्ण समाचार ज्ञात न होने से फिर से सबको सुरक्षित लगने लगा। तारीख 11 जून को पार्लियामेंट में हाउस ऑफ कॉमंस में कुछ सदस्यों के पूछे प्रश्नों पर प्रेसीडेंट बोर्ड ऑफ कॉमर्स के प्रमुख अधिकारी ने कहा–''बंगाल में हाल में घटित असंतोष से लोगों को घबराने का अब कोई कारण नहीं रह गया है। क्योंकि अपने आदरणीय और अभिजात मित्र लॉर्ड द्वारा दर्शाई गई तत्परता, कड़ाई और तुरत–फुरत कार्यवाही से सेना में

[108] रेड पैंफलेट, पृष्ठ 106।

देखे गए असंतोष के बीज पूरी तरह नष्ट हो गए हैं। (Have been completely put an end to) । ये वाक्य पार्लियामेंट ने 11 जून को सुने। 11 जून! इसी समय हिंदुस्थान में घुड़सवारों की 11 रेजिमेंट, तोपखने की 5 फील्ड बैटरियां, पैदल सेना के कम–से–कम पचास रेजिमेंट और करीब सरे सैपर्स और माइनर्स ने खुला विद्रोह किया हुआ था। पूरा अवध विद्रोहियों के हाथ में था। कानपुर और लखनऊ दोनों शहर घिरे हुए थे। सरकार के खजाने से एक करोड़ रूपए से अधिक की राशि विद्रोहियों के हाथ लग गई थी। जिस क्षण पार्लियामेंट में लॉर्ड केनिंग द्वारा दर्शाई तत्परता, कड़ाई और तुरत–फुरत कार्यवाही से सेना में देखे गए असंतोष के बीज "Have been completely put an end to" आगे फिर जल्दी ही उन विषैले बीजों की अकल्पित बाढ़ ने इंग्लैंड की मध्य रात्रि में भी नींद हराम कर दी। फिर भी, कानपुर का अधूरा समाचार आते ही अत्यंत दुःखी, भयग्रस्त एवं संक्षुब्ध अंग्रेजी जनता ने पार्लियामेंट में जब प्रश्न पूछे कि क्या कानपुर का समाचार सच है? तब अर्ल ग्रैनविल नामक सरदार ने उत्तर दिया कि सेना प्रमुख सर पैट्रिक ग्रांट ने मुझे पत्र भेजा है कि कानपुर की मार–काट का वह समाचार पूरी तरह असत्य है, केवल Vile fabrication है। एक सिपाही ने वह गप पहले बाजार में उड़ाई और उसकी उस नीचता का विस्फोट हो गया है। इस भयंकर अफवाह के लिए उसे फांसी पर भी चढ़ा दिया गया।[109] पार्लियामेंट सभा के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में भी कानपुर के कत्लेआम की बात नर–रक्त की मसि से नर–मांस के पत्र पर घिनौने अक्षरों से खोदने में पूरा एक माह उलट गया। आउस ऑफ लॉर्ड्स की सभा में इस अफवाह को उसके उस काल्पनिक उत्पादक सिपाही के साथ ही फांसी पर चढ़ाकर अंग्रेजी कूटनीतिज्ञ थोड़े आराम से सांस ले पाए थे कि इंग्लैंड के किनारे पर वह वास्तविक आकर लग गई और सारा इंग्लैंड देश, गुस्से, अभिमान–भंग से बेहोश, पागल होकर पैर पटक–पटककर नाचने लगा। उसका वह पैर पटकना अभी तक चालू है। विद्रोह में विद्रोहियों के लिए कत्लेआम ने मनुष्य जाति के निर्मल यथ पर पक्की आसुरी कालिमा चढ़ा दी, यह उनका गुस्सें में कहना–उनके लिखे इतिहास की पंक्ति–पंक्ति से वे चीखें आज तक जोर–जोर से सुनाई दे रही हैं। और उन चीखों के अखंड हल्ले–गुल्ले से विश्व के कान के परदे हमेशा के लिए फट गए। सन् 1857 का नाम लेते ही उनके शरीर पर भय से कांटे और मुंह पर लज्जा की छाया आ जाती है। विद्रोहियों के नाम का उल्लेख उनके शत्रुओं को ही नहीं, पगले अनजानों को ही नहीं–जिसके लिए उन विद्रोहियों ने रक्त बहाया, उन अपनों को भी त्याज्य लगता है, निंद्य लगता है, पापकारक लगता है। उनके शत्रु उन्हें राक्षस, पिशाच, रक्तप्रिय, नरक के कीड़े कहते हैं। उनके अनजाने उन्हें अमानुष, जंगली, अघोरी कहते हैं और जिन्हें देशबंधु अपना कहने से भी

[109] चार्ल्स बॉल, खंड 1 ।

कतराते हैं! ऐसा भयानक हल्ला जहां–तहां आज तक चल रहा है। और आगे सत्य का स्वर सुनने की श्रवण क्षमता ही न रहे, इसके लिए विश्व की श्रवण क्षमता के कान इस अखंड हल्ले–गुल्ले से फोड़ दिए गए हैं। विद्रोही राक्षस है।, बाल हत्यारे हैं, रक्तप्रिय है, नरक कृमि हैं, अमानुष हैं–खबरदार, विश्व यदि दूसरा कुछ सुने तो!

क्योंकि? क्योंकि विद्रोहियों ने स्वदेश के लिए और स्वधर्म के लिए हम अंग्रेजों के विरूद्ध शस्त्र उठाया और 'प्रतिशोध–प्रतिशोध' की गर्जना करते हुए हमारा कत्लेआम किया।

कत्लेआम भयंकर पाप है। मनुष्य जाति के अंतिम सौंदर्य ईश्वर के अवतार द्वारा देवदूतों द्वारा और धर्मगुरूओं द्वारा प्रवर्तित अति उच्चा भविष्य जब वर्तमान होकर जिस समय न्यायसवस्था में जा पहुंचेगा, जब सत्य के पहले 'अ' निषेध–प्रत्यय कभी नहीं लगाया जाएगा और जब एक गाल पर मारने पर दूसरा गाल आगे कर, ऐसे यीशु के शांतिबोध को, पहले गाल पर मारनेवाला कोई न बचने के कारण, असंभवता आ जाएगी उस आदर्श दैवी युग में यदि किसी ने विद्रोह किया, यदि किसी ने रक्त बिंदु गिराया और यदि किसी ने 'प्रतिशोध' शब्द का उच्चारण किया तो तत्काल उस कृति के कारण और उस उच्चारण से वह पापी अधमत्व को प्राप्त होगा; क्योंकि जहां–तहां सत्य का राज्य हर हृदय में समाया होने पर 'विद्रोह' पाप ही होगा। इधर–उधर अहिंसा की समता हर हृदय में दृष्टिगोचर हो रही हो तो रक्त बिंदु गिराना पाप ही होगा और इधर–उधर न्याय के चंद्र प्रकाश में हृदय में शीतलता व्याप्त होने पर 'प्रतिशोध' शब्द का उच्चारण पा ही होगा। ऐसे अबाधित न्यायकाल में ऐसा अन्यायमूलक उच्चारण सुनते ही किसी तरह की जांच किए बिना उस उच्चारण से ही उस कार्य को अधमत्व का दंड देना पूरी तरह अदुषणीय है।

परंतु वह दैवी युग जब तक आया नहीं है, जब तक उस परम मंगल साध्य का अस्तित्व केवल किसी सत्कवि की प्रतिभा और ईश्वर–प्रेषितों के भविष्य में ही विद्यमान है और जब तक वह न्याय भाजन की अवस्था प्राप्ति संभव करने के लिए उसकी विरोधी अन्यायमूलक प्रवत्ति का निर्मलन करने में मानवी मन लगा हुआ है तब तक विप्लव, विद्रोह, रक्तपात और प्रतिशोध आदि शब्द कवेल अधमता के अधिकारी नहीं होंगे। 'राज्य' शब्द जब तक न्यायमूलक दोनों सत्ताओं के लिए मान्य है तब तक तद्विरोधक विप्लव, विद्रोह शब्द भी जैसे अन्यायमूल वैसे ही न्यायमूलक भी हो सकेगा और तब तक विप्लव, रक्तपात और प्रतिशोध आदि के कथानकों और कथानायकों के–दंड के पूर्व तत्काल विवरणात्मक जांच होनी ही चाहिए। विप्लव, रक्तपात और प्रतिशोध के कृत्य जैसे स्वयमेव अन्याय स्वरूप हैं वेसे ही वह कभी–कभी न्याय के संवर्धन के लिए प्रकृति द्वारा उत्पन्न न्यायिक शस्त्र भी हैं। और जब इन भयंकर साधनों से न्यायमूर्ति–'शत्रुरूधिरदग्धपाणिमुख

विकट प्रकट भैरवी'—ऐसी हो जाती है तब—तब उस भयंकरता का दोष उस न्यायमूर्ति का न होकर जिस मदमत्त के कारण वह क्रूर अवसर आया है उस प्रबल अन्याय पर ही वह आरोपित होता है, इसलिए फांसी का दंड देने वाला न्यायधीश रक्तपात का उत्तरदायी न होकर फांसी पर जानेवाला अन्याय ही उस पाप का उत्तरदायी होता है। इसीलिए ब्रट्स का खंजर पवित्र है। इसीलिए शिवाजी के बघनखे पुण्यपावन हैं। इसलिए इटली की राज्य क्रांति का रक्तपात यशोधवल है। इसीलिए चार्ल्स प्रथम का खून वध है। इसीलिए विलियम टेल का तीर प्रेम है। और उन सब कृत्यों की भयंकरता का अघोर पाप—उसके अधिकारी अन्याय के सिर पर वज्राघात जैसा पड़नेवाला है।

और यदि विद्रोह, रक्तपात और प्रतिशोध का डर नहीं होता तो आज अत्याचार और अन्याय के अप्रतिहत भयंकर तांडव से यह वसुंधरा थर्राती रहती। जल्दी या देर से, परंतु ऐसे क्षणिक विजयी अन्याय का प्रतिशोध न्यायी प्रकृति लेगी ही, इस चिंता से यदि अत्याचारी की नींद सुरक्षित होती तो अकुतो भयता से आज सब ओर चोरी—चोरी का खुला राज होता। पर हर हिरण्यकशिपु को नृसिंह का प्रतिशोध, रह दुःशासन को भीमसेन का प्रतिशोध और हर मदमलिन गंडस्थान को हरिनखों का प्रतिशोध, अपनी रक्त भरी और विकरालता से लपलपाती जीभ से डराता रहता है। इसीलिए अन्याय प्रवत्ति का उच्चाटन होने की थोड़ी—बहुत आशा ह्रदय में उत्पन्न होती है। इस तरह का प्रतिशोध अन्याय का निसर्गोद्भूत शासन होता है और इसलिए उसकी क्रूरता का, अमानवीयता का पाप अन्याय प्रवर्तकों पर ही उलटकर लगता है।

और ऐसे प्रतिशोध की भयानक ज्वाला सन् 1857 में हिंदुस्थान के ह्रदय में भड़क उठी थी। उनके सिंहासन फूटे हुए, उनके मुकुट टूटे हुए, उनका देश छीना हुआ, उनका धर्म कुचला हुआ, मानभंग, जीवन में विफलता का पहाड़, निवेदन व्यर्थ, अर्जिया व्यर्थ, रोना बेकार, चिल्लाना व्यर्थ। तब प्रकृति की प्रतिक्रिया शुरू हुई और जहां—तहां 'प्रतिशोध, बदला', ऐसी कानाफूसी होने लगी। ऊपर वर्णित एक—एक घटना प्रतिशोध को जन्म देती है, पर यहां तो ऐसी अनंत घटनाएं घटित हुई। इतने पर भी विद्रोह न होता तो हिंदुस्थान मरा हुआ है, ऐसा की कहा जाता। इसलिए यह प्रतिशोध अन्याय की अपरिहार्य प्रतिक्रिया है तो फिर एक बार सारा देश उबल उठे और किसी एक स्थान पर जनसमूह कत्लेआम कर दें—यह आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह है कि हर स्थान पर ऐसा कत्लेआम क्यों नहीं हुआ? क्योंकि जहां कत्लेआम हुआ और जिन्होंने वह किया उनका संतप्त तर्कशास्त्र सहज ही उद्घोष कर उठा—शठे शाठ्यं समाचरेत्! काली नदी की लड़ाई में पकड़े गए सिपाहियों को फांसी पर चढ़ाने के पहले अंग्रेजों ने पूछा, ''तुमने हमारी स्त्रियों और बच्चों को क्यों मारा?'' तब उन्होंने तत्काल प्रत्युत्तर दिया, ''साहब,

सांपों को मारकर कोई उनके बच्चों को जिंदा रखता है क्या?'' कानपुर में सिपाही कहते–आग बुझाना और चिंगारियां रखना तथा सांप मारना और उसके बच्चे पालना, यह समझदारी नहीं।

साहब, सांप को मारकर कोई उसके बच्चे जीवित रखता है क्या? काली नद के सिपाहियों द्वारा पूछे गए इस अखंड प्रश्न का उत्तर साहब लोग कैसे दे सकते हैं? और ये गंवारू शंका केवल हिंदुस्थान की जनता या कुछ अंग्रेजी लेखकों की कल्पना की तरह केवल एशियाटिक लोगों के ही मन मकें उत्पन्न नहीं हुई। जहां–जहां अन्याय की परमावधि होती है और राष्ट्र–के–राष्ट्र सुलग उठते हैं, जहां–जहां राष्ट्रीय युद्ध लड़े जाते हैं वहां–वहां राष्ट्रीय अन्याय का प्रतिशोध राष्ट्रीय वध से ही लिया जाता है। जब स्पेनवासियों ने मूर लोगों से अपनी स्वतंत्रता वापस छीन ली तब मूर लोगों की क्या दशा हुई? स्पेनिश लोग तो एशियाटिक नहीं थे या हिंदी भी नहीं थे। फिर उनके देश में कोई पांच–पांच सौ वर्ष से रह रहे उन मूर मुसलिमों के स्त्री–पुरूष–बच्चों सहित अनाथ परिवारों पर उन्होंने केवल एक विशिष्ट धर्म–जाति के अपराध के लिए भयंकर कत्लेआम क्यों किया? ग्रीस देश ने 1821 में कोई इक्कीस हजार तुर्की किसानों के पुरूष–महिला–बच्चों सहित अति अघोर कत्ल क्यों किए? यूरोप में जिस गुप्त संस्था को पवित्र माना जाता है उसी हिटेरिया ने उस कत्लेआम के समर्थन में कहा कि ग्रीस देश में तुर्कों की संख्या कम है और वे हमसे कभी भी वैर न छोड़नेवाले हैं, अतः उन सबको मार डालना ही अंतिम उपाय है–'' "A necessary measure of wise policy"(सयानी नीति का आवश्यक उपाय)। यही उन्होंने कहा है या नहीं। सांप को मारनेवाला कोई उसके बच्चे जीवित नहीं रखता। यही सीधी–साध उत्तर उनके मन की प्राकृतिक दयाशीलता को जलाकर भस्म करता है। और उस भयंकर ज्वलन का संपूर्ण दोष उस विषैले सांप के कालकूट विष की ओर ही होना चाहिए। अन्यथा विष देश के विरूद्ध ऐसा भयानक प्रतिशोध मानव स्वभाव में नहीं बैठता और निर्दय शासन को विषैले सांप का डर न हो तो उसकी वह कालकूट जीभ आज इतने बिलों में भी जीवित न रहती। सारांश यह कि अन्याय के अतिरेक के कारण मानवी मन में प्रतिशोध की प्रतिक्रिया जब–जब अपरिहार्य और रक्तपात आदि अमानुषिक कार्य पक्की तरह शुरू होते ही हैं, यह इतिहास का साक्ष्य सुन लें तो सन् 1857 में हिंदुस्थान के चार–पांच स्थानों पर जो ऐसे क्रूर कर्म घटित हुए इसपर आश्चर्य होने की जगह, जिसपर वास्तव में आश्चर्य होना चाहिए वह बात यह है कि यह क्रूरतापूर्ण मारकाट इतने अल्प प्रमाण में केवल चार–पांच स्थानों पर ही घटित हुई, उसकी जगह सारे स्थानों पर इससे अधिक प्रबल रीति से इस प्रतिशोध की अघोरता ने हुड़दंग क्यों नहीं मचाया? उपर्युक्त ग्रीस एवं स्पेन देश के न्यायिक गुस्से के उदाहरण

रहने दें, पर हिंदुस्थान तब अत्याचार की ज्वाला से जला हुआ था और सरेआम मार–काट को जिस एक परिस्थिति में न्याय दंड का स्वरूप मिल जाता है उस दुर्जन पीड़ाग्रस्तता की हिंदुस्थान पर असह्य मार पड़ी थी। परंतु क्रॉमवेल जब आयरलैंड में सेना लेकर घुसा और जब वहां के लोगों के यथार्थ देशाभिमान से वह अधिक ही क्रुद हो गया और वहां के लड़ाकुओं पर ही नहीं, अशरण गरीबों पर उसकी तलवपर सरसराती पड़ी, जब उस अभागे देश में रक्त की नदी तेजी से बहने लगी और जब उस रक्त में क्रॉमवेल की तलवार से कटी अनेक निरीह महिलाएं अपने गोद के बच्चों सहित तैरने लगीं, तब आयरलैंड जीतने का मूल हेतु पापकारी होते हुए भी उस क्रॉमवेल ने, अपने स्वधर्मियों का जितना क्रूरतम प्रतिशोध लिया और क्रूरतम रक्तपात किया उतना भी हिंदुस्थान ने सन् 1857 में उन परधर्मी, परवर्णीयों का रक्तपात नहीं किया। अंग्रेज महिलाओं को बचाने के लिए नाना साहब, दिल्ली के बादशाह, अवध की बेगम ने अंत तक प्रयास किया। परंतु कानपुर में नाना द्वारा दिए गए जीवनदान का ऋण अंग्रेज महिलाओं ने किस तरह चुकाया? विश्वासघात करके। जब–जब अंग्रेज अधिकारियों को सिपाहियों ने विद्रोह होते ही जीवनदान दिया तब–तब उन अधिकारियों ने उस उपकार के बदले विश्वासघात ही किया। उन्होंने नए आए अंग्रेज अधिकारियों को प्रदेश की विस्तृत जानकारी दी, उनका सेनापति पद स्वीकार किया और जो हाथ सिपाहियों ने जीवित छोड़ दिया उसी हाथ में तलवार पकड़कर उस प्राणदाता की ही गरदन काटी। फिर भी अतर्क्य आश्चर्य यह कि ऐसे विश्वासघात में भी स्वभाव से शांत भारतीय लोगों ने अपनी शांति उस प्रलयकाल में भी डिगने नहीं दी। कितने अंग्रेज भगोड़ों के प्राण खेत मजदूरों ने बचाए? कितनी ही महिलाओं को अपने कपड़े देकर ग्रामीण महिलाओं ने उनके प्राण बचाए? कितने ही गोरे अधिकारी भागने की शक्ति समाप्त होने से सड़कों पर बेहोश पड़े मिले और पास से गुजरते ब्राह्मण ने दूध पिलाकर उन्हें होश में लाने का उपक्रम किया। फॉरेस्ट ने माना है कि अवध ने–जिस अवध के कलेजे में अंग्रेजों ने अपने अत्याचार की छुरी घृणास्पद रीति से घोंपी थी, उस अवध के कलेजे में अंग्रेजों ने अपने अत्याचार भूलकर उनके पलायन में अतुल्य उदारता दर्शाई । विद्रोहियों के घोषणापत्र में उनके नेताओं ने अपने संतप्त अनुयायियों को कहा था कि स्थान–स्थान पर–स्त्री एवं बाल हत्या से अपने पवित्र काम में हानि होगी। नीमच, नसीराबाद के विद्रोहियों के द्वारा प्राणदान दिए जाने के बाद भाग रहे गोरों को देखकर रासते के ग्रामीण जब चिल्लाने लगे–मारो फिरंगी को–तब वहां के एक परिवार ने आगे बढ़कर कहा कि उन्होंने अभी–अभी हमारे साथ भोजन किया है, यद्यपि वे कट्टर शत्रु हैं, तब भी उनको कैसे मारा जा सकता है।[110]

जिसके सामान्य ग्रामीणों में भी ऐसी उदात्त वीरता व्याप्त है वह शांत हिंदुस्थान सन्

[110] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', भाग 1 ।

1857 जैसी कितनी ही क्रूर मार–काट करे, उससे उसकी धवल नीति को तिल मात्र भी लघुता नहीं आती, उलटे कत्ल हुए अन्याय के दुष्ट अत्याचारों के घिनौनेपन में पर्वत तुल्य वृद्धि हो जाती है तथा ऐसे ही अवसरों पर मैकाले का वह प्रसिद्ध वाक्य यथार्थ हो जाता है–''The more violent the outrage, the assured we feel that a revolution was necessary''. (अत्याचार जितना भयानक उतनी ही उसकी प्रतिक्रिया भी अटल)

और सत्य का यह यथार्थ स्वर सुनने की क्षमता विश्व के कानों में न बचे, इसके लिए हिंदुस्थान के लोगों की क्रूरता का हल्ला–गुल्ला अगर कोई दस दिशाओं में करे तो उन अंग्रेज लोगों को ऐसा हल्ला करने का अधिकार देवदूतों ने भी स्वीकार नहीं किया, फिर मनुष्य जाति को वह कैसे मिलेगा? परंतु उस मनुष्य जाति में यदि किसी को यह अधिकार रत्ती मात्र भी न मिलना हो तो वह जाति अंग्रेज ही है। हिंदुस्थान ने सैकड़ों निपराधियों को मार डाला, यह कौन इंग्लैंड कहेगा? नील को जन्म देनेवाला और नील की स्तुति करनेवाला इंग्लैंड ? जिस अवध ने उसे प्राणदान दिया उस अवध के गांव–के–गांव महिला–बच्चों सहित जलाकर राख करनेवाला इंग्लैंड? फांसी भी कम है, इसलिए स्वदेश के लिए लड़नेवाले पांड्य सैनिकों को वास्तव में जला देनेवाला इंग्लैंड? फांसी को या जीवित जलाने को भी जिस भय से जिन्होंने बड़े प्रेम से स्वीकार किया होता, ऐसा धर्मछल करने के लिए उन गरीब हिंदू ग्रामीणों को पकड़कर फांसी का दंड देकर उन्हें बैनेटों से छेदनेवाला और मरने के पहल उनके मुंह में गाय का रक्तरंजित मांस तलवार से ठूसनेवाला इंग्लैंड? फर्रूखाबाद के नवाब के वंशज को फांसी पर चढ़ाने के पहले–वह मुसलमान था इसलिए–उसके सारे शरीर को सूअर की चरबी लगाकर और फिर उसे सूअरे के चमड़ें में लपेटकर, भंगी से चाबुक से पिटवाकर फिर फांसी देनेवाला और यह सारा कृत्य स्वयं कमांडर–इन–चीफ सर कोलिंस की आंखों के सामने करानेवाला इंग्लैंड? हडसन को वीर कहनेवाला, आउट्रम की स्तुति करनेवाला और ये सब कृत्य विद्रोहियों का समुचित प्रतिशोध है, यह मानकर उसकी प्रशंसा करनेवाला इंग्लैंड? कानपुर की दीवारों पर वाहियात एवं नीचतापूर्ण बातें स्वयं के हाथों से लिखकर–ये मरी हुई महिलाओं की लिखी हैं, ऐसा मूलभूत छिछोरापन करनेवाला इंग्लैंड? यथार्थ प्रतिशोध ¨! किसका? सौ वर्षों तक चक्की में पीसी गई देशमाता के लिए सतंप्त हुए पांड्य पक्ष का या उस अन्याय के कोल्हू पर निगरानी करनेवाले आंग्ल पक्ष का? किसका यथार्थ प्रतिशोध?

अन्याय के ऐसे भयानक बारूदखाने के सिवाए इस शम–प्रधान हिंदुस्थान का यह भयंकर विस्फोट शांत न हुआ होता। उस अन्याय ने उनके ह्वदय को जलाकर रख दिया। हिंदू और मुसलमान अपनी अज्ञानजन्य शत्रुता भूलकर देशमाता के स्तन के रस से

एकरस हो गए। जितना भारतीय उतना एक विलक्षण चेतना की हवा से तांडव करने लगा। व्यक्तिगत स्वार्थ, सुख, जीवन की तुच्छ आशा प्रायः नष्ट हो गई और एक उदात्त ध्येय में सारा हिंदुस्थान अपूर्व एकता में बंध गया। देश–सेवा के लिए इस भयानक स्थिति से पत्थर भी पिघलने लगा।

कैसा भयंकर विस्फोट! और कितने अकस्मात् तड़ित वेग से ! एक क्षण में यह शांत दिखनेवाला ज्वालामुखी दिग्गजों के कान के परदे फट जाए, ऐसे कड़कड़ाहट से तड़क–फूटकर दुभंग, शतभंग, सहस्त्रभंग हो गया। शत्रु जहां पैर रखे वहां उसका भस्म। एक अंग्रेज इतिहासकार लिखता है–''जिनकी जान पर हमारी सुरक्षा टिकी हुई थी वे सरकारी नौकर ही एक ही समय पर नागों की तरह टूटने लगे। विश्वासघात किए हुए सरकारी नौकरों की सूची तैयार करूं तो विद्रोह कर रहे विस्तृत प्रदेश के सभी सरकारी नौकरों के नाम–पते मुझे देने पड़ेंगे। अपवाद हैं ही नहीं।'' उन सरकारी नौकरों में अत्यंत प्रमुख काजी उदल, कुजल, उत्तर पश्चिम प्रदेश का मुख्य अधिकारी, आगरा का प्रिंसिपल सदर अमीन, कानपुर का प्रिंसिपल सदर अमीनए कानपुर का डिप्टी कलेक्टर, फतेहपुर का डिप्टी कलेक्टर, जिसने रॉबर्ट टक्कर को मारा, फतेहपुर के अन्य सारे अधिकारी, इलाहाबाद का मुंसिफ, उसी प्रदेश का और एक मुंसिफ, बरेली का प्रिंसिपल सदर अमीन, आजमगढ़ का डिप्टी कलेक्टर, वहां J का प्रिंसिपल सदर अमीन, G का प्रिंसिपल सदर अमीन और यह सूची बहुत ही अधुरी–केवल नमूने के लिए दी है–

ऐसा प्रलय विस्फोट कड़कड़ाया, पुलिस विद्रोह कर उठी, सिपाही बंद कर उठे। गांववाले विद्रोह कर उठे। अंग्रेजों से ईमानदारी का अर्थ धर्मद्रोह और देशद्रोह है, ऐसी एक मिनट में धर्म की व्याख्या हो गई। जो कोई भी अंग्रेजों के यहां रहेगा उसका तत्काल जाति बहिष्कार होने लगा। उसकी पगत में कोई बैठेगा नहीं–उससे विवाह कोई करेगा नहीं। उसके यहां पूजा के लिए ब्राह्मण नहीं आएगा। सबसे बड़ी और सबसे अपमानजनक गाली हो गई–'फिरंगियों का नौकर'।

एक अंग्रेजी लेखक कहता–''सरकारी कर्मचारियों में हम यदि व्रिदोहियों की सूची तैयार करने लग जाएं तो संभवतः विद्रोही प्रदेशों के सथी कर्मचारियों के नाम इसमें सम्मिलित करने पडेंगे। उनमें अपवाद रूप ही किसी का नाम इस सूची में पृथक् रह पाएगा।''

ऐसी परिस्थिति होने से, ऊपर से बिलकुल शांत दिखनेवाला ज्वालामुखी इतना प्रज्वलित हो गया था कि किसी भी क्षण उसका विस्फोट हो सकता था। क्रांतिदूत आकाश मार्ग से जाकर जल्द ही प्रारंभ होनेवाले उस समारोह में उपस्थित रहने का

निमंत्रण हर एक को दे रहे थे। उस आक्रमण को स्वीकार क रवह पवित्र ध्येय साध्य करने दस दिशाओं का युद्ध देवता तुरंत निकला। रणवाद्य, युद्धघोष, समर गर्जना आदि आवश्यक सारे साधन यथोचित स्थान पर सजाकर मंडप तैयार कर लिया गया है। ज्वालामुखी के पार्श्व में अत्याचारों का कहर निर्भयता से उबल रहा है। परंतु क्रांति का क्षण जैसे–जैसे पास आ रहा है, ऊपर हरित दिखनेवाले पर्वतों के अंतर में अत्याचार का कहर आ गिरा और उसी के साथ ज्वालामुखी का विस्फोट हो गया। हां, अब होशियार! क्रांति का विस्तार हो गया है। क्रांति की ज्वालाएं बाहर फैलने लगी हैं, रक्त का रिसाव होने लगा है, कान के परदे फाड़नेवाली चीत्कार, तलवारों की खनखनाहट, भूत बेसुध होकर नाच रहे हैं, योद्धा वीर गर्जना कर रहे हैं। ऊपर से हरित और ठंडा दिखनेवाला ज्वालामुखी पर्वत दो–फाड़ हो गया, उसके सैकड़ों टुकड़े हो गए और हजारों जगह पर सुलगकर भड़क उठा है, सारी पृथ्वी पर आग और तलवार की खनखनाहट व्याप्त हो गई।

काठियावाड़ के किसी भाग में 'विठरू' नामकचमत्कारक जलप्रवाह है। उसका पृष्ठ भाग कड़े भूभाग जैसा लगता है। पर इसकी जानकारी न रखनेवाले मनुष्य सहज विश्वास से उसपर पैर रखते हैं। और वह ऊपर से कड़ा दिखता पृष्ठ भाग थोड़ा सा हिलते ही वह मनुष्य उसपर अधिक दृढ़ता से खड़े होने का प्रयास करता है। ऐसा करते ही वह पृष्ठ भाग झुकने लगता है और वह अजनबी गहरे पानी में डूब जाता है। विठरू की तरह ही यह क्रांति प्रवाह सारे हिंदुस्थान में व्याप्त हो गया है। ऊपर से दिखता काला रंग देखकर, अत्याचारी को ऐसा लगा कि कुछ भी शिकायत न करते हुए अन्याय सहता यह हमेशा का सरल पृष्ठ है, इसलिए अत्याचारी ने अपना कदम उसपर बिना हिचक रखा, तभी वह काला पृष्ठ है, इसलिए अत्याचारी ने अपना कदम उसपर बिना हिचक रखा, तभी वह काला पृष्ठ भाग हिलने लगा! तब अत्याचारी अन्याय ने गर्व से उस भू–पृष्ठ पर और जोर से पैर रखा। और अब ध्यान से देखें। वह भू–पृष्ठ झुक गया और उसके नीचे लहरों–पर–लहरें उठने लगीं, रक्त के झाग को असीम सागर उछलकर ऊपर आने लगा। अत्याचारी अन्याय उसमें डूब गया। अत्याचारी अन्याय, तू कहीं भी पैर रख, कड़ा पृष्ठ भाग तुझे मिलेगा ही नहीं। अब अंतकाल में तुम्हें समझ में आएगा कि ऊपर से काले दिखते भू–पृष्ठ के नीचे रक्त के–लाल–लाल रक्त के–प्रवाह होते हैं और उस कान के परदे फाड़नेवाले ज्वालामुखी के प्रस्फोट की वह प्रचंड ध्वनि अब तो सुन।

भाग–3

अग्नि–कल्लोल

प्रकरण–9

दिल्ली लड़ती है

11 मई को अपनी स्वतंत्रता घोषित करने के बाद दिल्ली शहर उस प्रचंड लड़ाई की तैयारी करने और मची हुई अंधाधुंधी को अनुशासित करने में लगा रहा। दिल्ली के परंपरागत तख्त पर मुगल बादशाह को बैठाकर क्रांतिकारियों ने जो एक शक्ति केंद्र तैयार किया, वह इतना शक्तिशाली था कि उसके नाम के प्रभाव से स्वतंत्रता संग्राम स्थिर हो गया। परंतु पुराने मुगलों को यह तख्तारोहण पुरानी मुगल सत्ता फिर से स्थापित करने के लिए या पुरानी जंगली परंपरा चालू करने के लिए भी नहीं था। हिंदुस्थान के बादशाह के पद पर बूढ़े बहादुरशाह को बैठाना–संकुचित अर्थ में परंपरागत तख्त पर मुगल सत्ता स्थापित करना लग सकता था, पर व्यापक अर्थ में और सत्यार्थ में देखें तो वैसा नहीं था। पुरानी मुगल सत्ता इस देश के लोगों ने स्वयं नहीं चुनी थी। हिंदुस्थान पर विजय भावना और आक्रामक वृत्ति से एवं स्वाभिमानशून्य देशद्रोही कार्यवाहियों के कारण वह मुगल सत्ता पर हमपर जबरन लादी गई थी। आज कोई ऐसे बल से बहादुरशाह को बादशाही पर नहीं बैठाया गया था। नहीं! वैसा करना तो असंभव था, क्योंकि वैसे सिंहासन तो जीतने पड़ते हैं। वे स्वागत योग्य नहीं माने जाते। वैसा करना आत्मघाती होता, क्योंकि वैसा करने का अर्थ था गत तीन–चार शताब्दियों तक हिंदू शहीदों, हुतात्माओं ने अपनी स्वतंत्रता के लिए जो खून बहाया था वह व्यर्थ गया, ऐसा माना जाता। अरबस्तान की जंगली टोलियों ने

इस्लाम को स्वीकार करते ही आक्रमण वृत्ति और पश्चिम में आक्रमण करके प्रदेश को पदाक्रांत किया था। कहीं उनका प्रतिकार हुआ ही नहीं, इस कारण देश के बाद देश, एक मानव जाति के बाद दूसरी मानव जाति को जबरन मुलसमान बनाते इस्लामी सत्ता दौड़ती चली। इस अविरोध आंधी का पहले–पहल किसी भी तरह का समझौता न करते महान् पराक्रम और निर्भयतापूर्ण निश्चय से किसी ने विरोध किया हो तो वह भारत ने ही किया था। अन्य राष्ट्रों के इतिहास में ऐसा विरोध अपवाद में ही दिखता है। यह युद्ध पांच शताब्दियों से अधिक चलता रहा था। इन विदेशी आक्रमणकारियों से स्वयं के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए हिंदुओं ने पांच शताब्दियों से अधिक समय संरक्षणात्मक युद्ध चालू रखा था। पृथ्वीराज की मृत्यु से लेकर औरंगजेब की मृत्यु तक समझौतों और संधियों की परवाह न करते हुए युद्ध के बाद युद्ध चला और असंख्य वर्ष चले इस दीप्तिमंत द्वंद्व में भारत के पश्चिमी घाट में सह्यद्रि में एक नई शक्ति का उदय हुआ, अपनी जाति की मान–रक्षा के लिए जिन हजारों हिंदुओं ने बलिदान किया उस सम्मान की परिवूर्णता करने का कंकण उस नई हिंदू सत्ता ने अपने हाथ में बांधा। पुणे से एक हिंदू वीर भाऊसाहब पेशवा समर्थ सेना के साथ आक्रमण करते निकला और उसने दिल्ली के तख्त–सिंहासन–पर कब्जा किया और हिंदू संस्कृति पर लगा गुलामी का कलंक धो डाला। हिंदुस्थान गुलामी उतारकर और पराजय पोंछकर फिर से स्वतंत्र हुआ। हिंदुभूमि के हिंदू ही फिर से मालिक हुए–धनी हुए।

इसलिए बिलकुल सच्चे भाव से कहें तो हम यह कहते हैं कि हिंदुस्थान के तख्त पर, सिंहासन पर बहादुरशाह को जो बैठाया गया वह पुरानी मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना नहीं थी। परंतु दीर्घकाल तक इस देश के हिंदू–मुसलमानों के बीच जो युद्ध चल रहा था वह युद्ध समाप्ति की घोषणा का प्रतीक, जुल्म, अत्याचार समाप्त होने की निशानी था। इसी देश की मिट्‌टी में जन्में देश बंधुओं को अपना राजा कौन हो, यह चुनने की स्वतंत्रता आदि के प्रतीक रूप में वह राज्यारोहण था। क्योंकि हिंदू और मुसलमान दोनों ही जातियों, नागरिकों और सेना ने एकमत होकर बहादुरशाह को इस समय बादशाही तख्त पर आरूढ़ किया था, और स्वतंत्रता समर का नेतृत्व भी उसी को दिया था, इसलिए 11 मई को दिल्ली के सिंहासन पर बहादुरशाह ने जो आरोहण किया था वह प्राचीन मुगल परंपरा के अकबर या औरंगजेब की तरह का आरोहण नहीं था। क्योंकि वह मुगलिया तख्ता वीर मराठे बहादुरों ने घन की चोटों से कभी का छिन्न–विच्छिन्न कर दिया था। परंतु विदेशी आक्रमणकर्ताओं से स्वतंत्रता युद्ध चलाने के लिए लोगों ने उसको राजा चुना था। इसलिए हिंदू–मुसलमान जनता ने वास्तविक समझ से, पूरे मन और निष्ठा से 11 मई, 1857 के दिन अपनी मातृभूमि के बादशाही पद पर बहादुरशाह की मान–वंदना करने सब आगे आएं–ऐसी घोषणा की।

इस घोषणा के अनुसार पास और दूर के स्थानों से, अनेक रियासतों से, अनेक

सैनिक टोलियों से और हिंदुस्थान के प्रमुख शहरों–नगरों से दिल्ली के राजा के लिए नजराने (उपहार) आने लगे। पंजाब में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह करनेवाली नेटिव सिपाहियों की पलटनें तथा अवध, नीमच, रूहेलखंड और दूसरी जगह के विद्रोही अपने–अपने झंडे और निशान लिये दिल्ली की ओर चलने लगे और क्रांति के नेता बहादुरशाह जहर के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने लगे। अनेक सैनिक टोलियों ने दिल्ली की ओर आते समय रास्ते में जो अंग्रेजी खजाने लूटे थे, वह संपत्ति उन्होंने बादशाह के खजाने में ईमानदारी से जमा की। इतनी सालंकृत सिद्धता होते ही सारे हिंदुस्थान देश के नाम एक घोषणापत्र–जाहिरनामा–प्रसारित किया गया और उसमें स्पष्टता से घोषित किया गया–''अब विदेशियों के साम्राज्य और फिरंगियों की राज्यसत्ता का अंत हो चुका है और सारा देश अब सवतंत्र और परदासता से मुक्त हो गया है।'' प्रारंभ में ही इतनी सफल हुई यह क्रांति पूरी करने के लिए हर एक इस क्रांतियुद्ध में अपना एक ईश्वरीय कर्तव्य मानकर, झूठे (व्यक्ति संबंधी) अभिमान भूलकर दैवी प्रेरणा से सहभागी हो, ऐसा आह्वान लोगों का किया गया। उसमें कहा गया कि ''हर व्यक्ति यह ध्यान में रखे कि अपना यह विद्रोह केवल स्वधर्म रक्षा के लिए ही है, दूसरा कोई भी लालच इसके पीछे नहीं है। जिस–जिसको परमेश्वर से निश्चय एवं इच्छाशक्ति का वरदान मिला है, वे सब ही ऐहिक लाभ और क्षणभंगुर देह की आशा छोड़कर अपने प्राचीन धर्म का रक्षण करने के लिए हमसे सहयोग करें। सार्वजनिक हित के लिए लोग अपने स्वार्थ को तिलांजलि देने की ठान लें तो अपनी इस पवित्र भमि पर एक भी अंग्रेज मनुष्य रह न पाए। हर एक यह ध्यान में रखे कि अपने जीवन की डोर टूटे बिना कोई भी मरता नहीं और जब काल की कृपा हो जाए तब कोई भी अपने प्राण बचा नहीं सकता। शीतला की बीमारी और अनेक रोगों में आदमी मरते रहते हैं, पर स्वधर्म युद्ध में प्राण अर्पण करनेवाला शहीद हो जाता है, हुतात्मा होता है और इसीलिए हिंदुस्थान की पवित्र भूमि से हर एिक फिरंगी को भगा देना या उसे मार डालना हर एक स्त्री–पुरूष का पवित्र कर्तव्य है। ऐहिक लाभ की कोई भी आशा न रखते हुए जो धार्मिक कर्तव्य–भावना से प्रेरित हैं, वे हमसे आकर मिलें।''

उपर्युक्त उद्धरण समय–समय पर अवध और दिल्ली से समान अर्थ के जो जाहिरनामे (घोषणापत्र) प्रसारित हुए थे, उनमें से ही लिये गए हैं। एक जाहिरनामा स्वयं दिल्ली के बादशाह ने प्रकाशित किया था और उसकी प्रसिद्धि सारे हिंदुस्थान भर में व्यापक रूप से हुई थी। देश के सुदूर दक्षिण सिरे तक उसकी प्रतियां हाथोहाथ बाजार और सेना में भी पहुंच गई थी। उसमें कहा गया था–''हे हिंदू और मुसलमान भाइयों! अपने पवित्र धार्मिक कर्तव्य की पूर्ति करने के लिए हमने जनता से हाथ मिलाया है। इस समय कोई डरपोकपना दिखाए या ढोंगी अंग्रेजों के झूठे आश्वासनों पर विश्वास करे, उसके मुंह पर कुछ ही समय बाद कालिख पोती जाएगी और इंग्लैंड का स्वामित्व स्वीकार कर उससे मित्रता जोड़नेवाले लखनऊ के नवाब को जैसा दंड मिला वैसा ही

उसको मिलेगा। इसलिए इसके बाद सारे हिंदू और मुसलमान–अंग्रेजों से चल रहे इस झगड़े में इकट्ठे आकर अपने किसी भी आदरणीय नेता की नीति पर चलने को तैयार हो जाएं। इस तरह देश में शांति और सुव्यवस्था स्थापित करने में हमारी सहायता करें। गरीब लोगों को संतुष्ट रखने के लिए प्रयास करें और उनको अधिक अधिकार व प्रतिष्ठा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध कराएं। जिस–जिसको संभव हो, वह इस घोषणापत्र की प्रतियां बनाकर गांव के मुख्य स्थानों पर चिपकाएं। ऐसा करते समय उचित युक्ति का उपयोग करें और पकड़े न जाने की दक्षता रखें और उसका प्रचार होते–न–होते अपनी तलवारें निकाल फिरंगियों पर प्रहार करें।''

अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध स्वतंत्रता युद्ध घोषित करने के कुछ ही समय बाद वह युद्ध चालू रखने के लिए दिल्ली के क्रांतिकारियों ने शस्त्र और गोला–बारूद का उत्पादन करना आरंभ कर दिया, तोपें, बंदूकें और छोटे हथियार बनाने के लिए एक बड़ा कारखाना चालू किया गया और इस शस्त्र उत्पादन पर देखरेख के लिए कुछ फ्रेंच लोगों को नौकरी पर रखा। गोला–बारूद रखने के लिए दो–तीन गोदाम बनाए गए और रात–दिन काम चालू रखकर कामगारों से भरपुर गोला–बारूद्ध निर्माण करने की व्यवस्था की गई। सारे देश में कानून से गो वध बंदी लागू की गई और एक बार जब कुछ सिरफिरे मुसलमानों ने हिंदुओं का अपमान करने के लिए उनके विरूद्ध जेहाद की घोषणा की तब उस बूढ़े बादशाह ने अपने लवाजमे के साथ हाथी पर बैठकर सारे शहर से एक विशाल जुलूस निकालकर यह घोषित कर प्रकट किया कि अपना यह जेहाद केवल विदेशी फिरंगियों के लिए है, हिंदुओं के विरूद्ध नहीं है। जो कोई भी गाय की हत्या करता पाया जाएगा उसे तोप से उड़ा दिया जाएगा या उसके हाथ काट दिए जाएंगे। अलग–अलग रेजिमेंटों व टोलियों को भिन्न–भिन्न राजपुत्रों के नाम दिए गए। अंग्रेजों के विरूद्ध क्रांतिकारियों की इस लड़ाई में कुछ यूरोपियनों ने भी सहयोग दिया।

बुंदेल की सराय की लड़ाई के बाद अंग्रेजी सेना को आगे की सैनिक कार्यवाही करने के लिए बहुत उचित स्थान मिल गए थे। दिल्ली की चारदीवारी के एक छोर तक आकर भिड़ी और यमुना नदी के आगे चार मील तक दूर फैली हुई टेकरियों की एक श्रृंखला थी–अंग्रेज जिसे Ridge कहते हैं–उन टेकरियों की प्राकृतिक ऊचाई युद्ध की दृष्टि से बहुत लाभदायक थी। पासस–पड़ोस के समतल प्रदेश की अपेक्षा टेकरियों की ऊंचाई पचास–साठ फीट होने से वहां से तोपों की निरंतर और प्रभावी मार करने के लिए उस स्थान का अच्छा उपयोग हो सकता था। इन टेकरियों के प्रदेश से लगी हुई यमुना की चौड़ी नहर थी, जिसमें इस वर्ष जोरदार वर्षा होने से जून माह में भी अच्छा पानी था। वह नहर पीछे की ओर होने से अंग्रेजों के शत्रुओं की ओर से भी उस नहर को कोई धोखा नहीं होना था, केवल सामने से, दिल्ली की ओर से क्रांतिकारियों के जैसे हमले होते थे वैसे ही पीछे की ओर से, पंजाब की ओर से, यदि हमले हुए होते तो अंग्रेजों की शामत आ जाती। अंग्रेजों के सौभाग्य से पंजाब ने उनकी ओर से ही लड़ने की ठानी। नाभा, जींद और

पटियाला के राजाओं द्वारा पंजाब के राजमार्गों की सुरक्षा किए जाने से अंग्रेजों को धान्य, आदमी एवं गोला–बारूद्ध की आपूर्ति बिना धोखे के हो सकी। इस सारी घटना के इस तरह बन जाने से, हिंदुस्थान के अभाग्य से अंग्रेजों को अति अनुकूल परिस्थिति परिस्थिति प्राप्त हुई। दिल्ली पर मार की जा सके–ऐसी ऊंचाई, शत्रु की मार से अंग्रेजी डेरा सुरक्षित रहे–ऐसा समतल प्रदेश, शत्रु के जासूसों को भी प्रवेश नहीं मिल पाए–ऐसी चारदीवारी, पास में ही ताजा और भरपुर पानी, पंजाब की ओर से आ रहे मार्ग–और वे मार्ग निष्ठावान् रियासती सैनिकों द्वारा अपनी गांठ का खाकर सुरक्षित रहे और खुले, ऐसी सारी अनुकूल परिस्थिति के कारण ब्रिटिश कमांडर बर्नार्ड और उसके अधीनस्थ अधिकारियों का आत्मविश्वास बढ़ा और वे गर्व से कहने लगे–''अब दिल्ली जीतने के लिए एक दिन भी नहीं लगेगा!'' और फिर जिस दिल्ली को जीतना एक दिन का भी काम नहीं है उसके लिए दो दिन क्यों रूका जाए? अभी इसी क्षण उस पापी और देशद्रोही शहर को चारों ओर से आक्रमण करके धूल में मिला देने का आदेश अंग्रेजी सिपाहियों को क्यों न दिया जाए? पंजाब अपनी सेना की रीढ़ की हड्डी है और वह स्वामी–निष्ठा से सहयोग को तत्पर है तब दिल्ली जीतने के लिए अधिक देर तक घेरा डाकलकर बैठने का दुर्बलों जैसा रास्ता क्यों अपनाया जाए? उस नादान शहर पर सीधे हमला करके एक ही धमाके में उसे जमींदोज कर डालना अधिक बुद्धिमानी है। अपनी सेना के दो भाग करें–एक भाग लाहौर दरवाजे पर हमला करे और दूसरा भाग काबुल दरवाजे को नष्ट करे और शेष सब एक ही समय में दिल्ली में घुसकर रास्ते के सारे स्थान एक के बाद जीतते रास्ते में कहीं भी विश्राम न करते सीधे राजमहल पर हमला करें।

बिल्वर फोर्स, ग्रेट हेड एवं हडसन जैसे वीरोग्रणी साहस और धड़ाके की लड़ाई करने के लिए बहुत आतुर थे और उन्होंने हमले का विजयी करने का दायित्व लिया हुआ था। फिर राह किसकी देखी जाए? इस तरह 12 जून को जनरल बर्नार्ड ने हमला करने का गुप्त आदेश दिया। कौन सैनिकों को इकट्ठा करेगा, सेनाएं कहां से और कैसे बढ़ेंगी, दायां–बांया नेतृत्व किस–किसके पास होगा? ऐसी सारी योजना पहले ही बन गई। हमले की सारी योजना इस तरह निश्चित की गई और भोर दो बजे से अंग्रेजी सेना पहले से नियोजित परेड मैदान पर इकट्ठी होने लगी। कल रात का बादशाह के राजमहल में ही सोना है, यह विश्वास होने के कारण आज रात नींद न हो पाने का दुःख करते बैठनेवाले वे मूर्ख थोड़े ही थे! निश्चय से असंभव, पर अंग्रेजों के दुर्भाग्य से ऐन मौके पर उनकी सेना का कुछ भाग लापता हुआ दिखाई दिया। ऐसी धोखादायक स्थिति में दिल्ली पर हमला करना उतावलापन होगा–ऐसा ब्रिगेडियर ग्रेव्ज को लगा और अन्य कुछ अधिकारियों ने भी ऐसा ही सुझाया कि ऐसी उतावली हिंदुस्थान की सारी ब्रिटिश हुकूमत के लिए मारक सिद्ध होगी। अतः सीधे हमले और तुरंत विजय के जो स्वप्न ब्रिटिश सेना को आ रहे थे वे दिल्ली के राजमहल में सच न होकर उस रात अपने डेरे के बिछौने में ही समाप्त हुए।

दूसरे दिन प्रातः बिल्वर फोर्स और ग्रेट हेड ने अगले हमले की योजना बनाकर सेनापति बर्नार्ड के विचार के लिए उसके पास भेजी। सेनापति बर्नार्ड की पहचान क्रिमियन युद्ध के एक नामवर योद्धा के रूप में थी। पर इस अवसर पर वह बहुत धीमा और दब्बू–सा लग रहा था। 14 जून को उसने युद्ध परिषद् (वार काउंसिल) की बैठक बुलाकर अपने अधिकारियों से आक्रमण के विषय पर चर्चा की। आक्रमण की योजना का जोरदार भाषा में ग्रेट हेड से समर्थन किया, तब भी अन्य अधिकारियों को विजय का विश्वास नहीं होता था, इसलिए उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि इसमें प्रत्यक्ष पराभव जितनी ही शक्ति की और प्रतिष्ठा की हानि होने वाली है। दूसरा यह कि सीधे हमला कर दिल्ली जीत भी ली तो भी उसकी रक्षा कैसे करें?

रास्ते–रास्ते और घर–घर विद्रोहियों की ओर से चलती गोलीबारी में से कितने सोल्जर बचे रहेंगे? इस संबंध में अपना पक्का विचार बर्नार्ड भी कह नहीं पर रहा था। इस सारी चर्चा के बाद हमले के संबंध में भिन्न मत होने में ही इस युद्ध परिषद् का एकमत हुआ। और इस तरह 12 जून को रात में आए स्वप्न की तरह 15 जून को भी आक्रमण की योजना त्यागकर तात्त्विक मत पक्का पकड़कर उसके विदास्पप्न भी वहा हो गए। 16 जून को युद्ध परिषद् की बैठक हुई। मर मत–भिन्नता और मन का धीरज कम होने में ही उसका अंत हुआ।

अंग्रेज अधिकारी जिस समय एक ओर जोरदार और सीधे हमले की योजना बना रहे थे उसी समय दूसरी ओर दिल्ली में नए तरूण रक्त, नए खजाने, सपंत्ति और नए उत्साह की बाढ़ आ रही थी और क्रांतिकारियों ने आज तक की बचाव की रणनीति छोड़कर अवसर के अनुरूप आक्रमण की नीति स्वीकार कर बीच–बीच में अंग्रेजी सेना पर छापे डाले और कभी–कभी उसमें सफल भी रहे। सारे हिंदुस्थान में जिन सिपाहियों ने अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह किया था उन सिपाहियों द्वारा अपने साथ लाए हुए खजाने, शस्त्रास्त्र, गोला–बारूद की दिल्ली में निरंतर आवक हो रही थी। इस कारण क्रांतिकारियों को युद्ध सामग्री या सिपाहियों की कमी नहीं थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने आक्रमण की नीति अपनाई और अंग्रेजी सेना को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने दिया। बीच में ही एकाध साहसी आक्रमण शत्रु पर करना, शत्रु को सताने की नीति होने से अंग्रेजी सेना पर उन्होंने अपनी दहशत बैठा दी और उन्हें आक्रामक नीति छोड़ने को बाध्य किया।

12 जून को कुछ क्रांतिकारी शहर से बाहर निकले, झाड़ियों, झुरमुटों और गड्ढे आदि के सहारे–सहारे अंग्रेजों की अगाड़ी को पर कर पचास गज से भी अधिक अंदर चले गए और अंग्रेजों को आहट होने के पहले ही उन्होंने उनपर हल्ला किया। अंग्रेजी

तोपखाने के बहुत लोग गारद हो गए और सिपाहियों को अचूक गोली लगने से नॉक्स मारा गया। उसी समय क्रांतिकारियों की दूसरी टोली ने अंग्रेजों की पिछाड़ी पर भी हमला किया। पर वहां उन्हें बड़े प्रतिकार का सामना करना पड़ा। बाड़ा हिंदुराव और अंग्रेजी सो की दाईं बगल पर भी सिपाहियों ने बड़े जोर का हमला किया। जिनकी राजनिष्ठा पर अंग्रेजों को पूर्ण विश्वास था, ऐसी एक नेटिव पैदल टुकड़ी शत्रु पर हमला करने गई। परंतु उन्होंने विश्वासघात किया, यह स्पष्ट होते ही हमने उनपर गोलीबारी चालू की, पर वे बहुत तीव्रता से गोलीबारी से सुरक्षित निकल गए ̇ ̇ ।[111] उस स्थान पर नियुक्त मेजर रीड कहता है–''मानो वे सिपाही शत्रु पर हमला करने जा रहे ळें, ऐ लगता था; पर शत्रु से भिड़ते ही वे उनके साथ ही चलने लगे–यह देखते ही मैं डर गया। मैंने उपपर तोपें दागने का आदेश दिया; पर उतनी देर में वे विश्वासघाती इतने दूर चले गए कि उनमें से कोइ पांच–छह सिपाही ही मारे गए होंगे, ऐसा मुझे लगता है।'' इस आक्रमण के बाद विद्रोही शत्रु पर हमला करने के लिए शहर के बाहर जा रहे हैं, ऐसा हर दिन दीखने लगा और हमला निपटाकर वे शहर में लौट रहे हैं, यह हर शाम दिखता था।

सिपाहियों का जो–जो दल विद्रोहियों से मिलने दिल्ली में प्रवेश करता वह दल तुरंत दूसरे दिन शत्रु पर हमला करने बाहर जाता। 13 जून को बाड़ा हिंदूराव पर फिर से हमला किया गया। 12 जून को व्रिदोहियों से जो सेना आकर मिली थी उसी ने यह हमला किया था। मेजर रीड लिखता है–''गैंड ट्रंक मार्ग से वे सिपाही सीधे टुकड़ियों का संचालन करते आ रहे थे। उस पलटन का नेता सरदार बहादुर था। अपनी बाईं बगल की ओर मुड़ने का उनका हेतु होने से अपने लोगों को पीछे रहने को कहकर वह स्वयं आगे हो गया। उस दिन वे सिपाही जान की परवाह न करते हुए लड़ रहे थे। परंतु सरदार बहादुर उसके अर्दली लाल सिंह के हाथों मारा गया। उसके सीने पर की हिंदुस्थानी सेना क निशानी की पट्टी निकालकर उसने मेरी पत्नी के पास भेज दी। 17 जून को भारतीय सेना ने ईदगाह भवन पर तोपों का मोरचा जमाना चालू किया; क्योंकि वहां से अंग्रेजों की रिज पर –सामने पर–जोरदार गोलागरी हो सकती थी। यह सब देखते ही मेजर रीड और हेनरी टोंब्स ने विद्रोहियों पर दो तरफ से हमला बोल दिया। और प्रतिकार हो ही नहीं सकता। ऐसी शक्ति से उन्हें घेरने का प्रयास किया। पर ईदगाह भवन में बंद वे मुट्ठी भर विद्रोही शरणागत नहीं हुए। जब उनके पास का गोला–बारूद समाप्त हो गया तब उन्होंने बंदूकें फेंककर अपनी तलवारें निकालीं और अपने अंग्रेज शत्रु पर प्राणपण से टूट पड़े। अपना अंतिम सैनिक अपने–अपने स्थान पर लड़ाई लड़ते मरने तक उन्होंने ईदगाह भवन में शत्रु को प्रवेश नहीं करने दिया।''

18 जून को नसीराबाद के विद्रोही सिपाही दिल्ली पहुंच गए और अपने साथ

[111] के कृत–इंडियन म्युटिनी', पृष्ठ 411 ।

लाया हुआ खजाना उन्होंने शाही प्रतिनिधि को दे दिया। उनके प्रतिनिधियों का बादशाह ने अपने राजमहल में स्वागत किया और उनका यथायोग्य आदर एवं मान–मर्तबा रखा। भरे दरबार में उस पलटन के सिपाहियों के प्रतिनिधि ने 20 जून को अंग्रेजी सेना पर हमला करने की शपथ ली। 20 जून को प्रातः शत्रु पर हमला करने जाने के लिए विद्रोही सेना शहर के दरवाजे से बाहर निकली, यह देखा गया। अंग्रेजों की छावनी के पिछाड़ी के बाजू पर हल्ला करने के हेतु से सिपाही सब्जी मंडी से छिपते–छिपते चले और अंग्रेज कुद सोचें, इसके पहले ही उनपर अचानक गोलियों की बौछार शुरू की और अंग्रेजों पर जोरदार हमला किया। स्कॉर्ट, मनी, टोंब्स और अन्य अंग्रेज अधिकारियों ने तोपों की जोरदार मार करके यह हमला रोकने का प्रयास किया । पर भारतीय सेना इतनी लगन से हमला कर रही थी कि उसक प्रतिकार करना कठिन हो गया। नसीराबाद की पलटन का किया हुआ हमला इतना प्रभावी और भयानक था कि बहादुर टोंब्स भी रूआंसा होकर चिल्लाया–''दोड़ों, डॉली दौड़ो–अन्यथा मेरी तोपों पर शत्रुओं का कब्जा हो गया समझो।'' पंजाबी नेटिव सिपाहियों के साथ डॉली दौड़कर भी आया। परंतु विद्रोहियों की ओर से छोड़ी गई एक गोली से उसके कंधे को चोट लगने से उसे पीछे घूमना पड़ा। शाम हो गई और सैनिकों की जीत स्पष्ट दिख रही थी। उन्होंने फिर हमला किया और अंग्रेजी सेना की तोपें हथिया लीं। 9वीं भाला सेना टुकड़ी (लांसर) और पंजाबी टुकड़ी बार–बार आगे घुसने का प्रयास करती और पराभूत होकर पीछे हट जाती। रात हो गई तब भी लड़ाई का रंग भीषण ही बना रहा। अंग्रेजों ने भी बहुत पराक्रम किया, पर वे अपनी तोपें बचाने से अधिक कुछ नहीं कर पाए। लॉर्ड रॉबर्ट्स लिखता है–''विद्रोहियों के कारण हममें भगदड़ मची (The mutineers routed us)। होप ग्रांट का घोड़ा मर गया। वह स्वयं भी बहुत घायल हो गया। उसके बाजू में ही एक राजनिष्ठ मुसलमान घुड़सवार खड़ा न होता तो वह उसी समय मर जाता। मध्य रात तक ऐसे झपट्टे चालू रहे। सिपाहियों के हमलों को रोकना असंभव हो जाने से अंत में अंग्रेज युद्धक्षेत्र से पीछे हट गए और अंग्रेजी छावनी की पिछाड़ी का एक प्रमुख स्थान विद्रोहियों के हाथ लग गया।''

उस रात अंग्रेज कमांडर को चिंता के कारण नींद आना संभव नहीं था। क्रांतिकारियों द्वार जोर लगाकर जीता हुआ स्थान यदि उनके कब्जे में बना रहता तो अेंजों की पंजाब की ओर से आवाजाही टूट जाती। यह संकट टालने के लिए उस विजयी स्वदेशी सेना का प्रतिकार करने को अंग्रेजों ने बड़ी भोर से ही तैयारी की। गोला–बारूद और सेना की अधिक सहायता प्राप्त करने वे सिपाही शहर लौट रहे थे, इसलिए अंग्रेज हाथ से`नकला अपना स्थान फिर प्राप्त कर सके। इस लड़ाई की विजय और सिपाहियों की टक्कर के समाचार से दिल्लीवासियों का उत्साह बढ़ गया और उस उत्साह में उन्होंने किले पर लंबी मार की तोपें भी चढ़ाकर उससे अंग्रेजी सेना पर गोलों की भरमार कर दी। दिल्ली

की सेना ने इस प्रभावी आक्रमण नीति के कारण ब्रिटिश सेना के आक्रमण को रोक दिया और अपने संरक्षण की चिंता ही उन्हें सताती रही। अपने कब्जे के मुकाम कैसे सुरक्षित रखें, इस चिंता में डूबे अंग्रेजों को पंजाब से नई कुमुक मिले बिना एक कदम भी आगे बढ़ना असंभव हो गया और ऐसी बाधा को बढ़ाने के लिए 23 जून, 1857 का दिन उदय हुआ।

23 जून, 1857—प्लासी की लड़ाई के सौ वर्ष पूरे करनेवाला दिन। सौ वर्ष पूर्व ठीक इसी दिन रणनीति के जुए में प्लासी के रणक्षेत्र पर हिंदुस्थान का पासा उलटा पड़ा था। नए—नए अपमान, नई—नई मानहानि में बढ़ोतरी होते—होते सौ वर्ष पूरे हो गए। इस सौ वर्ष में जमा हुए अपमान का प्रतिशोध लेने, राष्ट्र का अपमान धो सकने और राष्ट्र की होने वाली दुर्गति रक्तपात से पोंछ डालने योग्य भयानक प्रतिशोध अंग्रेजों से लेने की प्रबल लालसा से, दिल्ली शहर के सभी सिपाहियों की आंखे आग बरसाने लगीं। हवा की हर लहर से, सूर्य की प्रत्येक किरण से, तोप के धूम—धड़ाके से और तलवार की खनखनाहट से प्लासी का प्रतिशोध, प्लासी का बदला—ऐसी एक ही ध्वनि घनघोर होकर बाहर आ रही थी। प्लासी के दुःखदायी रणक्षेत्र का यह शत सांवत्सरिक (शत वर्षीय) दिन उदय होते ही क्रांतिकारियों की टुकड़ियां शहर के लाहौरी दरवाजे से बाहर निकलने लगी।

अंग्रेजी को भी जिस भयानक संकट का सामना पड़ना है, इसकी पूरी—पूरी जानकारी थी, इसलिए वे रात से ही युद्ध की तैयारी में लगे हुए थे और उन्होंने अपनी सैनिक व्यूह रचना पूरी कर रखी थी। इतना ही नहीं, इस भयानक संकट की जानकारी उन्हें पूर्व में ही हो जाने से उन्होंने कुछ दिन पूर्व ही पंजाब सरकार से सेना की कुमुक मंगा ली थी और उनके भाग्य से भोर ह ोिवह कुमुक आ गई थी। पंजाब से नई सेना आने के समाचार के साथ ही अंग्रेजों के मन में आत्मविश्वास जागा। अंग्रेजों को सेना की नई कुमुक मिली, इस समाचार से या अंग्रेजों ने पिछाड़ी का एक पुल उड़ा दिया, इस समाचार से क्रांतिकारियों के उत्साह पर कुछ भी प्रभाव पड़ा। सब्जी मंडी से वे सीधे आगे बढ़े और अंग्रेजों पर बंदूकों की गोलियों की मार करने लगे। अंग्रेज पैदल सेना ने हमले—पर—हमले किए; पर जैसे वे आगे बढ़ आते वैसे ही क्रांतिकारी भी हर बार पीछे धकेल देते। किले की दीवार का तोपखाना भी अपना काम सही कर रहा था। हिंदुराव बाड़े की भी क्रांतिकारी यथोयोग्य सेवा कर रहे थे। दोपहर 12 बजे लड़ाई पूरे रंग में आ गई। पंजाबी टुकड़ियों, गुरखा पलटन और अंग्रेजों की गोरी सेना पर क्रांतिकारियों ने एक के बाद एक हमले किए। मेजर रीड कहता है—''मेरे सारे स्थानों पर विद्रोहियों ने बड़ी दृढ़ता से लड़ाई लड़ी, इससे अधिक पराक्रम से कोई लड़ नहीं सकता। राइफलधारी सिपाहियों पर, मार्गदर्शकों पर और खास मेरे पास के आदमियों पर उन्होंने बार—बार

हमले किए और एक बार तो मुझे लगा कि आज हम हार गए।''

प्रत्यक्ष राणक्षेत्र पर लड़ते एक वीर अंग्रेज अधिकारी द्वारा ऐसे शब्दों में लिखना क्रांतिकारियों के हमले कितने प्रखर होंगे, इसका प्रमाण था। उसमें भी अग्नि जैसा प्रज्वलित और शक्तिशाली, फैले हुए घटकों को केंद्रित कर सके, ऐसा प्रबल नेता क्रांतिकारियों को मिला नहीं था। स्वदेश को फिर से स्वतंत्र कराने की दुर्दम्य इच्छा और प्लासी के अपमान का गुस्सा–इन दो समान बंधनों से वे क्रांतिकारी एकत्रित हुए थे। भारतीय सेना के हाथों अंग्रेजों का तोपखाना पड़ जाने का भ्रम निर्मित हो गया था और अंत में अपनी सेना को उत्साह देनेवाला मुख्य अधिकारी कर्नल वेल्शमन भी मारा गया। पूरे दिन अंग्रेजी छावनी का हर आदमी दृढ़ता से लड़ता रहा और थकता रहा और अ बवह खड़ा नहीं रह सकता, ऐसा लगने लगा। ऐसा है तब भी अंग्रेज सेनापति को आशा छोड़ देने का कोई कारण नहीं। क्योंकि उसी प्रातः वहां आकर पहुंची ताजा दम स्वामीनिष्ठ पंजाबी टुकड़ी उसे लड़ने के लिए कब अवसर मिलता है, इसके लिए बड़ी उत्सुक या उतावली है। उसको तुरंत हमला करने का आदेश दिया गया और इन ताजे तगड़े सिपाहियों के नए हमले से सारे दिन अविरत लड़ते क्रांतिकारियों को असमान लड़ाई लड़ना अनिवार्य हो गया। फिर भी उस विषम स्थिति में भी रात होने तक क्रांतिकारी निरंतर लड़ते ही रहे और बाद में हम ही जीते हैं, ऐसा कहते दोनों ही पक्ष की सेनाएं अपनी–अपनी शूरता और धीरज की प्रशंसा करते अपने तल पर लौट पड़ी।

जैसे–जैसे दिन हो रहे थे वैसे–वैसे नए सैनिक पथक दोनों पक्षों को मिलते गए। पंजाब से निरंतर सैनिक भरती होते जाने से इस समय अंग्रेजों की ओर सैनिकों की संख्या 7 हजार से अधिक हो गई थी। दूसरी ओर रूहेलखं डमें विद्रोह कर उठे सिपाहियों की पलटन बख्त खान के नेतृत्व में दिल्ली आ गई थी। लॉर्ड रॉबट्र्स कहता है–''रूहेलखंड की विद्रोही सेना नौका पुल पारकर कलकत्ता दरवाजे से शहर में प्रवेश करने लगी। हाथों में बड़े–बड़े झंडे और पताकाएं फहराते, युद्ध घोषणा करते हुए और बड़े ही अनुशासन में संचलन करते शहर में प्रवेश कर रहे हजारों सिपाही हमें अपनी छावनी की टोही टेकरी से दिख रहे थे।'' दिल्ली के भिन्न–भिन्न जातियों और धर्मों के, पहले कभी एक–दूसरे का मुंह न देखे हुए और केवल संयोग से और क्षोभ की आंधी के कारण एक जगह पर आए हजारों सिपाही एकत्र रह ही नहीं सकते थे। शहर की लूटमार और आपाधापी रोकने बादशाह और उसके सलाहकार मंत्रिगण यद्यपि लगातार प्रयत्न कर रहे थे और उपदेशा भी कर रहे थे तब भी हर दिन सिपाहियों की लूटमार, आपाधापी और दंगल मचाने के समाचार आ ही रहे थे। क्रांतिकारियों में ऐसा होना स्वाभाविक होता है।

ऐसी परिस्थिति में इन असंख्य और भिन्न–भिन्न सैनिकों पथकों को संगठित कर एकरूपता निर्माण कर सके, ऐसे किसी नेता की आवश्यकता होती है।

इस समय क्रांति काल में सहजता से प्रकट होनेवाली लोगों की दुष्ट प्रवत्तियों और वाममार्गी मनोवृत्तियों में यद्यपि भयानक उफान कर उनमें अपने लिए भय का निर्माण कर उन्हें अपने काबू में रखा था। परकीय शत्रु को देश के बाहर भगा देने की जो अति उत्कट इच्छा सैनिकों और समान्य नागरिकों मं निर्मित हुई थी उसके बल पर ये हमले हो रहे थे। परंतु अंतिम विजय प्राप्त करना हो तो केवल प्रबल इच्छाशक्ति से काम नहीं होता, उसके लिए संगठित और विधिवत् प्रयास और कर्तव्यनिष्ठ नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इसलिए अपनी सेना सहित और अपार संपति सहित रूहेलखंड का शूर बख्त खान दिल्ली पहुंचा–अर्थात् उसे ईश्वर ने भेजा, ऐसा लगने लगा। इसका वर्णन उसी समय दिल्ली में ही रहते एक सज्जन ने अपनी दैनंदिनी (डायरी) में लिखा है। उस दैनंदिनी का एक उद्धरण उस काल की दिल्ली का केवल दर्शन ही नहीं कराता बल्कि वह लोगों की कुल विचारधारा और घटनाओं पर भी प्रकाश डालता है–

''रूहेलखंड की विद्रोही सिपाही टुकड़ियां जल्दी ही आने वाली हैं, इस अपेक्षा में यमुना का पुल ठीक कर लिया गया। तारीख 2 जुलाई को प्रातः नवाब अहमद कुली खान अपने सरदारों और नागरिकों के साथ रूहेलखंड की सेना का स्वागत करने सामने गया। उस समय हकीम अहसनुल्ला खान, सेनापति सनद खान, इब्राहिम अली खान, गुलाम कुली खान और अन्य नामवर नेता भी उपस्थित थे। रूहेलखंड की सेना के सेनापति मोहम्मद बख्त खान ने बादशाह को अपनी सेवाएं स्वीकार कर लेने का निवेदन किया। बादशाह को उसकी क्या इच्छा है, यह कहन का बख्त खान ने जब आग्रह किया तब बादशाह ने कहा, 'लोगों को पूरी सुरक्षा मिले, उनकी जान और माल की हिफाजत हो और अंग्रेज शत्रु को नष्ट करने का कार्य सफलता से पार पड़े, यह मेरी तीव्र इच्छा है।' उसपर सेनापति ने कहा कि आपकी इच्छा हो तो क्रांतिकारी सेना के सरसेनापति के पद पर मैं काम करने को तैयार हूं। उस समय बादशाह ने बड़े प्यार से सेनापति का हाथ दबाया। वैसे ही भिन्न–भिन्न पलटनों के प्रमुखों को इकट्ठा बुलाकर पूछा गया कि–सारी सेना के सेनापति पद पर बख्त खन का चयन करने को वे तैयार हैं क्या? सब लोगों ने 'हां, हां, कहा। और सरसेनापति के आदेशों का पालन करने की लश्करी और सैनिकी शपथ भी सबने ली।

''यह शपथ विधि पूरी हो जाने पर बादशाह ने फिर से बख्त खान से निजी भेंट

की। सारे शहर में डोंड़ी पीटी गई कि सरदार बख्त खान को सरसेनापति के पद पर नियुक्त किया गया है। तलवार, एक पदक और सेनापति का पद उन्हें अर्पण कर उनका सम्मान किया गया। राजपुत्र मिर्जामुगल को सेनापति पद दिया गया। उसने बादशाह को सूचित किया कि–'शहर में लूटपाट या रक्तपात करते हुए प्रत्यक्ष राजपुत्र भी दिखाई दिया तो तत्काल उसके कान–नाक काटने में मैं आगे–पीछे नहीं देखूंगा। बादशाह ने उत्तर दिया, 'आपको सारे अधिकार दे दिए गए हैं, जरा भी ढील न देते हुए आपको जो उचित लगे वह करो।' शहर कोतवाल को डांटा गया कि उसकी ढिलाई के कारण यदि गांव में लूटपाट या दंगा हुआ तो उसे भी फांसी दे दी जाएगी। बख्त खाने ने कहा कि वह अपने साथ चार पैदल टुकड़ियां, सात सौ घुड़सवार, घोड़ों पर चढ़ी छह तोपें, तीन जमीनी तोपें आदि लश्करी सामग्री लाया है। उसके साथ के सिपाहियों को छह माह का वेतन पहले ही दे दिया गया है और अभी उसके पास चार लाख रूपयों की नगदी होने से सिपाहियों के वेतन या पैसों की आवश्यकता के लिए बादशाह चिंता न करें–ऐसा भी बख्त खान ने कहा। इतना ही नहीं, जो कुछ पैसा लड़ाई में उसके हाथ आएगा वह भी बादशाह के खजाने में तुरंत भरा जाएगा। उसके बाद बादशाह ने चार हजार रूपए मूल्य की मेवा–मिठाई सारी सेना में बांटी। आगरा के सिपाही, नसीराबाद और जालंधर की पलटनें–इन सबपर सरसेनापति बख्त खान का अधिकार था। शहर के हर आदमी को शस्त्र धारण करना पड़ेगा, ऐसा पहला आदेश उसने सरसेनापति के नाते से जारी किया। हर गृहस्थ और दुकानदार भी शस्त्र रखे। जिसके पास शस्त्र न होगा वह वरिष्ठ थाने में जाकर पूछताछ करे तो उसे तत्काल शस्त्र रखे। जिसके पास शस्त्र न होगा वह वरिष्ठ थाने में जाकर पूछताछ करे तो उसे तत्काल शस्त्र दिया जाएगा। पर कोइ भी बिना हथियार न रहे। कोई सिपाही लूटपाट करता दिखे तो तुरंत उसका हाथ काट दिया जाएगा। बख्त खान शस्त्रागार में गया और उसने निरीक्षण कर शस्त्रों और गोला–बारूद निर्माण को गति दी। रात आठ बजे और अहमद कुली खान के साथ राज्य के हालचाल पर चर्चा की। 3 जुलाई के दिन सामान्य परेड के संचलन के समय लगभग बीस हजार सिपाही उपस्थित थे।''[112]

बख्त खान के आगमन के कारण दिल्ली के क्रांतिकारी पक्ष को जब उसने कुछ संगठनात्मक रूप देना प्रारंभ किया–उसी समय दूसरी ओर अंग्रेजी पक्ष को भी पंजाब और अन्य हिस्सों से भी उत्साही और साहसी नई कुमुक मिल रही थी। पंजाब से हाल ही में पहुंचे ब्रिगेडियर जनरल चेंबरलेन की शूरता, उत्साह और कल्पनाशील में बराबरी कर सकें, ऐसे बहुत ही कम आदमी अंग्रेज सरकार के पास थे। प्रख्यात लश्करी इंजीनियर बेअर्ड स्मिथ भी उनसे आ मिला। सिखों से कुछ ही समय पूर्व हुई लड़ाई में जिन्होंने

[112] मेटकॉफ कृत–'नेटिव नैरेटिव्स', पृष्ठ 60 ।

नाम कमाया था ऐसे सारे जॉन लॉरेंस ने दिल्ली में अंग्रेजों की सहायता के लिए भेज दिए थे। सेनापति बर्नार्ड ने पहले कई बार दिल्ली पर हमला करने की बात सोची थी, पर उसे पूरा नहीं किया गया था। अब नई कुमुक मिल जाने से उसने दिल्ली पर सीधे और साहसी आक्रमण करने का निश्चय किया। पहले जैसी ही इस हमले की सारी योजना बनाई गई और 3 जुलाई को हमले की तैयारी के साथ अंग्रेजी सेना कूच कर गई। पर यह क्या? किसी ने यह समाचार दिया कि सरसेनापति बख्त खान ने अंग्रेजों के दिल्ली पर चढ़ाई करने का श्रम बचा दिया! क्योंकि वह स्वयं ही उनपर हमला करने आ रहा है। तारीख 4 जुलाई को बख्त खान फिर चढ़ आया और उसने अंग्रेजों को अलीपुर तक पीछे ढकेला।

दिल्ली गए, दिल्ली शहर पर केवल नजर फेंकी, दृष्टि पड़ी कि उसे सहज ही हमने जीता, ऐसी गर्वोक्तियां दिल्ली को घेरने के पहले जो अंग्रेज करते थे वे पंजाब से नई प्रबल पलटनें आने के बाद भी—पूरे एक माह में एक कदम भी—आगे नहीं बढ़ा पाए। यह देखकर भावना प्रधान सेनापति बर्नार्ड को अति दुःख और शर्म लगती। अंग्रेज दिल्ली जीतने को जितने आतुर थे उससे भी अधिक उनका आत्मविश्वास उसे सहज ही जीतने का था। वह ऐसा आत्मविश्वास था कि मुंबई, कलकत्ता और मद्रास तक दिल्ली जीत लेने का समाचार फैल गयां और जब अंग्रेजों को बार—बार यह दिखाई दिया कि ये समाचार निराधार हैं तब सारे हिंदुस्थान के लोग एक—दूसरे से पूछने लगे—''दिल्ली में अंग्रेजी सेना कर क्या रही है?'' यही चिंता और शर्म बर्नार्ड के मन में बस गई थी और पहले की इस अंधकारमय परिस्थिति से कुछ भिन्ना हो सकेगा, उस समय ऐसा उसे नहीं लगता था। उलटे भावी समय का विचार करते हुए उसे वह अधिक अंधियारा ही लगता। सिपाहियों के लगातार होनेवाले हमलों के कारण उसे रत्ती भर विश्राम नहीं मिलता था। इतना ही नहीं, क्रांतिकारियों की उस राजधानी पर सीधा और साहसी हमला करने की उसकी महत्त्कांक्षा उगते हर नए दिन धुलती जा रही है, उसे ऐसा दिखता था। अंत में शरीर से थका, मानसिक चिंता से ग्रस्त और निराशा में डूबा हुआ अंग्रेज सेनापति बर्नार्ड 5 जुलाई को हैजे की महामारी की बलि चढ़ गया। इस समाचार से अंग्रेजी छावनी की सेना पर जैसे दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा। दिल्ली में प्रवेश करने का प्रयास करनेवाला यह दूसरा अंग्रेज सेनापति दिल्ली में तो नहीं, कब्र में प्रवेश करने में सफल हुआ। उसके बाद सेनापति रीड ने सेना के अधिकार सूत्र अपने हाथ लिये और वह अंग्रेजी सेना का तीसरा सेनापति हो गया।

अंग्रेजी छावनी में हमला करने की जब योजनाएं बन रही थीं, दिल्ली के नागरिकों तब प्रत्यक्ष कृति कर रहे थे। स्थानाभाव के कारण उन सबका वर्णन यहां नहीं कर सकते। ऐसा होते हुए भी 9 जुलाई और फिर से 14 जुलाई के दिन जिस दृढ़ता से

क्रांतिकारी लड़े और अंग्रेजों की तरह ही क्रांतिकारियों ने शूरता का कमाल दिखाया–वे अवसर महत्त्वपूर्ण और स्फूर्तिदायक होने से उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। पहले दिन अंग्रेजी घुड़सवार को हराकर उन्हें भगा दिया गया। अंग्रेजी तोपखाना बंद कर दिया गया। एक शूर सिपाही ने हिल और उसके घोड़े दोनों को ही मार गिराया। हिल ने मरते–मरते अपनी तलवार निकाली, तभी तीन सिपाही उसपर झपट पड़े। हिल ने दो बार गोली दागने का असफल प्रयास किया। एक सिपाही अपनी तलवार निकालने में सफल हुआ। दोनों की लड़ाई हुई, दोनों नीचे गिरे। हिल भूमि पर सीधी गिरा और उसके सीने पर एक पैर रखकर हाथ में तलवार लिये एक सिपाही खड़ा था। मेजर टॉब्स ने तीस फीट दूर से यह दृश्य देखा और उसने निशाना साधकर सिपाही पर गोली चलाई और उसे मार डाला। मेजर टॉब्स ने हिल को भूमि पर से उठाया और वह उसे हिलाने लगा था। उसी समय दूसरा सिपाही हिल की पिस्तौल हाथ में लेकर उसपर हमला करने चला आ रहा है, यह देखकर वह आश्यर्चचकित हो गया। उस सिपाही ने दो–तीन अंग्रेजों से अकेले ही लड़ते हुए एक को तलवार से घायल कर दिया, दूसरे को मार डाला और तीसरे की तलवार से वह स्वयं ही बलि हो गया। टॉब्स और हिल को उनके द्वारा दिखाई गई शूरता के लिए 'विक्टोरिया क्रॉस' दिए गए और सर जॉन के कहता है कि उस बहादुर सिपाही को भी 'बहादुर शाह क्रॉस' मिलना चाहिए था। उस स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुए, हुतात्मा हुए कितने ही वीर 'बहादुर शाह चक्र प्रत्यक्ष मृत्यु देवता की ओर से मिलने का सौभाग्य उन्हें मिलता है, यह बात सत्य थी! उस दिन अंग्रेजी सिपाहियों का अपमान भरा पराभाव हुआ, पर इसका प्रतिशोध क्रांतिकारियों से ले न सकने के कारण वे शूर अंग्रेज अपनी छावनी में लौट गए और वह प्रतिशोध अपनी सेवा कर रहे निरपराध भिश्तियों और अन्य भारतीय लोगों को मार उनके टुकड़े–टुकड़े करके रक्त कुंड में डाल लिया।[113]

सच में देखा जाए तो इन्हीं भिश्तियों और अन्य भारतीय लोगों ने अंग्रेजी सेना को उसकी उत्तम सेवा–चाकरी कर लड़ने की स्थिति में बनाए रखा था। पर 14 जुलाई के आक्रमण में इससे बुरी स्थिति हुई। क्योंकि इसी दिन शूर चेंबरलेन को एक सिपाही

[113] ''बताया जाता है कि सामने शत्रुओं के न होने पर कतिपय गोरे सिपाहियों ने उन निरीह, निरपराध कर्मचारियों और नौकरों तथा अन्य लोगों की ही हत्याएं कर डालीं, जो ईसाई श्मशान के समीप भयभीत होकर एकत्रित हो रहे थे। कितनी भी निष्ठा कोई पद्रर्शित करे, उसका जी भरकर ढिंढोरा पीटे, कष्ट उठाए, पूरब की मैली वरदी पहने प्रत्येक व्यक्ति से गोरे जो द्वेष रखते हैं, वह तो कदापि कम नहीं होगा।''

–के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 438

ने गोली चलाकर मार डाला। चेंबरलेन की मृत्यु के कारण हुई राष्ट्रीय हानि एवं दुःख का वर्णन अंग्रेज इतिहासकार इन शब्दों में करते हैं–''हमारे पक्ष का श्रेष्ठ योद्धा, कीर्ति से पहला और सम्मान में प्रथम! चेंबरलेन का शव जिस हमारे शिविर में फिर से लाया गया वह हमारे इतिहास का एक अति दुःखदायी दिन था।''

इस तरह 15 जुलाई बीत गई, फिर भी दिल्ली के प्रासाद–शिखर अपने मस्तकों पर सूर्य किरण–से चमचमाते ध्वज, पताका, झंडियां खड़े कर विश्व को चिल्लाकर कह रहे थे कि दिल्ली शहर दे रही थी, इसलिए स्वयं रीड ने इस्तीफा दिया, अधिकार–त्याग किया और हिमालय की टेकरियों में जाकर वहां रहने लगा। अंग्रेजी सेना का यह तीसरा सेनापति था। दो को भूमि में गाड़ा गया और तीसरे ने अपना अधिकार छोड़कर अपने प्राण बचाए। इतना हुआ तब भी दिल्ली अजित ही बनी रही। क्वार्टर मास्टर जनरल बेचर एवं ॲडज्यूटंट जनरल चेंबरलेन अपने शिविर में ही पड़े मृत्यु के पल गिन रहे थे तब भी दिल्ली जीत न सके। इतना ही नहीं, क्रांतिकारियों की ओर से होनेवाले निरंतर और त्रासदायक हमलों से कैसे बचा जाए, यह प्रश्न अंग्रेजों को सता रहा था; क्योंकि क्रांतिकारियों की संख्या इस समय 20 हजार तक हो गई थी। क्रांतिकारियों द्वारा किए जानेवाले हर हमले में उनका काफी मनुष्य–बल खर्च हो जाता था, फिर भी उसका अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं था। पर उनके मुट्ठी भर सैनिक मर जाने से अंग्रेजों का संख्या–बल घटता जा रहा था। इसलिए अंग्रेजों ने अब सुरक्षात्मक नीति अपनाई। आक्रमण में होनेवाली मृत्यु से क्रांतिकारियों की शक्ति विशेष दुर्बल नहीं होती थी और उनके आक्रमणों में भी बाधा नहीं आती थी, उलटे वे अधिक निश्चयी और निर्भय होकर अभिमानपूर्वक कहने लगे कि ''अंग्रेजों की विजय का मूल्य पराभव जितना ही है।''

सारे हिंदुस्थान में फैले हुए अंग्रेज भी टीका करने लगे, शिकायतें करने लगे और स्पष्टता से लिखने लगे–''घेरा डालनेवाले ही घेरे में फंस गए हैं।'' और ऐसी स्थिति में जब तीसरा सेनापति निवृत्त हुआ तब ग्रेट हेड, चेंबरलेन और रॉटन जैसे रणवीरों को दिल्ली पर हमला करने की आशा छोड़ देनी पड़ी। प्रत्यक्ष मुख्यालय में, मुख्य छावनी में ही त्यागपत्र दिया और उसके स्थान पर चौथा सेनापति ब्रिगेडियर जनरल विल्सन आया, तब दिल्ली में अंग्रेजों की ऐसी करूणास्पद स्थिति हो गई थी।

प्रकरण–2

हैवलॉक

जब सिख सिपाहियों ने इलाहाबाद का किला क्रांतिकारियों को न सौंपकर अंग्रेजों को दे दिया, तभी से अंग्रेजों ने उसे अपनी कार्यवाही का मुख्य शिविर बनाया। उत्तर हिंदुस्थान की मुलुकी और लश्करी कार्यवाहियां कलकत्ता जैसे दूरस्थ केंद्र से करनी पड़ती थीं और उसमें धोखा था, जो इस नए केंद्र के कारण नहीं रहा। विद्रोह का शमन होने तक राजधानी इलाहाबाद में ही रखने का निर्णय लॉर्ड केनिंग ने किया और कुछ ही दिनों में वह स्वयं इलाहाबाद रहने के लिए चला आया। परंतु तभी कानपुर के अंग्रेजों की भागम–भाग के समाचार और उनके द्वारा सहायता के लिए मचाई गई चिल्लपों सुनाई देने लगी, इसलिए जनरल नील ने इलाहाबाद की सुरक्षा के लिए थोड़ी सी सेना रखकर शेष सारी सेना को मेजर रेनॉल्ड के नेतृत्व में कानपुर का घेरा तोड़ने के लिए भेज दिया। यह सेना रास्ते के गावों में मन मरजी आग लगाते बढ़ी। उस समय कानपुर की अंग्रेजी सेना के सेनापति पद पर नील के स्थान पर हैवलॉक की नियुक्ति हुई। वह जून के अंत में इलाहाबाद आया। वह सैनिक कार्यवाहियों में पारंगत और अनुभवी अधिकारी था। अंग्रेजों के सौभाग्य से इधर विद्रोह के प्रत्यक्ष फूट पडत्रने के समय अंग्रेजों का ईरान से चल रहा युद्ध समाप्त हो गया और उस अभियान में लगी सारी यूरोपियन सेना हैवलॉक जैसे सेनानी सहित हिंदुस्थान में ऐन आपात स्थिति में आ पहुंची। हैवलॉक के इलाहाबाद में मुख्य अधिकारी होकर आ जाने से उसके अधीन काम करना पड़ेगा, यह देखकर नील के मन में यद्यपि बड़ा मत्सर जागा, फिर भी उसने सार्वजनिक कर्तव्य में

मत्सर या खेद के कारण कोई ढिलाई नहीं आने दी। हैवलॉक के साथ जानेवाली सेना की उसने स्वयं की सेना जैसी ही उत्तम व्यवस्था की। उसे दाने–चारे की सहायता की और हैवलॉक के आते ही अपना चार्ज उसको बिना किसी विवाद के सौंप दिया। इस सेना के कानपुर के अंग्रेजों की सहायता के लिए जाने की तैयारी होने पर हैवलॉक बड़े उत्साह से उधर जाने को था कि उसे समाचार मिला कि कानपुर में सर हो व्हीलर ने पराजित होकर विद्रोहियों के सामने समर्पण कर दिया और उसके सहित अंग्रेज पुरूषों का गंगा किनारे भयानक कत्ल हो गया।

जीवित अवस्था में जिसे सुरक्षा प्रदान करना असंभव हुआ अब उसकी मृत्यु का निष्ठुर प्रतिशोध लेना ही होगा, ऐसी प्रबल इच्छा से हैवलॉक इलाहाबाद से कानपुर की ओर तेजी से निकला। उसके चुने हुए एक हजार युरोपियन पैदल, सौ–डेढ़ सौ सिख, यूरोपियन घुड़सवारों की छोटी सी एक टुकड़ी और छह तोपें–इतनी सेना क्रोधित हो जान की बाजी लगाने निकली थी–नए अधिकारियों और सिपाहियों को उस प्रदेश की जानकारी देने के लिए, लड़ाई में स्वयं लड़ने के लिए और लड़ाई के बाद क्रूर प्रतिशोध लेने के लिए । विद्रोही सिपाहियों की रेजिमेंट में से या विद्रोही नागरिकों द्वारा दया भाव से जान–बुझकर जीवित छोड़े या लापरवाही से जीवित छूटे हुए कितने ही लश्करी और मुलुकी अधिकारी उस सेना के साथ चल रहे थे। जो अकेले–अकेले हाथ पड़ते तो एक शब्द के साथ ही विद्रोहियों द्वारा जला दिए जाते, वे ही अंग्रेज लोग आज फिर से इकट्ठे होते ही, उनके कारण गांव–के–गांव राख होने लगे।

रीड के अधीन एक टुकड़ी फतेहपुर की ओर आ रही है, यह समाचार करनपुर पहुंचते ही नाना साहब ने विद्रोहियों में से बहुत सी सेना उधर भेज दी। ज्वाला प्रसाद, टीका सिंह और इलाहाबाद के मौलवी के नेतृत्व में रीड में मुट्ठी भर अंग्रेजों का पहले ही प्रहार में चित करके विजयश्री के साथ तुरंत ही कानपुर लौट आएंगे, इस उत्साह से निकली विद्रोहियों की सेना फतेहपुर के पास आ पहुंची। उसी समय अचानक रीड की टुकड़ी से हैवलॉक की सेना आ मिली। और इस सम्मिलित अंग्रेजी सेना ने विद्रोहियों की सेना आ गई–यह सुनते ही अपनी तोपों को बत्ती दी। यह लड़ाई 12 जुलाई को हुई। रीड की टुकड़ी को बात–की–बात में नष्ट कर देंगे, इस विश्वास से विद्रोहियों द्वारा अंग्रेजी सेना पर हमला करते ही मुट्ठी भर लोगों के स्थान पर तोपखाने के साथ सर्वांगपूर्ण हैवलॉक की गोरी सेना रणांगण में कूद आई। यह धोखा एकाएक सामने आ जाने से विद्रोहियों में दहशत बैठ गई और वे अपनी तोपें रणांगण में छोड़कर भागने लगे। उनका पीछा करना संभव न होने से उन्हें छोड़ अंग्रेजी सेना फतेहपुर शहर में घुस गई। इस फतेहपुर शहर ने जब विद्रोह किया था तब वहां की अगुवाई अंग्रेज सरकार के नौकर, डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर आसीन हिकमतुल्ला नामक एक मुसलमान ने की थी। और इस शहर में यूरोपियन अधिकारियों का रक्त भी विद्रोही नागरिकों की तलवारों ने पिया था। उस रक्तप्रिय शहर पर अब प्रतिशोध की तलवार आ पड़ी। विद्रोह होने पर लोगों

को न मारते हुए छोड़ दिया गया। उस शहर कापूर्व मजिस्ट्रेट शेररे उस विजयी सेना के साथ आया था और बहुत दिन से रूकी हुई अपनी मजिस्ट्रेटी चलाने को वह अब उत्सुक था। इसलिए पहले लश्कर को शहर लूटने का आदेश दिया गया और जब उस शहर में लूटने के लिए कुछ भी शेष न रहा तब उस शहर को आग लगा देने का दूसरा आदेश हुआ। परंतु इस आदेश के पालन का सम्मान कवेल सिख सिपाहियों को ही दिए जाने के कारण गोरी सेना के फतेहपुर से निकलते ही सिखों ने उन्हें सौंपी गई खास कार्यवाही सपंन्न करते हुए उस शहर को आग लगा दी और फिर वे मुख्य सेना से जाकर मिल गए।

फतेहपुर शहर को जब अंग्रेजी सेना जीवित जला रही थी तब उसकी जवालाओं की पलटें फैलते–फैलते जल्दी ही कानपुर को गरमी देने लगीं। मेजर रीड की टुकड़ी को मारने के लिए अपनी सेना टूटी तभी मेजर हैवलॉक की सेना ने अकस्मात् हमला कर उन्हें भगा दिया। फतेहपुर शहर में अंग्रेजी सेना ने प्रवेश किया और वहां की सपंत्ति लूटकर आदमियों को आग में भस्म कर डाला–ये समाचार नाना के दरबार खौलने लगा। कानपुर पर आक्रमण करने आ रहे अंग्रेजों को पांडु नदी पर ही रोक लेने के लिए नाना साहब के अधीन एक सेना भेजने को नाना का दरबार उठा तो अंग्रेजों की ओर गए हुए कुछ दगाबाज जासूस पकड़े जाने का समाचार आया। इन दगाबाज जासूसों की जांच में यह सिद्ध हो गया कि उनमें से कुछ को नाना की कैद में रह रह गोरी महिलाओं ने इलाहाबाद के अंग्रेजों को विश्वासघाती पत्र लिखे हैं।[114] सिपाहियों के कत्लेआम से जिनका अबला कहकर नाना ने बचाव किया उनकी इन गुप्त कार्यवाहियों का डंका पिट जाने पर इन कुटिल गोरी स्त्रियों का क्या किया जाए, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ। फतेहगढ़ अंग्रेजों ने जलाया वैसे ही यह बीबीगढ़ भी हम क्यों न जलाएं? उस दिन की खास बैठक में टीका सिंह ने कहा–''ये महिलाएं कानपुर के बीबीगढ़ में ऐसे ही रहीं तो अपनी पराजय होने पर कानपुर शहर को अंग्रेज राख तो करेंगे ही, पर उनके कथन के आधार पर हजारों लोग अंग्रेजों के द्वेष की बलि चढेंगे, इसलिए मेरे विचार से कानपुर से अंग्रेज भिड़ें, इसके पूर्व ही यहां की आंतरिक जानकारी देने को एक भी गोरी चमड़ी शेष न रहे।[115]

बीबीगढ़ में जो महिलाएं थीं उनमें से कितनी ही कानपुर में दस–दस वर्ष से रह रही थी। अंग्रेजों के विरूद्ध जो लड़े उनमें से बहुतेरे नागरिकों को वे नाम–पते सहित

[114] 1 ''फतेहपुर में क्रांतिकारी सेना की पराजय के उपरांत कतिपय प्रसिद्ध गुप्तचरों को नाना साहब के समक्ष उपस्थित किया गया। बंदीगृह में पड़ी कुछ असहाय महिलाओं द्वारा सुदूर स्थानों को लिखें पत्रों के कतिपय इन गुप्तचरों के पास होने का आरोप लगाया था। उन पत्रों में कतिपय महाराजाओं तथा नगर के 'बाबू' लोगों का हाथ होने की आशंका व्यक्त की गई थी। तभी यह निश्चय किया गया कि उन गुप्तचरों तथा उन अंग्रेज पुरूषों तथा महिलाओं का भी वध कर दिया जाए, जिन्हें प्राणदान दे दिया गया था।''

[115] 2 Forrest's Introduction में फॉरेस्ट कहता है–''आगे साक्ष्य न मिले, इसलिए कत्लेआम का आग्रह–पहला प्रस्ताव टीका सिंह ने किया।''

जानती थीं। अतः उनके अस्तित्व का विष भरा पात्र भंग न किया तो वह कानपुर को जीवन को हानि किए बिना चुकेगा नहीं, ऐसा इस सभा में सबका विचार बना। उस कैदखाने को बीबीगढ़ कहा जाता था, पर उसमें नाना के आदेश से बचे हुए कुछ पुरूष भी थे। उन सबको उनके विश्वासघाती पत्र ले जानेवाले जासूसों सहित मार डाला जाए, ऐसा सर्वसम्मत निश्चय कर उसे घोर रात क यह घोरतम सभा विसर्जित हुई। दूसरे दिन उन जासूसों और कैद में पड़े गोरे पुरूषों को बाहर खींचा गया। एक कतार में वे खड़े रहे और स्वयं नाना साहब के सामने पहले उन जासूसों के सिर सटासट उड़ाए गए और बाद में कैद के गोरे पुरूषों को आगे लाकर गोली से मार डाला गया। नाना साहब के वहां से उठते ही उन गोरे लोगों के शवों के पास आकर लोग मजाक करने लगे, ''देखो, यह मद्रास का गवर्नर , यह बंबई का, यह बंगाल का ..''

ऐसा मजाक इधर चल रहा था और उधर बीबीगढ़ के पहरेदार सिपाहियों को अंदर घुसकर कत्ल करने का आदेश हुआ। पहरेदार ऐसा कत्लेआम करने का साहस न जुटा सके। तब ऐसे सिपाहियों से अधिक योग्यता का आदमी चाहिए, यह देखकर उस बीबीगढ़ की मुख्य अधिकारी बेगम साहब ने कानपुर शहर की खटीक बस्ती में वह आदेश भिजवाया। थोड़ी देर में हाथों में नंगी तलवारें और तेज छुरियां लेकर खटीक लोग उस बीबीगढ़ में शाम के समय अंदर घुसे और काफी रात गए बाहर आए। उनके उस घुसने और निकलने के बीच गोरे रक्त का लाल–लाल समुद्र फैल गया। बीबीगढ़ में घुसते ही उन्होंने हाथ की तलवार और छुरियों से कोई डेढ़ सौ गोरी महिलाएं और गोरे बच्चे काट डाले। उस जह पर रक्त की तलैया भर गई और उस रक्त में नरमांस के टुकड़े तैरने लगे। अंदर जाते समय वे खटीक जमीन पर से चलते गए और बाहर निलते समय उन्हें रक्त जल का प्रवास करना पड़ा। रात को बीबीगढ़ में अधमरों की चिल्लाहट, मरणोन्मुखी के आर्तनाद सुनाई दे रहे थे। भोर होते ही एक–दो बच्चे ऊपर आ गए और कुएं के किनारे भागने लगे। लेकिन धक्का लगकर वे भी मरे हुओं पर गिर गए। उन मरों पर मरे हुए और उनपर फिर मरे हुए। आज तक आदमी कुएं का पानी पीता था, परंतु आज कुएं ने आदमी का रक्त पीना चालू किया। फतेहगढ़ में जलते हुओं का आर्तनाद अंग्रेज आकाश में फेंक रहे थे, तभी बीबीगढ़ में रक्त से सनी गोरी चीखें पांडे पाताल में फेंक रहे थे। मनुष्य प्राणी की इन दो भिन्न जातियों में सौ वर्ष से जमा रकम का हिसाब इस तरह चुकता होने लगा।[116] कानपुर का कुआं, इसे भरने का जो–जो

[116] ''क्रूरता की पराकाष्ठा, अवर्णनीय लज्जा आदि विशेषणों से इस पाश्व हत्याकांड का वर्णन किया गया है, किंतु ये सब तो विभ्रांत कल्पना शक्ति की मनगढंत बातें ही हैं, जिनपर बिना किसी

प्रयास हुआ वह विफल हुआ। बंगाल की खाड़ी भी कालप्रवाह में भर जाएगी, पर यह कानपुर का कुआं कभी नहीं भरेगा।

इसी समय पांडु नदी पर पहुंची नाना की सेना का पराभाव करते हैवलॉक आगे घुसता गया। नाना की सेना के सेनापति बाला साहब पेशवा के कंधे में गोली लगने से उनके वापस कानपुर आते ही नाना ने तुरंत एक युद्ध सभा बुलाई। लड़ाई न करके कानपुर छोड़ें या कानपुर छोड़ने के पूर्व मैदान में एक जोरदार टक्कर देकर देखें–इन दो मुद्दों पर युद्ध सभा में बहुत चर्चा होकर अंत में दूसरे रास्ते का अनुसरण करना तय हुआ। 16 जुलाई को अंग्रेजी सेना कानपुर के पास आने लगी। कानपुर के कुएं की कथा उन्हें अभी तक ज्ञात न होने से यद्यपि व्हीलर ला का किला हाथ से निकल गया, तब भी बीबीगढ़ को विद्रोहियों के कब्जे से छुड़ा लेने की जिद उन्हें धूप, श्रम और लड़ाई में भी एक क्षण विश्राम नहीं लेने रे रही थी। कानपुर शहर के शिखर दिखते ही हैवलॉक को इष्ट समय आने का उत्साह चढ़ने लगा। उसने पांडे की सेना क बारीक जांच शुरू की। कानपुर के रण पर इतनी उत्तम रीति से व्यूह रचकर खड़ी सेना को देखकर रण क्षेत्र में पूरा जीवन गुजार देनेवाले उस योद्धा को ऐसा उगने लगा कि विद्रोहियों में अपेक्षा से अधिक लश्करी चतुराई भरी हुई है। उसने अपने अधिकारी इकट्ठा किए और उन्हें हाथ की तलवार के छोर से धूल पर लश्करी आक्रमण का अपना नक्शा खींचकर बताया। विद्रोहियों पर सामने से आक्रमण करने के स्थान पर बाईं ओर पहले हमला करना चाहिए, यह हैवलॉक अपनी सेना को समझा रहा था, तभी विद्रोहियों की व्यूहबद्ध सेना में एक सफेद घोड़े पर सवार होकर श्रीमंत नाना साहब आ मिले। सिपाहियों को उत्साहित करते इस छोर से उस छोर तक नाना साहब घोड़ा दौड़ते अंग्रेजों की छावनी से स्पष्ट दिख रहे थे।

दोपहर के समय अंग्रेजों का नाना के बाएं बाजू पर हमला हुआ। इस अकस्मात् और अनपेक्षित स्थान पर हुए अंग्रेजों के जोरदार हमले को रोकने के लिए विद्रोहियों की तोपें गरजने लगीं। अंग्रेजी तोपखाना आने में विलंब हो जाने के कारण विद्रोहियों का जोर बढ़ गया। परंतु विद्रोहियों की बढ़त देखकर क्रोधित हैवलॉक जब फिर से एक बार चढ़ाने करने लगा–अंग्रेजी हायलैंडर्स मुंह घुमाकर सीधे तोपों पर दौड़ गए और जब एक कदम भी पीछे न रहते मृत्यु या विजय, ऐसा पक्का निश्चय कर अंग्रेजी सेना बिजली–सी टूट पड़ी तब उस एकीकृत, अनुशासित और अनपेक्षित मार को सहन करने

117

[117] – प्रकार का ध्यान दिए ही विश्वास कर लिया गया। (परिणामों की तनिक भी चिंता न की गई) बिना विचारे ही उनका प्रसार और प्रचार किया गया। किसी का अंगच्छेद न हुआ, किसी का अपमान नहीं हुआ। यह साक्षी दी है, क्योंकि उन्होंने जून और जुलाई मास में हुई हत्याओं से संबद्ध प्रत्येक बात का खोजपूर्ण अवलोकन किया था।'' –के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 281

में पूर्णतः असमर्थ हुई विद्रोहियों की सेना बाएं बाजू की तोपें छोड़ भाग खड़ी हुई। बायां बाजू इस तरह पिटते ही अंग्रेजों के पैदलों ने विद्रोहियों के दाएं बाजू को भी पराभूत कर दिया। अंग्रेजी सेना विजयी हुई, यह देखते ही विद्रोही कानपुर के रास्ते पीछे हटने लगे। परंतु अब निराशा का अवसाद भरा होने के कारण फिर से एक बार नाना ने उन्हें इकट्ठा किया और आरक्षित रखी तोपों की सहायता से फिर से युद्ध करने का प्रयास किया। इस समय नाना ने उत्साहित करने और स्वयं अगुवाई कर साहस लाने की कोशिश की, फिर भी हताश हुए सिपाही और विजय से उन्मत्त अंग्रेजी सोल्जर इन दोनों के मध्य का अंतर पाटना बहुत कठिन था। अंग्रेजों ने एक हमला और किया और निराशा से भरी टक्कर विफल हो गई और कानपुर के रण क्षेत्र में विजयश्री फेंककर विद्रोही ब्रह्मवर्त की ओर भाग खड़े हुए।[118]

17 जुलाई को प्रातः हैवलॉक की विजयी सेना कानपुर शहर में प्रवेश करने लगी। अस्तत होती अंग्रेजी आबरू को फिर से जीवन देनेवाली यह सफलता की पहली लहर कानपुर में लानेवाले हैवलॉक और उसकी सेना का हिंदुस्थान और इंग्लैंड में जहां–जहां भी गोरे रहते थे वहां–वहां धन्यवाद की दीवारों पर इधर–उधर हैवलॉक का नाम खुदा हुआ था।

कानपुर शहर को लूटने का आदेश मिलते ही हजारों अंग्रेजी सोल्जर, अधिकारी और सिख सिपाही उस शहर पर गिद्धों जैसे टूट पड़े। बीबीगढ़ में अंग्रेजी महिलाओं का रक्त जमा देखकर उसे धोने के लिए हैवलॉक ने शहर के उन ब्राह्मणों को पकड़कर बुलाया जिनपर विद्रोह में सम्मिलित होने का शक था। उन्हें फांसी का दंड देकर फांसी पर लटकाने के पहले वह जमा हुआ रक्त जीभ से चाटने और फिर वह हिस्सा हाथ से झाड़ू लेकर धोने का बाध्य किया गया। जिन्हें एक क्षण के बाद मार डालना हे उनको यह अप्रतिम दंड देने का कारण देते हुए अंग्रेज अधिकारी कहते हैं, ''फिरंगी रक्त का स्पर्श करना और वह भंगी के झाड़ू से धोना, यह बात उच्च जाति के हिंदुओं को धर्मभ्रष्ट करनेवाली है, यह मुझे मालूम है। इतना ही नहीं, यह ज्ञात है, इसीलिए मैं उनसे यह करा रहा हूं। अपने स्वधर्म में मरने का अल्प संतोष भी उन्हें न रहे, इसलिए उनकी धर्मभावनाओं को जान–बुझकर पैरों तले रौंद फिर उन्हें फांसी पर चढ़ाने के अतिरिक्त वास्तविक प्रतिशोध नहीं लिया जा सकता।'' अंग्रेज लोगों की हुई आमहत्या में विद्रोहियों ने उनके धर्म संबंधी अत्याचार नहीं किए। इतना ही नहीं, जब–जब मरने के पहले अंग्रेजों ने

[118] रेड पैंफलेट का प्रसिद्ध लेखक कहता है–''ऐसी कानपुर की लड़ाई हुई–विद्रोहियों ने अच्छी टक्कर दी। तलवार ने तलवार भिड़ गई, फिर भी उनमें से बहुत हटे नहीं, तोपें ढंग से संभाली और उनकी गोलदांजी भी निशाने पर थी।''

बाइबिल पढ़ने की अनुमति मांगी तब–तब वह उन्हें दी गई। परंतु दिल्ली और कानपुर में मरनेवालों को स्वधर्म में मरने का संतोष भी अंग्रेजों ने नहीं दिया।

फिर भी, ऐसी दुर्दशा में भी जिन्होंने मृत्यु को सिद्धांतनिष्ठा के साथ धैर्य से मुस्कुराते हुए स्वीकारा, ऐसे धीर जनों ने कानपुर की फांसी को कुछ कम अलंकृत किया था, ऐसा नहीं। चार्ल्स बॉल लिखता है–''जनरल हैवलॉक ने सर हो व्हीलर की मृत्यु का भयानक प्रतिशोध लेना प्रारंभ किया। नेटिव की टोलियों–परे–टोलियां फांसी पर चढ़ने लगी। इन विद्रोहियों में से कुछ ने मृत्यु के समय जो मानसिक अचलता और धैर्य का प्रदर्शन किया वह किसी सिद्धांतप्रियता के लिए आत्मयज्ञ करनेवालों के लिए भूषणभूत होने वाला था। कानपुर के स्वदेशी मजिस्ट्रेटों में से जिन्होंने विद्रोह में नाना की विपुल सहायता की थी और जो फिरंगियों का कट्टर द्वेषी था, ऐसे एक मजिस्ट्रेट की जांच चलने और उसे अधम, नीच जनोचित मृत्यु का दंड दिए जाने पर वह इतना निश्चित दिख रहा था मानो वह मृत्युदंड उसे न दिया जाकर दूसरे ही किसी को दिया जा रहा है। प्रशांत स्थिरता से उठ उसने जज की ओर पीठ फेरी और अपने लिए खड़ी की गई फांसी की ओर वह दृढ़ पदन्यास से चलकर गया। जल्लाद लोग फांसी की अंतिक तैयारी कर रहे थे। रत्तीभर भी कंपित हुए बिना निश्चल मुद्रा से वह जल्लादों के काम को सहज देख रहा था और जरा भी विचलित हुए बिना जैसे योगी समाधि में जाते हैं वैसे ह ीवह संतोष के साथ फांसी में घुसा। उसकी धर्मनिष्ठता से उसे मृत्यु का डर नहीं रह गया था। फिरंगियों के दुष्टापूर्ण संसर्ग से छूटकर परलोक का ध्रुव सुख देनेवाला रास्ता ही मृत्यु है–यह जिसके धर्म की निष्ठा थी उसे मृत्यु का डर कैसे स्पर्श करे।''[119]

कानपुर शहर में अंग्रेजी सेना ऐसा स्वच्छंद प्रतिशोध ले रही थी–मुट्ठी भर अंग्रेज सेना और राजनिष्ठ सिख सिपाहियों ने इलाहाबाद से चलने के बाद व्यवस्था, अनुशासन, संगठन और संकल्प से भरी लश्करी शूरता प्रदर्शित की थी, उसकी यथार्थ स्तुति कर अपनी सेना को उत्साहित करने के लिए हैवलॉक ने यह लश्करी आदेश जारी किया–''सोल्जर्स, तुम्हारे सेनापति को तुम्हारे व्यवहार से संतोष हुआ है। निष्ठा और संकल्प में कुशल ऐसी दूसरी सेना उसने नहीं देखी है। 7 और 16 तारीखों के बीच जुलाई के तीखे सूरज की परवाह किए बिना तुमने एक सौ बीस मील आ क्रमण किया और चार लड़ाइयां जीती।'' पर हाथ में लिया काम पूरा किए बिना झूठा संतोष मानकर चुप बैठनेवाला जनरल हैवलॉक नहीं था। समाप्ति के सिवाय समापन नहीं, यह उसकी टेक थी। उसने उपर्युक्त प्रोत्साहन देकर आगे कहा, ''तुम्हारे लोग लखनऊ में संकटग्रस्त हैं। आगरे में घेरा लगा है। विद्रोही क्रांति के हाथों में दिल्ली अभी भी फंसी है। तुम्हें सफलता पानी है तो तुम्हें स्वार्थ–त्याग ही करना पड़ेगा। तीन नगर संभालने हैं, दो बंधन

[119] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 1, पृष्ठ 388 ।

मुक्त करने हैं। यह सब कार्य निश्चित ही पूरे करोगे, इसका तुम्हारे सेनापति को पूर्ण विश्वास है। केवल तुम उतने ही उत्साह से उसकी सहायता करो और तुम्हारी बहादुरी जितना ही तुम्हारा अनुशासन भी दृढ़ बना रहे।''

हैवलॉक के पीछे–पीछे जनरल नील भी इलाहाबाद की सुरक्षा के लिए आवश्यक अंग्रेजी सेना रखकर शेष सेना के साथ कानपुर पहुंच गया। समान अधिकारवाले ये दो अधिकारी एक स्थान पर आते ही दोनों को ही सारी सेना अपने अधिकार में हो, ऐसी महत्त्वकांक्षा उत्पन्न होने के कारण पहले ही बहुत अधिक अनुशासनहीन हुई अंग्रेजी सेना में और अधिक अनुशासनहीनता होने की आशंका है, यह देखकर हैवलॉक ने नील को साफ–साफ कहा, ''जनरल नील, अब हम दोनों एक–दूसरे का साफ पहचान लें तो ठीक होगा। जब तक मैं यहां हूं, पूरा शासन मेरे अधीन रहेगा, तुम कोई भी आदेश जारी नहीं करोगे।'' इस सार्वजनिक कार्य में व्यक्ति विषयक मत्सर न हो, इसलिए कानपुर को नील ने संभाला और लखनऊ को मुक्त करने के लिए सेना लेकर हैवलॉक अवध की ओर कूच कर गया । नील ने कानपुर की सुरक्षा के लिए एक नई युक्ति अपनाई, वह यह कि वहां के महारों की एक सेना तैयार कर उसके अधीन सारा शहर कर दिया। नगर की उच्च जातियों के विरूद्ध अतिशुद्रों को प्रोत्साहित करने की यह युक्ति उत्तम सिद्ध हुई। मुसलमान और हिंदुओं में फूट नहीं डाली जा सकी जब जातिभेद का नया भूत खड़ा किया गया और वह सफल भी रहा।

हिंदू धर्म और हिंदू राज्य के लिए

फिर एक बार जूझना होगा

कानपुर में पराजित हो जाने के बाद नाना साहब पेशवा ब्रह्मवर्त से खजाना, शस्त्रास्त्र और सेना लेकर गंगा पार हो गए। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में वे क्रांतिवीर केवल स्वधर्म और स्वराज्य के लिए ही कैसे लड़ रहे थे, यह सिद्ध करने के लिए उसी समय उस प्रदेश में उस काल के युद्ध जिन्होंने अपनी आंखों से देखें, वसई महाराष्ट्र के उन्हीं वेदशास्त्र–संपन्न विष्णुभट गोडसे ने अपने यात्रावृत्त की एक पुस्तक 'माझा प्रवास' अथवा 'सन् 1857 के विद्रोह की कथा' उसी समय लिखी। वह यात्रा वर्णन चि.वि. वैद्य ने प्रकाशित की। उस पुस्तक में श्री गोडसे भटजी ने कानपुर छोड़ते समय का वर्णन बड़ी ही मार्मिक भाषा में किया है–''अंधियारा हो जाने के बाद नौकाएं सज्जित कर उनमें उपर्युक्त सामान भरने के बाद बाला साहब आदि को विदाई देने के लिए जो हजारों नागरिक गंगा तीर पर जमा थे उन सबको नौका चलने के पहले नम्रता से नमस्कार कर किंचित् भावविह्वल होकर श्रीमंत बाला साहब ने कहा कि कानपुर में जब हम हारे उस समय तात्या तोपें, जलका रामभाऊ और लालपुरी गोसानी आदि हमारे सरदार कहां गए,

हमें यह ज्ञात नहीं। पर वे शूर हैं, अतः उनकी हमें चिंता नहीं है। आपको छोड़कर जाना अवश्य हमारे लिए कठिन हो रहा है, पर उपाय नहीं। हिंदू धर्म के लिए और हिंदू राज्य के लिए फिर से एक बार प्रयास करने होंगे। इस हेतु यह संकट जो ईश्वर ने हमारे कारण आप पर लादा है, उसके लिए कृपा कर हमें क्षमा करें।''[120]

गंगा पार जाने के बाद पहला मुकाम फतेहगढ़ में था। अंग्रेजी सेना ने ब्रह्मवर्त का राजमहल धूल में मिलाया और वह अवध की ओर चल दी। नाना के आगे की हलचल की कोई सूचना न मिलने से हैवलॉक लखनऊ की ओर बढ़ा। जून माह के अंत में सारा अवध प्रदेश विद्रोह का एक जीवित छत्ता बन गया था, इसलिए उस प्रदेश से रास्ता निकालते हुए लखनऊ पहुंचना और वहां का घेरा उठाकर सर हेनरी लॉरेंस को मुक्त करना और यह कार्य बहुत दुष्कर होते हुए भी विजय के पहले आवेश में कानपुर से गंगा नदी उतरकर लखनऊ जीतना–हैवलॉक और उसकी सेना को बहुत सुलभ लग रहा था। दिल्ली गए–माने दिल्ली जीती, यह धारणा जैसे पंजाब से दिल्ली पहुंची अंग्रेजी सेना के सेनानियों को भ्रमित किए थी वैसी ही गंगा उतरना–माने लखनऊ जीतना, यह धारणा इलाहाबाद से आ रहे हैवलॉक को उत्साहित करने लगी। कानपुर से लखनऊ शहर कोई बहुत दूर नहीं था, यह बात सच थी; परंतु यह भी सच था कि इलाहाबाद से कानपुर आते समय हैवलॉक ने जो लगन और उत्साह प्रदर्शित किया वह यों तो दुष्कर कार्य कर डालने की स्फूर्ति देनेवाला था, परंतु अवध में जहां विद्रोह की ज्वाला न सुलगी हुई हो, ऐसा एक कदम भर स्थान इस समय शेष नहीं था। हिंदुस्थान में जहां पुरबिया सिपाहियों ने विद्रोह प्रारंभ किया, उन पुरबियों का अवध पालना होने से वहां के गावं–गावं में, झोंपड़े–झोंपड़े में उन पुरबियों के मां–बाप, बच्चे–बच्चों, नाते–संबंधी, दोस्त–यार सारे राज्य क्रांति की अनिवार्य चेतना से सुलगे हुए थे। फिर भी विजय से अभिभूत आंग्ल सेनानी को यह स्थिति डरा नहीं सकी। उलटे उसका उत्साह इतना बढ़ गया कि मैं देखते ही लखनऊ जीत लूंगा और फिर दिल्ली जाऊंगा और दिल्ली भी जीतकर फिर आगरा मुक्त करूंगा–ऐसी हिम्मत से हैवलॉक लगभग दो हजार अंग्रेजी सैनिक एवं दस तोपों सहित 25 जुलाई को गंगा पार हो गया। कानपुर में जनरल नील है और हैवलॉक लखनऊ जा रहा है–इस तरह की स्थिति जुलाई के अंतिम दिनों अंग्रेजी सेना की थी।

[120] 'माझा प्रवास', विष्णुभट गोडसे, पृष्ठ 37 ।

प्रकरण–3

बिहार

वायव्य प्रांत, इलाहाबाद, आगरा की भूमि पर जो स्वतंत्रता की हवा भरी थी उसके संचार से बिहार और उसकी राजधानी पटना शहर अछूता नहीं रहा था। पटना के साथ ही बिहार के गया, आरा, छपरा, मोतिहारी और मुजफ्फरपुर मुख्य शहर थे और इनकी सुरक्षा के लिए रख गया लश्कर पटना के पास दानापुर छावनी में रहता था। 7वीं, 8वीं और 40वीं नेटिव पैदल रेजिमेंट और नेटिव सेना को नियंत्रण में रखने के लिए मेजर जनरल लॉइड के अधीन नेटिव घुड़सवारों की 12वीं रेजिमेंट भी पास के शहर में ही थी।

पटना शहर मुसलमान धर्म की वहाबी नामक कट्टर जाति का इतिहास–प्रसिद्ध केंद्र था। उस शहर को सन् 1857 की हवा लगे बिना नहीं रहेगी, ऐसा वहां के अंग्रेज कमिश्नर टेलर को पूरा विश्वास होने से वह उस जाति के नेताओं पर निरंतर आंख गड़ाए हुए था। अंग्रेजी शासन बहुत बुरा लगने से पटना शहर ने अंग्रेजी राज पलट देने के लिए गुप्त समिति बनाई हुई थी। इस गुप्त समिति में बड़े–बड़े श्रीमान, व्यापारी, कोठीवाले, जमींदार आदि लोग सम्मिलित थे जिसके फलस्वरूप राज्य क्रांति का कार्य सिद्ध करने के लिए उस समिति के प्रमुख थे और उनके प्रयासों को धर्म की पवित्रता और गंभीरता प्राप्त हो गई थी। लखनऊ की क्रांति समिति और दानापुर आदि शहर में रह रहे सिपाहियों की

आवाजाही और पत्राचार भी शुरू थे। पटना शहर की पुलिस से पुस्तक विक्रेता तक पूरा शहर इसकी उत्सुकता से राह देख रहा था कि स्वराज्य–प्राप्ति के लिए अंग्रेजी सत्ता पर पहला वार कब पड़ता है।

उपर्युक्त गुप्त समिति का मुख्यालय पटना में था और वहां के दूरस्थ कोने–कोने तक क्रांतिकारी समिति का जाल बिछा हुआ था। शहर के प्रख्यात मौलवी उस समिति के नेता थे और उनके राज्य क्रांतिकारी उपदेशों और प्रयासों को धार्मिक ओज, पवित्रता और गंभीरता प्राप्त होने के कारण लोक पद स्वीकार करनेवाले लोगों को फिरंगी नाम हलाहल विष की तरह जलाने लगा। सरहद जैसे दूर के प्रदेशों में भी अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए धन भेजा जा सके, इतना जबरदस्त धननिधि संग्रह हो गया था।[121] इस क्रांति षड्यंत्र में पुलिस के लोग भी सम्मिलित थे, जिससे रात्रि की गुप्त बैठकें। इस क्रांति षड्यंत्र में पुलिस के लोग भी सम्मिलित थे, जिससे रात्रि की गुप्त बैठकें सुरक्षित हो जाती थी। ठीक समय पर अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने को तैयार सैकड़ों लोगों को अपने सदस्यों के अलग–अलग नाम पर नौकर रखकर उस गुप्त लश्कर का वेतन क्रांति समिति से दिया जाता। पुलिस से लेकर पुस्तक विक्रेता तक पटना शहर में अंग्रेजों के प्रति द्वेष और स्वराज्य की चेतना से अंदर–ही–अंदर सुलगती ज्वालाएं उस विस्तृत प्रदेश में दसों दिशाओं को गुप्त चेतना देते दौड़ने गली। बड़े–बड़े जमींदारों से और उस भाग के जिले के प्रमुख शहरों से पटना की क्रांति समिति यातायात शुरू कर उस भाग में संरक्षण के लिए रखे नेटिव लश्कर की छावनियां अपने षड्यंत्र में पूरी तरह सम्मिलित कर लीं। उस प्रदेश के दानापुर के सिपाहियों की छावनी रात के अंधियारे में पेड़ों के नीचे अपनी गुप्त सभाएं करने लगी। अंग्रेजी टोली अपनी निगरानी के लिए आई तो उसे अंधियारे में ही नष्ट कर डालने का कार्य भी प्रारंभ हो गया। पटना प्रांत की अलग–अलग लोक–शक्तियों के इस रीति से क्रांति के लिए उत्सुक होते ही लखनऊ, दिल्ली और अन्य शहरों की क्रांति समितियों से गुप्त मंत्रणा होने लगी।

ऐसी यह राज्य क्रांति, आंग्लद्रोह और असंतोष की भयानक सुरंग अपने उदर में संगृहीत विस्फोटकों के सुलग जाने से कब फूटेगी, इसकी मंत्रणा होते–करते पटना शहर के अंग्रेज कमिश्नर टेलर के कानों में मेरठ का समाचार आया। इस समाचार के साथ ही दानापुर के सिपाहियों में मच रही खलबली का समाचार भी उसे मिला। वह कमिश्नर धूर्त था। सारा हिंदुस्थान राजद्रोही हो गया था तब भी सिख लोग अभी तक असल राजनिष्ठ थे, इसलिए रैटरे के अधीनस्थ दो सौ सिख सिपाही पटना शहर की सुरक्षा के

[121] ''सर विलियम हंटर ने यह सिद्ध किया है कि सन् 1857 की क्रांति से भी पांच वर्ष पूर्व ही पटना में एक महान् विध्वंसक संगठन विद्यमान था, जो सीमा प्रांत के कट्टर शिविर को धन और जन दोनों की ही उपलब्धि करा रहा था। यह संगठन वहाबियों का था। इस संगठन के एक प्रमुख वहाबी नेता को टेलर ने बंदी भी बनाया था। तदुपरांत इसपर राजद्रोह का अभियोग चलााया गया था और इसे राजद्रोह के अपराध में आजन्म कारावास का दंड देकर कालापानी भेज दिया गया था।''

लिए टेलर ने तत्काल बुलाए और वे उस बुलावे के अनुसार पटना की ओर आने के लिए निकले। पर रास्ते पर पूरे प्रदेश भर में रात–दिन उनकी 'छिः–थूः' शुरू हो गई। स्वदेश के प्रति नमकहरामी करने का आरोप उनपर लगने लगा। रास्ते के गांव उन्हें व्यंग्य से पूछते, ''तुम असल सिख हो या धर्मच्युत फिरंगी हो?'' गुप्त और खुला उपदेश उन्हें दिया जाता कि ''समय आने पर स्वदेश की ओर से लड़ना।'' इस तरह सारे प्रदेश की गाली–गलौज सिर पर लेते–लेते ये राजनिष्ठ सिख सिपाही जब पटना शहर में घुसने लगे तब लोकद्वेष की ज्वालाएं रास्ते–रास्ते में उन्हें जलाने लगीं। उन्हें देखते ही उस अभिमानी शहर का हर नागरिक उनकी छाया तक अपने शरीर पर न पड़ने देता। और तो और, उस स्वतंत्रता, प्रेमी नगर के मुख्य सिख उपाध्याय ने भी अपने सिख मंदिर में उन स्वधर्मद्रोही अनुयायियों को आने से साफ मना कर दिया। विदेशी सत्ता को प्रणाम करने वाले प्राणी सिर पर बड़े केश रख लें तब भी वे गुरू गोविंद सिंह के सिख धर्म के सच्चे भक्त नहीं होते–ऐसा विश्वास उस सिख गुरू का भी हो गया था। ऐसी ही धारणा मुसलमान मौलवी की और हिंदू धर्माचार्यों की हिंदू समाज के संबंध में हो गई था, इसका पटना शहर उत्कृष्ट उदाहरण है।[122]

सिख सेना के पटना शहर में आते ही टेलर ने विद्रोह की चिंगारी कुचल डालने को कमर कसी। तिरहुत जिले के पुलिस जमादार वारिस अली के संबंध में वहां के अधिकारियों को आशंका होने से उसके घर पर छापा मार उसे पकड़ लाया गया। यह अंग्रेजी पुलिस का जमादार गया के अली करीम नामक क्रांति के नेता को पत्र लिख रहा था। उसके घर मिले क्रांति के पत्राचार के कारण उसे जल्द ही मृत्युदंड देकर जब फांसी स्थल पर लाया गया त बवह एकाएक लोगों की ओर देखकर चिल्लाया, ''स्वराज्य का कोई सच्चा भक्त हो तो मुझे मुक्त करो!'' उसका यह निवेदन स्वराज्य–भक्त के कान में जाने से पूर्व ही उसकी निर्जीव देह फांसी पर लटक रही थी।

इस वारिस अली के पत्र मे मिले सबूत पर उपर्युक्त नेता अली करीम को भी पकड़ने का आदेश जारी कर उसक काम के लिए एक यूरोपियन टोली भेजी गई। मि. लुई के सामने दिखते–न–दिखते अली करीम अपने हाथी पर चढ़ा। वह आगे और लुई पीछे, ऐसी जंगी दौड़ शुरू हुई। परंतु जल्दी ही दौड़ देखने जमा दर्शकों ने अपने दर्शकीय अधिकारों का उल्लघंन करके पक्षपात करना शुरू किया। आसपास के गांववालों ने यह देखते ही कि अपने स्वदेश बंधु पर यह फिरंगी आदमी टूटा पड़ रहा है, उसे त्रास देना शुरू किया। उसकी राह बदल दी और उसक टट्टू भी कोई भगा ले गया। श्रम और निराशा से ग्रस्त वह अंग्रेज अधिकारी अपने नेटिव सहायकों को चतुर करीम का पीछा करने का काम सौंपकर दूसरे दिन हाथ हिलाता लौट आया। उसका नेटिव सहायक भी फिरंगियों का कट्टर द्वेषी था, अतः उसने

---

[122] ''ज्यों ही सिख सैनिकों ने गुरूद्वारे में पग धरा त्यों ही एक पागल फकीर सड़क पर दौड़ता हुआ आया और मुट्ठियां बांधकर उन्हें देशद्रोही, विश्वासघाती आदि अपशब्दों से संबोधित करने लगा।'' – टेलर कृत 'पटना क्राइसेस'

करीम को छोड़ दिया और अपने गोरे मालिक के पास अपना सा मुंह लिये लौट गया। पटना शहर में जब यह पकड़ा–धकड़ी चल रही थी तब पटना शहर के कितने ही नेताओं के नमा टेलर को अलग–अलग रास्ते से ज्ञात हो गए और उसने उनपर भी आकस्मिक छापा डालने का निश्चय किया। क्रांति पक्ष के प्रमुख नेताओं के घरों में क्रांतिकारियों की बैठकें रात्रि में होने के कारण तथा गोपनीयता के कारण सदस्यों के नामों की सूची या कार्यक्रमों का साधार साक्ष्य यद्यपि टेलर के पास नहीं था, फिर भी शहर के तीन बड़े मौलवियों की कारगुजारियों के संबंध में कोई भी आंशका न होने से उन्हें पहले बंद करना टेलर को आवश्यक लगा; पर यदि उन्हें खुले रूप में पकड़ा जाए तो दंगा वहीं से प्रारंभ हो जाएगा, इस डर से उस अंग्रेज अधिकारी ने दूसरी ही युक्ति निकाली। एक दिन उस शहर के चुने हुए लोगों को राज्य व्यवस्था के संबंध में योग्य सलाह देने के लिए टेलर साहब के घर ससम्मान बुलाया गया। उसके अनुसार सारे लोग टेलर के बंगले पर आते ही सिखों की तलवारों के साथ टेलर वहां आया और कुछ चर्चा के बाद आमंत्रित मेहमानों को विदा भी कर दिया गया; परंतु वे तीने मौलवी जाने लगे तो उन्हें टेलर ने रोक लिया और मुस्कुराते हुए सूचित किया कि 'वर्तमान नाजुक परिस्थिति में आपको स्वतंत्र रहने देना राज्य के लिए हानिकारक होने से आपको कैद किया जा रहा है।' इस षड्यंत्र के बारे में 'के' नामक इतिहासकार कहता है–''पर कोई भी सत्यवादी कृत्य यदि कोई मुसलमान अंग्रेजों के विरूद्ध करे तो उसे कुछ और नाम दिया जाता। प्रेम से कुछ सज्जनों को बुलाना, ब्रिटिश सरकार के मेहमान के रूप में उन्हें आमंत्रित करना और उनके विश्वासपूर्वक घर आने के बाद उन्हें कैद करना लगभग विश्वासघात नहीं, होता तो उन्हें मार दिया जाता।'' फिर भी राज्य के लिए हितकारी होने के बहाने उस कृत्य की भी सब ओर प्रशंसा ही हुई और टेलर की युक्ति की सारे अंग्रेजों ने प्रशंसा की।

राज्य क्रांति के नेताओं को इस तरह रक्त की एक बूंद भी बहाए बिना पकड़ते ही टेलर ने नागरिकों को निःशस्त्र करने और रात के नौ बजे के बाद घर से बाहर न निकलने का आदेश जारी किया, ताकि इस आकस्मिक आघात से चकित पटना शहर को उसकी चोटें असह्य होने और धीरज समाप्त होने के पूर्व ही चुप किया जा सके। इस आदेश से क्रांति पक्ष की रातों की गुप्त बैठकें असंभव हो गई। शस्त्र संचय भी बंद हो गया। इस समय तक पटना की क्रांति समिति विद्रोह के लिए दानापुर के सिपाहियों से संकेत मिलने के लिए रूकी थी। परंतु उसके पूर्व ही ये प्राणघाती हमले शुरू हो जाने के कारण ऐसी योजना उसके नेताओं की बनी कि अब नीचे कुचले जाने की अपेक्षा साहस से विद्रोह ही किया जाए। जुलाई की 3 तारीख को पटना शहर के पीर अली नामक नेता के

घर की ओर मुसलमान जाने लगे। थोड़ी ही देर में उस घर से एक के बाद दूसरा हरा झंडा लिये बाहर निकला और 'दीन–दीन' की गर्जना हो उठी। कोई दो सौ जेहादी लोगों ने उन हरे झंडों के साथ जाकर एक चर्च पर हमला किया। इतने में एक लायल नामक गोरा कुछ सिखों के साथ आता दिखा जिसे पीर अली ने गोली से मार गिराया और फिर उस गोरे रक्त की पहली बलि गिरते ही शेष मुसलमानों ने उस गोरे पर इतनेवार किए कि उसका चेहरा पहचानना भी कठिन हो गया। परंतु जब रैटरे ने अपने सिखों के साथ चढ़ाई की, जब उन राजनिष्ठ सिखों ने स्वदेश बंधुओं पर जोरदार हमला किया, अपने हिंदुस्थान के पेट में सिखों ने जब अपनी तलवारें घुसेड़ी और जब सिखों के शरीर भारत माता के रक्त से लाल होकर शोभित हुए तब उस जोरदार मार के सामने उन मुट्ठी भर क्रांतिकारियों की भीड़ बिखरकर इधर–उधर हो गई। अंग्रेजों ने दंगाकारी लोगों के नेताओं को तुरंत कैछ किया। उसमें लायल को मारनेवाला पीर अली भी था।

पीर अली लखनऊ का मूल निवासी था और कुद समय से पटना में पुस्तक बेचने का कार्य कर रहा था। बेची जानेवाली पुस्तकों को पढ़ते–पढ़ते उसे देश की स्वतंत्रता की चाह हो गई। उसमें स्वधर्म–प्रतिष्ठापन की महत्त्वकांक्षा जागी। उसके मन को परतंत्रता का घाव और पैरों में पड़ी गुलामी की बेड़ियां असह्य होने लगीं। दिल्ली और लखनऊ शहर की क्रांति समितियों से आवाजाही बढ़ाकर वह अंग्रेजों के राज्य के संबंध में अपने हृदय में चुभते लज्जा के कांटे दूसरों के हृदय में भी रोपने लगा। वह व्यवसाय से पुस्तक विक्रेता था, परंतु पटना की क्रांति समिति में उसका प्रभाव इतना बढ़ा कि समिति के श्रीमान लोगों के द्रव्य सहयोग से उसके धीन अनेक सशस्त्र नौकर रखे गए और उन्हें आदेश मिलते ही अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध युद्ध करने की शपथ दिलाई गई। पटना के अंग्रेज अधिकारियों द्वारा अत्याचार प्रारंभ करते ही पीर अली के तेज स्वभाव के लिए चुप रहना कठिन हो गया। वह व्यवहार से बड़ा कर्मठ, स्वाभिमानी और शूर था। उससे स्वदेश की दुर्दशा देखी नहीं गई, इसलिए उसी के बयान के अनुसार–''अपक्व स्थिति में ही विद्रोह किया।'' फांसी का दंड दिए जाने पर जिसके हाथों में भारी–भारी हथकड़ियां हैं, शरीर पर हुए घावों से जिसके वस्त्र रक्त से सने हैं और मरण की भ्यानकता को अपनी मुद्रा के वीर हास्य से जो धिक्कार रहा है, ऐसा पीर अली फांसी के फंदे के सामने खड़ा है। अपने प्रिय पुत्र का नाम लेते ही उसक कंठ भर आया। इतने में अंग्रेज अधिकारियों ने पूछा, ''शांत दृष्टि से उन अंग्रेजों की ओर घूमकर वह बड़े धैर्य से बोला, ''जीवन में कुछ अवसर ऐसे होते हैं जब अपनी रक्षा करना इष्ट होता है, पर कुछ ऐसे होते हैं जो चिरंजीवी होने का उत्तम साधन है तत्काल मृत्यु।'' फिर अंग्रेजों द्वारा किए जानेवाले अन्याय व अत्याचारों की बिना

डरे निंदा करते हुए वह लोक उपकार के लिए आत्मार्पण करनेवाला शहीद बोला, ''मुझे आप फांसी पर चढ़ाएंगे, मेरे जैसे अन्य लोगों को फांसी पर चढ़ाएंगे, पर आप हमारे ध्येय को फांसी पर नहीं चढ़ा सकते। मैं मरा तो मेरे रक्त से हजारों नए कार्यकर्ता उत्पन्न होंगे और आपके शासन का उच्छेद करेंगे।''[123]

ऐसी भविष्यवाणी कर यह देशवीर अपने अस्तित्व से स्वदेश पर जरा भी लज्जा की छाया न डालते हुए अपनी मृत्यु से स्वदेश के देशवीर मंडल की तेजोमय सूची में प्रतिष्ठा पा गया।

'मेरे रक्त से हजारों नवीन कार्यकर्ता उत्पन्न होंगे', ऐसा उस शहीद का जो अंतिम वर्णोच्चार था वह असत्य होनेवाला नहीं था, वह असत्य हुआ भी नहीं। उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही अति राजनिष्ठ गिनी जानेवाली दानापुर की नेटिव सेना 25 जुलाई को विद्रोह कर उठी। दानापुर का यूरोपियन तोपखाना और गोरी रेजिमेंट होते हुए भी तीन नेटिव रेजिमेंटो ने अपने शस्त्रास्त्र और कंपनी के यूनीफॉर्म तिरस्कार से फेंककर शोण नदी की आरे प्रस्थान किया। उस स्थान का मुख्य अधिकारी मेजर जनरल लॉयड भयग्रस्त और बूढ़ा था, इसलिए उन सिपाहियों का तुरंत पीछा करने की उसकी हिम्मत न हुई। यद्यपि अंग्रेज मेजर जनरल अपने बुढ़ापे के काारण पंगु हो गया था, तब भी जिस दिशा को वे नेटिव रेजिमेंट जा रही थीं उस दिशा में जिसकी तलवार और भुजदंडों में अभी भी तरूणाई का तेज हिलोंरे मार रहा है– ऐसा एक अप्रतिम वृद्ध युवा अपने बुढ़ापे की परवाह न करते हुए जगदीशपुर के राजमहल में मूंछों पर ताव देते खड़ा था और उसी के ध्वज की ओर ये सिपाही दौड़े जा रहे थे।

अंग्रेजों के शासन का जुआ उतार फेंकने के बाद जिस एक कमी के कारण आज तक स्वतंत्रता के सिपाहियों और लोगों के सारे परिश्रम विफल हो रहे थे, वह धुरंधरत्व की न्यूवता इस शाहाबाद जिले में जगदीशपुर के महल ने शेष नहीं रहने दी थी और इसीलिए उस जगदीशपुर के हिंदू राजा के ध्वज की ओर शोण नदी उतरकर ये सिपाही दौड़ते जा रहे थे; क्योंकि स्वराज्य संग्राम के लिए सुयोग्य एक नेता उन सैनिकों को अंत में जगदीशपुर में ही मिलनेवाला था। राजपूत वंश की खान से ही जिस स्वतंत्रताप्रिय नेता का जन्म हुआ उसका नाम कुंवर सिंह था। शाहाबाद तहसील की विस्तीर्ण भूमि का स्वामित्व इस कुंवर सिंह के उदार चरित्र वंश में सुप्रतिष्ठित हुआ था और उस राजवंश ।

---

[123] कमिश्नर टेलर्स ने स्वयं कहा है कि ''पीर अली स्वयं एक साहसी और दृढ़ संलल्पवाला व्यक्ति था। यद्यपि उसका रूप बेढंगा था और उसके चेहरे से ही क्रूरता और कठोरता झलकती थी, किंतु इसपर भी वह शांत और संयमी था। उसकी बोलचाल और व्यवहार में शालीनता थी। इस प्रकार के लोग अपनी अजेय निष्ठा के कारण खतरनाक शत्रु सिद्ध होते हैं। किंतु अपनी कठोर आन के कारण वे किसी सीमा तक प्रशंसा के पात्र होते हैं। –के, खंड 3, पृष्ठ 86

पर वहां के जन–समूह की निसर्ग स्फुरित प्रीति थी। बड़े–बड़े बादशाहों के तूफान हिंदुस्थान की राजनीति के समुद्र में उठे और इस प्रदेश के ऊपर से भी घन गर्जना करते जा–आ रहे थे तब भी परम कारूणिक राजपूत राजछत्र के नीचे वह प्रदेश स्वराज सुख का और स्वातंन्य चैतन्य का अखंडित लाभ लेता रहा था। राजनीति में क्रांति की ऋतु बदलते हुए उसकी गरमी–सर्दी–वर्षा के असह्य आघात अपने सिर पर लिये कुंवर सिंह के उस स्थिर वंशवृक्ष ने अपनी छाया तले के प्रजा रूपी पंछियों को स्वराज्य क`वसंत में पाला–पोसा था और उस प्रजा की उस राज्य और उस राजवंश पर अकृत्रिम श्रद्धा थी।

और उस राज्य की अपनी प्रजा पर वत्सलता की कोई सीमा नहीं थी। पर पराधीनता का हलाहल हृदय में नहीं, उसके हृदय भाव को यह स्वराज्य–राजनिष्ठा का योग शूल की तरह चुभने लगा। उसने अपने तरकश की भीषण आंधी से एक प्रबल मत्सर दामिनी बाहर निकाली और इस राजवंश पर उसका निष्ठुर आघात भीषण ध्वनि के साथ आकर गिरा। स्वराजय छत्र टूटकर वह देश नंगे सिर हो गया–स्वराज्य के विरह से वह राज्य–वृक्ष जलकर राख हो गया, उसकी छाया के नीचे के पंछी अंगारों में फड़फड़ाने लगे। और सवदेश की यह कठिन अवस्था देखकर मन में उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि के कारण वह वृद्ध कुंवर सिंह अपने जगदीशपुर के महल में मूंछों पर ताव देता खड़ा था। वृद्ध युवा–हां, वह वृद्ध युवा था। क्योंकि आज तक अस्सी शरद् ऋतुएं देह पर से उतर गई थीं, परंतु उसकी आत्मा का तेज अभी भी जीवित अंगार–सा दहकता है। अब तक लगभग अस्सी ग्रीष्म ऋतु, अपनी प्रखर धूप से चमचमा चुकी थीं तब भी उसकी भुजलता अभी युवा ही बनी हुई है। अस्सी वर्ष का कुंवर सिंह–अस्सी वर्ष का कुमार! और उसमें भी सिंह! उसके देश का अंग्रजों द्वारा किया हुआ अपहरण उसे कैस मान्य हो? अवध का राज्य डलहौजी ने गटका और फिर जब सारा भारत समतल करने के लिए अंग्रेजी तलवार भारतभूमि की टेकरियों को खोदते चली तब ही कुंवर सिंह के देश को अंग्रेजी तलवार ने घायल कर किया था। अपने स्वदेश और अपने स्वराज्य का अघोर एवं अन्यायी अपहार करनेवाली उस अंग्रेजी तलवार के टुकड़े करूंगा, ऐसी गर्जना कुंवर सिंह ने की और वह श्रीमंत नाना साहब से बोलने–चालने लगा था। भयंकर चाल और भयंकर बोल! हर–हर महादेव का बोल! अफजल खां वध के पोवाड़ा की चाल!

और उस चाल पर यह भीषण रणगीत चालू था। कुंवर सिंह के मन में राज्य क्रांति के विचार घूम रहे हैं। स्वदेश क स्वतंत्रता के लिए उसने सारे हिंदुस्थान के क्रांति केंद्रों से संपर्क बनाया हुआ है। उस पटना विभाग के हजारों सिपाही गुप्त रूप से उससे मिल गए हैं। ऐसे अलग–अलग समाचार पटना के कमिश्नर टेलर को ज्ञात हुए। यह बात फिर भी टेलर को असंभव लगती थी कि यह अस्सी वर्ष का वृद्ध राजा चिता की ओर जाना छोड़ स्वतंत्रता की चिंता करे। फिर भी टेलर ने कुंवर सिंह को सूचित किया कि

आप बहुत वृद्ध हैं, आपका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, अतः आपके शेष जीवन का सान्निध्य लाभ मुझे मिल सके, ऐसी मेरी प्रबल इच्दा होने से आप पटना में मेरे मेहमान रहें तो मैं आपका आभारी हूंगा। यह आमंत्रण अस्वीकृत नहीं होगा ऐसी आशा करता हूं–टेलर, अफजल खां ने शिवाजी को ऐसे ही मिलने का निमंत्रण दिया था। उस चतुर राजपूत ने तब ही जाना कि पटना के चीफ कमिश्नर का यह प्रेम निमंत्रण माने कैदखाने का दरवाजा किसी भी प्रतिकार के बिना खोल देना था। इसलिए उसने भी उत्तर भेजा–''आभारी हूं। मेरा स्वास्थ्य आप लिखते हैं वैसे–मैं सचमुच बहुत अस्वस्थ हूं और इसीलिए अभी पटना नहीं आ सकता। मैं स्वस्थ होते ही तुरंत वहां आता हूं।''

कुंवर सिंह! 'अस्वस्थता' सुधारने को जो औषधि चाहिए थी वही लेकर दानापुर के विद्रोही सिपाही जगदीशपुर आ पहुंचें फिर अब इहरना किसके लिए? तेरी देशमाता की शपथ है, तेरे स्वधर्म की शपथ है, तेरे मानभंग की शपथ है, कुंवर सिंह म्यान फेंक दे और स्वतंत्रता के लिए तलवार खींच! तू हमारा राजा, तू हमारा नेता, तू हमारा सेनानी है। राजपूत वंश के शिरभूषण, तेरी यह उदात्त चरित्र देह! 'यह शय्या पर नहीं, रणभूमि पर ही गिरने के योग्य है।' स्वराज्य के लिए उतावले वे सैनिक चिल्लाने लगे–यही कुंवर सिंह के कुलोपाध्याय शुचिव्रत ब्राह्मण उपदेश करने लगे।[124] ऐसा ही उसकी तैयार तलवार भी कहने लगी। पटना शहर हाथी पर बैठकर जाना भी जिसे अस्वस्थता के कारण असंभव, वह अस्सी वर्ष का राजपूत कुंवर सिंह तड़ाक से उठा और रूग्ण शय्या पर से वह जो उठा तो एकदम रणक्षेत्र में ही जाकर रूका।

शाहाबाद जिले के मुख्यालय 'आरा' शहर में जगदीशपुर से निकले सिपाही दौड़ते गए और उन्होंने वहां का अंग्रेजी खजाना, झंडा, कारावास, कार्यालय सबमें उत्पात किया और एक छोटे से परकोटे की ओर मुंह मोड़ा। विद्रोह हो जाए तो स्व संरक्षण कर सकें इसक लिए उस शहर के धूर्त अंग्रेजों ने उस परकोटे में गोला–बारूद्ध, अस्त्र, अन्न, वस्त्र आदि सामग्री रखी हुई थी। केवल उस शहर के मुट्ठी भर अंग्रेजों को सहायता देने के लिए पटना से पचास सिखों की एक टुकड़ी भी आई हुई थी। ऐसी तैयारी से सिखों सहित पचहत्तर लोग उस गढ़ी में व्यवस्था से रह रहे थे। उस गढ़ी को विद्रोही सैनिकों ने घेर लिया।

उस छोटी गढ़ी में ये पच्चीस अंग्रेज और पचास सिख बड़ी ही मजबूती से अपना संरक्षण कर रहे थे, तब बाहर के सैकड़ों सिपाही उस गढ़ी पर एकदम हमला

[124] ''ब्राह्मणों ने भी कुंवर सिंह को विप्लव और विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया।'' – 'ऑफिसियल डिस्पैच'

करना छोड़ इधर–उधर से शत्रु को घेरने में लगे हुए थे। कदाचित् ऐसा भी रहा होगा कि गढ़ी तो कब्जे में है ही, उसपर समय गंवाने और मनुष्य हानि करने की अपेक्षा आसपास के क्षेत्र और अन्य अंग्रेजी स्थानों का बंदोबस्त करना विद्रोहियों को अधिक लाभदायी लगा होगा। कुछ इस कारण और कुछ गढ़ चढ़ाकर गोले बरसाने चालू किए। एक–दो बार गुप्त सुरंग खोदकर परकोटे के नीचे बारूद भी लगाई गई। अंदर के लोगों को थोड़े ही दिनों में पानी की बूंद भी मिलना कठिन हो गया। पर अपने गोरे अन्नदाता के ऐसे हाल होते देखकर सिख लोग चुप बैठनेवाले नामर्द नहीं थे। उन्होंने चौबीस घंटे में उस गढ़ी में से जो लड़ रहे हैं वे केवल यूरोपियन नहीं, उनमें अधिकतर सिख हैं यह बात जब खुली तब विद्रोहियों को बहुत खेद हुआ। क्योंकि यह लड़ाई अंग्रेजों के विरूद्ध हिंदुस्थारियों की न होकर गुरू गोविंद सिंह और कुंवर सिंह के बीच हो गई। जो अंग्रेजों की ओर से इतनी विलक्षण शूरता से पर ऐसे नीचे देशद्रोह से लड़ रहे हैं उन सिखों को अपनी तरफ करने के लिए रोज शाम को विद्रोहियों के दूत एक खंभे की आड़ में खड़े हो जोर–जोर से उपदेश करते–''ऐ सिखों! तुम फिरंगियों की ओर से लडत्रकर किस नरक में जाना चाहते हो? जिन्होंने अपना राज डुबाया, जो अपनी देशमाता पर जबरदस्ती करना चाह रहे हैं, जिन्होंने अपना धर्म अनाथ कर दिया है, उनकी ओर से लड़कर तुम किस नरक का साधन कर रहे हो?'' परंतु विद्रोहियों के स्वधर्म, स्वदेश, स्वहित और स्वतंत्रता आदि की हर शपथ से अंग्रेजों का पक्ष छोड़ने के लिए किए गए आनेवाले निवेदनों तथा तुमने यह देशद्रोह न छोड़ा तो हम तुम्हें मार डालने से भी नहीं चूकेंगे–उनकी ऐसी धमकियों का सिखों पर तिल भर असर नहीं हुआ। उलटे अपनों द्वारा किए गए निवेदनों के उत्तर में वे गोलियां चलाते और यह देखकर शाबाश! शाबाश!! कहते हुए यूरोपियन उनकी पीठ ठोंकते। ऐसी स्थिति में उस घेरे को तीन दिन हो गए। तीसरे दिन अर्थात् जुलाई 29 की रात उस गढ़ी की वह छोटी अंग्रेजी सेना से आनेवाली तोपों की गड़गड़ाहट से उछल पड़ी। आनंद से उनके चेहरे प्रमुदित हो उठे। इन विद्रोहियों का नाश कर यह घेरा तोड़ने अंग्रेजी सेना तो नहीं चली आ रही?

हां, वह अंग्रेजी सेना ही घेरा तोड़ने के लिए अंत में चली आ रही है। दानापुर में जो गोरी रेजिमेंट थी उसमें से दो सौ गोरे लड़ाके और सौ काले लड़ाके–यह सेना कैप्टन डनबार जैसे साहसी योद्धा के अधीन इकट्ठी होकर आरा में पड़ा घेरा तोड़ने शोण नदी के किनारे आ गई। इस अंग्रेजी सेना के चेहरे पर जो उत्साह और विजय की निश्चिंतता दिख रही थी वैसी कभी भी दिखाई न दी होगी। उन्हें विदा करेन आए आंग्ल नर–नारियों ने हंसते–मुसकराते उनसे विदा ली। शोण नदी में नावें चलने लगीं और शाम सात बजे

आरा शहर के तीर को उस सेना ने स्पर्श किया। शुक्ल पक्ष का मनोहर शशि बिंब उस भूमि की विजयी सेना के विजयोत्साह का हिससेदार बनने के लिए आकाश से उनके साथ चलने लगा। कैप्टन डनबार, इस सफेद चांदनी में अपनी सेना का व्यूह समय पर उत्तम रच ले! क्योंकि आगे चांदनी होगी या कालिमा, इसका कोई भरोसा नहीं। इस व्यूह में हमेशा की तरह ये राजनिष्ठ सिख ही हैं—ऐसा मानकर वे पहली पंक्तियों में खड़े रहने को तैयार ही हैं। आरा के घने जंगल में ले जानेवाला वह काला पथ—प्रदर्शक कहां है? उसे आगे करो और चलो। विजयी सैनिकों, रणांगण के लिए उत्सुक अपनी तलवारें इस चांदनी में चमकाते आगे बढ़ो। पेड़ के बाद पेड़ चला, जमीन के पीछे जमीन छूटने लगी। और यह आरा शहर का पुल भी आ गया। पर यह क्या? शत्रु कहां है? अभी तो एक भी पांडे अपनी प्यासी तलवार को तो छोड़ो दीर्घ दृष्टि बंदूक को भी दीख रहा, यह कैसे हुआ? भाग गए डरपोक! डनबार आ रहा है, केवल यही सुनकर वे सारे नामर्द लोग भाग गए। सिकंदर का भी उसके शत्रु पर इतना आतंक न रहा होगा। हे चंद्रमा! रण—समर की आशा में तू इतनी देर ठंडी हव ामें सिहरता खड़ा रहा, पर इन डरपोक विद्रोहियों का पलायन चातुर्य तो तूने देख ही है। तो अब अधिक निराश न होकर तू सुख शय्या करने के लिए अपने विश्व मंदिर पर रात का परदा गिराकर शय्यागृह में लौट जा। चंद्रमा लौट गया, पर डनबार तू मत लौटना। च्रदंमा को जाना—बूझाा शशलांछन! पर तेरी सफलता को सिंह भी लांछन लगाने की हिम्मत न कर सके, इसलिए तू मत लौट जा। चंद्रमा लौट गया, पर डनबार तू मत लौटना। अब यह अमराई आ गई है और डरपोक पांडे अब उनके हाथ आने की कोई संभावना नहीं है। पर यह आवाज कैसी! अमराई के पत्ते तो खड़ाखड़ नहीं कर रहे?

सूँऽ सूँऽ सूँऽ ! अरे बाप रे! सावधान ! अंग्रेज सैनिकों, सावधान! गोलियों की बरसात, चारों ओर से झड़ी लग गई। अमराई का हर वृक्ष अपने अनंत शाखा रूपी हाथों में बंदूकें लेकर उस अंग्रेजी सेना पर टूट पड़ा। आया ं कुंवर सिंह आया। अस्सी वर्ष का योद्धा और तू एकदम जवान। चलो देखें, कौन हटता है। अंग्रेजी सेना ने लड़ने में पूरा जोर लगाया, पर लड़े किससे? शत्रु पक्ष का एक भी सिपाही दिखे नहीं। उस घनी अमराई में; मध्य रात के उस घने अंधियारे में उस ऊंचे नीचे प्रदेश के घूम—घूमाव में छिपकर बैठा कुंवर सिंह की सेना का एक आदमी भी अंग्रेजी सेना को नहीं दिखता था। आकाश के तारे और जमीन के वृक्ष, इसके सिवाय कुछ दिखे नहीं और इन दोनों पर गोलियां चलाकर उन्हें जीतना संभव न हो। वायु देवता ने कुपित होकर अपने झंझावत से लाल—लाल गोलियों की आंधी फुफकारते हुए चलाई हा, ऐसे इस अंग्रेजी सेना पर किसी अदेहधारी देवता की मार पड़ने लगी। बाईं ओर से मार, दाईं ओर से मार, पीछे से मार!

अंग्रेजों की वरदी सफेद रंग की होने से वह कुंवर सिंह को दिखाई देती थी। परंतु कुंवर सिंह के लोग काले, उनकी वरदी काली और रात काली और रात काली! सारे काले वस्त्रों के एक दिल हो जाने से सिखों के काले–दोनों पैर रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए। उनका कमांडर डनबार पहले झटके में ही मारा गया था। अपने प्राण बचा भागते वह अंग्रेजी सेना एक गांव में आ पड़ी। वहां कुछ देर छिपकर बैठने का प्रयास कर भोर होते ही उस घनघोर रात में राणक्षेत्र में मरे हुए ही नहीं, अपने घायल बंधुओं को वहीं छोडऋ अपने कमांडर का शव भी वैसे ही छोड़कर वे भूखे, प्यासे, रक्तरंजित, शर्म से काले पड़े अंग्रेज सैनिक प्राण की आशा में शोण नदी की ओर दौड़ने लगे।

परंतु कुंवर सिंह के आगे दौड़ना भी कोई साधारण बात नहीं थी। हर कदम पर उनका रक्त टपकता। कोई जंगली सूअर शिकारी का भाला घोंपे जाने शरीर से रक्त की अविरल धार बहाते, शक्ति क्षय से बार–बार इधर–उधर गिरते, किसी पिघले मेघ जैसा लाला शोणित बिखेरता दौड़ता जाए–वैसे ही अंग्रेजी सेना शोण नदी तक दौड़ती आई। पर यहां तो विनाश की पराकाष्ठा हो गई। नौकाएं न मिलीं, जो मिलीं, जो मिलीं वे रेत में धंस गईं, जो रेत में नहीं धंसी उन्हें पांडे लोगों ने जला दिया । एक–दो नौकाएं शेष रहीं। आरा का घेरा तोड़कर वहां के बहादुर लोगों सहित विजय गीत गाती अपनी सेना लौटी होगी, इसलिए दानापुर के अंग्रेज नर–नारी नदी किनारे पहुंचे तो उन्हें नौकाओं से एक भी उत्तेजक हंसी सुनाई नहीं दी। झंडा नहीं, बैंड नहीं, कोई ऊपर सिर उठाए नहीं, सबका सीना धड़धड़ाने लगा। मेरा पुत्र, मेरा भाई, मेरा बाप, मेरा पति–कल ही आकर हंसते–मुस्कुराते लड़ाई पर गया और आज हे भगवान! कृपा कर, अमंगल टाल। यह निवेदन परमेश्वर के घर पहुंचने के पहले ही अपयश लिये वह अंग्रेज सेना दानापुर के घाट पर आकर लगी। और तुरंत ह ी वह भयानक समाचार इधर–उधर फैला कि चार सौ पंद्रह में से कोई पचास लोग ही कुंवर सिंह की मार से बचकर जीवित लौटे हैं। एक अंग्रेज लेखक लिखता है–''उस समय का महिलाओं द्वारा किया गया विलाप जिसने सुना होगा वह उसे आजीवन भूल नहीं सकता। कुछ स्त्रियां कर्कश ध्वनि से चीखने लगीं, कुछ फूट–फूटकर रोने और अपने बाल नोचने लगीं। उनके उस शोक आवेग में उन्हें जनरल लॉयड दिखाई दे जाता तो इस नाश के मूल उत्पादक को वे जीवित फाड़ डालतीं–इसमें शंका नहीं थी।''

परंतु इन अंग्रेज महिलाओं के रूद्रन स्वर से दानापुर का आकाश जब इधर फट रहा था तब उनके दुःखों का बदला लेने के लिए मेजर आयर उधर आरा की ओर जा रहा था। उसे उपर्युक्त पराजय का समाचार अभी मिला नहीं था, फिर भी आरा में अंग्रेजी सेना घिरी हुई है, यह सुनते ह ीवह उधर दौड़ पड़ा। 29 और 30 जुलाई को डनबार की

सेना को नेस्तनाबूद कर कुंवर सिंह के सिपाही जो वापस लौटे तो आयर की सेना के उधर आने का समाचार उस वृद्ध सेनानी को मिला। क्षण भर का भी विश्राम न लेकर उसने अपनी सेना इकट्ठी की। मेजर आयर जिधर से आ रहा था उस रास्ते के हर अवरोध का लाभ लेते हुए उसने लड़ाई जारी रखी और अंत में 2 अगस्त को बीबीगंज गांव के पास लड़ाई की टक्कर ली। सामने की एक झाड़ी की ओर ये दोनों उसे अपने कब्जे में लेने के लिए दौड़ रही थीं। उस वृद्ध और युवा की भयंकर स्पर्धा में वृद्ध कुंवर सिंह ही उस झाड़ी पर पहले कब्जा करने में सफल रहा। और वहां आते ही उसने आयर पर जोरदार मार चालू की। आयर के पास तीन उत्तम तोपें और उनके सहारे से वह आगे बढ़ रहा था। कुंवर सिंह के सिपाही उसपर तीन बार टूटे। तीनों ही बार उन अग्निवर्षा तोपों के मुंह तक उनके हल्ले पहुंचे, पर अंग्रेज तोपों की मार अखंड चलती रही। इसी समय कैप्टन हेस्टिंग नामक अंग्रेजी योद्धा आयर के पास हांफते हुए आया है।'' यह उग्र स्थिति और आधा घंटा बनी रहती तो कुंवर सिंह वह लड़ाई जीत जाता। अब कुद भी करें तो भी विजय हाथ से जा रही है तो क्यों न एक बार साहस की परीक्षा कर ली जाए। तुरंत अंग्रेजी सेना बैनेट साधकर विद्रोहियों पर तीर की तरह टूट पड़ी। तोपों में मुंह पर भी जो सिपाही टूटने में डगमगाते नहीं थे वे विद्रोही सिपाही अंगेजों के बैनेट के हमले के आगे खड़े रहने का जाने क्यों कभी साहस नहीं करते थे और यहां भी वे हिम्मत हार गए। आयर उन्हें उस झाड़ी में से बाहर निकाल आगे घुसा और आरा की गढ़ी की ओर बढ़ गया। वहां बंद अंग्रेजी सेना को उसने मुक्त किया और इस तरह आरा शहर फिर से अंग्रेजों के हाथ आ गया।

आरा शहर का घेरा कोई आठ दि नही चला था। उन आठ दिनों में यह घेरा संभालते जगदीशपुर के उस शूर पररावार नहीं था तब भी उसके बाजारू अनुयायियों में जोड़–तोड़ और साहस की कमी के कारण आयर से पराजित होते ही कुंवर सिंह जगदीशपुर की ओर निकल गया। अंग्रेजी को आरा की सेना और अन्य नई कुमुक मिलने से वह सेना फूलती जा रही है, यह ज्ञात होने पर कुंवर सिंह ने जगदीशपुर के पास यथासंभव लोगों को इकट्ठा करना चालू किया। अंग्रेजी सेना को कुंवर सिंह के कर्तव्य की थोड़ी सी पहचान हो जाने से कदाचित् वह फिर से आरा के घेरा टूट जाने पर जिनका उत्साह भंग हुआ है ऐसे अनुयायियों के साथ अंग्रेजों जैसे अनुशासित, एक दिलवाले और विजय से सबल हुए शत्रु से राजधानी के एक शहर के पास खुली लड़ाई लड़कर सारी हानि न

करके छापामार लड़ाई करने के विचार से अंग्रेजी सेना से दो अच्छी भिड़त हो जाने पर कुंवर सिंह जगदीशपुर के बाहर निकला और 14 अगस्त को आयर कुंवर सिंह के महल में तंबू गाड़कर बैठा।

इस तरह जगदीशपुर यद्यपि अंग्रेजों के कब्जे में आ गया, उन्होंने जगदीशपुर के राजमहल, हिंदू मंदिरों और भवनों का नाश किया तो भी उस महल का राजा, उन मंदिरों का देवता, उन भवनों का मालिक योद्धा कुंवर सिंह इस लड़ाई के पहले जितना अजित था उतना ही लड़ाई के बाद भी अजित ही था। राजधानी जाते ही अन्य राजा भले हार जाते हों, पर इस जगदीशपुर के महल की बात वैसी नहीं थी। वहां वह वहां उसका जगदीशपुर—ऐसी उसकी प्रतिज्ञा होने से उसे पकड़े बिना केवल जगदीशपुर पकड़कर बैठना व्यर्थ था। उसने घर खोया, पर रणांगण ही उसका घर हो गया।

प्रकरण—4

दिल्ली हारी

अंग्रेजी सेना के तीसरे मुख्य कमांडर द्वार दिल्ली शहर न जीत सकने से निराश होकर त्यागपत्र देने के बाद ब्रिगेडियर विल्सन ने जब मुख्य कमांडर का चार्ज लिया तब विद्रोहियों के आक्रमणों से पगलाई अंग्रेजी सेना के अधिकारियों में दिल्ली का घेरा छोड़कर पीछे जाने का हताश विचार चलने लगा था। घेरा उठाने का वह विचार यदि पक्का हो गया होता तो सन् 1857 का इतिहास कैसा बदला होता, यह सही—सही कहना यद्यपि कठिन है, तथापि विद्रोहियों के हजारो हमलों से अंग्रेजों की जितनी हानि होनेवाली नहीं थी उतनी अंग्रेज पीछे हटकर अपने हाथ से कर लेते, इतना साफ—साफ दिखाई देता है। दिल्ली को घेरने से, शत्रु का शहर कब्जे में कर लेने से अधिक जो दूसरा सैनिक लाभ अंग्रेजों को सहज प्राप्त हो रहा था वह यह कि इससे विद्रोहियों का सैन्य लाभ अंग्रेजों को सहज प्राप्त हो रहा था वह यह कि इससे विद्रोहियों का सैनय सागर दिल्ली जैसे शहर में बंद हो गया था। ऐसा न होता तो वह सारे खुले प्रदेश में फैल गया होता और वह छोटी—छोटी टोलियों में चारों ओर से जूझते रहते तो ऐसे इस छापामार युद्ध से विद्रोहियों को अंग्रेजों पर चारों ओर से कड़े हमले करना और उनकी मुट्ठी भर सेना की मारपीट करना सुलभ हो गया होता। परंतु दिल्ली को घेरे रखकर यह विस्तार पाकर होनेवाला रणक्रंदन सामप्तप्राय हो गया। अंग्रेजों का असह्य कष्ट न देकर सारे विद्रोही एक शहर में जमा होकर स्वतः ही नियंत्रण में आ गए थे। ऐसी स्थिति में दिल्ली का घेरा उठा देने का अर्थ था—इस सेना सागर को सारे प्रदेश पर

धींगामुश्ती करने को अपने हाथों बांध फोड़कर खुला छोड़ना। दिल्ली जीत लेने के बाद भी वे सिपाही इधर–उधर फैलनेवाले थे ही। परंतु असफलता से उनका उत्साह भंग करके दिल्ली से भगा देना और हमने अंग्रेजों को घेरा उठाने को बाध्य किया–ऐसी जीत से प्रस्फुरित होकर अपने ऊपर चढ़ा लेने में बहुत भारी अंतर था। अंग्रेज कमांडरों के ध्यान में यह अंतर होते हुए भी हताशा, निरूत्याह और विद्रोहियों द्वारा की हुई नाकेबंदी से जब दिल्ली का घेरा उठाकर वह अंग्रेजी साम्राज्य का सारा भविष्य उसके व्यवहार पर टिका हुआ था–ऐसे समय में दिल्ली के अंग्रेजी शिविर में बेअर्ड स्मिथ जैसा साहसी अधिकारी भी था, यह उनका सौभाग्य ही था। जब अन्य सारे अंग्रेज अधिकारी भाग जाने के विचार में थे तब उसने सबको निश्चय से कहा, ''दिल्ली पर से अपनी पकड़ रत्ती भर भी ढीली करना इष्ट नहीं है। निष्ठुर कालपाश की तरह उसके कंठ में पड़ा अपना यह पाश अभेद्य और अटल रहना चाहिए। दिल्ली का घेरा हमने उठाया तो पंजाब भी हाथ से चला जाएगा, हिंदुस्थान हाथ से जाएगा, साम्राज्य हाथ से जाएगा।''

बेअर्ड स्मिथ के इस करारे उपदेश से उत्साहित होकर दिल्ली जीतने के पहले लौटना नहीं– ऐसा दृढ़ निश्चय जब अंग्रेजी कमांडर ब्रिगेडियर विल्सन कर रहा था तब भी विद्रोहियों ने अंग्रेजों के दांए या बाएं बाजू पर हमला करके जितनों को मार सकें उतने लोगों को मार लेते। जैसे ही अंग्रेज उनको मारने के लिए उठते, विद्रोही इतनी तेजी से पीछे हटते कि उनका पीछा करने की अपरिहार्य इच्छा अंग्रेजों के मन में उठती और इस तरह अंग्रेजी सेना को परकोटे के पास लाते ही तोपों की भयंकर मार शुरू हो जाती। इस नई युक्ति से विद्रोहियों ने अंग्रेजों को इतनी बार अचूक ढंग से फंसाया और उनकी इतनी हानि की कि कुछ भी हो जाए तो भी सिपाहियों का पीछा न किया जाए, ऐसा विशेष आदेश अंग्रेज कमांउर को देना पड़ा। विद्रोहियों की इस नई युक्ति से अंग्रेजी सेना जैसे–जैसे समाप्त होने लगी वैसे–वैसे उनका कमांडर पंजाब से आनेवाली नई सीजट्रेन की ओर चातक की तरह आंखे गड़ाए देखने लगा। दिल्ली के दक्षिण में अंग्रेजी सेना की क्या स्थिति है? कलकत्ता से निकली अंग्रेज सेना कहां तक आ गई? लखनऊ, कानपुर, बनारस आदि शहरों को क्या हाल है आदि समाचार, उत्तर भारत के आवाजाही के सारे रास्ते, तार, रेल, डाक नष्ट कर देना दिल्ली में कैद अंग्रेजी सेना को ज्ञात नहीं थे। सर हो व्हीलर का सिर कानपुर में उसके धड़ से अलग हुए एक माह बीत जाने पर दिल्ली के कैंप में अंग्रेजों को विश्वसनीय समाचार मिला कि सर हो व्हीलर गोरी सेना के साथ उनकी सहायता को दौड़ता आ रहा है। कलकत्ता की ओर से आनेवाली सहायता की निराशा हो जाने से दिल्ली के अंग्रेजों का सारा बोझ पंजाब पर पड़ा था और आज तक गोरी और काली सेना की नई–नई कुमुक भेजकर जॉन लॉरेंस ने वह बोझ यथासंभव संभाला भी था। फिर भी दिल्ली से मांगी गई सीजट्रेन और कुमु की नई मांग का अनादर न करते हुए जॉन लॉरेंस ने कोई दो हजार चुनी हुई सेना निकल्सन के नेतृत्व में

भेज दी थी। इस सेना के आने का समाचार अंग्रेजी छावनी में फैलते ही सैनिकों की मुद्रा में आनंद, उत्साह और द्वेष का तेज झलकने लगा। उस तेज में दो हजार सैनिक आने का हिस्सा उतना नहीं था, उस निकल्सन के आने से वह तेज विशेष झलकने लगा था। निकल्सन जैसे एक नेता का अर्थ हजारों सैनिकों का उत्साह था। हतोत्साहित अंग्रेजी सेना का हर जवान कहने लगा, ''निकल्सन आया है, अब विजय में शंका नहीं!''

सुयोग्य कर्णधार मिल जाने से अंग्रेजी सेना के लिए विजय जितनी आशंकारहित होती गई उतनी ही दिल्ली के लिए पराजय सुनिश्चित होती गई; क्योंकि उनकी मुख्य कमी सुयोग्य कर्णधार की ही थी। विद्रोहियों ने जिसे नव सिंहासन पर बैठाया था। वह बादशाह शांतिकाल में दयाशीलता में कितना ही चरित्रवान् हो, परंतु युद्धकाल में अत्यावश्यक रणपटुता और नेतृत्व में असमर्थ और पूरी तरह अनभ्यस्त था। रणपटु सेना को भी लज्जित किया था। अंग्रेजों की अधीनता में ही जिनके शस्त्राभ्यास और अनुशासन की शिक्षा पूरी हुई थी, जिन्होंने तलवार से ही अंग्रेजों के लिए अफगानिस्तान तक साम्राज्य की सीमा बढ़ाई थी, ऐसे कोई पचास हजार सिपाही उस दिल्ली की चारदीवारी के अंदर से उन अभिमानी अंग्रेजों को एक जगह बांधकर आज तक चिढ़ा रहे थे। परंतु उन पचास हजार सिरों को एकीकृत करनेवाला एक सिर फिर भी दिल्ली को चाहिए था। इन इतने भिन्न–भिन्न मणियों की स्वतंत्रता की उत्सुकता एक धागे में पिरोई गई थी। परंतु अंतिम सूत्रमणि का बंधन न मिलने से यह बंधरहित माला एक झटके में आब तक छितर नहीं गई यही एक आश्चर्य था। स्वतंत्रता की हवा से ये रेत कण एक बादल में मिल गए थे, पर हवा से उत्पन्न बादल जैसा ही बिखराव उनमें बना हुआ था। ऐसी स्थिति में उन्हें एक कर्णधार चाहिए था।

उन्होंने जिसे मुखिया माना था वह वृद्ध बादशाह भी किसी एक कर्णधार के लिए उन हजारों सिपाहियों जितना ही उतावला था। उसने बख्तर खान को सारे अधिकार देकर देखे। फिर उसने तीन जनरल नियुक्त कर उनके हाथों में नेतत्व देकर देखा। फिर दिल्ली के तीन नागरिक और सिपाहियों के तीन प्रतिनिधि ऐसे छह लोगों का प्रतिनिधिमंडल सारी कार्यवाही संगठित रीति और एकमत से करे, यह निश्चित किया। पर वह प्रतिनिधिमंडल भी जब निष्फल हो गया तब उस उदार और देशाभिमानी बादशाह ने अपने कारण यदि राज्य क्रांति का नाश हो रहा हो और अपने कारण कर्ता लोग अंग्रेजों की ओर जा रहे हों तो अपना शासन भी छोड़ देने को मैं तैयार हूं, इसकी घोषणा की। हिंदुस्थान अंग्रेजों के अधीन रहने की अपेक्षा, हिंदुस्थान में विदेशियों का भ्रमण चालू रहने की अपेक्षा तथा हिंदुस्थान किसी तरह की राजनीतिक गुलामी में सड़ते रहने की अपेक्षा, स्वदेश को स्वतंत्रता प्राप्त करा देनेवाला कोई भी स्वदेशी अधिपति आगे आए तो मुझे सौ गुना अधिक आनंद होगा, ऐसा उस वृद्ध मुगल ने सबको सूचित किया और अपने हस्ताक्षरों से जयपुर, अलवर, जोधपुर, बीकानेर आदि प्रमुख राज्यें को पत्र लिखे

कि ''अंग्रेजों की बेड़ियों के टुकड़े देखना और किसी भी तरह हिंदुस्थान स्वतंत्र हो, यह मेरी तीव्र इच्छा है। परंतु इस आपात स्थिति में जो सारे देश को नेतृत्व देने में समर्थ हो, राष्ट्रीय शक्ति को जो संगठित कर सके और जिसमें सारा राष्ट्र एकमत हो सके, ऐसा कोई एक धुरंधर कर्णधार सामने आए बिना यह राज्य क्रांति सफल होनेवाली नहीं। हिंदुस्थान को अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्र कर उस पर मेरा ही अधिराज्य स्थापित हो, यह मेरी व्यक्ति विषयक महत्त्वकांक्षा शेष नहीं है। स्वदेश की स्वतंत्रता के कार्य में तलवार से सज्जित होकर अंग्रेजों को सीमा पार करने के लिए आप सब राजा तैयार हों तो हिंदुस्थान के राजमंडल द्वारा स्थापित किसी भी राजमंडल का आधिपत्य स्वीकार कर अपने साम्राज्य अधिपति के अधिकर मैं स्वयं उसके हाथ में देने को खुशी से तैयार हूं''[125]

यह पत्र मुसलमान धर्म का समर्थक दिल्ली का बादशाह हिंदुस्थान के हिंदू धर्मीय राजाओं को भेज रहा है। सन् 1857 के साल में स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वदेश और स्वधर्म आदि उदात्त शब्दों का कितना यथार्थ बोध हिंदुस्थान के लोगों को हुआ था, यह उपर्युक्त अद्भुत पत्र से स्पष्ट होता है। हिंदू और मुसलमानों की धर्म–भिन्नता स्वदेश की एकता में इतनी विलीन हुई देखकर चार्ल्स बॉल कहता है–''ऐसा अनपेक्षित, आश्चर्यकारी और विलक्षण परिवर्तन विश्व इतिहास में कदाचित् ही मिलेगा।''

परंतु यह विलक्षण परिवर्तन हिंदुस्थान देश के एक सीमित प्रदेश में ही पूरी तरह घटित होने से उसका तात्कालिक परिणाम सफल नहीं हो सका। दिल्ली की दीवार के सामने गुलामी और देश–स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू थी, यह एक अर्थ में और प्रमुखता से बलाबल की वास्तविक लड़ाई शुरू ही नहीं हुई थी, ऐसा दिखेगा। 'दिल्ली का घेरा' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक का लेखक कहता है–''हमारे शिविर में एक यूरोपियन के पीछे दस नेटिव थे । जितने यूरोपियन तोपखाने पर होते उससे चौगुने नेटिव लोग और घोड़े के पीछे दो नेटिव घुड़सवार थे। नेटिवों की भरती के सिवाय एक कदम भी आगे रखना संभव नहीं।'' देश के एक भाग की चेतना देश के दूसरे भाग की अचेतनता ने मार गिराई। ऐसी स्थिति विद्रोहियों ने अगस्त समाप्त होने तक भी अंग्रेजों को अपने पर मार करने का अवसर न देते हुए अभी तक अघातक पद्धति का अवलंबन की कोई सामान्य पहचान नहीं थी।

तोपखाने ने सारी अंग्रेजी सेना पर ऐसी मार करनी चालू की कि सर कोलिन को स्थान छोड़कर सेना की भी बहुत सी हलचल और अंग्रेजी तोपों से बहुत देर गोलाबारी बंद रखनी पड़ी। क्रांतिकारियों का इस साहस से किया हुआ रण–आह्वान आज तक चुपचाप सुनने का सर कोलिन को जो अवसर आया वह इस 5वीं तारीख के बाद

[125] मेटकॉफ कृत–'टू नेटिव नैरेटिव्स', पृष्ठ 226 ।

ओनवाला नहीं था; क्योंकि अब उसने अपनी सेना की उत्तम एकबद्धता कर मार्ग की सारी बाधाएं दूर कर ली थीं और इसलिए दिनोंदिन अंग्रेजी कमांडर–इन–चीफ के तंबू पर प्रत्यक्ष गोलाबारी का गुल्ली–डंडा खेलते बैठे दृढ़, साहसी और उ्ददाम विद्रोहियों से 6 तारीख को स्वयं आगे बढ़कर युद्ध करने का निश्चय उसने किया। इस समय विद्रोहियों की ओर कोई आठ–दस हजार सैनिक शिक्षा प्राप्त सिपाही थे और उनके बाएं बाजू में सवयं नाना साहब, दाई ओर ग्वालियर की सेना और उस सब पर तात्या टोपे सेनापति थे। अंग्रेजों के पास कुल गोरी और काली मिलाकर पांच हजार पैदल, छह सौ घुड़सवार, पैंतीस तोपें–ऐसे लगभग छह हजार लोगों की सेना सज्ज थी। चार्ल्स बॉल कहता है–''पचहत्तर हजार सेना थी और उन सब पर स्वयं कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन सेनापति था।''

ऐसी इन तत्त्वनिष्ठा को कर्तव्य का बल देनेवाला कोई कर्णधार विद्रोहियों की ओर आने की बजाय अंग्रेजी छावनी में ही निकल्सन के आने से वह लाभ मिलने पर दिल्ली में निराश की छाया पड़ने लगी। नीमच और बरेली की सेना एक–दूसरे के सिर निराशा का खपरा फोड़ने लगी और वेतन मिलने के बाद भी बदमाश सिपाही फिर–फिर निराशा का खपरा फोड़ने लगी और वेतन मिलने के बाद भी बदमाश सिपाही फिर–फिर वेतन का तगादा क रवह न मिलने पर शहर के श्रीमान लोगों पर अत्याचार करने की धौंस देने लगे। तब बख्तर खान ने बादशाह की इ च्छा से सारे नेता, सारी सेना एवं चुने हुए नागिरिकों को बुलाकर प्रश्न किया–''लड़ाई चालू रखनी है या बंद करनी है?'' आकाश फट जाए, इतने जोर की गर्जना कर सबने उत्तर दिया–''लड़ाई, लड़ाई, लड़ाई!'' दिल्ली का यह अटल निश्चय देखकर फिर से सब ओर जोश दिखा और बरेली और नीमच की सेना को साथ लेकर अंग्रेजों के सीजट्रेन पर हमला करने के लिए विद्रोहियों की सेना नजफगढ़ तक पहुंची। बरेली ब्रिगेड ने जहां डेरा डाला, नीमच की सेना वहां डेरा न डालकर शत्रु पर एक साथ आक्रमण न करते हुए और बख्तर खान का आदेश न मानते हुए पास के एक गांव में जाकर उतरी। अंग्रेजों को यह समाचार मिलते ही उनका ताजादम सेनापति निकल्सन चुनी हुई एवं भरपूर सेना के साथ बहुत तेजी से नजफगढ़ की ओर चल पड़ा और बख्तर खान का आदेश न मानकर एक तरफ पड़ाव डाले हुई नीमच ब्रिगेड पर उसने अकस्मात् छापा मारा। विद्रोही असावधान, अकेले और अव्यवस्थित थे तो आक्रमणकर्ता सावधान, सनायक, व्यवस्थित–निकल्सन के सेनापतित्व में। फिर क्रांतिकारियों की दुर्दशा की सीमा शेष नहीं रही। बेश कवे लड़े बड़ी बहादुरी से, शत्रु भी स्तुति करें–इतनी शूरता से लड़े। पर वह शूरता निष्फल। बुंदेल की सराय की लड़ाई के बाद विद्रोहियों की ऐसी पराजय नहीं हुई थी। नीमच की पूरी ब्रिगेड उस दिन नष्ट हो गई। स्वयं के द्वारा जिसे अधिकार सौंप गए थे उसके आदेश का पालन न करके अहंभाव के किए गए आचरण का ऐसा फल मिला। बिना आदेश के शूरता भी वीरता के अभाव

जैसी ही निष्फल रहती है। 25 अगस्त को मिली इस विजय से अंग्रेजी छावनी में आज तक छाए निराशा के बाद बिल्कुल छंट गए । जून माह से यही सच्ची विजय उनको मिली थी। अब हर कोई दिल्ली पर हमला करने को व्याकुल हो गया। कमांडर विल्सन ने बेअर्ड स्मिथ को अंतिम आक्रमण का नक्शा तैयार करने का आदेश दिया। जिस बेअर्ड ने निराशा से भरे अंग्रेजों को दिल्ली से वापस लौटने से रोका था उसी ने वह नक्शा भी तैयार किया। पंजाब से आनेवाली सीजट्रेन आक्रमण के लिए आवश्यक अप्रतिम युद्ध सामग्री लेकर अंग्रेजी छावनी में सुरक्षित पहुंच गई। जिस शहर ने अंग्रेजों की उत्कृष्ट सेना को, सेनापतित्व को और समरपटुत्व को तीन माह तक रणांगण में परेशान किया हुआ था उस दिल्ली को धूल में मिलाकर आज तक सहे कष्ट को सफलता में बदलने का समय निश्चित ही पास आया हुआ है—ऐसा उत्साहवर्धक संदेश भी अंग्रेजी सेना के कमांडर ने लश्कर में प्रचारित किया।

पंजाब की नई सहायता आने के बाद अंग्रेजों की कुल साढ़े तीन हजार यूरोपियन, पंच हजार नेटिव सिख, पंजाबी आदि सिपाही और ढाई हजार कश्मीरी सेना मिलकर कोई ग्यारह हजार लोगों के अतिरिक्त अपने सैकड़ों सिपाही लेकर स्वयं जींद रियासत का राजा दिल्ली विजय के मुहूर्त पर अंग्रेजों से आकर मिल गया था। सितंबर के पूर्वार्ध में अंग्रेजी कमांडर ने विघातक पद्धति से आक्रमण कर नई—नई बैटरियों का निर्माण प्रारंभ किया है, यह देखकर दिल्ली के विद्रोहियों में भय निर्माण हुआ और चारदीवारी के बाहर अंग्रेज मानो एक व्यक्ति हो, ऐसे अनुशासनबद्ध होकर बढ़ते जाते थे। जबकि चारदीवारी के अंदर अवज्ञा और अनुशासनहीन व्यवहार वृद्धि पा रहा था। अंग्रेजों की ओर जो नेटिव थे वे तोपों की मार में बैटरी निर्माण के कार्य में इतनी दृढ़ता से लगे रहते कि फॉरेस्ट लिखता है—''नेटिव लोगों में कूट—कूटकर समाए निश्चलता के शौर्य का उन्होंने कमाल दिखाया। एक के बाद एक आदमी मरता जा रहा था—मृतक के लिए एक क्षण वे ठहरते, एक—दो आंसु बहाते, शवों की पंक्ति में वह शव रखते और फिर से उस मृत्यु स्थान पर काम करने लगते।'' अंग्रेजों के अधीन नेटिव ऐसा अचल अनुशासन बरतते और दिल्ली शहर के नेटिव एक—दूसरे का काम ढकेल रहे थे। इस भिन्नता से बहुत सीखना आवश्यक है। अधिकारियों का उचित सम्मान और आदेश के शब्दों के प्रति आदर, यह अनुशासन का मुख्य बीज है। पर दिल्ली में इस बीज को सब जगह पैरों के नीचे कुचला जा रहा था। अधिकतर दोष असमर्थ अधिकारियों को और शेष स्वच्छंद आचरण करते अनुयायियों को; और अब उनमें निराशा, निरूत्साह का जोर! दिल्ली के बाहर बढ़ता जा रहा दबाव और दिल्ली के अंदर अस्त होता जा रहा यह उत्साह—इन दोनों का ही अंत करने के लिए सिंतबर की 14 तारीख उदय हुई।

अंग्रेजी सेना के चार विभाग कर उसमें से पहले तीन विभाग निकल्सन के अधीन कश्मीरी दरवाजे से घुसने के लिए भेजे गए और काबुल दरवाजे से घुसने के लिए चौथा भाग मेजर रीड के अधीन अंग्रेजों की दाईं ओर खड़ा हो गया। इन दो स्थानों पर चारदीवारी में छेद करेन का काम प्रारंभ हुआ। सूर्योदय होते ही अंग्रेजों की दीवार फोड़नेवाली तोपें एकदम बंद हो गई। अंग्रेजों के शिविर में एक क्षण भर अंतिम समय की निःशब्दता! और तुरंत ही निकल्सन के साथ वह शिविर किसी जीवित दीवार की तरह एकाएक आगे दौड़ चला। उसके पहले नंबर के कॉलम ने कश्मीर बेस्टन के पास दीवार में जो छेद बनाया था उधर हमला किया। इसमें से गोलियों की बौछार शुरू हो गई। खंदक में अंग्रेजों के शव धड़ाधड़ गिरते हुए कुछ दीवार से आ लगे। दीवार को सीढ़ी लगी। सीढ़ी पर चढ़ा कि गिरा–ऐसी प्रचंड मार में अंग्रेजी सेना फिर–फिर दीवार पर चढ़ने लगी। अंग्रेजी सेना दीवार के छेद से अंदर घुसी। दीवार का वह हिससा जीत लिया गया–विजय का घंटा बजा।

इस कश्मीर बेस्टन जैसे ही वॉटर बेस्टन के छेद से भी भयानक मारकाट करते, मरते–मरते एवं मारते–मारते अंग्रेजों के दूसरे नंबर के कॉलम ने वह छेद जीत दीवार के अंदर प्रवेश किया।

तीसरे नंबर का कॉलम कश्मीरी दरवाजे की ओर जा रहा था। लेफ्टिनेंट होम और सालकेल्ड के वह दरवाजा बारूद लगाकर उड़ा देने के लिए उस दरवाजे के सामने आते ही दीवार के सामने खंदक पर बना पुल गिराया हुआ था। केवल एक बल्ली बची हुई दिख रही है। ठीक है, उसी पर से चलो। सार्जेंट मरा। वह महादूत भी गिरा पर आगे बढ़ो, होम आगे चला। होम ने आगे जाकर हाथ का बारूद अंत मं दरवाजे में रख ही दिया। तो फिर आग लगानेवाली दूसरी टोली बल्ली पर से घुसने लगी। लेफ्टिनेंट सालकेल्ड गोली लगकर गिर पड़ा, कारपोरल तू आगे घुस–तुझे भी गोली लगी? पर कुछ परवाह नहीं। मरते–मरते शूरों ने चिंगारी तो डाल ही दी। धड़ाड़, धड़ाड़, धड़ाड़? कश्मीरी दरवाजा खुलने की राह देखते अंग्रेजी सेनापति को उस भयानक युद्ध की मारा–मारी के घन गर्जन में वह आवाज साफ सुनाई नहीं पड़ा। परंतु वे आगे बढ़े? पर कयों न बढ़े? यद्यपि विजय का घंटा मुझे सुनाई नहीं दी। फिर वह आगे बढ़े अंग्रेजी वीर! वे असफल हुए होंगे, यह असंभव! अब बहुत समय हो गया है, अतः हम आगे तो बढ़ ही लें। ऐसे प्रबल आत्मविश्वास से कैंपबेल ने हमले के आदेश दिए। खंदक तक वे पहुंचे। उन्होंने खंदक में पड़े अपने विजयी मरणोंन्मुखों को देखा और मारते–दौड़ते वे कश्मीरी दरवाजे के टूटे हिस्से से दिल्ली में कूद पड़े। वहीं उन्हें अपने–अपने काम सफलता से पूरे कर दिल्ली में घुसे हुए वे पहले दो कॉलम भी मिले। निकल्सन के अधीनस्थ ये तीनों

भाग युद्धभूमि के अपने–अपने काम रंगभूमि के पात्रों जैसी व्यवस्था से करके सेना का चौथा कॉलम कहां है–यह एक–दूसरे से पूछने लगे।

अंग्रेजी सेना का चौथा भाग मेजर रीड के नेतृत्व में काबुल दरवाजे से हल्ला करने के लिए अंग्रेजों के दाएं बाजू से निकला था। सब्जी मंडी तक वह चलकर आया तो उन्हें रोकने, दिल्ली से बाहर निकले सिपाहियों से उनकी मुठभेड़ हुई। पहले हमले में ही मेजर रीड के नीचे गिर जाने से अंग्रेजी सेना में किंचित दबाव के कारण आदेश के लिए भ्रम उत्पन्न हुआ और विद्रोहियों का उत्साह चढ़ा और अंग्रेज भागता है क्या, ऐसा रंग दिखने लगा। पर होप ग्रांट अचूक रीति से अपने घुड़सवारों के साथ वहां दौड़ता आ पहुंचा और फिर से अंग्रेजी पक्ष का अटल रण शुरू हो गया। अंग्रेजों ने तोपों से जोरदार मार चालू की तब भी किशनगंज के बाग से, घर–घर से विद्रोहियों की गोलियां सूं–सूं करते रक्त की वर्षा कर रही थी। अंग्रेजी घोड़ों को आगे बढ़ाना कठिन हो गया। तोपें विद्रोही छीन लेंगे इस डर से पीछे जाना भी संभव न रहा। वे अंग्रेज घुड़सवार वहीं खड़े–खड़े मरने के लिए जम गए। एक आदमी भी नीचे गिरने के अतिरिक्त मृत्यु से डरकर इधर–उधर नहीं हिला। अंग्रेजों की ओर से नेटिव कमांडर घुड़सवारों की इस अपूर्व शूरता और आज्ञापालन के इस अपूर्व मेल के लिए उसका कमांडर होव ग्रांट कहता है–''नेटिव घुड़सवार अटल रहे। उनकी सिपाहियों पर आश्चर्य है! मैं उन्हें प्रोत्साहित करने लगा तो वे बोले, 'चिंता नहीं, इस स्थान पर हम आप जितनी देर कहें उतनी देर तक खड़े रहेंगे।''

अंग्रेजों की ओर से लड़ते नेटिव की शूरता को मात करनेवाला शौर्य स्वतंत्रता के पक्ष में सम्मिलित नेटिव ने प्रकट किया था। जिद से भरे वे विद्रोही इंच–इंच भूमि को लड़ते–लड़ते अब ईदगाह पर तेज मारामारी करने लगे। फिर गुस्से से भरकर हमले–पर–हमला। ईदगाह पर कब्जा करना चाह रही अंग्रेजी सेना डगमगाने लगी– फिर चढ़ाई करो; अंग्रेजी सेना हटी–फिर करो हमला–ईदगाह से मार खाते–खाते अंग्रेजी फौज ऊपर वर्णित बहादुर घुड़सवारों और अंग्रेजी तोपों के आश्रय में आ गई–फिर भी हमला करो। अब यहीं तक रहने दो। यह स्थान छोड़कर यह अंग्रेजी सेना लौटने लगी है। शाबाश विद्रोहियों! भी लड़ाई की। यदि तुममे से सबने ऐसा ही किया होता तो!

इस चौथे भाग का जब ऐसा मनोभंग हो रहा था तब अंग्रेजों के शहर में घुसे तीन भाम कश्मीरी दरवाजे के पास थोड़ी देर ठहर फिर शहर पर कब्जा करने कूद चले। कैंपवेल, जोन्स और योद्धा निकल्सन ये तीन प्रमुख सेनापति अपनी निडर सेना को–'चलो मर्दों, चलो' इस युद्ध गीत से आह्वान करते हुए काबुल दरवाजे की ओर लड़ते हुए निकले। जो भी तोप के रास्ते में मिले उसे कब्जाते, जो भी टेकरी दिखे उसपर अंग्रेजी झंडा फहराते और मार–काट करते–करते ब्रिटिश सेना बर्नबेस्टन स्थान तक आ पहुंची। परंतु यहां से अब खाली तोपें, बेजान टेकरियों और शूरशून्य रणक्षेत्र के स्थान पर 'दीन बोलो।

दीन' की भयानक चिंघाड़ सुनाई दी और विद्रोहियों के गोलों का हमला हुआ। भयंकर रक्तपात होने लगा, मृत्यु का नाच शुरू हो गया, विजय से उन्मत्त अंग्रेजी सेना हतोत्साहित होकर पीछे हटी। सामने से यह पीछे हटना देखकर वह हठी वीर निकल्सन बाघ–सा–झपटा। शूरवीरों को जग में कुछ भी असाध्य नहीं, यह जिसका संकल्प था, वह निल्सन बर्नबेस्टन पर हुए अपमान से चिढ़कर फिर उस गली में घुसने लगा तो वहां फिर घमासान मच गया। इस दौ सौ गज लंबी गली में उस दिन जो मारकाट हुई वह पानीपत जैसे रण का एक संक्षिप्त संस्करण ही थी। जों अंग्रेज आगे पैर बढ़ाता उसे स्वतंत्रतार्थी जेहादी समर में गिरा ही देंगे, यह बात पक्की धकेलने लगी। शूर मेजर जैकब को भी उसने दांतों के नीचे रख चबा डाला। वीर निकल्सन, अब तुम ही आगे बढ़ो। तुझे छोड़कर अंग्रेजी सेना के सारे सेनापति इस गली ने नष्ट किए हैं। आया, हे स्वातंत्र्याभिमानी गली, वीरता की गुफा, आ गया स्वयं निकल्सन तुझपर दौड़ा। अब वास्तविक परीक्षा है। निकल्सन उस गली पर और गली निकल्सन पर। भयंकर युद्ध हुआ। तभी अंग्रेजी सेना में बिजली गिरने जैसा हाहाकार मच उठा। हटो, हटो! अंग्रेज सेना कहने लगी और छांटो–काटो–यह यह कोलाहल उस गली में उठा। जिसके नख निकल्सन के रक्त से भर गए थे वह भयंकर गली। जिसकी लंबाई के हर इंच पर किसी–न–किसी अंग्रेज की कब्र होगी।

उस वीर्यवान गली से दूसरी बार भाग चली उस अंग्रेजी सेना का भाग किसी अंग्रेजी शासन में कभी उदय नहीं हुआ था। उनके चार भागों में से तीन भागों के प्रमुख कमांडर घायल हुए। छियासठ मृत्यु संखया से क्या प्राप्त किया, यह देखने पर जनरल विल्सन को ज्ञात हुआ–दिल्ली के परकोटे का एक–चौथाई भाग हाथ में है। भय, चिंता और निराशा से पागल हुआ वह अंग्रेज कमांडर बोला, ''दिल्ली छोड़कर तत्काल पीछे हट जाना चाहिए। सारा शहर अभी अविवाहित ही बना हुआ है। मेरे अधीनस्थ शूर लोगों की एक गली ने रक्षा की और जो मुट्ठी भर लोग अभी भी जीवित हैं उन्हें हजरों विद्रोही हर घर से आगे आने को बड़ी शान से बुला रहे हैं। ऐसी स्थिति में सारे–के–सारे लोग मर जाएं या पीछे लौटने का अपयश स्वीकार करें।''

अंग्रेजों का मुख्य कमांडर

जनरल विल्सन बोला, ''इसलिए अब पीछे लौटना चाहिए।'' पीछे लौटना चाहिए।''

पीछे लौटना चाहिए? मृत्यु की ओर बढ़ते निकल्सन को अस्पताल में यह समाचार मिलते ह ीवह वीर बोला, ''पीछे लौटना! उस पीछे हटनेवाले विल्सन को गोली मारने की शक्ति ईश्वर कृपा से मुझमें अभी भी शेष है।'' इस मरते वीर की तरह ही सारे जीवित अंग्रेजों ने भी यही कहा और 14 सिंतबर की रात कब्जा किए भाग को संभाले अंग्रेजी सेना अटल बनी रही।

जनरल विल्सन के पीछे लौटने के विचार को अंग्रेज योद्धाओं ने जितना अस्वीकार कर दिया उससे भी अधिक विद्रोहियों के शिविर में चल रही हलचल ने विल्सन के भय की व्यर्थता प्रकट करना चालू कर दी। दिल्ली में अधिक देर न लड़ते हुए हम बाहर के प्रदेशों में युद्ध करेन निकल पड़ें, यह एक पक्ष का विचार बना और दूसरे पक्ष का दृढ़ विचार था कि मृत्यु–पर्यंत दिल्ली समर्पण न करें। अंग्रेजों में कितने ही मतांतर हों, तब भी बहुमत का सम्मान कर अंत में भिन्नता को एक वाक्य कर लेने का अमूल्य सद्गुण भी था इधर क्रांतिकारी सिपाहियों की अंधरे नगरी में उसका अभाव होने से उपर्युक्त दोनों पक्ष एक दिशा में न जाकर अलग–अलग रास्तों पर निकल पड़े। कुछ सिपाही दिल्ली छोड़कर बाहर निकले। कुछ अंत तक दिल्ली की भूमि से एक भी पैर पीछे न हटने का निश्चय कर रणांगण में अचल बने रहे। 15 सितंबर से 24 सितंबर तक दिल्ली में इसी पक्ष ने युद्ध किया और वह भी इतने निश्चय, शौर्य और दृढ़ता से कि मस्जिद और राजमहल में जब अंग्रेजी सेना घुस रही थी तब उस सारी सेना के सामने एक–एक रखवाला ही बंदूक हाथ में लिये खड़ा मिला। अंग्रेज पास आते ह ीवह धैर्य से बंदूक तानता, बिल्कुल निशाने पर आते ही शत्रु पर गोली चलाता और स्वदेश के लिए यह जीवित अवस्था की अंतिम सेवा कर मृत्यु क सेवा में हाजिर हो जाता। अंग्रेजी इतिहासकार लिखते हैं–''जिस समय महल मं अंग्रेज सेना घुसने लगी उस समय वहां कुछ जेहादी लोग खड़े हुए दिखाई दिए। वे पंक्ति में भी नहीं थे, क्योंकि पंक्ति बनाते, इतनी उनकी संख्या ही नहीं थी। तथापि जिस शत्रु से आज तीन माह तक बड़ी दृढ़ता से उन्होंने संघर्ष किया उन फिरंगियों से उनकी शत्रुता जीवन के अंतिम क्षण तक भी ढीली नहीं पड़ी थी, यह सिद्ध करने के लिए वे सिपाही शत्रुता जीवन के अंतिम क्षण तक भी ढीली नहीं पड़ी थी, यह सिद्ध करने के लिए वे सिपाही विजय की रत्ती भर परवाह किए बिना अद्भूत कर्मी लोग हमें चिढ़ाते अचल खड़े रहे थे।''

अंग्रेजों के हाथ में दिल्ली का तीन–चौथाई भाग चला जाने के बाद कमांडर–इन–चीफ बख्तर खान दिल्ली के बादशाह से मिले और बोले, ''दिल्ली तो अपने हाथ से चली गई है, परंतु इससे विजय की सारी संभावना अपने हाथ से निकल गई, ऐसा नहीं है। बंद स्थान से लड़ाई लड़ने की अपेक्षा खुले प्रदेश से शत्रु को परेशान करने का दांव अभी भी निश्चित विजयी होने वाला है। अपनी सेना के उन लोगों को लेकर, जो स्वतंत्रता युद्ध में मरते दम तक तलवार उठाए रखने को तैयार हैं, ऐसे योद्धाओं को चुनकर मैं उनके साथ

दिल्ली में लड़ाई करता हुआ दूसरी जगह निकल जा रहा हूं। शत्रु की शरण जाने की अपेक्षा लड़ाई करते हुए बाहर निकल जाना ही हमें इष्ट लगता है। ऐसे समय आप भी हमारे साथ चलें और अपने झंडे के नीचे हम स्वराज्य के लिए ऐसे ही लड़ते रहें।'8 बाबर, हुमायू या अकबर के तेज का शतांश भी यदि इस वृद्ध मुगल में होता तो उसने यह वीरतापूर्ण निमंत्रण मानकर उस साहसी बख्तर खान के साथ दिल्ली से कूच किया होता। पर बुढ़ापे से बलहीन, राजविलास से मतिमंद और पराजय से भयभीत हुए उस बादशाह ने अंतिम समय तक अपनी अनिश्चितता और चंचलता बनाए रखी। अंतिम दिन वह हुमायूं की कब्र में छिपकर बैठा और बख्तर खान का निमंत्रण अस्वीकार कर इलाही बख्श मिर्जा के उपदेश के अनुसार अंग्रेजों की शरण जाने लगा। इलाही बख्श असल दगाबाज था। उसने यह समाचार अंग्रेजो को दिया अंग्रेजों ने तत्काल कैप्टन हडसन को उधर भेजा। जीवनदान का वचन लेकर बादशाह ने समपर्ण किया। उसे महल तक लाकर कैद में डाल दिया गया। फिर दगाबाज कुत्ते इलाही बख्श और मुंशी रजब अली दौड़े आए और बोले, ''अभी शहजादे हुमायूं के मकबरे में ही छिपे बैठे हैं।'' फिर हडसन दौड़ा गया। शहजादों ने समपर्ण किया और उन्हें वह गाड़ी में बैठाकर दिल्ली की ओर ले चला। शहर में पैर रखते ही हडसन शहजादों की गाड़ी के पास दौड़कर पहुंचा और चिल्लाकर बोला, ''अंग्रेजों की महिलाओं, बच्चों का वध करनेवालों को मृत्युदंड ही दिया जाना चाहिए।'' कांपते हुए वे गाड़ी से नीचे खीचें गए, उनके शरीर के सारे वस्त्र उतार लिये गए और हडसन ने उन शरणागत शहजादों की ओर से अपना मुंह फेरा और तीन गोलियों से उसने उन तीनों शहजादों का मार डाला। तैमूर के वंशवृक्ष की वे अंतिम पत्तियां हडसन ने तोड़ डाली। परंतु उसकी क्रूरता का समाधान इन शरणागत शहजादों को केवल गोलियों से भूनकर नहीं हुआ। मृत्यु तक तो जंगली आदमी भी बदला लेते है। फिर सभ्य आदमी में और उनमें अंतर ही क्या रहा! इसलिए उन शहजादों के शवों को उठाकर दिल्ली की कोतवाली की ओर फेंका गया। गिद्धों को तैमूर के वंशजों की बढ़िया दावत देने के बाद उन सड़े शवों को खींचकर नदी में फेंक दिया गया। अकबर के वंशजों को दफनाने के लिए कोई भी न रहा! हे कालचक्र! तेरे कैसे–कैसे खेल हैं? अब सिखों को सचमुच लगने लगा कि उनके ग्रंथ में लिखा भविष्य सच हुआ। पर वह किस अर्थ में? किस तरह क्या फलित देकर?

फिर दिल्ली में भयानक कत्ल और लूट चालू हुई। उसका वर्णन सुनकर लॉर्ड एलफिंस्टन जॉन लॉरेंस को लिखता है–''दिल्ली का घेरा समाप्त हो जाने पर अपनी सेना ने दिल्ली का जो हाल किया वह हृदयद्रावक है। शत्रु और मित्र का भेद न करते हुए सरेआम बदला लिया जा रहा है। लूट में तो हमने नादिरशाह को भी मात दे दी।''[126]

यूरोपियन और नेटिव सिपाहियों सहित दिल्ली के घेरे में लगी अंग्रेजों की सेना

[126] 'लाइफ ऑफ लॉरेंस', खंड 2, पृष्ठ 262 ।

दस हजार ततक हो गई थी और उसमें से मृत्यु–मुख में पड़े और घायल पड़े कोई चार हजार लोग इस युद्ध में काम आए। क्रिमियन वार जैसे प्रचंड युद्ध में भी जनहानि का इतना विशाल अनुपात नहीं दिखता।[127] विद्रोहियों की ओर जो जनहानि हुई होगी उसका विश्वसनीय आंकड़ा निकालना–अंग्रेजी ग्रंथों से–असंभव है। फिर भी कम–से–कम पांच से छह हजार तक उनकी जनहानि हुई ही होगी।

इस तरह यह इतिहास–प्रसिद्ध नगर स्वदेश, स्वतंत्रता और स्वधर्म–रक्षा की दिव्य चेतना से संचालित होकर कोई एक सौ चौंतीस दिनों तक अंग्रेजों जैसे सबल शत्रु की समर कुशलता को धिक्कारता हुआ रात–दिन संघर्षरत रहा। कुल मिलाकर यह अटल संघर्ष तत्त्वनिष्ठा को शोभा देनेवाला था । अपनी दीवार पर गढ़ा फिरंगी निशान फेंककर अपने निशान की घोषणा जिस दिन की गई, गुलामी का मायाजाल फाड़कर स्वतंत्रता प्राप्ति के साहसी अभियान पर जिस दिन दिल्ली बढ़ी, सारे हिंदुस्थान के नाम से स्वधर्म प्रतिष्ठा के साहसी अभियान ध्वज गाड़कर उस विस्तीर्ण देश की एकता की संवेदना का दिल्ली ने जिस दिन प्रथमोच्चार किया, उस दिन से बहादुरशाह के राजमहल में अंग्रेजी तलवार ने, अंतिम स्वदेशी रक्त बिंदु गिरने तक इस शहर ने स्वदेश स्वतंत्रता के जेहाद को अलंकृत करे–ऐसे वीरता–प्रचुर, स्वार्थ–निवृत्तिमय और उदारचरित्र कृत्य कुछ कम नहीं किए। नेता न होते, संगठन न होते, अंग्रेजों जैसा करते हुए शत्रु का सामना करते और विशेषकर असल फिरंगी तलवारों की तुलना में अपने ही कम–असल देशजों की तलवारें अपने प्राण लेने के लिए दिल्ली पर टूट पड़तीं–पहली बाधा से अनाथता, दूसरी से बिखराव, तीसरी से असह्यता और चौथी से उत्पन्न होती उद्विग्नता–इन सारे संकटों की परवाह न करते हुए रणभूमि पर देशवीरों और धर्मवीरों की भांति अचल, मृत्यु का वरण करते हुए सत्कृत्य दोनों ही भावी पीढ़ी के अभिमान के ही पात्र होंगे। इसलिए लज्जास्पद नहीं, उन दोषों और सत्कृत्यों की पंक्ति के एक अद्भुत तत्त्वनिष्ठा का तेज, स्वधर्माभिमान का तेज, स्वदेश स्वतंत्रता का तेज, झिलमिलाता होने से वे दोनों ही कृत्य नैतिक उदाहरण के मूर्त व्याख्यान हैं।

हे दिल्ली नगरी! तू गिरी, उसमें कोई लज्जा नहीं। क्योंकि तू स्वराज्य के लिए, स्वधर्म के लिए, स्वदेश के लिए लड़ी थी! अतः 'दन्तछेदो हि नगानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे!' पर्वत से जूझते हुए चूर्ण हुआ दांत ही गजश्रेष्ठ के लिए होता है।

[127] 1. लाइफ ऑफ लॉरेंस', खंड 2 की फॉरेस्ट द्वारा लिखित प्रस्तावना।
2. रॉटन जैसा ग्रंथकार भी कहता है–''विद्रोहियों के हताहतों की संख्या सदैव ही अगणित बताई जाती थी।'' –पृष्ठ 195

प्रकरण—5

लखनऊ

अव्यस्थित राज्य पद्धति से प्रजा का संरक्षण करने के लिए अवध के घरों में कोने कोने तक घुसी बैठी अंग्रेजी सत्ता को जून माह में क्रांतिकारियों ने मार—पीटकर अवध की एक छोटी सी रेसीडेंसी में धकेलकर बंद कर दिया था। वहां उसको सर हेनरी लॉरेंस ने धीरज देना प्रारंभ किया। चिनहट की लड़ाई में हारकर जब सर हेनरी ने रेसीडेंसी में कदम रखा और वहां अवध पर अधिराज्य पाने के प्रश्न पर फिर से विचार करना प्रारंभ किया तब उसके साथ उस रेसीडेंसी में कोई एक हजार यूरोपियन और आठ सौ नेटिव लोग थे। इन लश्करी लोगों के साथ ही जो अन्य गोरे और काले ईसाई भी आए थे उनकी कुल संख्या 3,000 तक थी। चिनहट की पराजय के बाद यह सेना जब पहली बार रेसीडेंसी में बंद हुई तब उस तेजी से और अकस्मात् आए हुए संकट में रेसीडेंसी का स्थान, दीवारें, कोट—ये सब बहुत कमजोर स्थिति में थे। अंग्रेजों की इस असहायता का तभी लाभ उठाकर उनपर जोर का हमला कर उस रेसीडेंसी को जीत लेने का अच्छा अवसर विद्रोहियों के लिए आया था। पर इस अवसर में बंद हो जाने के बाद कोई दो हफ्ते अपने चारों ओर कोट आदि का संरक्षण की दृष्टि से उत्तम प्रबंध करने में अंग्रेज व्यस्त रहे।

विद्रोहियों की सेना को चिनहट में जिस दिन विजय मिली उसी दिन अवध में

अंग्रेजी राज्यसत्ता समाप्त होकर विद्रोह को राज्य क्रांति का स्वरूप प्राप्त हो गया। सिपाहियों राजाओं और नागरिकों ने प्रथम लखनऊ की खाली गद्दी पर स्वसम्मत सत्ता की प्रस्थापना करना प्रारंभ किया। चिनहट की लड़ाई के बाद पहले हफ्ते में इधर–उधर मची अराजकता–अंधाधुंधी समाप्त किए बिना युद्ध–कार्य के लिए आगे कोई प्रयास नहीं कर पाने के कारण उस हफ्ते में अंग्रेजों को अपने कोट का बंदोबस्त मजबूती से करने की छूट देकर भी विद्रोही पहले लखनऊ की राज्य–रचना के कार्य में लगे। लखनऊ के पूर्व नवाब वाजिद अली शाह कादर को ही लखनऊ क गद्दी पर सर्वसम्मति से बैठाया गया। बर्जिस कादर अल्प वय का होने के कारण अवध राज्य के सारे अधिकार राजमाता बेगम हजरत महल को सौंप दिए गए। दिल्ली के राजमहल का बादशाह बहुत बूढ़ा होने के कारण उसके नाम से शासन के सारे कार्य बेगम जीनत महल ही चलाती थीं तो लखनऊ के राजमहल में भी वहां का नवाब अल्प वय का होने के कारण वहां का राजप्रतिनिधित्व बेगम हजरत महल की कर्मठता पर ही अवलंबित था। यह अवध की बेगम यद्यपि सन् 1857 की दूसरी लक्ष्मीबाई नहीं थी, फिर भी पराकाष्ठा की कर्तव्यवती, स्वतंत्रता के रस में सराबोर और साहस–सकंल्पा थी, इसमें कोई शंका नहीं। उसके दरबार के मैमूब खान आदि सरदारों के नेताओं को और अवध प्रांत के भिन्न–भिन्न स्थानों से लखनऊ की ओर स्वतंत्रता संग्राम के लिए दौड़ते आए कर्मठ लोगों को मान्य भिन्न–भिन्न पुरूषों को बेगम हजरत महल ने न्याय, वसुली, लश्कर, पुलिस आदि विभागों में अधिकारी नियुक्त कर दिया। हर दिन राजनीति के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर चर्चा करने के लिए दरबार भरता और वहां स्वयं बेगम साहिबा अपने अल्प वय नवाब के नाम से राजकाज करती थीं। अवध प्रांत स्वतंत्र होकर अंग्रेजी सत्ता का वहां लवलेश की शेष नहीं है, यह समाचार बेगम के हस्ताक्षर–मुहर के साथ भेज दिया गया। आसपास के सारे जमींदार, मांडलीक, राजाओं को लखनऊ आ जाने के लिए पत्र भेजे गए। भिन्न–भिन्न अधिकारियों की नियुक्तियां, राज्य–व्यवस्था के सर्वांगों की व्यवस्था, हर दिन भरते दरबार आदि से ऐसा सब ओर दिखने लगा कि अवध का विद्रोहित्व समाप्त हो गया है और उसे राजनीतिक संगठनत्व प्राप्त हो गया है।

पर केवल दिखने लग गया है, क्योंकि ये अधिकारी और यह अव्यवस्था और ये दरबार तत्काल नियुक्त करने में जितनी शस्त्रशुद्धता विद्रोहियों ने दिखाई उतनी उन्होंने उपर्युक्त नियुक्तियों के आज्ञापालन में बिल्कुल नहीं दिखाई थी। राज्य क्रांति में सामान्यतः यही दोष घटित होता है और इस कारण राज्य क्रांति के आरम्भ में ही उसके नाश के बीज पड़ जाते हैं। जिसका राज्य उलटना है उसके कानूनों को तलवार से चीर डालना ही राज्य क्रांति है! पर एक बार विदेशियों के कानूनों को तलवार से चीरने की आदत लग जाने पर फिर उस नशे में चाहे जिस भी कानून को अपनी इच्छा के अनुसार लतियाने की आदत लग जाती है। दुष्टतापूर्ण कानूनों को नष्ट करने का चस्का लगी तलवार कानून का ही नाश

करने लगती है। विदेशी शासन का निःपात करने निकले वीर अंत में शासन का ही नाश करने लगते हैं। विदेशी राज्य के बंधन काट देने के रण–मद में उन्हें राजबंधन ही अस्वीकार हो जाते हैं और इस तरह राज्य क्रांति का अंत अराजकता में, सद्गुणों का अंत दुर्गुणों में हो जाता है और हितकर प्रयासों के परिणाम अहितकारी होने लगते हैं। अराजकता–पराजय जितनी ही बंधन–रहितता दुष्ट बंधनों जैसी ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के नाश का कारण होनेवाली होती है–इस समाज–सत्य का विस्मरण जिस किसी क्रांति में हुआ उस क्रांति का उसके क्रांति तत्त्व कारण ही विनाश हुआ है। किसी रोग का परिहार करने के लिए मद्य सेवन की आदत जैसे जाती नहीं, वैसे ही दुष्टतापूर्ण बंधन से मुक्ति के लिए पिया जानेवाला बंधनोच्छेद का मद्य दुष्टता चली जाने के बाद भी व्यसनी लोगों को अंधाधुंध और बेसुध किए रहती है। जो राज्य क्रांति अपवित्र होने लगती है और अपवित्रता के सहभागी विनाश के बीज उसका जल्द ही प्राण हरण कर रहे हैं।

इसलिए परंतत्रता के रोग का नाश करने के लिए जिन्हें राज्य क्रांति का मद्य पीना है उन्हें उस मद्य का व्यसन न लग जाए–वे ऐसी दक्षता हमेशा रखें। विदेशी सत्ता को धिक्कारते हुए ही सवकीय सत्ता का सम्मान करने की दृढ़ शिक्षा देते जाएं, दुष्टापूर्ण बंधन का उच्छेद करते हुए निरकुंशता का चस्का न लगे, ऐसी सजगता रखें। परराज्य का एवं परनिर्मित अधिकार का निःपात करते समय स्वराज्य एवं स्वनिर्मित अधिकार को अति पूजनीय–वंदनीय मानते जाएं। पर सत्ता का उच्छेद होते ही स्वदेशीय समाज में अराजकता के नाशकारी प्रभाव न पड़ें, इसिलए तत्काल बहुमत से जो राज्य–घटना निर्माण हो उसे सब लोग वंदनीय मानें। उस राज्य–घटना की ओर से जो अधिकारी नियुक्त हो उसे सब लोग वंदनीय मानें। उस राज्य–घटना की ओर से जो अधिकारी नियुक्त किए जाएं उनके आदेशों को सिर नवाकर मानना चाहिए, उनके आदशों के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। व्यक्ति की झक भूलकर समष्टि कि सिद्धांत से तन्मय रहना चाहिए और इस बहुमत से निर्मित स्वराज्य घटना में यदि कुछ परिवर्तन करना अपनी विवके बुद्धि को न्यायपूर्ण लगता हो तो उसे बहुमत नियम के अनुसार वैध मार्ग से ही घटित किया जाना चाहिए। सारांश यह कि बाहर विदेशियों का तख्ता पलटना, परंतु अंदर निर्माण करना; बाहर तलवार, पर अंदर विधि–कानून

राज्य क्रांति की सफलता और सिद्धि के लिए अति आवश्यक राज्य व्यवस्था के उपर्युक्त सिद्धांत का सन् 1857 के पूर्वार्ध में बहुत अच्छी तरह पालन किया गया। विद्रोह होते ही यथासंभव वेग से दिल्ली, लखनऊ, कानपुर आदि शहरों में व्यवस्था से राजय प्रबंध के कर्तव्य करने की ओर ध्यान दिया गया। व्यक्ति विषयक अन्याय के अपहरण की इच्छा से इन सब प्रमुख शहरों में कोई भी नकली व्यक्ति अंतिम क्षण तक

सामने नहीं आया। निर्विवाद सिद्ध राजपुरूषों को ही वंश परंपरागत रूप से लोकसम्मत सिंहासन पर बैठाया गया था। इन सब राजपुरूषों ने इस क्रांति का बेजा फायदा लेकर अपने पूर्वार्जित अधिकार बढ़ाने के लिए कोई स्वार्थ नहीं दरशाया था। इतना ही नहीं, उसके विपरीत अपने कारण देश की स्वतंत्रता के उस महान् समर को अपयश से बचाने हेतु जहां संभव हुआ वे अपने पहले के अधिकार छोड़ देने के लिए भी तैयार हो गए, इसके लिखित साक्ष्य प्रकाशित हैं।

यहां तक राज्य व्यवस्था का पूर्वार्ध सराहनीय उदात्तता से सन् 1857 ने पूरा किया। परंतु राज्य व्यवस्था में अत्यंत प्रमुख भाग सैन्य शक्ति–संपन्न लोगों का होने के कारण पर–राज्य बंधन तोड़ते ही उन्हें किसी तरह के बंधन स्वीकार्य न हुए और राज्य क्रांति की इस भीड़ में उनका सारा अनुशासन बिगड़ गया। इस कारण स्वराज्य चेतना की पहली पवित्र लहर में स्वयं ही नियुक्त किए अधिकारियों के सामने वे स्वयं अपमान, अवज्ञा और उपहास भी करने लगे तथा राज्य क्रांति का अंत अराजकता में होने लगा। ऐसी स्थिति में उनके स्वार्थ से दूषित हुई सिद्धांतनिष्ठा को अपने वयक्तिनिष्ठा के ऐश्वर्य के शुद्ध करके अपने पराक्रम के दिव्यत्व से उनका मनोहरण करके जो उन्हें फिर से स्वराज्य व्यवस्था के अनुशासन पर ला बैठाए, ऐसे विलक्षण नेता भी कुछ दिव्य अपवाद छोड़कर–इन अधिकारियों में उत्पन्न नहीं हुए। इस कारण बहुत से स्थानों पर क्रांति पक्ष के शिविर में संगठित सेना की जगह व्यर्थ लोग ही अधिक भरे हुए होते थे। ये तो फालतू लोग थे और उन्होंने ही इस क्रांतियुद्ध को अपजयी बनाया। क्रांतिकारियों में जो शूर, स्वार्थ–त्यागी स्वातंत्र्य समर में कदम रखने लायक पवित्र चरित्र थे उन्होंने यह युद्ध तीन वर्ष तक लड़ा।

लखनऊ का छावनी में इस दूसरे उच्च वर्ग की अपेक्षा पहले वर्ग अर्थात् फालतू लोगों की ही भरती अधिक होने से बेगम हजरत महल के दरबार से नियुक्त भिन्न–भिन्न अधिकारियों के आदेश कभी भी नहीं माने जाते थे और सिपाही लोग बेमुरव्वत, अत्याचारी, अनुशासनहीन और स्वंच्छंद व्यवहार करते थे। इस पहले वर्ग की संख्या यद्यपि बड़ी थी फिर भी दूसरे वर्ग के जो थोड़े लोग उनमें थे उनके शूरत्व और उदात्त विचारों के प्राकृतिक तेज से उन्हीं का प्रभाव सिपाहियों पर अधिक होता था और ऐसे दृढ़ निश्चयी लोगों के आग्रह के अनुसार 20 जुलाई को रेसीडेंसी में बंद अंग्रेजों पर पहला भारी हमला करने की योजना बनी। 20 जुलाई को प्रातःकाल अंग्रेजी पर दागी जा रही विद्रोहियों की तोपें पूरी तरह बंद हो गई। सुबह आठ बजे के आसपास अंग्रेजी रेसीडेंसी के पास विद्रोहियों द्वारा लगाई बारूद धमाके से फूटते ही विद्रोहियों की सेना हमला करने के लिए जोर से उछली। उसी समय उनकी तोपों पर भिन्न–भिन्न दिशाओं से विद्रोहियों के सेना अंग्रेजों पर टूट पड़ी। उस सेना के जिस भाग ने कानपुर बैटरी पर हमला किया

था उसके सैनिकों ने अंग्रेजी तोपों पर निडर होकर हमला किया। 'चलो बहादुर, चलो! चलो बहादुर, चलो!' ऐसी गर्जना करते वे फिर–फिर उन तोपों पर चढ़ जाते। जिनके हाथों में उनका स्वराज्य ध्वज फहरा रहा था उनके वीर्यवर नायक ने स्वयं वह झंडा ऊंचा उठाकर दौड़ते हुए उस तोपखाने की खंदक में छलांग लगा दी और दूसरों को–'चलो, आगे बढ़ो' का आह्वान करता वह खंदक लांघकर अंग्रेजी तोप पर अपना क्रांतिध्वज गाड़ने लगा। परंतु इस विलक्षण साहसी पुरूष को अंग्रेजों की गोली ने तत्काल चित कर दिया। ऐसे समय उस एक शव के पीछे हजारों को आग बढ़ाना छोड़कर और जिस हेतु वह धर्मवीर गिरा उस रिपु रक्त–भाजन की मृत्यु को सार्थक न करते हुए उसे मरता देख विद्रोही आगे बढ़ने की बजाय पीछे हटने लगे। फिर भी, शाबाश सीढ़ीवाले! इन बाजारू लोगों की तरह पीछे न भागते हुए तुम आगे बढ़ रहे हो। लगाओ उन सीढ़िवालो! इन बाजारू लोगों की तरह पीछे न भागते हुए तुम आगे बढ़ रहे हो। लगाओ उन सीढ़िओं को खंदक में! फिरंगी गोलियों की वर्षा में चढ़ो फटाफट उन सीढ़ियों पर–पहला सीढ़ियों पर चढ़ा–गिरा! चलो, दूसरा आगे बढ़ो! पर दूसरा कौन आगे बढ़ेगा? यही तो अंग्रेजी सेना और विद्रोहियों में भेद है। अंग्रेज मृतक का रक्त उसके अनुयायी यों ही नहीं बह जाने देते। एक गिरा, दस आगे, यह उनकी रीत–एक गिरा तो दस पीछे यह हमारी रीत। पीछे आनेवाले कहीं भी पड़ें पर आगे जानेवालो, तुम निश्चित ही स्वर्ग में जाओगे। स्वराज्य का झंडा डरपोक लोगों की जीवित मृत्यु से गंदा न हो, इसलिए उसे हाथ में लेकर जिन्होंने शत्रु की आग उगलती तोपों पर उसे लगाना आरंभ किया, ऐसे दिव्य भमीकर्मियों, तुम्हारे रक्त से वह झंडा हमेशा शुद्ध, सतेज और पवित्रता के साथ दमकता रहे। सचमुच ऐसी ही रक्त–रंजित भुजाओं में स्वतंत्रता का झंडा खिलता है। जिनके पास रक्तरंजित होनेवाली कलाइयां न हों, उनके हाथ ऐसे स्वतंत्रता के ध्वज को स्पर्श कर विजय के बदले उस ध्वज को लांछित अवश कर देते हैं।

यह पहला हमला लौट आने पर अंग्रेजी सेना से विद्रोही रोजाना छोटी–छोटी भिड़त करते रहे। उन्होंने रेसीडेंसी के घरों को बारूद लगाकर उड़ा देने का प्रयास बहुत दृढ़ता से चलाया हुआ था। ऊपर से तोपों की मार और नीचे से बारूद की ज्वाला का विस्फोट। अपने पैर के नीचे की भूमि कब जबड़ा खोलकर गटक लेगी, इसका अंग्रेजों को कोई विश्वास न था। ब्रिगेडियर इन्नेस के अनुसार–''विद्रोहियों ने कुल मिलाकर छत्तीस बार बारूद लगया था। विद्रोहियों की तोपे भी अखंड मार करती रहीं। आसपास छिपी जगहों से सिपाहियों की बंदूकों से छूटती अचूक गोलियां, अंग्रेजों की ओर से आती जवाबी गोलियां, एक–दूसरे के शिविरों से गुप्त जानकारी लाने के लिए रात के अंधियारे में निकली टोलियों की प्राणघाती कुश्तियां, परकोटे के अंदर और बाहर कान में बातें करते लोगों की करतूतें। दूसरी ओर छिपे बैठे दूसरे पक्ष ने बातें सुनीं, यह समझते ही अपमान होता। अंग्रेजों के झंडे पर गोला फेंक उसे गिराकर होता विद्रोहियों का मनोरंजन तो रात होते ही फिर से नया झंडा रेसीडेंसी पर फहराने की अंग्रेजी जिद। युद्ध के इस

भीषण उपहास से लखनऊ की रणभूमि कभी–कभी जोरों से हंसती भी थी।''

पर अंग्रेजों की ओर के नेटिव सिपाहियों ने जो शूरता दिखाई उसे देखकर रणांरण के भूत–पिशाच जितने हंसे उतना बीभत्स हास्य रस कभी भी उत्पन्न न हुआ होगा। हर दिन रात को विद्रोहियों के दूत सिखों या अन्य नेटिव लोगों के अधीन परकोटे की ओर छिपते हुए जाते और उनसे पूछते कि तुम स्वदेश से नमकहरामी कर फिरंगियों की तलवार को मां के पेट में क्यों ठूस रहे हो? विद्रोहियों की ओर से यह प्रश्न कभी अधिक ही गंभीरता से पूछा जाता तो बीच में ही थोड़ा मजा कर लेने के लिए तटबंदी के राजनिष्ठ नेटिव कहते–'किंचत् पास आओ तो कह सकें!'' और वे पास जाते तो किसी छिपाए हुए गोरे साहब को वे आगे कर देते। ऐसा दगा देखकर विद्रोही लज्जित होकर निकल जातें विद्रोहियों के जो अचूक और विविश्रांत बंदूकबाज थे उन सबमें अवध के भूतपूर्व नवाब का एक अफ्रीकन खोजा अंग्रेजों की रेसीडेंसी में बहुत खलबली मचाए हुए था। उसे अंग्रेज 'ओथेलो' कहते थे। चार्ल्स बॉल लिखता है–''जोहांस के घर पर बैठकर यह अफ्रीकी खोजा दिन–रात गोलियां दागता रहता था। उसके अचूक निशाने और प्राणहारी गोलियों से यूरोपियन लोग चटपट मरते थे। विद्रोहियों की ओर से किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में इस खोजा ने अधिक यूरोपियनों के प्राण लिये।''

सर हेनरी लॉरेंस के मारे जाने पर अवध ने मार डाला। अंग्रेजों का यह दूसरा चीफ कमिश्नर लखनऊ के घेरे में मारा गया। परंतु 'घेरे' जैसी अनिश्चित भयंकरता में भी उनकी सेना की आधारभूत नियमबद्धता और अनुशासनबद्ध रचना के कारण किसी सोल्जर का मरना या अधिकारी का मरना व्यवस्था की दृष्टि से एक जैसा ही रहता। इस दूसरे कमिश्नर के मरते ही सारे अधिकारों का चार्ज ब्रिगेडियर इंग्लिस ने ले लिया और घेरे का कार्य उसी तरह चालू रहा। अब तक हुई हानि, मृत्यु संख्या, कर्मठ लोगों के देहांत, अन्न की कमी और शत्रु की व्यूह–रचना से अंग्रेज यद्यपि निराश नहीं हुए थे, फिर भी हताश होते जा रहे थे।

इसी समय कानपुर से अंगद लौट आया। यह अंगद नामक नेटिव नौकर पहले अंग्रेजी सेना में नौकर था और अब पेंशनभोगी था। लखनऊ का घेरा पड़ने के बाद बाहर का कोई समाचार लाना किसी भी गोरे दूत को संभव नहीं था। उनकी गोरी चमड़ी, भूरे बाल या उनकी कंजी आंखे उन्हें सिपाही की तलवार से जीवित वापस नहीं जाने देते थे। इसलिए इस आंग्ल दूत कर्म पर किसी काले आदमी की नियुक्ति आवश्यक होने से बहुत से राजनिष्ठ काले लोग अंग्रेजों ने अब तक लखनऊ के बाहरी प्रदेश में भेजे थे। परंतु उन सबमें से अकेला अंगद ही जीवित लौट आया। विद्रोहियों के डर से वह कोई चिट्ठी–पत्री साथ नहीं लाया था, फिर भी 'अंग्रेजी सेना कानपुर से लखनऊ की सहायता के लिए

निकली है'—यह प्रत्यक्ष देखा हुआ समाचार उसने कमांडर इंग्लिस को सुनाया। इस समाचार से आनंदित हुए अंग्रेजों ने अंगद से कहा, ''तू फिर से लौट जा और हैवलॉक का लिखित उत्तर लेकर आ।'' तारीख 22 को लखनऊ छोड़क रवह अंगद 25 की रात ग्यारह बजे फिर लौट आया। उसके साथ हैवलॉक का पत्र था—''किसी भी कठिनाई से निपटने के लिए आवश्यक सबल सेना के साथ हैवलॉक आ रहा है, पांच—छह दिन में लखनऊ मुक्त हो जाएगा।'' अपनी मुक्ति के लिए आनेवाले उस शूर हैवलॉक को लखनऊ की पूरी जानकारी मिले, इसलिए लश्करी नक्शे हाथ में देकर अंग्रेजों ने अंगद को कहा, ''तू फिर से हैवलॉक के पास जा।'' वह विलक्षण दूत फिर से हैवलॉक के पास गया और उसने सारे लश्करी नक्शे उसे दिए। अब हैवलॉक की विजयी सेना के ध्वज लखनऊ के श्मशान पर से आते ही होंगे। अंग्रेज उन्हें लगा, ये हैवलॉक की तोपें तो नहीं!

इस आशा में तोपों की आवाजें जब अंग्रेज ध्यान देकर सुनने लगे तो उनके ध्यान में आया कि आज शत्रु दूसरा आक्रमण बढ़ाता चला आ रहा है। कानपुर बैटरी, जोहांस हाउस, बेराम कोठी आदि स्थानों पर विद्रोही मार करने लगे। उस दिन विद्रोहियों की बारूदी सुरंग ने बढ़िया धमाका किया। पूरी रेजिमेंट कवायद करती अंदर चली जाए इतना बड़ा रास्ता परकोटे में बन गया। परंतु यहां से अंदर जानेवाली रेजिमेंट कहां है? अंग्रेजों की सेना ने शत्रु की दीवार में ऐसा रास्ता बनाया होता तो उन्होंने आधे घंटे में उस रेसीडेंसी को खंडहर बना दिया होता। दोपहर दो बजे तक विद्रोहियों में ऐसी शूरता और देशभक्ति के पक्ष में भीरूता हो, यह कितना बड़ा दुर्भाग्य! दौड़ो, कोई तो आगे बढ़ो, इस दुर्भाग्य का कंठच्छेद करने दौड़ों दिन के पांच बजे हैं और आक्रमण लगभग विफल हो गया है। तथापि तत्कालीन विजय के लिए नही ंतो भी सर्वकालीन सफलता के लिए दौड़ो, कोई तो दौड़ो! कैप्टन सांडर्स—अब संभालो इस ध्येयनिष्ठों की दौड़ को। और यह क्रोधित यमों की टोली सीधे चली आ रही है। अंग्रेजों की गोलियों की परवाह न करते वह सीधी बढ़ रही है—वह उनकी दीवार से टकराकर उसे अपने सीने की टक्कर मार रही है—अंग्रेजों ने बंदूकें फेंककर इस आमने—सामने की लड़ाई में बैनेट ले ली—जय स्वतंत्रता! वाह रे वीर! उसने अपने हाथ से परकोटे के ऊपर से मार करनेवाली अंग्रेजी बैनेट को दबाकर छीन लिया। वाह रे वीर! उसने अपने हाथ से परकोटे के ऊपर से मार करनेवाली अंग्रेजी बैनेट को दबाकर छीन लिया। वाह रे वीर! अंत में शत्रु की गोली से गिर गया! स्वदेश की जितनी बच सके उतनी लाज बचाने को समरांगण में शत्रु पक्ष भी दांतों तले अंगुली दबाए, ऐसी शूरता दिखाकर शहादत के रक्त—तीर्थ में रक्त—समाधि ले गया। वह गिरा, दूसरा गिरा तीसरा भी गिरा, जोरदार लड़ाई हुई। बैनटों को अपने हाथों से झपटकर छीन लेनेवाले

और मृत्यु तक बेसुध लड़ते उन वीरों के रमणीय चित्र अंग्रेजी इतिहासकारों ने कौतुक से लिखे, ऐसी लड़ाई हुई।

तारीख 18 को विद्रोहियों ने अंग्रेजों पर और एक आक्रमण किया। इस दिन भी पहले बारूदी सुरंग से रास्ता बनाया और बारूद की आवाज के साथ ही विद्रोहीि टूट पडत्रे। मैलसन लिखता है–''शत्रुओं ने यह रास्ता बनाते ही अत्यंत आवेश से उसका लाभ लेना प्रारंभ किया। उनमें के एक अति शूर अधिकारी ने उस भगदड़ के हिस्से में तुरंत छलांग लगा दी और अपनी तलवार घुमाते हुए अपने अनुयायियों को 'चलो–चलो कहकर आह्वान करने लगा। उसके आह्वान को कोई उत्तर दे उसके पूर्व ही एक गोली ने उसे नीचे गिरा दिया। परंतु उसी समय उसकी जगह दूसरा कूद पड़ा। उसे भी गोली ने नीचे गिराया। उस टुकड़ी का नेता भी गोली से गिरा। यह देखते ही बाकी के सिपाही दुबककर पीछे खिसके ।'' उपर्युक्त तीन वीरों का विदेशी व्यक्ति द्वारा वर्णित शौर्य दिल्ली में निकल्सन की ओर के साहस के मुकाबले का था। पर अनुयायियों के डरपोकपन से ऐसी शूरता विफल हो जाए और तीन सैनिक गिरने पर अधिक उन्माद से आगे घुसना छोड़कर हजारों लोग पीछे लौट पड़े–इस लज्जास्पद बात का गहरा तात्पर्य है।

यद्यपि वे बार–बार लौटाए गए, तब भी बार–बार होनेवाले आक्रमण और हर दिन पड़नेवाली विद्रोहियों की तोपों और बंदूकों की अखंड मार के कारण अब अंग्रेजो को, अपने राजनिष्ठ नेटिवों की भारी सहायता होते हुए भी, टिके रहना असहनीय होता जा रहा था। इतने में अंगद फिर लखनऊ आ गया। पीछे दिए वचन के अनुसार हैवलॉक कितना पास आ गया है, यह अत्यंत उत्सुकता से अंग्रेज कमांडर जब उससे पूछने लगा तो अंगद ने हैवलॉक का पत्र दिया।[128] ''और लगभग पच्चीस दिन मैं लखनऊ की ओर नहीं आ सकता!'' आशा के बाद आई निराशा जैसा विष इस विश्व में कुद भी नहीं है। आज–कल में हैवलॉक आएगा, इस उत्सुकता का यह दुर्भागी उत्तर! मरते रोगी, अशक्त औरतें ही नहीं लड़ाके सोल्जर और अधिकार प्राप्त कमांडर–इन सबको भी बहुत खेद, उदासीनता और भय हुआ। घिरी हुई सारी आंग्ल सेना पर मृत्यु की छाया पड़ने लगी। अन्न महंगा हो गया और सबको आधे पेट रहने का आदेश हुआ। लखनऊ की मुक्ति के महान् कार्य में भी हैवलॉक जैसे योद्धा को यह विलंब क्यों करना पड़ रहा है।

लखनऊ में बंद अपने देश बंधुओं को मुक्त करने में क्षण भर का भी विलंब न लगे, इसलिए 29 जुलाई को ही हैवलॉक कानपुर छोड़कर गंगा पार हो गया। उसके साथ डेढ़ हजार लोग और तेरह तोपें थी और इस सेना के साथ 'मैं पांच–छह दिन में तुम्हें मुक्त कर दूंगा, ऐसा उसने लखनऊ को आश्वस्ति भरा पत्र भी भेजा था।' परंतु गंगा नदी उतरकर अवध में पैर रखते ही हैवलॉक की यह काल्पनिक सुलभता ओस की तरह

[128] चार्ल्स बाल, खंड 2 ।

पिघलने लगी। अवध के रास्ते का हर इंच विद्रोह कर उठा था। हर जमींदार पांच–छह सौ लोगों को इकट्ठा का स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने को तत्पर। हर गांव विद्रोहियों के झंडे की गढ़ी बना। ऐसी भयानक स्थिति देखकर हैवलॉक मन से उद्विग्न तो हो गया, पर वह निराश नहीं हुआ। उसने वैसे ही आगे कूच किया। उन्नाव के पास विद्रोहियों ने उसे पहली टक्कर दी। देकर वे आगे दौड़ गए। उन्नाव की लड़ाई लड़कर थके सैनिकों को हैवलॉक ने केवल भोजनाकाश दिया। भोजन निपटते ही फिर आगे कूच। फिर से आगे दौड़ जीतीं।

परंतु यह जीत है क्या? इस एक दिन में उसकी मुट्ठी भर सेना का 6वां भाग समाप्त हुआ और विद्रोहियों का इस विजय से तिनका भी नहीं टूटा! अधिक क्या–परंतु लड़ाई शुरू होते ही मारधाड़ करके वे जो भाग जाते थे सचमुच अपनी पराजय के कारण या कम खर्च में अंग्रेजी सेना की नाक में दम करने की सुलभ युक्ति के कारण, यह भी शंका ही है। और उसी में दानापुर के सिपाहियों के विद्रोह का समाचार आ गया। यह भयानक परिस्थिति देखकर स्तंभित हैवलॉक तारीख 30 को आगे छोड़कर पीछे लौट गया।

हैवलॉक की सेना ने कानपुर छोड़ दिया है, यह सुनते ही नाना साहब पेशवा ने फिर कानपुर में भीड़ जुटाई। हैवलॉक के कानपुर से गंगा उतरकर अवध में घुसते ही नाना अवध से गंगा उतर कानपुर में घुस रहे थे। कहीं नाना के इस लश्करी दांव में ने फंस जाएं, इस डर से हैवलॉक मंगलबड़ में 4 अगस्त तक बंधा पड़ा रहा। पांच–छह दिन में लखनऊ जाकर क्रांतिकारियों को गोमती का पानी पिलाने की जगह अब उसे नाना ही गंगा तीर पर पानी पिला रहा था। इतने में विद्रोही फिर से बशीरगंज दौड़ आए। तब उनके इस उद्दाम व्यवहार से चिढ़कर हैवलॉक जान की चिंता किए बिना और आई हुई नहीं कुमुक लेकर लखनऊ की ओर चला उसने बशीरगंज में विद्रोहियों से कुश्ती लड़ी, जहां से उसने उन्हें भगा दिया। फिर यह जय या पराजय? यह प्रश्न फिर सामने था। क्योंकि इस कुश्ती में हैवलॉक के तीन सौ लोग मारे गए। ऐसी हड्डी नरम हुई कि लखनऊ की ओर आगे न बढ़ते हुए अंग्रेजी सेना पीछे गंगा की ओर हटती गई। उस दिन शाम को उसके साथ निकले डेढ़ हज़ार में से केवल साढ़े आठ सौ लोग ही बाकी रहे।

हैवलॉक 5 अगस्त को पीछे हटकर फिर से मंगलबड़ लौटा–यह सुनते ही विद्रोही फिर से बशीरगंज को कब्जे में लेकर बैठ गए। विद्रोहियों की इस सेना में अधिकतर सभ्य जमींदार लोग ही थे।[129] ''कल की लड़ाई में मरे अधिकतर जमींदार ही थे।'' अपनी स्वतंत्रता और अपने स्वराज्य के लिए मुलायम बिस्तर को छोड़कर इन

[129] के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 3, पृष्ठ 340 ।

जमींदारों ने कंटकाकीर्ण रणक्षेत्र का आश्रय लिया था। उनके इस साहस को देख अंग्रेजी इतिहासकार इन्नेस कहता है–''कम–से–कम अवध के लोगों के प्रयासों को तो स्वातंत्र्य समर का ही स्वरूप प्राप्त हो गया था।'' हैवलॉक के चारों ओर विद्रोहियो की सेना के क्षितिज जैसे दांव–पेज चल रहे थे। ज्यों–ज्यों कोई आगे जाए, क्षितिज पीछे और पीछे हटता जाता है; पर वह पीछे हट गया, यह मानकर कोई अपनी जगह लौटे तो क्षितिज भी अपनी जगह लौटता दिखाई देता है। हैवलॉक के मंगलबड़ से पीछे हटते ही विद्रोही बशीरगंज में आ जाते। 11 अगस्त को तीसरी बार बशीरगंज पर हमला किया। तीसरी बार बशीरगंज जीता, तीसरी बार विद्रोही भाग गए, पर फिर हैवलॉक मन से पूछने लगा–'यह जय है या पराजय?'

वह न केवल जय थी और न केवल पराजय ही थी–वह तो पराजय की विजय या विजय की पराजय थी। और इसलिए हैवलॉक आगे न जाकर फिर मंगलबड़ को लौट आया। इस बीच नाना का पेच पूरे रंग पर आता जा रहा था। सागर के विद्रोही, ग्वालियर के विद्रोही और अन्य स्वयंसेवक लोगों की टोलियां आदि सेना के साथ नाना बिठूर पर आक्रमण कर कानपुर में जमे जनरल नील में न होने से उसने यह आवश्यक बात हैवलॉक को सूचित की। अब लखनऊ की ओर जाने का नाम भी लेना असंभव था। इसलिए 12 अगस्त को हैवलॉक गंगा उतरकर कानपुर लौट आया। अंग्रेजी सेना के पीछे हट जाने के समाचार का बिगुल जब अवध ने सुना तो मानो इधर–उधर स्वदेश मुक्ति की जय–दुदुंभि गरज रही है–ऐसा हर्ष ध्वनि से जयनाद होने लगा। अवध के दरवाजे में घुसना चाहती परवशता को इस तरह गंगा पार भगाकर धारातीर्थ में रक्त समाधि लिये विश्वसनीय जमींदारो, तुमने स्वदेश की जमीन की अच्छी जमींदारी की। इन्नेस लिखता है–''इस पीछे लौटने का निश्चित परिणाम दिखा। अवध से फिरंगी शासन समाप्त होने की यह अंग्रेजों की दी हुई स्वीकृति है–ऐसा कहते हुए वहां के तालुकेदारों ने लखनऊ दरबार की प्रस्थापित राज्यसत्ता का अधिकार मान्य किया। उनके आदेश वे मानने लगे। आज तक की निरंकुशता समाप्त होने लगी और लखनऊ की मांग के अनुसार भिन्न–भिन्न राजे अपनी सेनाएं उधर युद्धभूमि की ओर भेजने लगे।''[130]

पर विद्रोहियों को मिली यह विजय प्रत्यक्ष विजय नहीं, अप्रत्यक्ष विजय थी। हैवलॉक द्वारा लड़ी गई चार–पांच लड़ाइयों में वह प्रत्यक्ष पराजित होकर यदि कानपुर लौटा होता तो उसकी नाकेबंदी कर भगा देने से विद्रोहियों में जो उत्साह आया उससे अधिक दृढ़तर आत्मविश्वास उसकी सेना में और धैर्यच्युति का प्रभाव अंग्रेजी सेना में उत्पन्न हुआ होता। यद्यपि वह कानपुर में पीछे हटने को बाध्य हुआ, परंतु उस अपमान

[130] इन्नेस कृत–'सेपॉइज रिवॉल्ट', पृष्ठ 174 ।

का कारण शौर्य का अभाव नहीं, सैन्याभाव है, यह समझ में आ जाने से अंग्रेजी सेना की आशा विफल हुई; लेकिन आत्मनिष्ठा, जोश और दृढ़ता उस अप्रत्यक्ष पराजय से कम नहीं हुए थे, इसलिए गोरी सेना की नई कुसुम आते ही–लखनऊ को मुक्त करने मैं जल्दी ही फिर निकलूंगा–इस हिम्मत से हैवलॉक कानपुर में जमा। इस समय नील और हैवलॉक में व्यक्तिगत मत्सर से कितना वैर हो गया था, हैवलॉक के नील को लिखे इस पत्र से स्पष्ट दिख जाता है–''इस तरह का व्यवहार आगे सहन नहीं किया जाएगा। आप मुझे निंदा, धौंस और उपदेश से भरे पत्र लिखते हैं; परंतु इनमें से एक भी बात कोई मेरे अधीनस्थ अधिकारी मुझे कहे, यह सहन करनेवाला आदमी मैं नहीं! आप यह समझकर रखें। यदि सार्वजनिक हित को कोई बाधा न पहुंचती तो मैं आपको कैद करने से नहीं चूकतां अभी आपको केवल आगाह कर रहा हूं, फिर से ऐसा बड़प्पन नहीं चलेगा।'' इस पत्र का एक वाक्य अंग्रेजों की रग–रग में समाए राष्ट्र–कर्तव्य का अत्युत्तम द्योतक हैं गुस्से से उबलते हुए भी हैवलॉक कहता है–'लोकहित में कोई बाधा न पहुंचती तो मैंने अपने अपमान का प्रतिशोध तत्काल लिया होता।' नील तथा हैवलॉक–दोनों रणपटु योद्धाओं ने ऐन संकट के समय उत्पन्न हुए आपसी झगड़े से शत्रु के ध्यान में आ जाए या उसे लाभ मिले, ऐसी एक भी घटिया कृति नहीं की। इतना ही नहीं अपितु लश्करी संबंधों के अनुसार पूरे अनुशासन में रहर एक–दूसरे की सहायता भी की थी। हाथी समान व्यक्ति के मदमलिन मस्तक पर राष्ट्रीयता का यह तीक्ष्ण अंकुश जहां गड़ा रहता है उसी समाज में श्री, धी, धृति, कीर्ति, स्वतंत्रता वास करती है।

कानपुर शहर में आते ही हैवलॉक को पहला समाचार यह ज्ञात हुआ कि नाना साहब की सेना ने ब्रह्मवर्त शहर पर फिर से कब्जा कर लिया है। कानपुर शहर की अंग्रेजी सेना के कंधे से कंधा भिड़ाकर विद्रोहियों द्वारा दी गई यह भयंकर शह देखते ही हैवलॉक सेना सहित उधर दौड़ पड़ा। उस दिन ब्रह्मवर्त में हुई लड़ाई में विद्रोहियों की 42वीं रेजिमेंट ने अंग्रेजी सेना के लड़ते–लड़ते बीस गज तक आते ही बैनेट लेकर लड़ना प्रारंभ किया। आज तक अंग्रेज लोग विद्रोहियों को डराने के लिए बैनेट को अंतिम साधन समझते थे। पर आज उन शूर स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वयं ही फिरंगियों पर बैनेट चलाकर घमासान मचा दिया। इसी समय विद्रोहियों के घुड़सवारों ने अंग्रेजों की पिछाड़ी पर टूटकर उनकी रसद मार दी। इस तरह पीछे और आगे से अंग्रेजी सेना को विद्रोहियों ने मारा। अंग्रेजी कमांडर की समझ में भी यह आया कि दिन–ब–दिन विद्रोहियों का समर साहस बढ़ता ही जा रहा है। ब्रह्मवर्त की लड़ाई में इस सारे पराक्रम के बाद भी पराजय लेकर पीछे हटना पड़ा। 17 अगस्त को विद्रोहियों को पराजित कर हैवलॉक पीछे कानपुर लौटा तो उसे यह ध्यान में आया कि नाना ने पूरी सेना ब्रह्मवर्त में नहीं रखी

और उसकी सेना यमुना के तट पर कालपी में भी तैयार है। इस तरह कालपी में दबाव, ब्रह्मवर्त से दबाव, अवध से दबाव, गंगा के इस तीर पर दबाव, उस तीर पर दबाव, ऐसा चारों ओर से दबा हुआ वह 'विजयी' हैवलॉक कलकत्ता को लिखता है–''भयानक पेच पड़ा हुआ है। नई कुमुक नहीं आई तो कानपुर छोड़कर इलाहाबाद तक पीछे लौटने की बारी अंग्रेजी सेना को जल्द ही आए बिना नहीं रहेगी।'' इस पत्र के उत्तर में नई कुमुक भेजी जाएगी और फिर आज तक सही हुई जय–पराजय की भरपाई लखनऊ का रक्त पीकर कर डालेंगे, ऐसी भावी आशा से हैवलॉक कलकत्ता के पत्र क प्रतीक्षा कर रहा था तो उसे आदेश आया कि–लखनऊ जानेवाली अंग्रेजी सेना का अधिकार तुमसे कठोर होता है! विजय हुई, परंतु कानपुर विजय में किंचित् देर हुई, इसलिए नील जैसे योद्धा को हटाकर हैवलॉक नियुक्त किया गया। विजय प्राप्त हो जाने पर भी लखनऊ की ओर जाने में उसे अनिवार्य देरी हुई, इसलिए हैवलॉक जैसे योद्धा को भी हटाकर सर जेम्स आउट्रम को सेनापति बनाया गया। यह समाचार आते ही इसलिए हैवलॉक को बहुत बुरा लगा। जिस वैभव के लिए उसने जी–जान से परिश्रम किया था उस लखनऊ मुक्ति का वैभव ऐन समय पर दूसरे के हाथ पड़ेगा, इस अपमान से उसे बहुत उदासी हुई। फिर भी मैलसन लिखता है–''मनोभंग से उपजे उद्वेग ने मन को कितना ही निराश किया, तो भी कर्तव्य–निर्वाह में अणु मात्र भी कसर न करने का गुण अंग्रेजी राष्ट्र का भूषण है। अंग्रेजी मन के सारे विकार कर्तव्य बुद्धि के अधीन होते हैं। अन्याय–उपेक्षा को भोगते हुए अंग्रेजी मन चाहे जितना व्याकुल होता हो, फिर भी उसका राष्ट्र उसकी शक्तियों को हमेशा नियंत्रित करता रहता है। अपने राष्ट्र की उत्तम सेवा किस तरह करें, इस संबंध में उसका व्यक्तिगत मत कुछ भी क्यों न हो, परंतु जब सरकार का यार उस राष्ट्र का मत उसके मत से भिन्न हो तो अपना निजी मत एक तरफ रख देशसत्ता के आदेश की जेसी भी विजय हो, उधर ही अंग्रेज दिन–रात लगा रहता है। नील ने ऐसा ही उदात्त व्यवहार किया और अब हैवलॉक ने भी ऐसा ही उदात्त वर्तन किया। उसके सिर से भावी विजय का मुकुट छीन लिया गया तब भी दूसरे को श्रेय देनेवाली विजय के लिए वह पहले जैसा ही दिन–रात परिश्रम करने में जुट गया।''[131]

जिस विजय का सेहरा दूसरे के सिर बंधना है उस विजय के लिए केवल राष्ट्रीय कर्तव्य जान दिन–रात प्रयास करने में हैवलॉक लगा था, तब ही दिनांक 15 सितंबर को सर जेम्स आउट्रम के हाथ नेतृत्व में आते ही उसने जो पहला आदेश जारी किया वह यह था–''जिस वीर पुरूष ने लखनऊ मुक्त करने के लिए आज तक अप्रतिम शौर्य प्रकट किया है उस पुरूष को ही उसे मुक्त करने का सौभाग्य मिलना न्याय है, इसलिए अपने

[131] मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 346 ।

सेनापतित्व के सारे अधिकार जनरल हैवलॉक को सौंपकर लखनऊ मुक्त होने तक मैं स्वयंसेवक सिपाही बना रहूंगा।'' कमांडर का यह पहला' आदेश' देखते ही उस अंग्रेजी सेना को कितनी नैतिक शिक्षा मिली होगी। व्यक्ति राष्ट्र में कैसे विलीन हो जाते है। पहले आदेश से ही अपना मुख्य्र सेनापतित्व हैवलॉक को देने से आउट्रम ने जो अद्वितीय उदारता, स्वार्थ–विमुखता और राष्ट्रहितपरता दिखाई वह देखते ही तीनों जगत् से 'वीरवर, साधु, साधु' के उद्‌गार फूट पड़े होंगे।

इस वीर साधुत्व की नैतिक शिक्षा से प्रस्फुरित हुआ और नई ताजा दम अंग्रेजी सेना, कलकत्ता से आए आयर, आउट्रम, कूपर–ऐसे–ऐसे योद्धाओं की सहायता से द्विगुणित उत्साह से भरी वह कानपुर की अंग्रेजी सेना 'पांच–छह दिन में लखनऊ मुक्त करने के लिए' सितंबर की 20 तारीख को लखनऊ की मुक्ति के लिए फिर से गंगा उतरने लगी। 25 जुलाई का उतावले हैवलॉक को पांच दिन में लखनऊ की ओर बढ़ना तो छोड़ो अवध में पैर जमाए रखना भी कठिन हो जाने से कानपुर लौट जानेवाला, 12 अगस्त का बदकिस्मत हैवलॉक और अब 20 सितंबर का यह दृढ़ निश्चयी वीर आशा से भरा पूरा हैवलॉक! हैवलॉक के इन चित्रों में कितना अंतर था। उसके पस अब ढाई हजार से अधिक निडर वीर गोरी सेना तथा सिखों सहित कुल सेना सवा तीन हजार से अधिक थी। चुने हुए घुड़सवार, उत्तम तोखखाना और नील, आयर, आउट्रम जैसे लश्करी अधिकारी अब उसके साथ थे। अ बवह अवध में विद्रोहियों की बाधाओं को क्यों महत्त्व दें? स्वदेश को फिरंगी स्वर्श से अदूषित रखने जो भी जमींदार रण में आया वह मारा गया। अपने जीवित रहते अपनी मातृभूमि पर विदेशी घोड़े दौड़ते देखकर जिस किसी मानधनी गांव ने भीषण लड़ाई की वह राख हो गया। जो भी रास्ता, जो भी खेत, जो भी नदी अपनी स्वतंत्रता के लिए रण में जूझी, उसपर अवध में घुसने लगी। लड़ाई के बाद लड़ाई करते और विद्रोहियों को आगे–आगे दौड़ते सितंबर की 23 तारीख को हैवलॉक आलमबाग में आ पहुंचा। सारे दिन आलमबाग में विद्रोहियों से लड़ाई होती रही। उनकी पांच तोपें अंग्रेजों न छीन लीं। विद्रोहियों ने उनमें से एक तोप फिर छिन ली। दोनों ओर की ओर की सेना ने रणक्षेत्र में ही रात गुजारने का निश्चय किया। पर अंग्रेजी सेना के कीचड़ और दलदल भरे मैदान में रात का विश्राम आरंभ करते ही विद्रोहियों ने विश्राम करना छोड़ फिर मारामारी शुरू कर दी। उस रात बरसात भी लगातार हो रही थी और वीरों के सिर जमीन पर से ऊपर उछल रहे थे। ऐसी स्थिति में भी उस अंग्रेजी सेना के उत्साह की लहरें इस बरसात की लहरों से अधिक जोर की गर्जना कर रही थीं। क्योंकि उसी रात दिल्ली जीत लेने की विद्युत् वार्त्ता आई थी। अंत में वह 25 तारीख का निर्णायक दिन उदित हुआ। लखनऊ शहर की मध्य बस्ती के रास्ते छोड़कर बाजू के एक

रास्ते से हैवलॉक की सेना रेसीडेंसी की ओर निकली है, यह ज्ञात होते ही विद्रोहियों की ओर से तोपों की जबरदस्त मार चालू हो गई। आलमबाग से शत्रु की इस मार को सहन करते अंग्रेज बड़ी दृढ़ता से बढ़ते हुए चारबाग के पुल तक आकर भिड़ गए। इस पुल को पार करते ही लखनऊ में प्रवेश होने से उस महत्त्वपूर्ण नाके पर दोनों पक्षों में घमासान होने लगा। मॉड द्वारा पुल के विद्रोहियों पर तोप–गोलों की मार आधे घंटे से चालू रखने पर भीवह पुल न तो खाली हो रहा था और न उसपर की तोपें ही बंद हो रही थी। इतना ही नहीं, अंग्रेजों के इक्कीस जवान यलो हाएस पर और कितने ही इस पुल के सामने पहले ही ढेर हो गए थें सारी अंग्रेजी सेना इस एक पुल की धौंस में वहीं खड़ी रहे क्या? पास ही खड़े हैवलॉक के युवा पुत्र से मॉड ने कहा–''युवा वीर, इसका कोई तो तोड़ निकालो!'' यह सुनते ही वह युवा हैवलॉक नील के पास आया और बोला–तोप की मार की विद्रोही परवाह नहीं कर रहे तो उस पुल पर हमला करने का आदेश दें। पर आउट्रम से पूछे बिना मैं ऐसा आदेश नहीं दे सकता, यह जनरल नील कहने लगा। ऐसे में क्या किया जाए? तरूण हैवलॉक को उस प्रश्न का उत्तर तत्काल मिल गया। उसने अपना घोड़ा बढ़ाया। जहां मुख्य कमांडर हैवलॉक खड़ा था, उस दिशा की ओर उसने घोड़ा दौड़ाया। जहां मुख्य कमांडर हैवलॉक खड़ा था, उस दिशा की ओर उसने घोड़ा बढ़ाया। जहां मुख्य कमांडर से मिला हो–ऐसा बहाना बना वह नील के पास वापस आया। नील को झुककर सलाम करते हुए उस युवा हैवलॉक ने कहा–''सर, पुल पर हमला करने का निश्चय हुआ है।'' यह सुनते ही जनरल नील ने आक्रमण का आदेश दिया। पच्चीस अंग्रेजों की पहली टुकड़ी लेकर स्वयं तरूण हैवलॉक पुल की ओर उबल पड़ा। भयानक घमासान का समय! उन पच्चीस लोगों में से एक दो मिनटों में ही कौन जीवित बचा? और तू तरूण हैवलॉक, तू बच–बच! एक शूर निडर स्वातंत्र्य वीर उस पुल पर कूद रहा है और उसके हाथ की वह बंदूक सीधे तुझपर ही निशाना साध रही है। यह शूर सिपाही तरूण हैवलॉक से दस गज पर आकर खड़ा हो गया और अंग्रेजी योद्धाओं के सीने के सामने अटल खड़े रहकर उसने हैवलॉक पर गोली चलाई–आधे इंच का अंतर! हैवलॉक के सिर में घुसने की जगह वह उसकी टोपी में घुसकर रह गई। फिर भी साहसी सिपाही, अनेक आंग्ल बंदूकें उसपर तनी होते हुए भी पीछे हटना छोड़ वहीं अटल खड़ा होकर गोली भरने लगा। वाह रे बहादुर! अंत में स्वतंत्रता समर में हैवलॉक की गोली से वीरोचित मृत्यु मरा। पल–दो पल बाद ही अंग्रेजी सेना–सागर धड़धड़ाता उस पुल को ही कंपित कर गया। विद्रोही पीछे हटते और अंग्रेज आगे बढ़ते निकले। पुल हारा। लखनऊ का पहला रास्ता साफ हुआ। दूसरा हुआ, तीसरा हुआ, अंग्रेजी सेना चली आगे घुसते, दो–चार कदम चली कि फिर तलवार, बंदूकों–पर–बंदूकें छूटने लगीं। रक्त की तलैया भर जाती तो फिर वह जीवित लड़ाई आगे बढ़ती। संध्या हो गई तो उसकी भयंकर गति में असंख्य ठोकरें लगने लगीं–

इसलिए आउट्रम कहता है—आज की रात यहीं बिताएं। पर नहीं, नहीं। रूकने का नाम भी निकालना उस शूर हैवलॉक को कैसे पसंद आएगा? उधर रेसीडेंसी में महीनों से मृत्यु की कराल दाढ़ में दबोचे पड़े उनके देश बंधुओं को और एक रात माने एक युग जैसी है। इसलिए हैवलॉक आगे बढ़ा। नील आगे बढ़ा। पूर्व का रास्ता भूलकर अंग्रेजी सेना विद्रोहियों की अधिकारिक मार में आती जा रही थी, फिर भी नील आगे चला। खास बाजार के जंगी फाटक में घुसते ही उसके ध्यान में आया कि अंग्रेजी तोपें थोड़ी पीछे रह गई हैं। अतः घोड़े को रोककर वह आंग्ल वीर गरदन घुमाकर पीछे देखने लगा। यही अवसर! यही अवसर! स्वदेश का बदला लेने का यही अवसर। फाटक पर चढ़े कृतांत, तेरे प्राण चले जाएं कोई बात नहीं, पर अवसर पकड़ना ही चाहिए। पल—विपल का अवकाश केवल और फाटक पर बैठे एक सिपाही ने अचूक निशाना साधा और उस जनरल नील की गरदन में उसकी गोली किसी गुस्सैल नागिन जैसे लहराती आ घुसी। गिर गया, अंगेजी सेना का कलेजा फटा ऐसा शूर, ऐसा धृति—संपन्न और ऐसा मर्द, ऐसी निडर छाती का और ऐसा जल्लाद मनुष्य जाति के दुर्भाग्य या सद्भाग्य से दूसरा पुरूष मिलना बहुत कठिन है।

पर अंग्रेजी सेना एवं शौर्य की यही विशेषता है कि उनका सतत प्रयत्न किसी एक व्यक्ति पर, चाहे फिर वह व्यक्ति कोई अद्वितीय नील हो, उसपर अवलंबित नहीं रहता। नील गिरा तो भी तिनके भर भ्रमित न होकर अंग्रेजी सेना रेसीडेंसी की ओर दौड़ती चली। जिस खास बाजार के फाटक में नील की गरदन टूटकर गिरी उस खास बाजार में गोरे रक्त की ताल—तलैयां भर गई, फिर भी अंग्रेजी सेना वैसे ही लड़ते चली। उस बाजार से रास्ता हो जाते ही उन्हें रेसीडेंसी से अति आनंद की जय गर्जना सुनाई देने लगी। उन्होंने भी जय गर्जना की। मृत्यु के जबड़े में हाथ डालकर हैवलॉक ने अपने स्वदेश बंधुओं को बाहर निकाला। उस अवसर का वर्णन वहां स्थित कैप्टन विल्सन की लेखनी ने किया है—''रास्ते में कदम—कदम पर उनके आदमी मरते हुए भी गोरी सेना शहर से अपनी ओर आती देखते ही रेसीडेंसी के लोगों का सारा भय, सारी आशंकाएं छिप गई और उसकी जगह जय गर्जनाओं और आनंद की तालियों की सामने से आ रहे वीरों पर वर्षा होने लगी। अस्पताल से रोगी घिसटते बाहर आए और अपनी मुक्ति के लिए सामने से लड़ती आ रही अपनी शूर सेना को विजय स्वागत से बुलाने लगे। जल्दी ही हमारी सेना हमें आकर मिली। वह अवसर अवर्णनीय है। जिन्होंने अपने पति मर गए हैं, यह सुना था—वे विधवाएं आकस्मिक पति—लाभ से सधवा होने लगीं और जिन्होंने अपने प्रियजनों से मिलने को आज चार माह से प्राण धारण किए हुए थे, उन्हें पहली बार ज्ञात हुआ कि अब उनके प्रियजनों के फिर मिलने की आशा नहीं है।''

लखनऊ की रेसीडेंसी में आज तक सत्तासी दिन रात—दिन लड़ते इस अंग्रेजी

सेना के 25 सितंबर तक लगभग सात सौ लोग मारे गए थे। घायल और स्वस्थ, ऐसे लगभग पांच सौ यूरोपियन और चार सौ नेटिव जीवति थे। इन लोगों की मुक्ति के लिए निकले हैवलॉक की सेना के रेसीडेंसी तक पहुंचते सात सौ बाईस आदमी खेत रहे। इतने शूर लोगों का रक्त दिया तब लखनऊ को जीता जा सका।

परंतु दुष्ट निराशा, तू फिर भी अजित–की–अजित ही है। हैवलॉक ने शत्रु का कितना भी पीछा किया हो, पर तू उसका पीछा नहीं छोड़ रही। क्योंकि इतनी विजय, इतना रक्तपात, इतनी मारधाड़ कर लखनऊ की रेसीडेंसी में घुसते हुए उसे लगा कि आखिर मैंने विद्रोहियों के घेरे से आंग्ल सत्ता को मुक्त तो किया। परंतु अब उसका भ्रम टूट रहा है और गंगा किनारे जैसे उसने अपने आपसे पूछा था वैसे ही वह लखनऊ की रेसीडेंसी में जाने के बाद भी पूछ रहा है–'मैं जो रेसीडेंसी में लाया–वह सहायता थी या मुक्ति?'[132]

हैवलॉक के आने रेजिडेंसी का घेरा समाप्त होने के स्थान पर रेसीडेंसी के साथ हैवलॉक को भी विद्रोहियों ने घेर लिया। और इसीलिए हर कोई पूछने लगा–'हैवलॉक जो लाया वह सहायता थी या मुक्ति?

वास्तव में वह केवल सहायता थी। हैवलॉक और आउट्रम इन दो विख्यात आंग्ल योद्धाओं ने अनेक लड़ाइयां लड़ लखनऊ के अंग्रेज लोगों को पांडे लोगों की पकड़ से छुड़ाने के लिए जो सेना लाई थी वह उन्हें मुक्त नहीं करा सकी, उलटे उस सेना के साथ सेनापति भी घेरे में अटककर रह गए। हैवलॉक की अंग्रेजी सेना के रेसीडेंसी में घुसते ही पांडे की सेना लखनऊ छोड़कर चली जाएगी, ऐसी जो आशा अंग्रेजों को थी वह पूरी तरह निष्फल हो गई। यह कुछ देर बाद सारे हिंदुस्थान को ज्ञात हो गया। लखनऊ छोड़ देने या अंग्रेजों से समझौते की बातचीत करना छोड़ रणांगण में दृढ़ता से सुलगते क्रांतिवीरों ने हैवलॉक के रेसीडेंसी में घुसते ही फिर पहले जैसे रेसीडेंसी को घेर लिया। रेसीडेंसी में घुसते समय अंग्रेजी सेना का जो भाग आलमबाग में रखा गया था उसे अपनी सेना के मुख्य भाग से मिलने का अवसर भी न देते हुए, कल शाम हुए भयानक रक्तपाम से रास्ते में आई पहले प्रवाह की बाढ़ उतरी नहीं कि तभी स्वयं की पराजय और शत्रु को प्राप्त विजय से उत्पन्न उत्साहभंगता को निरामय स्थान पर फेंककर स्वतंत्रता के

[132] ''इस अध्याय की समाप्ति से पहले घेरे के परिणामों का संक्षिप्त उल्लेख किया जाना सामान्यतः अपेक्षित है। सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान दिया जाना अभीष्ट है कि हमारी कमजोर और अपूर्ण प्रतिरक्षा व्यवस्थाओं के कारण साहसी शत्रुओं द्वारा चारों ओर से घेर लिये जाने से हमारे लिए अपनी रक्षा कर पाना पूर्णतः असंभव था। जब उन्होंने आक्रमण किया तो उनमें उस साहस का अभाव था, जिसके बल पर कोई संकल्पबद्ध होकर खतरों का सामना करता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि उनमें वीर और साहसी व्यक्ति भी थे, किंतु ऐसे वीर अधिक नहीं थे। अधिकांशतः 'कायर जन' ही उनमें वीर और साहसी व्यक्ति भी थे, किंतु ऐसे वीर अधिक नहीं थे, अधिकांशतः 'कायर जन ही थे।''
– गब्बिन कृत–'म्युटिनियर्स इन अवध', पृष्ठ 348।

लिए उत्सुक लखनऊ शहर ने अंग्रेजी सत्ता को फिर एक बार कैद कर दिया।

स्वतंत्रता संग्राम के पांडे लोगों के इस दृढ़ निश्चयी व्यवहार से केवल लखनऊ की अंग्रेज सेना ही कैंची में नहीं फंसी वरन् कलकत्ता से अलीगढ़ तक सारे प्रदेश में अंग्रेजी सेना पर जंगी दबाव पड़ने लगा। हैवलॉक के नेतृत्व में अंग्रेजों की सारी–की–सारी सेना लखनऊ पर आक्रमण के लिए भेज दी गई थी और जब उस सेना की सहायता से लखनऊ में बंद अंग्रेजी सेना मुक्त होने के बदले वहां अटककर रह गई तब नीचे के सारे प्रदेश में अंग्रेजी सत्ता लूली पड़ने लगी। इसी समय दिल्ली जीते जाने के कारण यद्यपि वहां की कुछ सेना खाली हो गई थी, परंतु वह दिल्ली जीते जाने के कारण यद्यपि वहां की कुछ सेना खाली हो गयी थी, परंतु वह दिल्ली के आसपास के प्रदेश में शांति स्थापित करने के काम में लगी हुई थी। ऐसी स्थिति में लखनऊ की रेसीडेंसी और आलमबाग में फिर से एक बार बंद कर दी गई अंग्रेजी सेना को उनके पक्के शत्रुओं से लड़कर उन्हें मुक्त करके अंग्रेजी सत्ता पर पड़ा दबाव कम करने का कार्य ही सबसे प्रमुख था। इस हेतु अंग्रेजी कमांडर–इन–चीफ क्या परिश्रम कर रहे हैं, यह पहले देखना चाहिए।

13 अगस्त को अंग्रेजों का नया कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन कैंपबेल कलकत्ता आ पहुंचा था। उस तारीख से 27 अक्तूबर तक वह आंग्ल सेनापति हिंदुस्थान देश को विद्रोहियों के हाथों से फिर जीत लेने को शीघ्र ही शुरू होनेवाली मुहिम की जंगी तैयारी कर रहा था। मद्रास, सीलोन और चीन जानेवाली अंग्रेजी सेना जैसे–जैसे कलकत्ता में उतरने लगी वैसे–वैसे उसका यथोचित विभाजन करने, कासिम बाजार की शस्त्राशाला में नई तोपें ढालने और शस्त्रास्त्र, रसद, रण वस्त्र, सैन्य वाहन आदि की सब ओर से यथासंभव उत्तम व्यवस्था में वह दो माह लगाकर अगली मुहिम की तैयारी में लगा ही था कि उसपर कोलिन को हैवलॉक और आउट्रम के अपने ही जाल में बंद हो जाने का समाचार मिला। तब उस–'पतितं पतितं पुरूत्पतितम्', ऐसे लखनऊ शहर का झगड़ा मुझे ही निपटाना चाहिए, इस निश्चय से उसने 27 अक्टूबर को स्वयं कूच किया।

इसी समय कर्नल वॉवेल और कैप्टन विलियम पील की अधीनता में नेवल ब्रिगेड नामक एक नौसेना तैयार कर उसने जलमार्ग से इलाहाबाद की ओर भेज दी थी। कलकत्ता से इलाहाबाद, कानपुर तक जो राजमार्ग फैले हुए थे उन रास्तों के आजू–बाजू विद्रोहियों की छोटी–छोटी टोलियां अंग्रेजी सेना का बहुत त्रास दे रही थी। वे टोलियां इकट्ठी ही जाती तो उनसे लड़ाई लड़ना अंग्रेजों को संभव था, पर कुंवर सिंह के प्रशिक्षण में तैयार पांडे लोगों की सेना अंग्रेजी सेना के चारों ओर मंडराते हुए लड़ाई के अवसर टालती हुई अपने अस्तित्व की सूचना अचानक आक्रमण के सिवाए अंग्रेजों को किसी भी अन्य प्रकार से न देते हुए उस पूरे प्रांत में छापामार पद्धति का हुड़दंग मचाए थी। उन लोगों से निपटना आसान नहीं था। ऐसी ही एक विद्रोही टुकड़ी को काजवा

नदी से भगा देने के प्रयास में उस नौसेना का नायक पॉवेल मारा गया। पॉवेल जैसे आंग्ल वीर का उष्ण रक्त जिस दिन पांडे लोगों की तलवार पी रही थी उसी दिन कमांडर–इन–चीफ कानपुर आ पहुंचा। विद्रोही टोलियों ने रास्ते कैसे रोक रखे थे, उसका भयंकर अनुभव कानपुर पहुंचने के पहले स्वयं कमांडर–इन–चीफ को हो गया था।

कोलिन एक गाड़ी से इलाहाबाद से कानपुर जा रहा था। अंग्रेजों को वाहनों की यद्यपि बहुत कठिनाई हो रही थी और उनका कमांडर–इन–चीफ एक मामूली गाड़ी में बैठकर कानपुर की ओर जा रहा था कि उसी समय उस रास्ते से जानेवाली विद्रोहियों की एक टुकड़ी हाथी पर बैठ शान से जा रही थी। उनके पास पच्चीस घुड़सवार भी थे। सर कोलिन के साथ सेना आदि कुछ भी नहीं थी। उसका गाड़ीवान घाटी के पास आया तो बाजू के रास्ते से विद्रोहियों की टोली उसी छोर पर आकर उसे मिली। उस गाड़ी में क्या माल भरा है, यह पांडे लोगों को पता न लगने से यद्यपि उनका ध्यान उसपर नहीं गया, परंतु उस गाड़ी के 'माल' के प्राण सूख गए। हिंदुस्थान फिर से जीतने के लिए कानपुर की ओर जानेवाला कमांडर–इन–चीफ अपने सामने उन दैत्य विद्रोहियों को अचानक भैरव की तरह प्रकट होते देख आगे का रास्ता छोड़कर पीछे के रास्ते भाग खड़ा हुआ। एक क्षण की देरी होती तो शिकार हाथ लग जाता। या फिर वह गाड़ीवाला केवल उंगली का निर्देश उन विद्रोहियों को कर देता तो जो हजारों वीरों के रण–कौशल से भी बलि न चढ़ता वह अंग्रेजों का कमांडर–इन–चीफ तत्काल कैद कराने का सौभाग्य उस गाड़ीवान को मिलने वाला था! एक क्षण का अंतर था, नही ंतो सर कोलिन अंग्रेजों के कमांडर–इन–चीफ को विद्रोही कैद कर लेते और अपने स्वदेशी कमांडर नाना साहब या कुंवर सिंह के सामने या एकदम यम के सामने प्रस्तुत कर देते।

इस अनिष्ट से छूटते ही सर कोलिन नवंबर की 3 तारीख को कानुपर आ पहुंचा। उसके पहले ही ब्रिगेडियर ग्रेट के अधीन सेना एकत्रित कर ली गई थी। दिल्ली के आसपास के प्रदेश के विद्रोहियों का सफाया करते–करते दिल्ली के घेरे से खाली हुई सेना के साथ ग्रेट हेड नीचे उतरकर वहीं आ गया था। दिल्ली गिर जाने के बाद उसके आसपास के प्रदेश में शांति स्थापित करते इस ग्रेट हेड ने इलाहाबाद के नील काा गर्व परिहार करने में जो शूरता दिखाई थी वह अप्रतिम और अनुपमेय है। विद्रोह होने के बाद से नवंबर माह तक वह प्रदेश विद्रोहियों के ही कब्जे में था। पर इस प्रदेश के वासियों को उन्होंने इतना कम त्रास दिया था कि स्वयं अंग्रेज कमांडर–इन–चीफ अपनी पुस्तक में लिखता है–''लोग निश्चिंत और पूर्णतः निरापद रूप में अपना कृषि कार्य करते थे। क्रांतिकारियों ने कहीं भी जनता को आवश्यकता से अधिक कष्ट नहीं दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने संपूर्ण प्रांत में बलात् तो कहीं भी कुछ नहीं किया।''[133]

[133] कोलिन कृत– 'नैरेटिव ऑफ दि इंडियन म्युटिनी', पृष्ठ 159 ।

केवल अपनी सेना के लिए आवश्यक रसद प्राप्त करने से अधिक अत्याचार विद्रोहियों ने नहीं किया था। क्रांतियुद्ध के भयंकर प्रलय में भी हर वर्ष की तरह ही खेती विस्तार से की गई थी। जो स्वदेश के स्वयंसेवकों को शोभा दे, ऐसे ही व्यवहार से पांडे लोगों ने अपने प्रदेश की रक्षा की थी। पर गुलामी के संचालकों की तरह स्वतंत्रता के लिए प्रेरित उस देश को कुचलने को निकले अंग्रेजों ने उसे बेचिराग कर डाला! और वह सब शांति के लिए , गावं–के–गांव जलाते हुए, जो भी तगड़ा जवान मिला उसे फांसी पर चढ़ाते हुए, आकाशवासी पंछियों से भी अधिक बेरहमी से ग्रामवासियों को मारते हुए ग्रेट हेड की सेना दिल्ली से कानपुर आ पहुंची। तब उसे, नौसेना को और अन्य बड़ी सेना को इकट्ठा कर ब्रिगेडियर ग्रेट गंगा नदी उतरने लगा। हे गंगा माई! लखनऊ को मुक्त करने के लिए तेरे किनारे आई अंग्रेजी सेना की गिनती तूने की है? और हे मानिनी अवध! तू इस अंग्रेज सेना से डरकर अंधियारे कमरे में बंद अंग्रेज सत्ता को मुक्त कर रही है या नहीं?

ब्रिगेडियर ग्रेट के अधीन पांच हजार गोरी सेना थी, उसके साथ ही सैकड़ों ऊंट और लखनऊ की सेना के लिए काफी रसद भी ली हुई थी। ग्रेट की इस सेना के आलमबाग तक मारधाड़ करते पहुंच जाने की बात समझते ही सर कोलिन ने कानपुर की ओर से गंगा नदी पार की। पीछे अपनी पीठ सुरिक्षत रहे, इसलिए उसने चुनी हुई यूरोपीय और सिख सेना तोपों के साथ कानपुर में रखी थी और उसका अधिकारी यूरोप खंड के अनेक युद्धों के नामवर जनरल विंडहम को बनाया। गंगा पार करके 9 नवंबर को कोलिन आलमबाग पहुंचकर अपनी सेना से मिला। आलमबाग की सेना का बारीकी से निरीक्षण कर उसके अलग–अलग भागों को एक अभेद्य व्यूह–रचना में पिरोकर तारीख 14 को लखनऊ शहर पर अंग्रेजी सेना को भयानक हमला करने का आदेश दिया गया। लखनऊ की रेसीडेंसी में समाचार पहुंचाने और संग्राम की कूटनीति तय करने के लिए कन्हेनाव नामक एक साहसी अंग्रेज ने अपना मुंह काला कर, शरीर पर नेटिव कपड़े पहन, एक नेटिव को साथ लेकर विद्रोहियों के पहरे के बावजूद रात के समय जाकर कोलिन और आउट्रम के संदेश एक–दूसरे को पहले ही दे दिए थे। लखनऊ की रेसीडेंसी और आलमबाग की गोरी छावनी में हर किसी को 14 नवंबर कब उदय होता है, इसका इंतजार था। अपनी सेना के साथ हैवलॉक और आउट्रम शत्रु को बाहर की ओर दबाते रेसीडेंसी से निकलेंगे और बाहर की ओर से सर कोलिन रेसीडेंसी की ओर दबाते ले जाएंगे। इस समय अंग्रेजी में उनके अधिकतर नावर योद्धा और सेनापति जमा हो गए थे। हैवलॉक, आउट्रम, नौसेना का पील, ग्रेट हेड, दिल्ली का हडसन, बिग्रेडियर होप ग्रांट, आयर, स्वयं कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन कैंपबेल। ताजा दम यूरोपीय हायलैंडर्स, घेरे के कालमुख से भी बाहर कूदने में बहुत निडर, किसी भी साहस के गले मिलने के लिए आतुर आउट्रम के यूरोपियन, राजनिष्ठ

पंजाबी जवान और उन पंजाबियों से अधिक राजनिष्ठ दिल्ली में मातृभूमि के रक्त से सनी तलवारें धारण करनेवाले सिख।

ऐसी यह अंग्रेजी सेना 14 नवंबर को लखनऊ शहर की ओर चली। वह सारा दिन विद्रोहियों और अंग्रेजी की छीना–झपटी में गया और शाम के समय अंग्रेजी सेना दिलखुश बाग तक शहर जीतती चली गई। वहां रात गुजारने की इच्छा से सर कोलिन ने डेरा डाला। उस रात भी विद्रोहियों के छुटपुट हमले बीच–बीच में चालू ही थे, तब भी अंग्रेजी सेना ने उसकी परवाह न करते हुए वहीं रात गुजारी। दूसरे दिन कोलिन ने अपनी सेना को फिर एक बार व्यूहबद्ध किया और तारीख 16 तारीख को लखनऊ जंगी हमला करने का आदेश दिया। आदेश पाते ही अंग्रेजी`सना उछलकर सिकंदर बाग पर टूट पड़ी। शहर के इस भाग तक अंग्रेजी सेना को विद्रोहियों ने कोई उल्लेखनीय बाधा खड़ी नहीं की। परंतु इस सिकंदर बाग पर कोई ऐसा वीर नियुक्त था जिसने उस बाग में युद्ध का भयंकर खेल रचा। ईवर्ट के अधीन हायलैंडर्स और पॉल के अधीन सिख एक कर्कश चीत्कार कर जब उस सिकंदर बाग पर टूटे तब अंग्रेजी सेना के आगे कोई टिक नहीं पाएगा, ऐसा लगा। सिखों का सरदार गोकुलसिंह अपनी तलवार ऊंची उठाएं कहीं हायलैंडर्स अपने सिख अनुयायियों से आगे न चले जाएं–इसलिए पूरा दम लगाए रहा। अभागा लखनऊ! उसके शरीर का रक्त कौन अधिक पीता है, इस निष्ठुर प्रतियोगिता से सिखों और हायलैंडरों की तलवारें सपासप वार कर रही थीं। परंतु सिकंदर बाग की पत्थर की मजबूत दीवारें किसी भी तरह हिल–डुल नहीं रही थी। परंतु सिकंदर बाग की पत्थर की मजबूत दीवारें किसी भी तरह हिल–डुल नहीं रही थी। और वे दीवारें हिलने लगीं तो भी उस बाग के वीरवर नहीं हिल रहे थे। क्योंकि तट की कुछ शिलाएं गिरते ही अंग्रेजी`सना तीर की तरह उस ओर चली–कौन आगे बढ़ता है? हायलैंडर या सिख? दोनों ने ही जोरदार दौड़ लगाई है। पर अंत में उस स्थान से जो पहले अंदर घुसा वह सिख ही था। उसके उस देशद्रोही साहस को पुरस्कृत करने के लिए उसके सीने में एक गोली घुसी! वह गिरा और तुरंत यह कूपर उसमें घुस गया। उसके पीछे–पीछे ईवर्ट गया, कैप्टन जॉन गया, फिर और हायलैंडर सैनिक तेजी से अंदर घुसते गए। अंदर के सिपाहियों को इस अंग्रेजी सेना को एकाएक अंदर देखकर आश्चर्य हुआ, परंतु उस दिन उस सिकंदर बाग के पास लड़ने के लिए अड़ा योद्धा का कोई सामान्य मनुष्य नहीं होगा। वह तो स्थान छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। विजय या मृत्यु! मृत्यु या जय! शाबाश वीर, शाबाश! स्वतंत्रता के लिए लड़ते वीर को यही गर्जना शोभा देती है। अंग्रेजी सेना का कूपर इस बाग की दीवार से घुसा है, इसलिए उसका काम तमाम करने के लिए उस बहादुर सिपाही की खटपट चालू है। लुधियाना से विद्रोहि करके आए सिपाहियों के उस शूर नेटिवव अधिकारी के सिवाए यह काम किसी अन्य से नहीं हो सकता। आया! कूपर को खोजते–खोजते वह कृतांत उसपद दौड़ पड़ा। खनखनाहट–सपासप–काट–छांट–

कूपर को उसने और कूपर ने उसे एक ही समय काट डाला। दोनों ही खेत रहे। लैंप्सडेन अपने हाथ की तलवार घुमाते चिल्लाने लगा, ''देख क्या रहे हो! स्कॉटलैंड की परीक्षा की घड़ी है, आगे बढ़ो'' कैसी उद्दाम भाषा। स्कॉटलैंड के सम्मान में! और हिंदुस्थान को कोई सम्मान ही नहीं है क्या स्कॉटलैंड के सम्मान के लिए कोई गोरा आने से पहले ही हिंदुस्थान के सम्मान में एक काला वीर गुस्से से भरा आया। लैंप्सडेन के शव से रक्त बहने लगा। ऐसे स्थान–स्थान पर भयानक लड़ाई चल रही थी कि तभी दूसरी जगह से दरवाजा फोड़ वहां से भी अंग्रेजी सेना का सागर उस बाग में घुसने लगा। अब इस बाग को जीत की आशा नहीं रही। फिर ऐ सिकंदर बाग! चाहे विजय हाथ से निकल गई है, फिर भी तू लड़ता ही रहेगा क्या? लड़–लड़, वैसे ही लड़! विजय जाए, पर सम्मान न जाए, यश नहीं जाने देना। कर्तव्य मान रण–मैदान में कूद पड़! दरवाजे–दरवाजे, सीढ़ी–सीढ़ी पर खनखनाती तलवारें भिड़ी रहीं। रक्त की कीच चारों ओर मचाती रही। मैलसन कहता है–''भयानक रक्तपात और घमासान मार–धाड़ चली। निराशा के अतुल शौर्य से विद्रोही लड़ते रहे। अंग्रेजी सेना ने उस स्थान के अंदर का भाग भी कब्जा लिया। फिर भी लड़ाई का अंत न हो। हर कमरा, हर सीढ़ी, हर बुर्ज, हर कोना भारी जिद के साथ लड़ता रहा। 'शरण' शब्द का उच्चारण किसी ने नही किया, किसी ने सुना नहीं जब वह सारा स्थान अंग्रेजों ने जीत लिया तब ध्यान में आया कि उस बाग में दो हजार शव विद्रोहियों के पड़े हुए हैं। उस बाग में उनकी जो सेना थी उसमें से केवल चार ही जन शायद लड़ाई छोड़कर भागे होंगे। परंतु चार भी भागे या नहीं, यह संदेह ही है।''[134]

सिकंदर बाग में देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ते–लड़ते मरनेवाले शहीदों, दो हजार वीरों! तुम्हारी उस पवित्र स्मृति में यह इतिहास अर्पित है। दो हजार गाजियों का रक्त ! दो हजार देशवीरों का रक्त! उस रक्त पर या कृतज्ञ इतिहास अर्पित है। देश के लिए लड़ मरे–तुम कौन थे? तुम्हारे नाम क्या था? तुममे यह सिद्धांतनिष्ठा की ज्योति प्रकाशित थी तब उसे चैतन्य रखनेवाला कौन सा वीरवर नेता तुम्हें धारातीर्थ का संकल्प दे रहा था? यह कहन का महद्भाग्य, विश्व–कल्याण के लिए उपकारक कर्मों में देह घिसनेवाले तुम संत–विभूतियों का नाम उच्चारण करने या लिखने का महद्भाग्य यद्यपि हमारे भाग्य में नहीं, फिर भी तुम्हारी वीर्य स्मृति को यह कृतज्ञ इतिहास अर्पित हो। विजय गई, परंतु तुमने स्वकीय यश को भंग नहीं होने दिया। विजय गई, पर तुमने स्वयश को उष्ण रक्त के दो हजार फव्वारों के नीचे सुस्नान निर्मल रखा हुआ है! तुम्हारा रक्त–भूतकाल की तिलांजलि–आगामी वीरों की संजीवनी बने!

तुम्हें सफलता नही मिली, पर स्वतंत्रता के गाजियों, यह सिकंदर बाग का आत्मयज्ञ यदि सही मुहूर्त पर आरंभ किया गया होता तो तुम्हें विजय भी मिलती। अब तुम्हारे शत्रु

[134] मैलसन कृत–'म्युटिनी', खंड 4 पृष्ठ 132 ।

की शक्ति कितनी बढ़ी है। उनके हजारों नए योद्धा रण की ओर बढ़ रहे हैं। दिल्ली गिर जाने से तनाव कम हो गया है। विजय के कारण नैतिक बल बढ़ा हुआ है और पराजय से तुम्हारी मानसिक शक्तियां क्षीण उनके हजारों नए योद्धा रण की ओर बढ़ रहे हैं। दिल्ली गिर जाने से तनाव कम हो गया है। विजय के कारण नैतिक बल बढ़ा हुआ है और पराजय से तुम्हारी मानसिक शक्तियां क्षीण हुई हैं। ऐसी रूखी और निर्बीज भूमि में दो हजार का रक्त भी नमी नहीं ला सकता। परंतु दो माह पहले यदि ये दो हजार रक्त मेघ देशवीरत्व की तैयारी से इस भूमि की ओर मुड़े होते तो, यदि लखनऊ में पहली सलामी होते ही अंग्रेजी सत्ता की दुर्बल रेसीडेंसी पर ऐसे ही मारेंगे या मरेंगे, इस निश्चय से हमला करने हजारों लोग गए होते तो आधे घंटे के अंदर हिंदुस्थान के सिर पर तुम्हें जो चाहिए था। वह स्वराज्य का मुकुट चमकने लग गया होता। मर गए, पर मरने का मुहूर्त गलत था समय गया–घटी कभी की डूब गई–एक रक्त बिंदु से उस समय विजय मिली होती, अब रक्त के हौज से उड़ेले तो भी सुयश मिलेगा, पर विजय मिलनी कठिन है! राज्य क्रांति जैसी भयंकर वेग की आंधी में एक क्षण की ढील हुई और बात गई। एक पैर पीछे लिया तो वह टूटा ही, एक क्षण को जान प्यारी हुई और हमेशा के लिए मृत्यु आई। क्रांति के दरबार की प्रथम सावधानी–यह कि–'बूंद से गई, वह हौज से नहीं आती।'

रक्त के हौज सिकंदर बाग में जैसे भरे वैसे ही अन्य रणक्षेत्रों में भी भरे। दिलखुशबाग, आलमबाग, शहानजीफ–सारे स्थान उस दिन और उस रात शत्रु के साथ जूझते रहे। भोर होते ही लखनऊ शहर के सारे घंटे घनघना उठे। नगाड़े बजे और फिर उस रक्त से नहाए शहर ने शत्रु से टक्कर लेनी शुरू की। कल का शहानजीफ का झगड़ा और आज का मोतीमहल का झगड़ा। जैसे को तैसा होने लगा। परंतु अंग्रेजी झंडा ही सबल साबित हुआ और अंग्रेजी सेना रेसीडेंसी में बंद अपने देशबंधुओं को मुक्त करने में सफल हुई। तारीख 17, 18, 19, से 23 नवंबर तक लखनऊ में लड़ाई–पर–लड़ाई लड़ते अंत में वह घिरी हुई और घेरा तोड़ने आई अंग्रेजी सेना एक–दूसरे को मिली। जिस रेसीडेंसी पर आज तक मृत्यु की छाया था उस रेसीडेंसी में अब विजय का हास्य खिल उठा। परंतु इस आंग्ल विजय को विद्रोही अभी भी महत्त्व नहीं रहे थे। ये दोनों अंग्रेजी सेना इकट्ठी हो गई और रक्त के प्रत्यक्ष समुद्र में वह शहर तैरने लगा, तब भी वहां के क्रांतिवीर समर्पण करने या भाग जाने को तैयार नहीं थे। उनकी इस दृढ़ता और धैर्य के कारण लड़ाई फिर से कब शुरू हो जाए, यह बिल्कुल अनिश्चित था। इसलिए पिछली रात की मारामारी में छिटकी अंग्रेजी सेना को फिर से एक बार व्यवस्थित करने का कार्य सर कोलिन ने प्रारंभ किया। उसने रेसीडेंसी छोड़कर दिलखुशबाग में सारी सेना इकट्ठी की। आगे की लड़ाई के लिए आवश्यक संगठन बनाया और कब्जाए आलमबाग में आउट्रम के अधीन उस विस्तीर्ण मार–काट में शेष रही लगभग चार हजार सेना और पच्चीस तोपें रख दीं और इस विजय के लिए उसने अपनी सेना की शूरता, अनुशासन

और आदेश–पालन की यथार्थ स्तुति की। उस स्तुति शूरता में बड़ा हिस्सा जनरल हैवलॉक का था।

परंतु जब तक अंग्रेजी सेना वह विजयानंद मनाए, तब तक उस विजयानंद का मुख्य हिस्सेदार हैवलॉक यकायक मर गया। लखनऊ के रण क्षेत्र में अति तनाव, चिंता और निराशा से पस्त हुआ ऐन विजय रंग में यह बहादुर हैवलॉक मर गया। तारीख 24 का अंग्रेजी विजय में इस मृत्यु ने यह विष घोल दिया। फिर भी, हैवलॉक के बाद उसके पुत्र और पत्नी को सरदारी का सम्मान देकर इंग्लैंड कृतज्ञ हुआ। परंतु वह समय मरे हुए के शोक में डूबने का नहीं, उसकी अधूरी आशापूरी करने का था। लखनऊ विजय के लिए हैवलॉक मरा, इसलिए उसकी मृत्यु के बाद उसकी वास्तविक सेना करना अर्थात् लखनऊ शहर जीतना था।

परंतु लखनऊ जीतना निकलने से पहले इधर कानपुर में ये तोपों के आकस्मिक धमाके क्यों शुरू हो गए हैं? होंगे किसी के लिए। युरोप के युद्ध का प्रख्यात वीर विंडहम जब तक कानपुर में है तब तक वहां की तोपों के धमाकों से सर कोलिन के सीने की धड़कने बढ़ने का कोई कारण नहीं। परंतु सर कोलिन को जैसा विंडहम कानपुर में है वैसा ही तात्या टोपे भी वहां आया है, यह समाचाार मिला है।

तात्या टोपे कानपुर में ही है? सर कोलिन को तोपों के उन धमाकों का भयंकर अर्थ ध्यान में आया और वह लखनऊ आउट्रम के हवाले कर अति वेग से स्वयं यह जानने दौड़ा कि कानपुर में तात्या टोपे क्या गड़बड़ कर रहा है!

प्रकरण–6

तात्या टोपे

कानपुर में अपनी सेना की हार के बाद श्रीमंत नाना साहब पेशवा और तात्या टोपे दोनों रात बारह बजे के आसपास ब्रह्मवर्त में आ गए। वहां रात गुजारकर दूसरे दिन सुबह उनके छोटे भाई बाला साहब, भतीजे राव साहब और तात्या टोपे आदि लोग राजवंश की महिलाओं के साथ नौकाओं में बैठकर गंगा पर उतर गए और लखनऊ प्रांत के फतेहपुर शहर में आ पहुचें। वहां नाना का परम स्नेही चौधरी भोपाल सिंह था। उसने उन सब लोगों का सादर सत्कार किया और अपने यहां सबको राख लिया। कानपुर की लड़ाई में बीच में तितर–बितर हुई सेना की फिर से व्यवस्था करने में लगे थे। थोड़े ही दिनों में विद्रोह कर उठी 42वीं रेजिमेंट नाना के निशान के नीचे लड़ने का संकल्प कर शिवराजपुर तक आ गई और वहां से उसने सर्वसम्मति से श्रीमंत नाना साहब को उसे ले जाने को कोई अधिकारी आदमी भेजने का निवेदन किया। इस निवेदन के अनुसार श्रीमंत नाना ने तात्या टोपे को शिवराजपुर की ओर उस रेजिमेंट को लाने का अधिकार देकर भेजा और आदेश के अनुसार तात्या उस रेजिमेंट को नाना के निशान के नीचे ले आए। तात्या को शिवराजपुर की यह सेना मिलते ही उसने हैवलॉक की पीठ पर, पूर्व कथन के अनुसार, दांव–पेज प्रारंभ किए और उस आंग्ल वीर को अवध से खींचकर वापस कानपुर ले आया। हैवलॉक कानपुर में आकर देखता है तो यह विचित्र

मराठा ब्रह्मवर्त के बाड़े में राजा बना बैठा है। अतः आंग्ल सेना को फिर से ब्रह्मतर्व पर जोर का आक्रमण करना आवश्यक हो गया। इस लड़ाई में पराजय होते ही तात्या गंगा नदी उतरकर सेना के साथ फतेहपुर आकर नाना से मिल गया। थोड़े ही दिनों में ग्वालियर की सेना मं विद्रोह कराने की योजना नाना के दरबार में बनने लगी। इस काम पर तात्या के सिवाए किसकी नियुक्ति इष्टतर थी? इस विलक्षण बुद्धि ने आज पूरी–की–पूरी रेजिमेंट चुपचाप पोली करके विद्रोह कराने जाए। तात्या टोपे तुरंत गुप्त रीति से ग्वालियर गए और वहां से अपने साथ ग्वालियर सेना की मुरार छावनी की पैदल, घुड़सवार एवं तोपखाना आादि लेकर तुरंत कालपी वापस लौटे। यह सुनते ही नाना ने कालपी की इस सारी सेना की व्यवस्था करने का अधिकार देकर बाला साहब को उधर भेज दिया। कालपी शहर विद्रोहियों के लिए लश्करी दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण था। कानपुर और कालपी के बीच यमुना का प्रवाह होने से अंग्रेजी सेना से रक्षा करनेवाली वह प्राकृतिक खंदक ही थी, इसलिए कालपी शहर में अपना डेरा बनाए रखकर वहां की सुरक्षा के लिए कुछ सेना छोड़ शेष सेना के साथ तात्या टोपे कानपुर की अंग्रेजी सेना को शह देने कर विचार करने लगे।

सर कोलिन जब अंग्रेजी सेना के साथ लखनऊ को मुक्त कराने कानपुर से चला तब उसने कानपुर की सुरक्षा के लिए यूरोप की लड़ाइयों में ख्यातिप्राप्त जनरल विंडहम को सेना के साथ वहां रखा था। उस यूरोपियन सेना को नई कुमुक आने के पहले और लखनऊ की ओर जारी झगड़ा समाप्त होने के पूर्व कानपुर शहर पर संभव हुआ तो एक बार चढ़ाई कर देखें–यह नाना का विचार बना और उसक कार्य के लिए तात्या टोपे के साथ ग्वालियर से आई सेना भी भेजी गई। इस सेना का मुख्य सेनापति तात्या टोपे को ही बनाया गया। इस तरह कल तक नाना के दरबार का जो ब्राह्मण मुंशी था, वह तात्या टोपे आज एक सेना का मुख्य सेनापति हो गया। और यूरोप के रणांगण में सैनिक अनुभव लेते हुए जिसका जीवन गया उस जनरल विंडहम पर वह हमला करने का रहा है। और उसके आए हुए अंसगठित लश्करी सिपाही संस्थापित विजयी आंग्ल सेना के सामने खड़े हैं। यह असमान लड़ाई कैसे होती है–स्वतंत्रता की चेतना, दूसरे सारे लाभ विपक्ष की ओर होते हुए भी कैसे लड़ती है! अर्थात् साधन आदि के अभाव में भी इतना लड़ती है तो जब उसके साथ अनुशासन, संगठन आदि के लाभ जुड़ जाएं तो कितना लड़ सकती है–यह इसकी जीवंत शिक्षा मिल जाने जैसा होगा।

ग्वालियर की विद्रोही सेना के साथ तात्या टोपे 9 नवंबर को कालपी पहुंच गए। कानपुर से कालपी छियालीस मील दूर है। वहां से कानपुर की अंग्रेजी सेना की पूरी जानकारी लेकर तात्या ने कालपी छोड़ यमुना नदी उतरकर दोआब में प्रवेश किया। जालौन में सारा खजाना और काठ–कबाड़ रखकर उसकी सुरक्षा के लिए तीन हजार

सैनिक, बीस तोपें छोड़ यमुना उतरते ही वे तुरंत कानपुर पर हमला करने नहीं गए। लखनऊ में विद्रोहियों से सर कोलिन की लड़ाई शुरू होने और यह ज्ञात हो जाने कर कि सर कोलिन वहां पूरी तरह फंस गया है, तात्या कानपुर के आसपास मंडराते रहे। लखनऊ में सर कोलिन अब कुछ दिन विद्रोहियों से उलझा रहेगा, यह दिखते ही तात्या शिवराजपुर तक चढ़ आए। रास्ते में सैनिक महत्त्व के स्थानों पर उन्होंने सेना के थान बनाए। नवंबर की तारीख को इतनी व्यवस्था करके तात्या ने अंग्रेजी रसद का मुख्य रास्ता बंद कर दिया। तात्या के इन दांव–पेचों का अर्थ विंडहम की नजर में आए बिना न रहा। उसने कलकत्ता से आ रही गोरी सेना के प्रवाह को कानपुर में ही रोके रखा। कार्थ्यू के अधीन सेना देकर उसे कालपी के पास रखा और तात्या सर कोलिन की पीठ पर मार करने जाता है या कानपुर आता है, इसकी राह देखता रहा।

परंतु विंडहम बैठकर राह देखनेवाला योद्धा नहीं था। उसका बहादुर स्वभाव उसे युद्ध हेतु निरंतर आगे ढकेल रहा था। अंग्रेजों की हिंदुस्थान ही नहीं, पूरे एशिया की सेना के विषय में जो एक सैनिक धारणा थी उसके मन पर उसकी छाप भी थी। यह धारण कि 'एशियाटिक लोगों को हराने की उत्तम युक्ति है उनपर सीधे हमला कर देना। कोई चाहे जितना सशक्त हो, परंतु किंचित भी पैर पीछे लिया या देर की तो एशियाटिक लोग गर्व से फूल जाते हैं। किंतु कितना भी अशक्त हो, पर पीछे न हटते हुए तेजी से उनपर टूट पड़े तो एशियाटिक लोगों की आंखें कितना चौंधिया जाती हैं औ वे घबराकर इधर–उधर भागने लगते हैं।' इस सैन्य धारणा का उपयोग आज तक अंग्रेजों ने कितनी ही बार किया और अधिकतर वे सफल रहे। और चूंकि एशियाटिक लोगों से लड़ते हुए वास्तविक बल से अधिक उसके दिखावे में सफलता की संभावना अधिक रहती है, इसलिए युद्ध में गोरी मुट्ठी भर सेना हो तो भी वह सीधे तीर की तरह एशियाटिक लोगों पर हमला करती रहे और उनका आक्रमण होने के पहले ही आप उनपर आक्रमण कर हमारी शक्ति अधिक है, ऐसे उनका डराते रहें। यह आंग्ल युद्ध शस्त्र का एक प्रयोगसिद्ध नियम ही बन गया था। जो भी अंग्रेजी सोल्जर यहां आता, वह यह नियम कंठस्थ करता और जो अंग्रेजी इतिहासकार ग्रंथ लिखता वह इस नियम का सिद्धांत बार–बार लिखता था। ऐसी शिक्षा पाया जनरल विंडहम तात्या टोपे की हलचलों को मन माफिक चलने देकर राह देखता बैठनेवाला नहीं था। उसने कानपुर शहर से निकल कालपी के बाजू की नहर के पुल तक हमला किया।

अंग्रेजी सेना की गतिविधि देखकर विद्रोहियों की सेना ने भी हलचल प्रारंभ की। उनकी सेना अकबरपुर से सुखंडी आ गई और सुखंडी से 25 नवंबर को पांडु नदी तक आकर भिड़ गई। अपने इतने पास तक साहसी शत्रु के आ जाने की सूचना मिलने से विंडहम की सेना में लड़ाई की तैयारी शुरू हो गई और एशियाटिक लोगों को हराने की रामबाण युक्ति 26 नवंबर को अपनाने की योजना बनी। विद्रोहियों पर स्वयं होकर ही सीधे आक्रमण कर पहले उनका सामना पीटा जाए और फिर ऐसे अकेले–अकेले पकड़ अन्य हिस्सों को भी नष्ट कर दिया जाए, यह सकंल्प कर विंडहम तारीख 26 को

प्रातः ही शत्रु पर पिल पड़ा। विद्रोही एक घनी झाड़ी में खड़े थे। उन्होंने अंग्रेजी सेना पर तोपों की मार शुरू की। बहुत देर तक मारामारी चलने के बाद अंग्रेजों ने तीन तोपें जीत लीं। विंडहम कहने लगा, मेरे सीधे हमले से एशियाटिक लोग और एक बार पराजित हुए और गोरी सेना फिर एक बार विजयी होते हुए भी तू पीछे–पीछे क्यों हटती जा रही है? या फिर आज तक युद्ध में पीछे हटने को ही तू पीछे–पीछे क्यों हटती जा रही है? या फिर आज तक युद्ध में पीछे हटने को ही तू विजय कहती रही है? कैसी विजय और कैसा रण? विंडहम की गोरी सेना तात्या टोपे के घुड़सवारों के दबाव में कानपुर तक पीछे हट गई। उसकी पीठ पर चढ़े जा रहे घुड़सवारों के दबाव में कानपुर तक पीछे हट गई। उसकी पीठ पर चढ़े जा रहे घुड़सवार न लड़ाई कर रहे थे, न पीछा छोड़ रहे थे। मराठों की सेना की तरह ही वे शत्रु के चारों ओर मंडराते उन्हें पीछे धकेलते और आप आगे घुसते सीधे हमले से हमेशा की तरह न डरते ये एशियाटिक लोग उलटे उसे ही धमकाते आगे गए। मैलसन कहता है–''परंतु विद्रोहियों का नेता तात्या टोपे कोई पागल आदमी नहीं था। जनरल विंडहम ने जो आघात किया उससे डरने की बात तो दूर, उलटे अंग्रेज सेनानी का मर्म उस चतुर मराठे की नजर में आया। विंडहम की आंतरिक स्थिति किसी खुली पुस्तक की तरह तात्या टोपे ने पढ़ ली और असल सेनानी की मूल चतुराई से उस स्थिति का पूरा लाभ लेने का निश्चय किया।''[135]

दिन भर की लड़ाई के बाद विंडहम को चौबीस घंटै की भी फुरसत न देकर अपनी सेना को तात्या ने उस रात दूसरे दिन प्रातः ही आक्रमण के लिए तैयार रहने का आदेश दिया। परंतु शिओली और शिवराजपुर की सेना आकर उसके अंग्रेजों के दांए बाजू पर तोपों से गोलीबारी करने के पूर्व आगे न बढ़ते हुए गोलीबारी होते ही अंग्रेजों पर तेजी से टूट पड़ना है, ऐसी उसकी योजना थी। इधर विंडहम ने भी अपनी सेना को प्रातः ही सशस्त्र खड़ा किया, पर प्रातः नौ बजे तक खड़े रहने के बाद भी विद्रोहियों के आने का समाचार या उनकी गतिविधि ज्ञात नहीं हुई, तब अंग्रेजी सेना कलेवा करने अपने–अपने तंबू में चली गई। कोई ग्यारह बजे अंग्रेजी सेना को फिर सशस्त्र होने का आदेश मिला। जनरल विंडहम को सेनापति तात्या टोपे के हेतु का पता नहीं चल पा रहा था। सारी अंग्रेजी सेना में अनिश्चितता का वातावरण था।

इसी समय निश्चितता का भयानक राज शुरू करने के लिए तात्या टोपे की सेना की ओर से अंग्रेजों के दाएं बाजू पर तोप का गोला आकर गिरा। वह गोला गिरने के साथ ही सामने से भी गोलीबारी चालू हो गई। तुरंत विंडहम ने छह तोपों के साथ कार्थ्यू को ब्रह्मवर्त के रास्ते शहर के उस भाग की सुरक्षा करने भेजा। विद्रोहियों की तोपों और अंग्रेजों के बीच के भाग की तोपों की भयंकर लड़ाई शुरू हुई। उसमें अंग्रेजी गोलंदाज जल्दी ही हारने लगे। तात्या ने अपनी सेना का अर्धवृत्त व्यूह बनाकर उसमें अंग्रेजी सेना को सामने और दोनों बाजू से घेरने की योजना बनाई थी। विंडहम ने

[135] मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 4, पृष्ठ 167 ।

तात्या के अधवृत्त को तोड़ने का बहुत प्रयास किया। पर तात्या की तोपों ने अंग्रेजों को आगे कदम रखना असंभव कर दिया। आगे कदम बढ़ाना तो दूर, अब मूल जगह पर भी अटल रहना असंभव देख अंग्रेज रण से पीछे हटने लगे। अंग्रेजों का बायां बाजू अपनी तोपें छोड़कर भी पीछे हटा। यह देखते ही उनके दाएं बाजू की सेना ने जोर लगाकर तोपों की रखा की। परंतु अब तो अंग्रेजी सेना के पैर रण से उखड़ गए। वे जैसे–जैसे पीछे हटते दिखे वैसे–वैसे विद्रोहियों का अर्धवृत्त उन्हें पीछे हटाता गया। शाम को छह बजे इस जंगी धकेला–धकेली में अंग्रेजी सेना पूरी तरह हार गई और उसका सेनापति जनरल विंडहम अपनी सेना के साथ अस्त–व्यस्त रीति से भागा। उसके हजारों तंबू, छोलदारियां, बैल, रसद और पोशाक विद्रोहियों के हाथ लगे। इस तरह उस जवां मई मराठे की तलवार को इस दूसरी विजय का मुकुट पहनाया गया। कल की लड़ाई में उसकी अप्रत्यक्ष जीत थी, पर आज तो उसकी प्रत्यक्ष परिपूर्ण विजय हुई। उसने अंग्रेजों के एक उत्तम सेनापति को दिन भर चले भयंकर रण में पराभूत ही नहीं किया, उसका पीछा भी किया। तंबुओं, छोलों के साथ उसकी छावनी गिराई और कानपुर शहर से उसे खदेड़कर उस शहर को जीता। यदि इस सेनापति जैसी ही उसकी सेना भी कर्तव्यनिष्ठ और संगठित होती तो अंग्रेजी इतिहासकार भी कहते हैं कि इस मराठे ने उस दिन जनरल विंडहम की सारी सेना काट डाली होती। इतना बढ़िया दांव तात्या टोपे ने जनरल विंडहम पर लगाया था।

और तात्या के इस दांव की गूंज सर कोलिन को लखनऊ में सुनाई दी। जिस समय तात्या कानपुर आया, उसे यह आशा थी कि कोलिन को कम–से–कम एक माह लखनऊ उलझाए रहेगा और तब तक विंडहम के अकेलेपन का सहज ही लाभ लिया जा सकेगा। परंतु उसक यह दांव उसकी ओर से इतना विजयी हुआ, तभी उसको समाचार मिला कि लखनऊ का काम शीघ्र निपटाकर–वहाँ विद्रोहियों अधिक बाधा न होने से सर कोलिन भी कानपुर पर आक्रमण करता आ रहा है। अब गंगा के दोनों बाजुओं से अंग्रेजी सेना तात्या पर चढ़ आयी थी। लखनऊ में विद्रोहियों के ढीलेपन से अंग्रेजों के कमांडर–इन–चीफ से स्वयं कुश्ती लड़ने का बोझा क्रांतिवीरों के इस सेनानी पर आ पड़ा। फिर भी वह मराठा तारीख 27 को व्रिदोहियों पर फिर से यथासंभव चढ़ाई करने या कम–से–कम उनकी चढ़ाई न होने देने का निश्चय कर प्रातः से ही लड़ाई चालू की। अंग्रेजों

के दांए और बाएं बाजू पर विद्रोहियों की तोपें और सेना मार करने लगी। कल की तरह आज भी अंग्रेजों को विद्रोहियों ने और विद्रोहियों को अंग्रेजों ने दोपहर बारह बजे तक जहां–का–तहां दबाकर रखा। परंतु कल अंग्रेज जैसे पीछे हटे थे वैसा आज न हटकर वे रण में आगे पैर बढ़ाकर शत्रु पर टूट पड़े। एशियाटिक लोगों पर सीधे हमला किया तो फिर विजय में शंका क्यों हो?

विजय में कोई शंका नहीं, पर यह दाईं ओर हाहाकार कौन कर रहा है? ब्रिगेडियर विल्सन मरा। कैप्टन माक्री मरा। कैप्टन मार्फी, मेजर स्टर्लिन, लेफ्टिनेंट केन, लेफ्टिनेंट रिबन को भी काट मारा। एशियाटिकों में भी तात्या टोपे होता ही है। उस तात्या ने और उसकी सेना ने शाम तक मारामारी कर आगे बढ़ आई अंग्रेजी सेना को उसके कमांडर के साथ पीछे भगाकर इस तीसरे दिन भी यह तीसरी विजय प्राप्त की। कल से अधिक आज अंग्रेजी सेना की हिम्मत पस्त हुई। उसके दोनों भागों को ही रणांगण से भगा दिया। कल आधा शहर लिया था तो आज तात्या ने सारा कानपुर कब्जा लिया और इस तरह इस जवां मर्द मराठे की तलवार पर यह तीसरी विजय का मुकुट दमकने लगा।[136] अंग्रेजी सेना पीछे भाग रही थी, तभी अंग्रेजों का कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन उसकी छावनी में उपस्थित हो गया। उसने अपनी आंखों से अंग्रेजी सेना की हुई गत देखी थी। उसने अपनी आंखों से विद्रोहियों की विजयी सेना कानपुर शहर में घुसते देखी, उसने अपने कान से विद्रोहियों के रणसिंघे व रणताशे और जयनाद कड़कड़ाते सुने। कानपुर की ओर तात्या टोपे क्या गड़बड़ कर रहा है, यह उसके ध्यान में अच्छी तरह आया।

सर कोलिन के अंग्रेजों की छावनी में आ पहुंचने की बात जानते ही जिसका डर था वही हो गया, यह तात्या ने समझ लिया। लखनऊ का जोर ढाली पड़ने से सर कोलिन ससैन्य अवध की ओर से कानपुर दौड़ आया। यह अप्रिय सत्य सामने आते ही धीरज न खोकर तात्या ने अवध की ओर का पुल तोड़कर अंग्रेजी सेना को गंगा नदी उतरना असंभव बनाने को पुल पर तोपों की मार शुरू की। पर विद्रोहियों की इन तोपों का रूख समझकर सर कोलिन ने अंग्रेजी तोपों की उलटी मार चालू की और उसकी छाया में 30 नवंबर तक सारी अंग्रेजी सेना अवध से कानपुर शहर के पास आ बैठी। फिर भी

---

[136] इस पराजय का नितांत ही रोचक वर्णन एक अंग्रेज अधिकारी ने इन शब्दों में किया है–''आपको आज के संघर्ष का विवरण पढ़कर आश्चर्य होगा, क्योंकि आपको विदित होगा कि अपने सम्मान चिह्नों, महान् उपाधियों और नितांत प्रसिद्ध शौर्य से मंडित गोरे सैनिकों को पराजय मिली और घृणित एवं तुच्छ भारतीयों ने उनके तंबू और सामग्री ही नहीं, प्रतिष्ठा का भी अपहरण कर लिया था। अब हमारे शत्रुओं को हमें 'पराजित फिरंगी' कहने का अधिकार प्राप्त हो गया। हमारे सैनिक अपने उलट दिए गए तंबुओं, फटे और जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों तथा सामग्री और भागते हुए ऊंटों, हाथियों, अश्वों एवं नौकरों सहित भाग निकले। यह संपूर्ण घटना ही नितांत लज्जाजनक और विषादपूर्ण है।''
–चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 190 ।

क्रांतिकारी कानपुर छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने उस शहर के पास ही अंग्रेजों के कमांडर–इन–चीफ से दो–दो हाथ करने का मन बनाया। क्योंकि–'' They had, as their leadr, a man of very great national abilities.''[137] इस कर्मठ सेनानी ने अपना बायां बाजू कानपुर और गंगा के बीच–अड़चनवाली जगह में, अपना मध्य कानपुर शहर में और अपना दायां बाजू गंगा नहर पर फैला रखा था। उसकी सेना में लश्करी शिखण प्राप्त करीब दस हजार सिपाही थे। उसने दिसंबर की 1 तारीख को अंग्रेजी सेना के कमांडर–इन–चीफ को चैन से नहीं बैठने दिया। दूसरे दिन तो उसी के तंबू पर विद्रोहियों ने यकायक गोलीबारी शुरू कर दी। 4 तारीख को उन्होंने कुछ ज्वालाग्रही नौकाएं अवध के पुल को जलाने के लिए गंगा के प्रवाह में छोड़ दीं। तारीख 5 को उनके तोपखाने ने अंग्रेजों की सारी सेना पर ऐसी गोलीबारी की कि सर कोलिन को अपना डेरा छोड़कर सेना की हलचल और अपना तोपखाना बहुत देर तक बंद करना पड़ा। विद्रोहियों की इस ढीठता से दी गई रण चुनौतियों को आज तक चुप होकर सुनने की बारी जो सर कोलिन पर आई थी वह 4 तारीख के बाद आनी नहीं थी। क्योंकि अब उसने अपनी सेना की उत्तम एकबद्धता कर रास्ते की सारी बाधाएं दूर कर दी थी और इसीलिए प्रत्यक्ष अंग्रेजी कमांडर–इन–चीफ के तंबू पर रोज–रोज गोलीबारी की गेंद का खेल खेलनेवाले जिद्दी, ढीठ और उद्दाम विद्रोहियों के पास कोई नौ–दस हजार सैनिक शिक्षा प्राप्त सिपाही थे और उनके बाएं बाजू में स्वयं नाना साहब, दाईं ओर ग्वालियर की सेना और उन सब पर तात्या टोपे सेनापति थे। अंग्रेजों के पास काली, गोरी कुल पांच हजार पैदल, छह सौ घुड़सवार और पैंतीस तोपें–ऐसे सब मिलाकर छह हजार लोगों की सज्जित सेना थी। चार्ल्स बाल कहता है–''संख्या पचहत्तर हजार थी और उन सब पर स्वयं कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन सेनापति था।''

सर कोलिन ने विद्रोहियों के दाएं बाजू असुरक्षित जगह पडत्री हुई है, यह देखकर 6 दिसंबर को प्रातः नौ बजे लड़ाई शुरू की। दाईं ओर मुख्य हमला किया जाना है, यह बात छिपाने के लिए पहले बाएं बाजू पर अंग्रेजी तोपें गोला फेंकने लगीं। और इस कारण विद्रोहियो का ध्यान भी उधर ही गया। ग्रेट हेड ने विद्रोहियों के मध्य पर भी एक नकली हमला किया। इस तरह उधर गोलीबारी की भयानक उठा–पटक में वे धरती दहला रहे थे। तभी दाईं ओर छिपते–छिपाते अंग्रेजों ने विद्रोहियों पर बहुत जोर से वास्तविक हमला किया। जो सिख और गोरे लोग तीर की तरह चलते आ रहे थे उन पर ग्वालियर की सेना ने तोपों से भयानक गोलाबारी की। उसी तरह पांडे लोगों की सेना भी बंदूकों से आंग्ल सेना पर आग बरसाने लगी। सिख लोगों के डबल मार्च से दौड़ते ही विद्रोहियों से

137 मैलसन, खंड 2, पृष्ठ 184 ।

उनकी आधे–एक घंटे तक विकट कुश्ती हुई। इतने में पील के लोग तोपें लेकर वहां आ गया तो विद्रोहियों का दायां बाजू हटने लगा। एक बार उसके हटना शुरू करते ही अंग्रेजी सेना को जो जोश आया–मत पूछो! उन्होंने जल्दी ही बाहर की सेना को तितर–बितर कर दिया। उनकी तोपें पकड़ लीं और उनकी सारी छावनी पर भी कब्जा कर लिया। विद्राहियों के दाएं बाजू पर ऐसी परिपूर्ण विजय सर कोलिन को प्राप्त हुई। परंतु उसकी इच्छा इतने से शांत होनेवाली नहीं थी। उसके मन में दाएं बाजू की ओर कालपी का रास्ता रोककर तात्या को ससैन्य शरण लाने का विचार था, इसलिए उसने ब्रह्मवर्त के रास्ते पर मैंसफील्ड को तत्काल भेज दिया। इस दिन एशियाटिक लोगों के संबंध में पश्चिम का सैनिक सिद्धांत उसके विधि और निषेधात्मक दोनों ही स्वरूपों में वहां प्रकट हुआ। विद्रोहियों के मध्य पर ग्रेट हेड ने जो हल्ला किया था वह इतना कमजोर था कि यदि विद्रोहियों ने उसपर सचमुच जोर का आघात किया होता तो उसकी हवा निकल गई होती और वह दिन निकल गया होता। पर अंग्रेज सीधे हल्ला बोलते आए तो विद्रोही धौंस में आ गए। अघातक पद्धति से सर कोलिन की इच्छा अधूरी रही; क्योंकि तात्या के ससैन्य शरण आने की संभावना घट गई। वह मराठा सेनापति–तात्या टोपे–मैंसफील्ड को डांटते–डपटते अंग्रेजी जाल तोड़कर अपनी तोपों और सेना के साथ पार निकल गया। तात्या को पकड़ना चाहते थे। सर कोलिन, इस मराठी शेर को पकड़ने में तुझे अभी कई खूनी जाल बिछाने होंगे। यद्यपिइ स दिन तात्या टोपे तोपों सहित निकल गया था, फिर भी होप ग्रांट ने हमला किया। 9 दिसंबर को शिवराजपुर के पास तात्या की सेना से उसकी एक भागती भिड़ंत हुई। और उसमें से भी तात्या और सेना भाग गए, फिर भी विद्रोहियों की अधिकतर तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं। इस तरह सर कोलिन ने तारीख 6 से 9 तक इन चार दिनों में विंडहम की पराजय का प्रतिशोध लिया। विद्रोहियों की बत्तीस तोपें जब्त कीं और विद्रोहियों की सांकल तोड़कर कुछ को कालपी की ओर और कुछ को अवध की ओर भाग दिया। इस कठिन विजय के बाद कुछ सरल विजय भी वह क्यों न प्राप्त करे। इसलिए वह ब्रह्मवर्त दौड़ गया। वहां का राजमहल उसने खंडहर बना दिया। वहां की सपंत्ति को लूटा और फिर उस विजय पर झंडा लगाने को ब्रह्मवर्त के विशाल मंदिर तोड़–फोड़कर ध्वस्त कर दिए।

ब्रह्मवर्त के इसी महल में सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का गर्भ संभव हुआ था

और ब्रह्मवर्त के इन मंदिरों ने ही इस स्वतंत्रता गर्भ पर आशीर्वचन बरसाए थे। इसी ब्रह्मवर्त में भारतभूमि के देदीप्यमान वीर रत्न नाना, तात्या, बाला साहब, झांसी की 'छबीली' शिशु से युवा हुए थे। रामगढ़ से धकेला गया मराठों का राज जिस दिन यहां अंग्रेजों के रक्त की कीचड़ से पुनः प्रादुर्भूत हुआ, उस दिन इस महल ने और इन देवालयों ने दीपोत्सव किया था।

परंतु आज इस दीपोत्सव की आग से ही वे भस्मीभूत हो गए हैं। लेकिन इतिहास, उनकी उस पवित्र भस्म पर एक अश्रु भी मत गिराना। स्वतंत्रता के तेजस्वी गर्भ को जन्म देते समय उस उदात्त प्रसव वेदना से जो राज मंदिर और देव मंदिर मरते हैं उनकी मृत्यु गुलामों के झुंड पैदा करनेवाले राज मंदिरों और देव मंदिरों के अस्तित्व से हजार गुना अधिक चैतन्यकारी है! चिता की अग्नि के उपयोग में आने की अपेक्षा यज्ञ की हवि के उपयोग में लिये जानेवाला कष्ट हजार गुना अधिक चैतन्यदायी होता है।

प्रकरण—7

लखनऊ का पतन

तात्या टोपे ने कानपुर की ओर जो भयंकर गड़बड़ मचाई थी उसको इस तरह बांध`दने के बाद सर कोलिन ने व्रिदोही प्रदेश को फिर से जीत लेने के लिए कमर कसी। दिल्ली जीत लेने के बाद साटन अलीगढ़ तक के निचले प्रदेश में शांति स्थापित करता आया था, इसलिए कानपुर से ऊपर अलीगढ़ तक प्रदेश में शांति स्थापित करने का वालपोल को कालपी के रास्ते भेजा गया। वालपोल कानपुर से ऊपर चढ़ते और सीटन अलीगढ़ से नीचे उतरते हुए मैनपुरी में मिले और ऐसा नक्शा अंग्रेजी सेना के लिए बना कि दोआब का यमुना तटवर्ती किनारा पूरी तरह पुनर्जित हो और यमुना तीर से इसके सेना जाते—आते दोआब के विद्रोही हटते—हटते फतेहगढ़ के पास इकट्ठा होने लगेंगे, यह स्पष्ट ही था और इस प्रकार अंत में वालपोल, सीटन और कोलिन अपने—अपने अभियान पूरे कर फतेहगढ़ में मिलेंगे, यह सहज ही होने वाला था। सन् 1857 के इस आगामी वर्ष में सामान्य रूप से यह कार्य पूरा करने की अंग्रेजी योजना थी।

इस नक्शे के अनुसार वालपोल तोपखाने सहित सर्वांगपूर्ण गोरी सेना लेकर कानपुर से 18 दिसंबर को कालपी के रास्ते ऊपर चला। रासते में विद्रोहियों की बिखरी सेना से छोटी—छोटी लड़ाइयां लड़ते विद्रोहियों को आश्रह देनेवाले गांवों पर अंग्रेजी रीति से कहर बरपाते और उस प्रदेश को फिर से पूरी तरह ब्रिटिश सत्ता के अधीन लाते हुए

वह इटावा शहर तक चलता आया–यहां से भी वैसे आगे बढ़ गया होता; पर इटावा शहर के सारे विद्रोही वहां से चले जाने के बाद भी उसे वहीं पर सेना के साथ ठहरना पड़ा। क्या कारण था? अंग्रेजों कीये बलवान सेना एकदम ठहरकर रह जाए, ऐसा क्यों है? विद्रोहियों के हजारों पैदल तो चलकर नहीं आ गए? या पांडे की सेना के चपल घुड़सवारों की टोलियां अंग्रेजों पर कहीं हमला तो नहीं कर रहीं? या उनकी गड़गड़ाहट करती तोपें कहीं अंग्रेजों पर जलते अंगारों की वर्षा तो नहीं कर रहीं?

इटावा के पास ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा था। पैदल या हजारों घुड़सवारों की टोलियां या तोपखाने के अंगार–इनमें से कुछ भी इटावा के पास अंग्रेजों को रोके रखने के लिए नहीं था। केवल तीस–चालीस भारतीय दीवारों में गोलीबारी के लिए छेद हैं। इस छोटे से भवन में खड़े लोगों के हाथों में एक–एक मस्केट है और हृदय में एक–एक जलती ज्योति लिये इनत ीस–चालीस लोगों ने ही इटावा के दरवाजे में इस अंग्रेजी चतुरंग सेना को रोका हुआ है। उन्होंने इस अंग्रेजी तोपखाने के साथ इटावा तक चली आई अंग्रेजी सेना से रणांगण में 'युद्धं देहि' की माँग प्रस्तुत की है। इटावा के दरवाजे में पैर रखनेवाले को 'युद्ध देहि'। अब इस बित्त भर भवन में दृढ़ता से खड़े रहकर अंग्रेजी घुड़सवार, पैदल, तोपखाना युद्ध भी क्या करे! और थोड़ी राह देखें जिससे पागलपन की यह मांग छोड़कर ये सिरफिरे होश में आएं और अभी भी पलायन की खुली राह पकड़ें। परंतु कितनी ही राह देखी, फिर भी उनका पागलपन सही नहीं हो रहा था। ठीक है–करो युद्ध। केवल उन्हें एक बार तोपखाना दिखाना ही काफी है। यही उनसे युद्ध करके उन्हें पराजित करना हो जाएगा। इसलिए अंग्रेजी सेना ने अपना जबड़ा दिखाकर उन सिरफिरों को डराना चाहा। डर, डर किसे? जिसने एक बार दिव्य स्वतंत्रता के लिए स्वतंत्रता–लक्ष्मी के चैतन्य से सम्मोहित होकर मृत्यु से ही प्रेम किया, मृत्यु का भय छोड़ा, मृत्यु के लिए जो उतावला हो गया–उसे इस विश्व में कौन डरा सकता है? जो जय के लिए लड़ता है उसे कौन डराएगा? शहीद को कौन रोक सकता है! जो जय के लिए लड़ता है वह डरता है, जो कीर्ति के लिए लड़ता है वह डरता है, पर जो मृत्यु के लिए ही लड़ता है उसे कौन डराएगा? शहीद को कौन रोक सकता है! पृथ्वी के सारे अंगारे और आकाश की सारी बिजलियां एक साथ आकर उसपर गिरें तो भी जो अपनी प्रिय वस्तु प्राप्त करने के लिए अति तीव्र गति से दौड़ रहा है उसका क्या बिगड़ेगा? जिसने केवल 'मृत्यु' की आशा पकड़ी उसे विश्व में निराशा कैसे शेष रहे? प्रिया की ओर प्रियतम जिस तरह दौड़ता जाता है वैसे ही वे मृत्यु के लिए दौड़े जाते हैं–ऐसे इन इटावा के देशवीरों को भय कैसा? और वह दिखाए कौन?

और इसलिए उन्होंने पलायन के खुले मार्ग छोड़ दिए। उन्होंने विजय की कल्पना भी नहीं की। अंग्रेजों की चतुरंग सेना को धिक्कारते हुए ये मुट्ठी भर लोग उस भवन से

'युद्धं देहि' की गर्जना करने लगे। दिल्ली से जो डरी नहीं, कानपुर के रण से डरकर जो रूकी नहीं—वह अंग्रेजी सेना इस बित्ता भर भवन के पास मानो ठोकर खाकर रूक गई।

मैलसन लिखता है—''संख्या से मुट्ठी भर, केवल मस्कट ही पास में, परंतु निराशा के अवसान से अधिक युद्ध का उत्साह उनमें भरा हुआ था। अपने ध्येय के लिए आत्मार्पण करने को वे मृत्यु की लालसा कर रहे थे। वालपोल ने उस स्थान का निरीक्षण किया। कोई सेना वहां रूकी रहे ऐसा उसमें कुछ नहीं था। उसे हमला कर जीतना बहुत आसान था। परंतु उनपर हमला करने का अर्थ कितने ही मनुष्यों की बलि देनी पड़ेगी। इसलिए युक्तियां खोजी जा रही थी। उन सबमें विफलता दिखने पर चारा सुलगाकर उन्हें अंदर ही जला डालने की बात भी सोची गई। परंतु बेकार। उन दीवारों के छेदों में से उन पक्के योद्धाओं ने हमला करनेवालों पर ऐसी निरंतर अचूक मार की कि तीन घंटे देने का निर्णय किया गया। इंजीनियर लोगों ने सुरंग खोदी और उसे बत्ती दे दी। सुरंग से वह पूरा जीवन आकाश में उछला और फिर नीचे गिरा। उसके उछलने और गिरने में उन देशवीरों को वह शहादत का सम्मान मिल गया, जिसकी उन्हें अति उत्कट अभिलाषा थी। वे सारे उसी स्थान पर मर गए।

उस दिन से कैसे मरा जाए? इस विषय पर इटावा की यह पवित्र समाधि दिन—रात भयंकर मूक व्याख्यान देती रहती है। इटावा! शूर इटावा!! थर्मापिल के पहाड़ में, इटली के ब्रेशा के किले में, नीदरलैंड के ही रूटर के शरीर में तुझसे अधिक तेजोमय क्या होगा? इटावा! शूर इटावा!!

इटावा से वालपोल आ रहा है और सीटन भी अलीगढ़, कासगंज, मैनपुरी आदि स्थानों पर विद्रोहियों की फुटकर सेना को पीटते नीचे उतर रहा था। इन दोनों सेनाओं की भेंट 3 जनवरी, 1857 को मैनपुरी में हुई। पहले के कार्यक्रम के अनुसार दोआब का यमुना तटवर्ती किनारा अंग्रेजी सेना ने दिल्ली, मेरठ से लेकर इलाहाबाद तक वापस जीत लिया। इधर गंगा किनारे से चढ़ते हुए फतेहगढ़ के नवाब को दंडित कर और दोआब के विद्रोहियों का वह अंतिम आश्रय तोड़—फोड़कर दोआब का सारा प्रदेश शत्रु—विहीन करने कानपुर से सर कोलिन भी फतेहगढ़ की ओर बढ़ रहा था। ऐसे दोनों ओर से ऊपर बढ़ रही अंग्रेजी सेना ने अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी आदि स्थानों से सारे—के—सारे विद्रोहियों को भगाकर फतेहगढ़ में बंद कर दिया। फतेहगढ़ में फर्रूखाबाद के नवाब ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था, यह पहले कहा ह गया है। उस नवाब की सेना से अंग्रेजी कमांडर—इन—चीफ की बहुत बार छीना—झपटी हुई। फतेहगढ़ में दिल्ली और कानपुर से पराजित सिपाहियों की संख्या ही अधिक होने से वे लड़ाई शुरू होते ही मृत्यु के डर से भाग जाते। परंतु वह मृत्यु क्या इस अपमान से टलनेवाली थी? सो भी नहीं। वे भागते और अंग्रेज उनका पीछा करते। कभी छह सौ, कभी सात सौ, कभी—कभी हजार तक लोगों को काट डालते। यह इन भगोड़ों का मराना और वह उस इटावा का मरना! जमीन—आसमान का अंतर!

फतेहगढ़ में नाना का एक सच्चा मददगार नादिर खान था। उसे फांसी पर लटकाने के लिए सबके सामने से ले जाया गया। फांसी पर चढ़ते हुए उसने लोगों को अंतिम उपदेश में कहा, ''तुम सभी देशवासियों! अपनी तलवारें म्यान से निकालकर अंग्रेजों की सत्ता को निर्मूल कर देने के लिए आगे बढ़ो।'' इस पराभव का परिणाम फर्रूखाबाद के नवाब को जल्दी ही भुगतना पड़ा। उसकी राजधानी, किले, युद्ध सामग्री सब अंग्रेजों के हाथ लगी और बचे–खुचे विद्रोही उसके साथ रूहेलखंड में गंगा पार भगा दिए गए। 4 जनवरी को जब सर कोलिन फतेहगढ़ में विजयी होकर घुसा, उस समय सारा दोआब और बनारस से ऊपर मेरठ तक सारा भूप्रदेश पूरी तरह अंग्रेजी सेना के अधीन हो गया था।

तब यह प्रश्न खड़ा हो गया कि दोआब की विजय के बाद अंग्रेजी सेना का कार्यक्रम क्या हो? दोआब के विद्रोह की ज्वालाएं ठंडी हो जाने से अन्य प्रदेशों के विद्रोह अपने आप ही शांत हो जाएंगे, यह अंग्रेज सरकार को कुछ समय पहले तक जो आशा थी वह अब पूर्ण रूप से विफल हो गई थी। दिल्ली गिरते ही आठ निद के अंदर व्रिदोह राख हो जाएगा–ऐसी भविष्यवाणी बड़े–बड़े राजकरण कुशल लोगों ने की थी। परंतु वास्तव में दिल्ली पतन से विद्रोह राख तो नहीं हुआ, भविष्य कथन ही राख हो गया। क्योंकि दिल्ली में रूका पड़ा सेना समूह उस शहर के गिरते ही किसी उतमत्त मेघ जैसा गरजते हुए चारों ओर फैल गया–बख्तर खान के अधीन रोहिला सेना, वीरसिंह के नेतृत्व में नीमच की सेना और अपने–अपने सूबदारों के नेतृत्व में अन्य हारी हुई सेनाएं अंग्रेजों की शरण जाना छोड़ दिल्ली गिरते ही अपमान में क्रोध में आगबबूला होकर दिल्ली में चूका बदला कहीं दूसरी ओर लेने निकल पड़ीं।[138] विद्रोहियों को अब हारने की चिंता नहीं थी। विजय की आशा का पहला जोश ठंडा पड़ गया था। अब उनके सीने में निश्चय की परिपक्वता आ गई थी। चाहे कुछ भी हो, अंग्रेजों से लड़ते रहने के सिवाए कोई दूसरा विचार उन्होंने अपने पास नहीं आने दिया। या तो फिरंगी मरें या स्वयं मरें। इन दो में से जब तक एक पूरी तरह समाप्त नहीं होता तब तक शस्त्र नीचे नहीं रखने का उनका स्वाभिमानी निश्चय हो गया था । वे आपस में लड़ रहे थे। उनमें से कुछ लोभवश अनियंत्रित व्यवहार कर रहे थे। कोई–कोई मृत्यु के भय से कभी–कभी भाग रहे थे। पर अंग्रेजों से लड़ाई छोड़ने को उनमें से कोई भी तैयार नहीं था। और या तो फिरंगी या वे स्वयं–किसी एक का पूरा नाश होने तक तलवार नहीं रखने का संकल्प हर विद्रोही के भिंचे दांत और तनी हुई। भृकुटी पर लिखा हुआ यदि स्पष्टता से दिखाई देता था तो वह दोआब की पराजय के बाद। इस समय लड़ाई में पकड़कर फांसी चढ़ाते हुए

[138] एक बार दिल्ली में ऐसी अफवाह फैली कि श्रीमंत नाना साहब स्वयं दिल्ली पर हमला करके बादशाह को मुक्त कर ले जाने वाले हैं। यह समाचार सुनते ही दिल्ली के अंग्रेज अधिकारियों ने बादशाह की कैद के मुख्य अधिकारियों को कड़े आदेश दिए कि–''सचमुच नाना की ऐसी कोई गड़बड़ शुरू हो जाए तो वे बादशाह को गोली मार दें।'' –चार्ल्स बाल, खंड 2, पृष्ठ 94

अंग्रेज अधिकारियों द्वारा उन विद्रोही सिपाहियों से इस युद्ध के विषय में किए गए प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने कहा, ''फिरंगियों को मारना ही धर्माज्ञा है! और इसका अंत? सारे फिरंगियों का नाश और सारे सिपाहियों का नाश! आगे जो प्रभु की इच्छा।''[139]

दिल्ली हार जाने के विद्रोहियों की स्वतंत्रता की चेतना घटने की जगह अधिकारियों सुलगती गई और दिल्ली का प्रतिशोध लेने वे लखनऊ और बरेली–इन शहरों की ओर लड़ते निकले। क्योंकि दोआब जीतने के बाद रूहेलखंड और अवध, ये दो प्रदेश अभी भी विद्रोहियों के कब्जे में थे और वहां उनके राजसिंहासन क्रियाशील थे। इसलिए अंग्रेजी सेना का मुख्य प्रश्न इन दोनों प्रदेशों को जीतने का था। इस प्रश्न का उत्तर सर कोलिन ने यह दिया कि पहले रूहेलखंड जीता जाए और फिर लखनऊ का समाचार लिया जाए। लॉर्ड केनिंग का आग्रह यह था कि पहले लखनऊ का बड़ा केंद्र ध्वस्त किया जाए। जिससे विद्रोहियों के दूसरे छोटे–छोटै शहर अपने आप शरण में आ जाएंगे। लॉर्ड केनिंग के आदेशों के अनुसार चलना बाध्य होने के कारण कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन ने पहले लखनऊ पतन करने का निश्चय पक्का किया। फतेहगढ़ में सीटन एवं वालपोल और कोलिन की पिछली योजनानुसार इकट्ठी हुई सेना की संख्या कुल दस–ग्यारह हजार तक थी। दोआब में मुख्य स्थानों पर संरक्षण के लिए थोड़ी–थोड़ी अंग्रेजी सेना रखकर और आगरा से आई नई कुमुक के साथ सर कोलिन कानपुर से आई हुई विशाल सेना लेकर लखनऊ की ओर चल पड़ा।

इस समय की अंग्रेजी सेना का वर्णन अंग्रेजी ग्रंथकार इस तरह करते हैं–''उन्नाव और बुन्नी की बीच विशाल रेतीले मैदान में उस समय जो अंग्रेजी सेना उतरी थी वैसी अंग्रेजी सेना हिंदुस्थान के मैदान में पहले कदाचित् ही जमा हुई होगी। इंजीनियर, तोपखाना, घोड़े, पैदल, रसद की गाड़ियां, सेवल लोग––यह अपूर्व अंग्रेजी सेना सर्वांग सज्जित थी। उसमें सत्रह बटालियन पैदल थीं, जिनमें पंद्रह गोरी थीं। अट्ठाईस स्क्वाड्रन घुड़सवारों की थी, जिनमें चार गोरी रजिमेंट थीं। चौवन हलकी तोपें और अस्सी भरी तोपें थीं। उन्मत्त अवध को पदनत करने के लिए फरवरी की 23 तारीख को कानपुर छोड़कर अपनी इस सबल सेना के साथ सर कोलिन कैंपबेल फिर से एक बार गंगा के पार उतरने लगा।

अवध को पदनत करने के लिए, हे गां! यह कितनी आंग्ल सेना तुम्हारे किनारे उतरी है? और हे मानिनी अवण्ध! अब इस सेना से डरकर तू पदनत होने वाली है या नहीं? सर कोलिन रास्ते के हिंदू मंदिरों को बारूद से उड़ाते हुए आगे आ रहा है, इसकी पूरी जानकारी अवध शहर को थी। परंतु अपने को पदनत करने के लिए अंग्रेजी सेना

[139] चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 242 ।

गंगा पार हो रही है, यह उस मानिनी अवध को विशेष बुरा नहीं लग रहा था। उसे जो दुःख था, जिस दिशा की ओर देखकर वह जार–जार आंसू बहाने लगी थी और पराजय की मृत्यु की छाया उसके अभिमानी चेहरे पर जिधर से पड़ रही थी, वहां से कोई अंग्रेजी सेना नहीं चली आ रही थी। वहां से तो जंगबहादुर की नेपाली सेना आक्रमण करती आ रही थी। अंग्रेजी सेना को अपने पर आक्रमण के लिए आते देख दुःखी हो–अवध ऐसी कायर होती तो उसने रणक्षेत्र में यह भैरव रूप धारण ही न किया होता। अंग्रेजी सत्ता को केश पकड़कर पीटते हुए जिस दिन अवध ने अपने घर से भगाया उसी दिन उसे साफ मालूम था कि उस अंग्रेजी सत्ता के समर्थन में कोई और अंग्रेजी सेना उसपर आक्रमण करेगी। और उस आगामी रण के लिए वह अपनी हजार भुजाओं से सशस्त्र होकर रण में उतरी थी। परंतु अवध को जो अब तक ज्ञात नहीं था कि मेरे शत्रु अंग्रेज मुझपर तलवार चलाएंगे, परंतु उसे यह ज्ञात नहीं था कि उसके मित्र, उसके सहोदर भी उसपद कुल्हाड़ी से वार करेंगे। वह अंग्रेजों से कुश्ती लड़ने को तो तैयार थी, परंतु हिंदुस्थान के एक स्वकीय से भी हिंदुस्थान की स्वतंत्रता के लिए जूझना पड़ेगा, यह उसे ज्ञात नहीं था। इस उदाहरण का आविष्कार करने के लिए जब जंगबहादुर अपनी नेपाली सेना सहित उसपर आ क्रमण करने आया तब ऐन समय पर विश्वास के कारण स्वजन परित्यक्त अवध जंगबहादुर की ओर देख–देखकर जार–जार आसूं बहाने लगी।

क्योंकि दोआब की विशाल अंग्रेजी सेना इकट्ठी कर उसके साथ जब सर कोलिन गंगा पार करके लखनऊ की ओर चलने लगा, उसी समय पूर्व दिशा से अपनी नेपाली सेना सहित जंगबहादुर भी अंग्रेजी सेना की सहायता के लिए उधर आ रहा था। अंग्रेज, उसके मित्र और हिंदुस्थानी शत्रु! कारतूसों को गाय की चरबी लगानेवाले उसके मित्र और उस चरबी को मुंह लगाने से मना करनेवाले हिंदुस्थानी उसके शत्रु! ऐसा यह अद्विितीय कुलकलंकी जंगबहादुर हिंदुस्थान में युद्ध प्रारंभ हो गया है, यह सुनते ही अंग्रेजों से मिल गया था। सन् 1857 के थोड़े ही पहले वह विलायत गया था और अंग्रेजी ग्रंथकार कहते हैं कि 'उसने इंग्लैंड का वैभव देखा, इसलिए वह विद्रोह में सम्मिलित होने से डरा।' इंग्लैंड का वैभव क्या वास्तव में इतना भारी था? इंग्लैंड का वैभव जैसे जंगबहादुर ने प्रत्यक्ष देखा था वैसे ही नाना के अजीमुल्ला खान और सतारा के रंगो बापूजी ने भी देखा था। परंतु उस वैभव का उनपर क्या परिणाम हुआ और कैसे वे उस वैभव के हर चिह्न के पीछे क्रांतियुद्ध के लिए नई शपथ लेते गए, यह इतिहास कह ही रहा है। अतः इंग्लैंड के वैभव में कुछ नया कुछ नहीं था। जो विशेष था वह देखनेवाले के दृष्टिकोण में था। वह आंग्ल वैभव देखकर उनका देशभिमान चेत गया और उन्होंने सोचा कि मेरी मातृभूमि भी स्वतंत्रता के तिलक से मंडित हो जाए तो क्या बहार होगी।

देशीद्रोही को बेचैनी हुई कि यदि मैं इस वैभव की गुलामी अपनी मां पर लाद दूं तो मुझे दो टुकड़े अधिक मिलेंगे। दो टुकड़े स्वयं को अधिक मिलें, इसलिए अपनी मातृभूमि को गुलाम बनाने को तैयार खड़े जंगबहादुर ने अपनी नेपाली सेना अंग्रेजों को सौंप दी।

काठमांडू से तीन हजार गोरखा लोग अवध के पूर्वी भाग–आजमगढ़ और जौनपुर में अगस्त 1857 से आकर रूके हुए थे। उनसे लड़ने को विद्रोहियों का नेता गोरखापुर का मोहम्मद हुसैन तलवार लिये खड़ा था। इस समय दोआब की लड़ाई के कारण अंग्रेजी सेना की बड़ी खींचातानी हो गई थी और इस कारण बेणीमाधव, मोहम्मद हुसैन, रजा इरादत खान आदि योद्धाओं ने बनारस के आसपास का, अवध के पूर्व की ओर का प्रांत पूरी तरह कब्जे में ले लिया था। उस प्रांत में अंग्रेजी सेना के अन्य स्थानों से खाली होने के पहले ही नेपाली सेना ने बड़ी वीरता से विद्रोहियों को अवध की ओर धकेल दिया था। कुछ दिन बाद जंगबहादुर से अंग्रेज सरकार का निश्चित करार हो गया और उस प्रदेश में तीन सेनाएं तैयार की गईं। 23 दिसंबर को स्वयं जंगबहादुर नेपाल से चलकर अंगेजों से आ मिला। कुल मिलाकर नौ हजार गोरखा लोगों की चुनी हुई सेना उसके साथ थी। उस सेना ने अंग्रेजों के फ्रैंक रोक्राफ्ट की सेना के साथ बनारस के उत्तर और अवध के पूर्व का सारा प्रांत जीतने में सफलता प्राप्त की। अंग्रेजों और गोरखों की यह सबल और संगठित सेना लड़ाई के बाद लड़ाई कर उस प्रांत के विद्रोहियों को पीछे–पीछे हटाती हुई फरवरी की 25 फरवरी को अवध में आ घुसी।

घाघरा नदी पार कर अंबरपुर में यह अंग्रेजी और नेपाली सेना आ पहुंची। उस रास्ते में एक मजबूत किला ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान पर घड़ी झाड़ियों में खड़ा था कि उसे विद्रोहियों से जीते बिना अंग्रेजी सेना आगे जा ही नहीं सकती थी। इसलिए नेपाली सेना ने उसपर आक्रमण किया। किला लड़ने लगा। उस सर्वांगपूर्ण सेना वे वह किला लड़ने लगा और उस किले को इस तरह लड़ानेवाले क्रांतिवीरों की संख्या कितनी थी। चौंतीस! चौंतीस लोग स्वतंत्रता की स्फूर्ति में मस्त होकर अपने देश के शत्रुओं से वह किला लड़ा रहे थे। नेपाली सेना ने जबरदस्त आक्रमण किया तो उन चौंतीस देशवीरों ने उसका जबरदस्त सामना किया। क्योंकि चौंतीस लोग शत्रु के हजारों सैनिकों से युद्ध करें–ऐसा दिव्य समर इस जड़ पृथ्वी पर किसी भी काल में होना नहीं है। ''उन चौंतीसों ने देश की इज्जत और धर्म की रक्षा के लिए वह किला ऐसी वीरता से लड़ाया कि शत्रु के सात योद्धा मारे गए तब भी वह किला लड़ता रहा। और ज बवह चौंतीसवां अपने स्थान से न हटकर धारातीर्थ में गिर गया तब ही वे शत्रु उस किले में जा सके।''[140] जैसी दिल्ली

[140] मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 4 पृष्ठ 227 ।

नहीं लड़ी, जैसा लखनऊ नहीं लड़ा, ऐसा वह अंबरपुर का किला लड़ा।

अंबरपुर का किला जीतने के बाद गोरखों और अंग्रेजों की संयुक्त सेना वहां के प्रदेश जीतते हुए आगे बढ़ी। उसी के पीछे–पीछे जनरल फ्रैंक भी सुलतानपुर के नाजिम मेहंदी हुसैन और उनके कमांडर बंदा हुसैन से बदायूं और सुलतानपुर आदि स्थानों पर लड़ाइयां लड़ता ऊपर चढ़ रहा था। अवध के पूर्वी भाग के इस प्रदेश में विद्रोहियों ने आज तक जो शासन संभाला था उसे उपर्युक्त जनरल फ्रैंक द्वारा हथिया लेने पर उसे फिर से प्राप्त करने लखनऊ की पूर्व रियासत के तोपखाने के प्रसिद्ध अधिकारी मिर्जा गफूर बेग को लखनऊ दरबार ने भेजा। उसकी सेना के सुलतानपुर की जंगी लड़ाई में 23 फरवरी को पराजित हो जाने के बाद जनरल फ्रैंक पूरी तरह सफल हो गया।

पर सर कोलिन से मिलने के पूर्व देदार के किले पर उसने घेरा डाला। उस किले के वीर लोगों द्वारा तोपें छिन जाने के बाद भी शत्रु से लड़ाई जारी रखने से अंग्रेजी सेना को लेकर फ्रैंक को पीछे हटना पड़ा। वास्तव में देखा जाए तो फ्रैंक ने इतनी लड़ाइयां जीती थी कि एक आकस्मिक और छोटी पराजय से उसकी कुछ भी हानि होनेवाली नहीं थी। फिर भी उस समय अंग्रेजी अनुशासन और जवाबदेही इतनी कड़ी थी कि फ्रैंक की अनेक जीतों के बाद भी उसकी एक हार का समाचार मिलते ही सर कोलिन ने महत्त्वपूर्ण पदोन्नति के लिए लिखा उसका नाम काट दिया।

इस तरह लखनऊ शहर पर आक्रमण करने को बढ़ रही अलग–अलग सेनाएं एक–दूसरे के एकदम पास आने लगीं। कानपुर से निकली सर कोलिन की प्रचंड सेना उधर पश्चित से बढ़ रही थी तो फ्रैंक और जंगबहादुर की सेना पूर्व की ओर से ऊपर चढ़ रही थी। 11 मार्च के पहले ये सारी सेनाएं इकट्ठा हो गई और उस पापी शहर की गरदन काटने के लिए उनकी तलवारें उतावली हो गई थी। पापी! नहीं! नहीं! केवल अभागा लखनऊ–उसके गले पर ये अपनों और परायों की तलवारें सपासप चलने को उतावली हैं तो फिर उसके प्रतिकार के लिए भी कुछ व्यवस्था हो रही है या नहीं? कानपुर की ओर तात्या क्या गड़बड़ कर रहा है, यह देखने सर कोलिन जब पिछले नवंबर में गया था तब से इस मार्च तक इस लखनऊ की सुरक्षा और उसके शत्रु के विनाश के लिए उसके निरंतर प्रयास चल रहे थे। आज तक कितनी ही बार कानपुर में नाना साहब की बार–बार हार और अखंड समर ने उसका अप्रत्यक्ष संरक्षण किया था। अंग्रेजी सेना लखनऊ की ओर बदला लेने के लिए गंगा पार होने लगती कि नाना कानपुर की ओर उसपर दबाव बनाकर उसे फिर दोआब में खींच लेते। ऐसा उत्तम पेंच नाना ने डाला था, फिर भी लखनऊ उसका वैसा लाभ नहीं ले पाया जैसा लेना चाहिए था।

लखनऊ में शान से लहराते स्वतंत्रता के झंडे की रक्षा के लिए राजा से रंक तक हर कोई हथेली पर जान लिये लड़ रहा था। उसमें कितने ही जमींदार और राजा भी थे।

लखनऊ के जमींदार केवल अंग्रेजों द्वारा लादी गई लगान पद्धति से असंतुष्ट होकर नहीं उठे थे; वे तो स्वदेश को पापी फिरंगियों के स्पर्श से ही क्रोधित थे। यह केवल मेरा विचार हो ऐसा नहीं है, यह विचार उस समय के गवर्नर जनरल केनिंग का भी था, जो इस उद्धरण से सहज हो जाएगा—

''अवध के राजा और जमींदार केवल अपनी नई लगान पद्धति से दुःखी हुए हैं, ऐसा कदाचित् आपको लगेगा। परंतु मेरी दृष्टि से इसमें दूसरी भी एक बात विचार करने के योग्य है। चंदा, वैजा और गोंडा के राजा ने जो कड़वा वैर हमसे पाला है वैसा वैर हमारे किसी भी दूसरे अधीन या मांडलीक ने न पाला होगा। चंदा के राजा का एक भी गांव हमने नहीं लियाः बल्कि हमने उसका लगान भी कम किया था। वैसा के राजा के प्रति भी हमने बहुत उदारता बरती थी। गोंडा के राजा के चार सौ गांवों में से केवल तीन हमने लिये और उसके बदले में दस हजार रूपए लगान कम किया था।

''राज्यकर्ताओं में परिवर्तन हो जाने से जितना किसी का न हुआ होगा उतना लाभ नौपारा के युवा राजा का हुआ। अंग्रेजी शासन चालू होते ही हमने उसे एक हजार गांव दिए और सारे उत्तराधिकारियों को दूर कर उसकी मां को हमने उसका अभिभावक नियुक्त किया। परंतु बिलकुल आरंभ से उसकी सेना लखनऊ के कारागार में भेज दिया।

''तालुकेदार अशरफ बख्श खान, जिसे पहले के राजा ने बहुत त्रास दिया था उसे हमने उसकी मालगुजारी का पूरा स्वामित्व दे दिया। पर पहले—सा ही वह हमसे गहरा वैर करने लगा। इससे और दूसरे अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो राजा और जमींदार हमारे विरूद्ध हुए हैं वे हमारे शासन के कारण व्यक्तिगत हानि से बिलकुल नहीं है।''[141]

इसीलिए अंग्रेजी इतिहासकार होम्स ने ईमानदारी से स्वीकार किया है कि''जिन राजाओं और जमींदारों ने इस स्वतंत्रता संग्राम का प्रारंभ कर उसे लड़ा वे लोग व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा उदात्त ध्येय से प्रेरित हो गए थे। ऐसे कितने ही राजा और जागीरदार थे, जिन्हें सचमुख बुरा लगने के लिए कोई विशेष दुःख का कारण नहीं था, पर वे भी हमारी राज्यसत्ता के कानून के विरूद्ध फड़फड़ा रहे थे। हमारी राजपद्धति ही उन्हें इस चुभने वाले सत्य की स्मृति दिलाती रहती थी कि हम हारे हुए राष्ट्र हैं।''

पर इन सबमें प्रमुख वह फैजाबाद का देशभक्त, वीर पुरूष अहमद शाह मौलवी कहां है? क्रांतियुद्ध की जलती ज्योति हाथ में लेकर ज बवह सारे हिंदुस्थान में आग

[141] 1. सर जेम्स आउट्रम के पत्र का लॉर्ड केनिंग द्वारा दिया गया उत्तर।
2. होम्स लिखित—'सेपॉय वार'।

लगाए जा रहा था तब लखनऊ के अंग्रेज अधिकारियों ने पकड़कर उसे फांसी का दंड दिया था। उस दंड पर कार्यवाही होने के पूर्व उसे फैजाबाद के कारावास में ले जाया गया और इस विदेशी कारावास की कोठरी में से उठाकर उसे सन् 1857 की आंधी ने स्वराज्य सिंहासन की सीढ़ी पर खड़ा कर दिया। वह देशवीर अहमद शाह मौलवी अपने देश की स्वतंत्रता और अपने धर्म की स्थापना के लिए रणक्षेत्र में रंग गया था। जैसा वह समरांगण में शस्त्रयोद्धा था वैसा ही सभांरण के वाक्योद्धा भी था। सभांरण में अपने वाक् शौर्य से वह हजारों देशबंधुओं को मंत्रबद्ध करता और रणांगण में हजारों देशबंधुओं के साथ शस्त्रयुद्ध से शत्रुओं को पाशबद्ध करता और रणांगण में हजारों देशबंधुओं के साथ शस्त्रयुद्ध से शत्रुओं को पाशबद्ध करता था। आलमबाग में चार हजार सेना और तोपों के साथ आउट्रम बैठा था और तात्या टोपे के पेच के कारण सर कोलिन कानपुर में बंधा हुआ था तब लखनऊ इस अवसर पर क्यों न अपने शत्रु को रण से भगा देने के लिए जोर का प्रयास करे, इसलिए मौलवी ने अपने लोगों को उत्तेजित, संगठित और एकीकृत करने के लिए रात–दिन प्रयास किए। अवध की बेगम दरबार में मुख्य राजसत्ताधारी होने से उसके कर्तृत्व से उस लखनऊ शहर में इकट्ठा हजारों भिन्न–भिन्न राजा–महाराजाओ का एकीभवन और संगठित होना जब स्पष्टतया कठिन दिखने लगा, जब अंग्रेजों की मुट्ठी भर सेना को जोरदार हमला कर नष्ट करने के अनंत शुभ प्रसंग लखनऊ की आतंरिक अराजकता और ढील के कारण व्यर्थ गए और जब दिल्ली गिर जाने, कानपुर हारने और फतेहगढ़ हाथ से जाने से उन प्रदेशों के हजारों क्रांतिवीर लखनऊ में आकर अधिक उत्तेजित होने की जगह पहले की अराजकता में अधिक उद्धरता को जोड़ने लगे और अब जबकि विजय से फूले और अगणित सैनिकों से हजार गुना सबल बने अंग्रेजों का अंतिम अनिवार्य हमला निकट आ गया है, हर क्षण ऐसी अति आशंका दिखने लगी, तब इस देशाभिमानी मौलवी ने लखनऊ के दरबार में अपने वाक् तेज से, अपनी बेझिझक करारी टीका से, अपने अप्रतिम कर्तव्य–बल से कितने ही अपनों के हृदय जाग्रत कर दिए।

अभी भी एक दिल और अप्रतिहत बल से प्रयास करें तो अंग्रेजों को रणक्षेत्र में पीटना संभव है, यह उसने लखनऊ की राजसभा में आवेश से प्रतिपादित किया; परंतु उसके उस तेज से उत्तेजित न होकर उस राजसभा के कर्तृव्यशून्य और दीपक से डरे लोग और अधिक जलने लगे और कुछ ही दिनों में उस मौलवी को उन्होंने कारागृह में बंद कर दिया। परंतु बेगम से अधिक इस मौलवी का प्रभाव सिपाहियों पर था और उसमें भी दिल्ली की ओर से आई सेना का तो इस मौलवी पर बहुत विश्वास था, इसलिए उसे कारा से तुरंत मुक्त करने के लिए राजदरबार में पूर्ण प्रभाव हुआ और यह आपस के भेदभाव से झगड़ते रहने का अति नाशकारी व्यसन तोड़कर दरवाजे पर थपकी देते बैठे शत्रु का खात्मा करने सब लोग युद्ध के लिए तैयार हो जाएं–यह आवेश उसने फिर से सेना में उत्पन्ना किया।

केवल आवेश उत्पन्न कर ही यह योद्धा खाली बैठा नहीं रहा, उसने समय–समय पर सिपाहियों को रणक्षेत्र में जाने को प्रवृत्त किया और जब–जब आलमबाग के अंग्रेजों पर हिंदुस्थानियों ने आक्रमण कि तब–तब सबसे आगे मौलवी की दिव्य मूर्ति झलकती थी। 22 दिसंबर को उसने आलमबाग के अंग्रेजों को धोखे में रख उनकी सेना को पूरी तरह बांधने की एक उत्कृष्ट व्यूह–रचना की थी। स्वयं अपनी सेना के साथ अंग्रेजों को भुलावा देकर कानपुर के रास्ते पर बढ़ लिया और उसने दूसरे सैनिकों से कहा कि हमारे अंग्रेजों की पिछाड़ी पहुंचते ही वे सामने से मार लगाएं। यह बेजोड़ चाल थी। पर 'दूसरे'! यही ंतो सबकुछ बाधक है। उस एक आत्मा के तेज को प्रत्युत्साह देना तो दूर–कम–से–कम उसका आवश्यक अनुगमन करने का अनुशासन भी दूसरों में नहीं दिखा। हर कोई अपने को सयाना समझता! और रणक्षेत्र में पहली गोली चलते ही सब सामना करना छोड़कर उस ओर पीठ फेरनेवाले। अन्यों के ऐसे भय और अव्यवस्था के कारण मौलवी के स्वयं का काम उत्तम रीति से करने पर भी उस दिन विद्रोही रणांगण में पराजित हुए।

फिर भी उनके हतोत्साह को उत्साह का तेज देने के लिए मौलवी और उसके जैसे ही अन्य तेजस्वी नेता अतिशय प्रयास करते रहे। 15 जनवरी को विद्रोहियों को समाचार मिला कि आलमबाग की अंग्रेजी सेना को मदद और रसद पहुंचाने के लिए कानपुर से कुछ अंग्रेज लोग आ रहे हैं। यह वार्त्ता समझते ही वह रसद छीनने के लिए विद्रोहियों में बातचीत चली। पर कोई रास्ता न निकले और न कोई योजना बने। अंत में उन विद्रोहियों के अनिश्चय से चिढ़कर उस अभिजात मौलवी ने सबके सामने शपथ ली कि 'मैं स्वयं यह रसद छीनकर अंग्रेजी शिविर से लखनऊ में प्रवेश करूंगा। ऐसी घोर प्रतिज्ञा कर यह साहसी अपने लोगों के साथ कानपुर के रास्ते पर लुके–छिपे बढ़ गया। परंतु इस हमले का समाचार आउट्रम को पहले ही नेटिव दूत से मिल जाने पर उसने मौलवी की सेना पर उलटा हमला करने को अंग्रेजी सेना भेज दी। इस परस्पर हमले का जल्दी ही सामना हुआ। मौलवी ने उस दिन अपने अनुयायियों को वीरश्री चढ़ाने के लिए स्वयं भयंकर युद्ध किया। वह जैसे राजनीति में चमकता था वैसे ही रणनीति में भी चमकने लगा। बेसुध लड़ते–लड़ते इस वीरपुरूष को एक गोली हाथ में लगी और वह नीचे गिरा। इस मौलवी को पकड़ने के लिए अंग्रेजों में स्पर्धा लगी थी, फिर भी विद्रोही उसे डोली में डालकर बड़ी चतुराई से लखनऊ से आए।

मौलवी के घायल हो जाने का सामचार सुनते ही एक विद्रोही–हनुमान नामक शूर ब्राह्मण नेता–ने एक दिन का भी विश्राम न लेकर 17 जनवरी को अंग्रेजों पर हमला किया। प्रातः दस बजे से संध्या तक यह शूर पुरूष रणांगण में लड़ता रहा। पर अंत में उसके अत्यंत घायल होकर गिरते ही विद्रोही रण छोड़कर भागने लगे। इधर दरबार में

इस हार के कारण आपसी शत्रुता चढ़ गई। कुकर्मी सिपाहियों ने लड़ने के पहले ही पैसा मांगा, अग्रिम वेतन मिलने पर भी फिर से वेतन लिये बिना वे लड़ना नहीं चाहते थे। पर ऐसे अंधेर में उस तेजस्वी और कर्तृत्ववान् बेगम ने राजव्यवस्था का अनुशासन उत्तम बनाए रखा था और यही उसके असामान्य मनोधैर्य का प्रमाण था।[142] पराजय की एक के बाद एक कड़ी जुड़ती जा रही थी, तभी बेगम का अर्थमंत्री राजा बालकृष्ण सिंह मर गया। परंतु ऐसी असंख्य आपत्तियों से वह परास्त नहीं हुई। क्योंकि जिसे अंग्रेज का दरवाजे पर खड़े रहना भी मृत्यु से अधिक लज्जाजनक लगता था वह फिर रणक्षेत्र में कुद पड़ता और इस कूदने में उसकी कूद भी सबके आगे रहती–ऐसा वीरपुत्र और कोई न होकर मौलवी अहमद शाह ही था। रणांगण में हुआ असह्म घाव अच्छा होते–न–होते उसने 5 फरवरी को फिर सारी सेना लेकर रण की ओर दौड़ लगाई। मौलवी का सारा श्रम व्यर्थ होकर उस दिन भी विद्रोहियों का फिर से पराभव हो गया। फिर भी मौलवी ने लड़ाई जारी रखी। इस वीर की शूरता से चकित होकर इतिहासकार होम्स अपनी पुस्तक में लिखता है–''यद्यपि बहुसंख्या में विद्रोही डरपोक और हिम्मत हारनेवाले थे, फिर भी उनका नेता अपनी निष्ठा से और कर्तृत्व से उदात्त ध्येय का पीछा करनेवाला और सेना का नेतृत्व स्वीकारने योग्य था। यह नेता अर्थात् अहमदुल्ला–फैजाबाद का मौलवी।''[143]

60वीं रेजिमेंट के एक सूबेदार ने आठ दिन में अंग्रेजों को भगा देने की प्रतिज्ञा की और उसने भी फिर से हमले किए। एक दिन स्वयं बेगम साहिबा भी सेना के साथ बाहर निकली। परंतु उस अभागे लखनऊ को विजय नहीं मिली। विजय मिले तो कैसे?

---

[142] 1. सर डब्ल्यू रसेल ने इस बेगम के संबंध में कहा–''सिपाही सेना का प्रचंड भाग लखनऊ में ही है, ऐसा समझा जाता है; किंतु वे उस वीरता सहित नहीं लड़ेगें जिस वीरता सहित अवध के रक्षक संग्राम करेंगे, जिन्होंने अपने युवा सम्राट् बिर्जिस कादिर के हितों को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने प्रमुखों का अनुगमन किया है। और इनके संबंध में निश्चित रूप से ही यह कहा जा सकता है ि कवे देशभक्ति के युद्ध में लिप्त हैं, जिसे वे अपने देश और सम्राट् के लिए लड़ रहे हैं। रेजीडेंसी के घेरे में भी सिपाहियों ने खुलकर रणभूमि में ऐसा युद्ध कभी नहीं किया जैसी निर्भीकता सहित जमींदारों ओर उनके प्रजाजनों ने किया। बेगम ने तो अपनी महान् शक्ति और योग्यता का जो परिचय दिया है, उसने संपूर्ण अवध को ही अपने पुत्र के पक्ष में उठाकर खड़ा कर दिया और सरदार तथा सामंत भी उसके प्रति पूर्णतः निष्ठावान् थे। हम तो उनके पुत्र के वैध अधिकारी हाने में अविश्वास व्यक्त कर सकते हैं; किंतु जमींदार, जो वास्तव में इस प्रश्न पर सही निर्णायक कहे जा सकते है, निस्संकोच ही बिर्जिस कादिर को उत्तराधिकारी स्वीकार करते थे। सरकार इन लोगों से विद्रोहियों जैसा व्यवहार करेगी अथवा संभावित शत्रुओं के समान। बेगम ने हमारे विरूद्ध अखंड युद्ध की घोषणा की है। इन रानियों और बेगमों के शक्तिपूरक चरित्र से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें अपने रनिवासों और हरमों में प्रचुर मानसिक शक्ति प्राप्त होती थी और वे किसी भी स्थिति में योग्य पग उठाने में समर्थ थीं।''

–'रसेल की डायरी', पृष्ठ 275

[143] 2. होम्स कृत–'सेपॉस वार'।

विजय पुरुषार्थी की दास है। वह पुरुषार्थ विद्रोहियों ने लखनऊ के युद्ध में दिखाया होता तो विजय दूर नहीं थी।

पहले लिखे अनुसार अंत में सर कोलिन आलमबाग की अंग्रेजी सेना से आकर मिला। लखनऊ शहर को परास्त करने को आज एक वर्ष से अंग्रेजी सत्ता प्रयासरत थी। तथापि उसके अनेक आक्रमणों की परवाह न कर यह शहर आज तक स्वराज्य के झंडे तले दृढ़ता से खड़ा था। परंतु अब उसे परास्त किए बिना अंग्रेजी सेना वापस नहीं लौटेगी। इस समरांगण में अब या तो अंग्रेजी सत्ता परास्त होगी या भारतीय सत्ता, ऐसी अंतिम वेला आ गई है। अंग्रेजी सत्ता ने जैसे अपनी सारी शक्ति इस समय एकत्रित की थी वैसे ही विद्रोहियों की भी सारी शक्ति एकत्रित हुई थी। जगह–जगह से स्वतंत्रता भक्त लखनऊ के ध्वज की ओर आ रहे थे। चार्ल्स बाल ने 'इंडियन म्युटिनी–, खंड 2 के पृष्ठ 241 पर लिखा है–''मधुमक्खियों के समान प्रदेश भर से हजारों आवारा लोगों और स्वयंसेवकों के झुंड–के–झुंड सशस्त्र होकर फिरंगियों से होनेवाले अंतिम संघर्ष में भाग लेने तथा मरने के लिए अपने सेनापति के पास एकत्र हो रहे थे।'' उन्होंने लखनऊ शहर के घर–घर में गोलीबारी करने को छेद बनाकर रखे थे। गोमती की बड़ी–बड़ी नहरें खोदकर शहर के पूर्वी भाग में मजबूती लाई, दिलखुश बाग से केसर बाग के राजमहल तक संरक्षण के लिए बड़ी–बड़ी दीवारें बांधी! उस शहर में अवध और अन्य प्रदेशों के विद्रोही मिलकर लगभग अस्सी हजार योद्धा सशस्त्र तैयार थे। सारांश यह कि उस शहर के उत्तर में छोड़कर सब दिशाओं से जंगी लश्करी तैयारी की हुई थी।

इसीलिए सर कोलिन ने इस उत्तर दिशा की ओर से ही विद्रोहियों पर पहले–पहल हमला किया। पहले हैवलॉक, आउट्रम और स्वयं कोलिन कोई भी इस दिशा से न आया, इस कारण और उसी दिशा में गोमती नदी बहने से विद्रोहियों की ऐसी कल्पना थी कि शहर की उत्तर दिशा में कोई विशेष प्रबंध आवश्यक नहीं है। परंतु सर कोलिन न आउट्रम को उसी दिशा में भेजकर जब विद्रोहियों के मर्म स्थान पर एकाएक हमला किया तब उनकी पहले की सारी योजना ढहने लगी। सर कोलिन के अधीन अब कुल तीस हजार तैयार सेना थी।[144] अतः उसने दिलखुश बाग में अपना डेरा लगा विद्रोहियों से शहर का पूर्वी भाग जीत लिया। 6 मार्च को अंग्रेजी सेना ने लखनऊ पर उत्तर और पूर्व की ओर से घेरा कसना शुरू किया। सर कोलिन की व्यूह–रचना ऐसी थी कि विद्रोहियों के चारों ओर से पूरी नाकेबंदी करते हुए उन्हें लखनऊ से भागना असंभव कर दे। 6 से 15 मार्च तक तो लखनऊ अपने शत्रु से दिन–रात जूझता रहा। अंग्रेजी सेना दिलखुश बाग से कदम रसूल, शाहनजीफ, बेगम कोठी आदि स्थान पर कब्जा करते आगे बढ़ती रही। 10 मार्च को अंग्रेजी योद्धा हडसन को विद्रोहियों ने मार गिराया। इस हडसन ने

[144] नैरेटिव्स ऑफ द म्युटिनी', पृष्ठ 405 ।

ही दिल्ली के आत्मसमर्पित शहजादों की गोली मारकर हत्या की थी। लखनऊ ने उस पापी अधम को मारकर दिल्ली का बदला लिया। तारीख 14 तारीख को लखनऊ के राजमहल में अंग्रेजी सेना घुसी। इस संपूर्ण सफलता का वर्णन करते मैलसन लिखता है–''इस यश की उपलब्धि का मुख्य कारण सिख सैनिक तथा 10वीं पलटन ही थी।''[145]

पर सर कोलिन के मन पर केसर बाग की इस सफलता का आनंद उछल रहा था, तभी आउट्रम की ओर से प्राप्त समाचार से निराशा हुई। क्योंकि लखनऊ शहर की यद्यपि हार हुई, फिर भी हजारों विद्रोही अपने युवा राजपुत्रों और उस अकुंठित बेगम के साथ अंग्रेजों के प्रतिशोध को विफल करते हुए लड़ते–लड़ते बाहर निकल गए।

लखनऊ शहर में रक्त की मूसलाधार बरसात में और राजमहल सहित सभी स्थानों पर विजयी मुट्ठी भर अनुयायियों के साथ फिर से शहर में प्रवेश कर रहा है, क्योंकि फिरंगी लखनऊ को परास्त करें–यह बात उस शूर के हृदय में कालकूट विष जैसा घाव करने लगा। प्राणों की चिंता छोड़, अपमान के क्रोधित, देशभक्ति से दीवाना वह मौलवी शहर के मध्य में घुसकर शत्रु की सेना द्वारा उसे पदाक्रांत करने के बाद भी जैसे मैजिनी उस शहर से अकेला ही चिपका रहा वैसे ही यह मौलवी लखनऊ लौटा। शहादतगंज के एक बंद भवन में केवल दो तोपें लेकर वह अंग्रेजों का भारी प्रतिकार करता हुआ वहीं जमा रहा। उसे यहां से भगाने के लिए जिसने 21 मार्च को पहले ही दिन बेगम कोठी जीत ली थी उस न्यू गार्ड को कुछ सेना के साथ साथ गया। न्यू गार्ड के साथ 93वीं हायलैंडर पलटन और चौथी पंजाब राइफल के सैनिक थे। परंतु विद्रोहियों ने आज अपूर्व शौर्य प्रदर्शित किया। उन्होंने धीरज से अपना संरक्षण किया और हमारी ओर से अनेक सैनिकों को मारकर और अनेक को घायल करके ही वे बाहर आए।''[146]

लखनऊ शहर का यह अंतिम युद्ध था। थोड़ी देर में युद्ध की वीरता का नशा उतरते ही उसकी दृष्टि में आया कि जिस झंडे के लिए मैं यह युद्ध कर रहा हूं वह

---

[145] 1. के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 4, पृष्ठ 270 ।

[146] 2. के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 4 , पृष्ठ 286 ।

राजध्वज अब लखनऊ पर है ही नहीं और वह मेरी तलवार की प्रतीक्षा करता उधर वनवास में खड़ा है।

विद्रोहियों ने अंग्रेज कैदियों के जो हाल किए, उसके नमूने के लिए दो–चार चित्र यहां दिए जा रहे हैं। लखनऊ की कारा में कुछ अंग्रेज स्त्रियां और अंग्रेज अधिकारी थे। लखनऊ ने उनके प्राण न लेकर छह माह से कैद में रखा था। परंतु जब अंग्रेजी सेना सर कोलिन के पहले आक्रमण के समय राह चलते नागरिकों को काटने घुसी तब उससे संतप्त हुए सिपाही सर बाग के राजमहल में जाकर जोरों से मांग करने लगे कि अंग्रेज कैदी अभी–के–अभी हमें सौंपे जाएं। कोई उपाय न रहने से के. आर. सर मांउट स्टुअर्ट आदि पांच–छह गोरे नेताओं को सिपाहियों को सौंपते ही उन्होंने गोली मारकर उन्हें मार डाला। परंतु तुरंत सिपाही गोरी महिलाओं को भी मार डालने की जिद करने लगे। तब ''बेगम ने नारी जाति के नाम पर ऐसा करने से स्पष्टतः मना कर दिया। उन्होंने सभी अंग्रेज महिलाओं को अपने जनानखाने में लाकर उनकी प्राण–रक्षा भी की।''[147] बेगम ने गोरी महिलाओं को उन्हें सौंपने से साफ मना किया और उनका स्वयं राजस्त्रियों के निवास में पोषण किया। अब अंग्रेज लखनऊ शहर के नागरिकों पर कैसे जुल्म ढा रहे थे, यह भी उनके प्रसिद्ध लेखकों से उगलवा लें। विद्रोही और अवध के सभी लोग विद्रोही थे–पांच वर्ष से अस्सी वर्ष तक के सभी सशस्त्र लोगों को मार डाला गया–हाथ में आए व्रिदोहियों में से सैकड़ों घायल लोगों को धड़ाधड़ गोली मारकर मार डालना, गांवों को आग लगाकर भस्म करना आदि बातें तो नित्य चल रही थीं। परंतु इससे भी अधिक दानवी प्रक्रिया के उदाहरण–लेखक डॉ. रसेल की दृष्टि में पड़ी। उनमें से एक का वह वर्णन करता है–''परंतु उनमें से एक को घर के बाहर जीवित तप्त बालू पर खींचकर लाया गया। वहां उसे अंग्रेजी सिपाहियों ने संगीनों से छेदकर दबाकर रखा था। शेष सोल्जर उसे जलाने के लिए लकड़ी बीनने चले गए थे और जब सारी तैयारी हो गई तब उस सिपाही को सुलगी चिता पर जीवित ही भूना गया। यह कृत्य करनेवाले सारे अंग्रेज लोग ही थे और उनके अनेक अधिकारी यह सब देखते वहीं खड़े हुए थे। फिर भी फड़फड़ाता बाहर आया तब यह आसुरी कर्म परमोच्च बिंदु पर पहुंचा। विलक्षण रूप से छटपटाते हुए ज बवह चिता से बाहर कूदा तब जलते मांस के लोथड़े उसकी खुली हड्डियों से लटक रहे थे और वह पकड़े जाने के पहले ऐसी अवस्था में भी कुछ दूर दौड़ गया। परंतु उसे फिर पकड़ा गया और संगीनों से कोंचकर फिर चिता पर

[147] 1. चार्ल्स बाल कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 2, पृष्ठ 94।

ढकेला गया और उसके अधजले अवशेष पूरे जलाए गए।''

शहर में ऐसा कत्लेआम चल रहा था तब एक कश्मीरी लड़का एक अंधे बूढ़े को साथ लेकर वहां के एक अंग्रेज अधिकारी के पास आया और उसे भूमि पर लेटकर नमस्कार करते हुए जीवनदान की भीख मांगने लगा। उस अधिकारी ने पिस्तौल निकाली और उस अभागे शरणगत के सिर पर गोली चला दी। उसने फिर घोड़ा दबाया–फिर पिस्तौल चलाई–फिर गोली चूक गई। पुनः घोड़ा दबाया–उस गोली ने उस लड़के मारने से फिर एक बार नकार दिया–''चौथी बार यह वीर यशस्वी हुआ और उसके पैरों के पास भू–लुंठित होता हुआ वह बालक दम तोड़ गया।''[148]

दिल्ली गिरी, लखनऊ भी गिरा, पर क्रांतियुद्ध का जोर कम नहीं हुआ। यह अनपेक्षित स्थिति देखते हुए भी यह क्रांति सिपाहियों ने ही की थी और उसके पीछे असंतोष के एक–दो कारण ही थे, यह मानकर हम बड़ी चूक कर रहे हैं–अंग्रेजों को यह विश्वास हो गया। यह कोई बंड (विद्रोह) नहीं था, यह तो स्वतंत्रता के लिए ठना एक युद्ध था। यह एक–दो असंतोषों से उपजा विद्रोह नहीं था। इसकी तली में अनंत दुःखों को जन्म देनेवाली राजनीतिक परतंत्रता ही थी। इस क्रांति के मूल में क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था। स्वतंत्रता की पवित्र ज्योति, स्वधर्म और स्वराज्य की उदात्त ध्येय–भावना ही यहां सुलग रही थी। केवल सिपाही अपना निजी स्वार्थ साधने के लिए स्वतंत्रता के पवित्र ध्येय से समरस थे, ऐसा नहीं! वरन् सभी सफेदपोश जनता, शहर की तरह ही गांव की जनता, भी इस क्रांति में प्रमुखता से सहभागी हो गई थी। यदि ऐसा न होता तो यह शक्ति, यह कृतनिश्चय, यह साहस और निस्वार्थ भाव भूल से भी दिखाई नहीं देता; क्योंकि इसी समय लॉर्ड केनिंग ने 'जो कोई विद्रोह से शामिल होगा उसकी सारी संपत्ति और उत्पादन जब्त किए जाएंगे और जो शरण आएंगे उन्हें क्षमा किया जाएगा। ऐसा घोषणापत्र जारी किया था। फिर भी क्रांतिकारियों ने शस्त्र नीचे नहीं रखे। लखनऊ हार गया, पर अवध ने युद्ध जारी ही रखा। डॉ. डफ इस प्रचंड क्रांति के संबंध में लिखता है–''यदि यह केवल सिपाहियों का विद्रोह होता और बहुसंख्य जतना की सहानुभूति और सहायता उन्हें न होती तो उनपर हमें जो पहले दो–चार प्रचंड विजयें प्राप्त हुई उसी में हम उनका कचूमर निकाल दिए होते; परंतु कचूमर निकालना तो दूर रहा, उलटे वे अधिक ही चैतन्य दिखाई देने लगे और विद्रोह का फैलाव पहले से अधिक हो गया। और वह अधिक उग्र स्वरूप भी धारण कर रहा है। यह सीधी–साधा सिपाहियों का विद्रोह न होकर एक क्रांतिकारी विद्रोह ही था–यह दिखाई देता है और इसीलिए उसे पूरी तरह शांत करने में हमें सफलता कम ही मिली और आगे भी वह शीघ्र शांत होगा, ऐसा नहीं लगता। इस तरह यह विद्रोह दीर्घकालिक और उद्देश्यपूर्ण क्रांति था, जिसमें हिंदू–मुललमान नामक विसंगत

[148] 1. रसेल की डायरी, पृष्ठ 385।

जोड़ी कंधे से कंधा लगाए मित्र बनकर लड़ने खड़ी हो गई थी; जिसको बढ़ाने और फैलाने में अवध की पूरी जतना लगी हुई थी और जिसे प्रत्यक्ष रीति से पड़ोस के सभी प्रदेशों की सक्रिय सहानुभूति मिली हुई थी। वह विद्रोह विद्रोही सिपाहियों पर प्राप्त दो–चार शुद्ध एवं अभूतपूर्व जीतों से दबा देना संभव नहीं था।

''एकदम प्रारंभ से इस 'विद्रोह' को सेना के बाहर फैली विस्तृत जनशक्ति ने अंग्रेजों के प्रभुत्व के विरूद्ध एवं उनकी राज्यसत्ता के विरूद्ध क्रांतिकारी विद्रोह का स्वरूप ही प्राप्त हो गया था। हमारी वास्तविक लड़ाई पूरी तरह विद्रोही सिपाहियों के साथ ही थी, यह पूरी तरह झूठ है। हमारे शत्रु केवल सिपाही होते तो देश में शांति स्थापित करने में चुटकी बजाने से अधिक का समय नहीं लगता।

''शत्रु को पूरी तरह तितर–बितर कर उनकी तोपें अपने कब्जे में लिये बिना हमने शत्रु को एक भी लड़ाई में नहीं छोड़ा; पर बार–बार लगातार और कई बार पिटने के बाद भी ये लोग फिर ताजा होकर नई लड़ाई के लिए तैयार दिखाई देते थे। एक प्रांत पर कब्जा कर अंग्रेजी सेना वहां शांति व्यवस्था बनाती तो दूसरे प्रदेश में तभी विद्रोह की आंधी चलती। महत्त्व के स्थानों को जोड़नेवाला कोई राजमार्ग खोला जाता तो तुरंत उसकी नाकेबंदी कर वहां का यातायात तोड़ दिया जाता। एक विभाग से विद्रोहियों को जैसे ही भगाया जाता वैसे ही दुगुनी–तिगुनी संख्या में वे दूसरे किसी विभाग में खड़े दिखाते देते। हमारी सेना उनकी सेना पर झपटकर आक्रमण करती हुई आगे बढ़ती जाती तो विद्रोहियों की टुकड़ियां पिछला सारा प्रदेश अपने कब्जे में ले लेतीं।''[149]

डॉ डफ द्वारा लिखे गए वास्तविक सत्य की पहचान अंग्रेजों को बहुत अंत में हुई। परंतु पांडे लोगों में से हर एक को बिलकुल प्रारंभ से इसकी पूरी अनुभूति थी। अपने राजा और अपने देश के लिए उन्होंने समरांगण में प्राण दिए। वे ये बातें स्पष्ट बोलते थे, पर उनकी स्त्रियों ने भी वास्तव में उतना ही कठोर निश्चय प्रकट किया था। जब शूरवीर अंग्रेजों ने लखनऊ के जनानखाने पर हमला किया तब उन्हें अंतःपुर में कुछ स्त्रियां मिलीं। दरवाजा तोड़कर अंदर घुसने पर अंग्रेज सोल्जरों ने यहां भी गोलियां दागीं जिससे कुछ स्त्रियां मर गईं। जो बचीं उन्हें कैद में रखा गया। लखनऊ को जला डाला गया। वह सब देखकर अब विद्रोही तुरंत शरण में आ जाएंगे, इस कल्पना से अंग्रेज खुश हुए। अपने देशबंधुओं के इस आनदोन्माद में सहभागी अंग्रेज जेलर उन रानियों को खिझाने के लिए पूछता,''विद्रोह पूरी तरह विफल हो गया है, ऐसा तुम्हें नहीं लगता?'' उस समय उन कृतनिश्चयी बेगमों ने स्पष्ट कहा, ''इसे कुचलना तो बहुत दूर की बात है, अंततोगत्वा पराजय तुम्हारी ही होगी।''[150]

[149] 1. डॉ डफ कृत–'इंडियन रिबेलियन', पृष्ठ 241–43 ।

[150] 2. 'नैरेटिव ऑफ दि इंडियन म्युटिनी', पृष्ठ 300; रसेल की डायरी, पृष्ठ 400।

प्रकरण–8

कुँवर सिंह और अमर सिंह

जगदीशपुर की घाटी से होअर की शिकारी टोली द्वारा भगाए जाने के बाद राजमहल का सिंह वृद्ध युवा कुंवर सिंह अब अपनी स्वतंत्रता पर घात करनेवाले के कंठ पर कब प्रबल हमला कर सके, इस अवसर की ताक में पश्चिम बिहार के वनों में छिपते–छिपाते चक्कर काट रहा था। उसकी अयाल गुस्से से खड़ी थी, उसके पंजे बदला लेने के लिए फैले हुए और उसके नेत्र शत्रु की गरदरन पर झपट पड़ने के यौगय अवसर की ताक में थे। जैसे अपनी कोठरी में घूमता सिंह हो वैसे ही वह सिंह उन झाड़ियों में इस सिरे से उस सिरे तक चक्कर काट रहा था।

उस सिंह के साथ उसके अन्य शावक भी थे। उसके भाई अमर सिंह, निस्स्वार सिंह व जवान सिंह। ये लोग भी अपने–अपने अनुयायियों के साथ वहां आए थे। और तो और, उसकी प्रिया सिंहनी भी युद्धवेश में उस राज्य में अपने वनराज के साथ रिपुरक्त–पान करने को सज्जित थी।

शाहाबाद जिले में उसकी वंश परंपरागत भूमि विदेशियों के कब्जे में थी, उसकी सेना थोड़ी सी थी–एक हजार दौ सौ सिपाही और अधिकारी और कोई चार सौ अशिक्षित नौकर उसके पास थे। उसके जगदीशपुर के राजमहल में विदेशी शत्रु का अमंगल डेरा पड़ा हुआ था। उसके देवालयों और देवमूर्तियों का उन्मुक्त म्लेच्छों ने चकनाचूर कर दिया था। इस सब अपमान से वह चिढ़ गया था, फिर भी कुंवर सिंह गुस्से के अधीन नहीं हुआ

था। उसने जनहानि न होने दी और जिस दिन जगदीशपुर छोड़ा उसी दिन केवल मनोविकारों का दास न होकर और आवेश में विजय अवसर न चूकते हुए एक नई पद्धति का युद्ध लड़ने की योजना बनाई थी। वह जगदीशपुर पर यकायक हमला करने नहीं गया था और शहाबाद प्रदेश में भी उस दृष्टि से नहीं रूका रहा। उस प्रदेश पर और राजधानी पर अंग्रेजों का मजबूत बंदोबस्त था, यह उसे ज्ञात था। इसलिए उसने राजधानी हारने की बिलकुल चिंता नहीं की। उसे जो चिंता थी वह यह कि राजधानी हारे या जीते, मेरे स्वातंत्र्य युद्ध का जरतारी ध्वज अटल लहराता रहना चाहिए। उसकी नई पद्धति स्वतंत्रता संग्राम की अनन्य संजीवनी है। उस युद्ध पद्धति का नाम 'छापामार युद्ध' है।

इसलिए अपने अपमान के क्षोभ से अंग्रेजों की सबल सेना पर दीप—पतंग—त्वरा से न झपटते हुए कुंवर सिंह उस पश्चिम बिहार के वन में शोण नदी के किनारे—किनारे अंग्रेजों के दुर्बल स्थान टटोलता छिपा हुआ था। लखनऊ के निःपात के लिए आजमगढ़ की ओर से अधिकतर नेपाली और अंग्रेजी सेना अवध की ओर चल पड़ी है, यह सूचना उसे मिली। उसकी तीव्र नाक को इस शिकर की गंध आते ही जगदीशपुर का सिंह हमला करने उस वन से बाहर निकला। क्रोध और मनोविकार के क्षणिक समाधान के अधीन होनेवाले दुर्बल लोगों की तरह विजय की संभावना कम होते हुए भी एक राजधानी के चारों ओर ही घूमते रहनेवाला वह आदमी नहीं था, वह तो सिद्धांत की अंतिम विजय जिधर दिखे उधर ही समर करनेवाला छापामार वीर था। लखनऊ की ओर सारी अंग्रेजी सेना जा रही थी, पर अंग्रेजों की आंखें जगदीशपुर की ओर होने से कुंवर सिंह ने अभी उस ओर जाने की योजना नहीं बनाई। पूर्व अवध में जहां अंग्रेजी मजबूती बिलकुल ढीली पड़ी थी उसने उधर झपट्टा मारने की योजना बनाई। अवध में घुसते ही वहां के अनेक विद्रोहियों को इकट्ठा कर आजमगढ़ पर हल्ला करें और वहां विजय मिलते ही श्री काशी क्षेत्र पर या इलाहाबाद पर भी हमला करें और इस तरह जैसे को तैसा बनकर जगदीशपुर का बदला लिया जाए—ऐसा दांव सोचकर कुंवर सिंह पूर्व अवध की ओर निकला । सन् 1857 की 18 मार्च को बेतवा के विद्रोही उससे आकर मिले और उस संयुक्त सेना ने अतरोलिया के किले के पास अपना शिविर लगाया।

आजमगढ़ अतरोलिया से पच्चीस मील दूर था। कुंवर सिंह की सेना इतनी पास आ गई है, यह समझते ही, कोई तीन सौ पैदल और घुड़सवार, दो तोपें—इतनी अंग्रेजी सेना लेकर मिलमन अतरोलिया की ओर बढ़ा। 22 मार्च का बेतवा के विद्रोही उससे आकर मिले और उस संयुक्त सेना ने अतरोलिया के किले के पास अपना शिविर लगाया।

आजमगढ़ अतरोलिया से पच्चीस मील दूर था। कुंवर सिंह की सेना इतनी पास आ गई है, यह समझते ही, कोई तीन सौ पैदल और घुड़सवार, दो तोपें—इतनी अंग्रेजी सेना लेकर मिमन अतरोलिया की ओर बढ़ा। 22 मार्च को प्रातःकाल की सूर्य किरण रण—मैदान को स्पर्श भी न कर पाई थी कि मिलमन और क्रांतिकारी सेना की आंखें मिलीं। एकाएक बढ़ आई अंग्रेजी सेना को देखकर झिझके विद्रोहियों को क्षण भर का भी अवसर न देकर मिलमन ने लड़ाई प्रारंभ कर दी। विद्रोही लड़ने लगे, पर वे विद्रोही अंग्रेजों से कितने लड़ पाते? उनकी तुरंत पराजय हुई। कुंवर सिंह ने इतने तामझाम से हमला किया था, उसकी इस अंग्रेजी सेना ने कैसी फजीहत की। सारी रात चलकर आए होते हुए भी विद्रोहियों से इतने जोर से लड़नेवाली अंग्रेज सेना और उसके सेनानी

सचमुच शाबासी पाने योग्य हैं। तुम अपना सुबह का कलेवा गाढ़े पसीने की कमाई से नहीं, गाढ़े रक्त की कमाई से कर रहे हो, इसलिए सारे अंग्रेज सैनिकों, अपने सेनानी के साथ उस अमराई में शांति से बैठकर उस बाल सूर्य की किरणों और विजय के आनंद में अपना कलेवा ग्रहण करो। शस्त्र एक तरफ रखे गए, कलेवा तैयार हुआ, भूख के समय कौर मुंह तक गया—प्यास मिटाने गिलास होंठो तक गया।

उतने में— हा! हा! यह क्या? होंठों से लगता गिलास छूट गया, मुंह का कौर मुंह में रहा। कलेवा के पात्र तड़ातड़ टूटे। शस्त्र सपासप बाहर आए अरे, कुंवर सिंह तो नहीं आया? हां, हा, मदमस्त आंग्ल गज के गंडस्थल पर हमला करके कोसिला से ब्रिटिश सेना को जो पीछे हटाना आरंभ किया तो सीधे आजमगढ़ तक कुंवर सिंह ने उस अभागे मिलमन को दौड़ाया। आजमगढ़ में पहुंचने के बाद मिलमन की जान में जान आई। उसके आवश्यक संदेश के कारण कोई तीन सौ पच्चीस लोगों की नई कुमुक बनारस और गाजीपुर से भेजी गई और इस सारी सेना के सेनापति पद पर कर्नल डेम्स की नियुक्ति हुई। अब आजमगढ़ जैसी मजबूत जगह, दोगुनी बढ़ी हुई अंग्रेजी सेना और कर्नल डेम्स जैसा ताजा दम सेनापति, तब पिछली मामूली पराजय का प्रतिशोध लेने की बात क्यों न सोची जाए?

इसलिए कर्नल डेम्स 27 मार्च को आजमगढ़ छोड़कर कुंवर सिंह को मजा चखाने निकला। बाहर निकलते ही वह जीत भी गया और कुंवर सिंह पर ऐसी जीत पाते ही उस भयानक नाटक का ही एक भयानक प्रयोग शुरू हो गया। कुंवर सिंह ने इस नए सौल्जरों और नए सेनापति को ऐसा थप्पड़ लगाया कि कर्नल डेम्स मैदान छोड़ सीधे आजमगढ़ की ओर भाग और शहर की दीवारों के पीछे जाकर छिप गया। उसकी सेना में से कोई कुंवर सिंह पर आक्रमण के लिए बाहर मुंह निकालने को भी तैयार नहीं था।

अंग्रेजों की यह पराजय सुनकर इलाहाबाद में बैठे अंग्रेज गवर्नर का चेहरा चिंता से काला हो गया। ''इस चढ़ाई के समय गवर्नर जनरल केनिंग इलाहाबाद में ही था। केनिंग कुंवर सिंह की युद्ध—क्षमता, धैर्य, बहादुरी आदि सभी गुणों से परिचित था। अतः आनेवाले संवाद का रूप उसके सामने स्पष्ट था।[151]

हर नए दिन उसके पास नई सेना इकट्ठी होती जा रही थी। लखनऊ में हारकर भागे हुए सिपाही भी अब उसके झंडे की ओर दौड़ते चले आ रहे थे और जिसमें इस हारी एवं असंगठित सेना को भी सफलता दिलानेवाले छापामार कुशलता वास कर रही थी, वह जगदीशपुर का राणा शीघ्र ही आजमगढ़ को ताला लगाकर बीच के इक्यासी मील की यात्रा कर और बनारस शहर पर अचानक हमला करके इलाहाबाद में गवर्नर जनरल और लखनऊ में कमांडर—इन—चीफ दोनों की ही कलकत्ता से जुड़ी डोर काटने से चूकेगा नहीं, यह तुरंत लॉर्ड केनिंग की समझ में आ गया। विद्रोह के प्रारंभ में सिख लोगों की राजनिष्ठा के कारण बनारस और इलाहाबाद शहर अंग्रेजों के हाथ में आ जाने से वे स्वतंत्रता का मुंह बांधकर हिंदुस्थान का गला दबा सके थे; अंग्रेजों के हाथ आया

[151] 1. मैलसन कृत—'इंडियन म्युटिनी', खंड 4, पृष्ठ 321 ।

अवसर कहीं अब कुंवर सिंह छीन तो नहीं लेगा, इस चिंता से लॉर्ड केनिंग ने तत्काल आदेश दिया कि इस विद्रोही पर स्वयं लॉर्ड मार्ककेर ही आक्रमण करें।

क्रीमिया युद्ध में ख्यातिप्राप्त और हिंदुस्थान का पूरा अनुभवी यह लॉर्ड मार्क केर लगभग चार सौ योद्धाओं और तोपों के साथ कूच करता आजमगढ़ से आठ मील दूर आकर ठहरा। कुछ विश्राम कर 6 अप्रैल को भोर ही उसने सावधानी से आगे कदम बढ़ाया। सुबह छह बजे उसे समाचार मिला कि पास ही कुंवर सिंह की सेना उसकी ताक में है। लॉर्ड मार्क केर ने 'ताक' की उसको कोई जानकारी नहीं है, ऐसा स्वांग कर सेना को सज्जित करके कुछ आगे बढ़ाया और तुरंत ही कुंवर सिंह के दांए बाजू पर हल्ला किया। तभी कुंवर सिंह का बायां बाजू गोलियों की बौछार कर उठा। वह वृद्ध युवा एक सफेद घोड़े पर बैठकर अपनी सेना में पितामह भीष्म की तरह चमक रहा था। अंतर इतना ही था कि तब भीष्म दुर्योधन की ओर से लड़ रहे थे और अब यह वृद्ध युवा धर्मराज की ओर से लड़ रहा था। वह स्वातंत्र्य–धर्म हेतु, देश–धर्म हेतु लड़ रहा था। उसकी सेना चार हजार के लगभग थी। परंतु उसमें संख्या के अनुपात में बल नहीं है, यह वह जानता था और इसलिए आज सारा भार उसके अपने अकेले के पुरुषार्थ पर टिका हुआ है, यह देखकर वह शुभ्र अश्वारूढ़ अस्सी वर्ष का सेनापति अपनी सेना के साथ लड़ने में अपने को झोंके हुए था।

वह मार्क केर के इधर–उधर अपनी सेना फैलाते ले गया। मार्क केर की तोपें उस पर जबरदस्त मार कर रही थीं और उन्हें उत्तर देने के लिए उसके पास तोपें ने होते हुए भी उसने मार्क केर की पिछाड़ी अपनी सेना जमा कर ली। अंग्रेज सेनापति की आफत हो गई और उसने अपनी तोपें थोड़ी पीछे ले लीं। यह देखते ही विद्रोही जोर का जयनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे। कुंवर सिंह ने बीच में ही अवसर खोजकर अंग्रेजों की पिछाड़ी को कस दिया। अंग्रेजी हाथी पागल होकर इधर–उधर दौड़ने लगे। उसके महावत हाथी के गले से लिपट–लिपटकर अपनी जान बचाते भागने लगे और उसके नौकर जल्दी से रण छोड़कर भाग गए। फिर भी मार्क केर ने धीरज नहीं छोड़ा। उसने सामने की विद्रोहियों की टोलियां विभाजित कर और वहां के घरों पर कब्जा कर सामने का बाजू जीत लिया। लेकिन कुंवर सिंह ने भी अंग्रेजों की पिछाड़ी मारकर जीत ली।

अब यह विचित्र लड़ाई बराबर उलटी की पलटी हो गई; क्योंकि प्रारंभ में कुंवर सिंह के सामने अंग्रेजों का मुंह था। लड़ते–लड़ते अब कुवंर सिंह उनके पीछे हो गया, जिससे कुंवर सिंह के मुंह की ओर अंग्रेजों की पीठ हो गई। कुंवर सिंह उनके पीछे हो गया, जिससे कुंवर सिंह के मुंह की ओर अंग्रेजों की पीठ हो गई। कुंवर सिंह ने उनकी पीठ को आग लगा दी। अपनी पिछाड़ी की रसद में विद्रोहियों द्वारा लगाई आग देखकर लॉर्ड मार्क केर ने यद्यपि धैर्य नहीं छोड़ा तथापि रणांगण छोड़ने का निश्चय किया। पूरी विजय प्राप्त नहीं हो रही थी तब भी मार्क के रण छोड़ लड़ते–लड़ते निकला और

अपनी तोपों की सहायता से रात में उस शहर में आ गया।

कुंवर सिंह के इस रण–तांडव के संबंध में प्रख्यात इतिहास लेखक मैलसन कहता है–''उसकी मुहिम का नक्शा प्रशंसनीयय था, परंतु उस नक्शे के अनुसार व्यवहार करने में उसने काफी गलतियां की थीं। मिलसन जब उसके हाथ आ गया तब उसका पिछला रास्ता रोकना छोड़ कुंवर सिंह ने उसके मुंह पर मारा। उसका पीछा कर उसे आजमगढ़ में बंद करेन पर कुछ सेना आजमगढ़ में रखकर शेष लोगों के साथ कुंवर सिंह यदि बनारस पर तत्काल आ जाता तो लॉर्ड मार्क केर से इससे भी जबरदस्त लड़ाई वह लड़ लेता। वास्तविकता देखें तो वे सारे अवसर उस कुंवर सिंह जैसे योग्य पुरूष के ध्यान में आए बिना न रहे होंगे, परंतु वह परिस्थिति से बंधा हुआ था। जिस–जिस छोटे नायक ने अपने लोग उसके झंडे के अधीन लड़ने के लिए भेजे थे उसमें से हर एक की अपनी–अपनी बुद्धि थी–ऐसे अनेक बुद्धिमानों की बेलगाम बहसों का निर्णय मिश्रित जोड़–तोड़ में ही करना होता है ̈ ।''

लॉर्ड मार्क केर आजमगढ़ में घुसकर वहां की अंग्रेजी सेना में मिल गया तब भी कुंवर सिंह का आजमगढ़ पर कसाव कम नहीं हुआ। वह सारा शहर विद्रोहियों के ही नियंत्रण में था और उसके आसपास के क्षेत्र में उनकी निगरानी भी थी। अपनी सेना का वास्तविक बल कितना है, यह तत्काल जानने की कला भी सेनानी को अवश्य होनी चाहिए और इस कला में यदि कोई सेनानी अति चतुरता दिखाता हो तो वह कुंवर सिंह था। उसने शत्रु का बल जैसे तौला हुआ था उसी अचूकता से उसने अपनी सेना के गुण–दुर्गण भी माप रख थे। अतः अंग्रेजों के परकोटे या अंग्रेजों पर हमला करने के चक्कर में वह पड़ा ही नहीं। अंग्रेजी परकोटे या अंग्रेजी बैनेटों पर आक्रमण करना छोड़ कोई भी दुष्कर कृत्य करने में सिपाही आगे रहते हैं, कुंवर सिंह यह लखनऊ के उदाहरण से जान गया था। इसलिए आजमगढ़ शहर को नियंत्रण में रखकर और वहां के अंग्रेजों को मुंह बाहर निकलना असंभव बना वह अपने मन में एक दूसरा ही साहसी दांव बनाने लगा। सन् 1857 में रण–मैदान में उतरे हजारों योद्धाओं में हमेशा दो वर्ग दिखाई देते थे। एक स्वतंत्रता के तेज के दिव्य उत्साह को शोभा दे, ऐसे, सीने से सीना टकरा जाए तब भी अटल समर करनेवाले और दूसरे अनुशासनहीन, हौंसला छोड़ देने वाले। कुंवर ने अपनी सेना में से पहले क्रम के प्राण पर प्राण देनेवाले ऐसे कड़े लोग चुनकर उनका एक विशेष पथक बनाया। सन् 1857 में अन्य किसी भी सेनानी द्वारा प्रयोग नहीं की हुई युक्ति सिद्ध करते ही कुंवर सिंह ने ऊपर बताई अपनी साहसी योजना को प्रत्यक्ष रूप देते को कमर कसी और आजमगढ़ के पास की नदी पर अपनी यह चुनी हुई सैनिक टुकड़ी खड़ी कर दी।

इस पुल के सामने से सर ल्यूगार्ड नामक एक जनरल सबल अंग्रेजी सेना के

साथ आजमगढ़ पर चढ़ा आ रहा था। इस जनरल को लगा कि आजमगढ़ का कब्जा न छोड़ना पड़े, इसी हेतु से कुंवर सिंह कीसेना उस पुल पर मुझे रोके खड़ी है। ''अंग्रेज जनरल ही नहीं, उसके निकट के लोगों को भी उस षड्यंत्रकारी राजपूत के मन में क्या दांव चल रहा है, यह समझ में नहीं आ रहा था।''[152] वह दांव था अंग्रेजों को वहीं उलझाकर अपनी सेना के साथ तुरंत जगदीशपुर चले जाना। यह युक्ति, युद्ध–कौशल और युद्ध धैर्य का उत्कर्ष थी। आजमगढ़ा से गाजीपुर पहुंचकर वहां से गंगा नदी का पाट सेना सहित उतरकर जगदीशपुर जीतना और वह भी पीछे ल्यूगार्ड की अंग्रेजी सेना और आगे आरा की अंग्रेजी सेना–इन दोनों को चकमा देकर! इस साहसी योजना को सिद्ध करने के लिए उस पुल पर उस राजपूत ने अपने अति उत्तम लोग रखे थे। उस सेना को उस पुल पर ल्यूगार्ड को इतनी देर तक ठहराना था कि आजमगढ़ के सात–आठ हजार क्रांतिकारी सैनिक उस शहर का चक्कर काटकर वह शहर पीछे छोड़, सीधे गाजीपुर के रास्ते पर सकुशल लग सकें। गंगा उतरकर एक बार जगदीशपुर के वन में जगदीशपुर का सिंह घुस जाए तो रणक्रीड़ा की नई पहल, नवराज्य का नया प्रारंभ हो जाए।

यह सारा साहसी प्रयास सिद्ध होना, इस तानू नदी के पुल पर के हे सैनिकों! पूरी तरह तुम्हारी शूरता पर अवलंबित है! कुंवर सिंह का सारी सेना आजमगढ़ छोड़कर शत्रु के निशाने से पूरी तरह बाहर निकलने तक तुम इस पुल पर सर ल्यूगार्ड को पैर मत रखने देना। इस अटल समर के लिए तुम ही योग्य हो, इसलिए हजारों योद्धाओं में से तुम्हारे उस नायक ने तुम्हारा चुनाव किया है। उसके विश्वास को तुम्हारी शूरता सत्पात्रता दिलवाएं एक विचार, एक संकल्प, एक प्रतिज्ञा है कि आजमगढ़ के हजारों बंधु पार निकल गए होने का संकेत मिलने के पूर्व यह पुल छोड़ना नहीं है। अंग्रेजों जैसी सबल सेना तोपों के साथ आगे ाीड़ी है तब भी पुल छोड़ना नहीं है। सारे–के–सारे मर जाने तक पुल छोड़ना नहीं है। कुंवर लड़ते–लड़ते मर जाएं, फिर भी पुल नहीं छोड़ना। ''पुनर्जन्म लेकर फिर लड़ना!'' श्री शिवराज किले तक पहुंचने के पूर्व बाजी देशपांडे पावन घाटी में जैसे लड़ा वैसे स्वदेश की अतुल पांडेगिरी स्वराज्य की इस बाजी के लिए आज इस पुल को भी पावन करो। अफजल खां की सेना ने जैसे उस इतिहास–प्रसिद्ध घाटी के मुट्ठी भर मराठों पर हमले क बाद हमले किए वैसे ही इस पुल के ऊपर कुंवर सिंह की छोटी सी सेना पर ब्रिटिश सेनानी ल्यूगार्ड भी हमले–पर–हमले करता रहा। पर उस पुल पर उसका पांव न टिक पाता। मानो हमले की हर गेंद पांडे पक्ष द्वारा रोकी जाने पर उतने ही वेग से वापस लौट जाती हो। आजमगढ़ के सारे विद्रोही गाजीपुर के रास्ते पर निकल चुकने का संकेत आने तक वह स्देशाभिमानी पुल ऐसे प्रतिहत बल से लड़ता रहा। मैलसन लिखता है–''रण में धैर्य रखनेवाले वीरों के

[152] 1. मैलसन, खंड 4, पृष्ठ 330 ।

समान उन वीरों ने नावों के इस पुल की रक्षा बड़े उत्साह से की और उनके साथ सुरक्षित स्थान में पहुंचने के लंबे समय तक का प्रतिकार कर हट गए''[153]

जगदीशपुर का मालिक अपनी सेना के साथ आजमगढ़ से सकुशल पार हो गया है। पांडे सेना ने अपने आप ही अकस्मात् पुल छोड़ दिया है, यह देखते ही ल्यूगार्ड उसपर घुसने लगा। तब उसके ध्यान में आया कि कुंवर सिंह या उसकी सेना भी किसी जादूगर की निर्मिति जैसी आजमगढ़ से क्षण में गायब हो चुकी है। निराश हुए उस अंग्रेज सेनानी ने घोड़े पर के तोपखाने सहित घुड़सवारों को कुंवर सिंह का पीछा करने भेज दिया। बारह मील तक अंग्रेजी घोड़े दौड़े, फिर भी कुंवर सिंह नहीं दिखा और जब वह दिखा तब भागनेवाले कौन और पीछा करनेवाले कौन, यह रणक्षेत्र में जान पाना कठिन हो गया। अंग्रेजी सेना को देखते ही विद्रोही सिटपिटाए नहीं बल्कि विद्रोहियों को देखकर अंग्रेजी `सना ही सिटपिटा गई । कुंवर सिंह की सेना ठाट से खड़ी होकर अपनी तलवारें निकाल, बंदूकों से निशाना साध, गुस्से से आगबबूला होते और तिरस्कार से गालियां देते बुलाने लगे, ''आ जा फिरंगी, आ आगे! हो जाए दो–दो हाथ!'' और फिरंगी के आगे आते ही विद्रोहियों ने ऐसे दो हाथ किए कि अंग्रेजों कितने ही योद्धा और अधिकारी धराशायी हो गए। विद्रोहियों के सिपाही अचल–अभंग रहे। अंग्रेजों को अपना बचाव करना कठिन हो गया और कुंवर सिंह अपनी सेना के साथ गंगा के अधिक ही निकट आ गया।

अंग्रेजों द्वारा पीछा किए जाने का यह दरिद्री समाचार शवों के साथ आजमगढ़ पहुंचते ही वहां से पांच–दस तोपों के साथ नई अंग्रेजी सेना लेकर डगलस उस पीछा करनेवाली टुकड़ी से जा मिला। इस डगलस ने कुछ ही समय पूर्व आजमगढ़ में कुंवर की तलवार का पानी चखा था। कुंवर के उस थप्पड़ को न भूला यह अंग्रेज सेनानी बड़ी सावधानी से उसका पीछा करते नघई गांव तक आया। वहां कुंवर सिंह उसकी राह देखता खड़ा ही था। अंग्रेजी सेना दिखते ही अपनी शूरतम सेना की टुकड़ी कुंवर सिंह ने उनसे भिड़ने आगे बढ़ाई और आदेश दिया कि शत्रु का बहादुरी से सामना करो। तुरंत शेष सेना के दो भाग कर उन्हें कुंवर ने अलग–अलग रास्ते से आगे कूच करने भेज दिया। वे उधर जा रह हैं तब तक अंग्रेजों से उन मुट्ठी भर वीरों ने घमासान चलाए रखी, शत्रु की भयानक तोपों का जवाब ऐसा कोई उत्तम साधन पास न होने से उनके साथी चटपट मरते रहे, पर वे तिल भर भी नहीं डिगे। न उनकी पंक्तियां ढीली हुई, न उनका अनुशासन बिगड़ा और न ही एक भी कदम बिना युद्ध–कौशल के रण में अटका। चार मील तक यह भयंकर लड़ाई चलती रही। अंत में अंग्रेजी सेना थक गई है, यह उसके लड़खड़ाते कदमों से दिखाई देते ही अलग–अलग रास्ते से चल रहे सेना के

[153] 1. मैलसन, खंड 4, पृष्ठ 330 ।

दो विभाग तुरंत इकट्ठा हो गए और अपनी पूरी सेना सहित कुंवर सिंह गंगा घाट के अधिक ही पास आ गया।

अप्रैल की 17 तारीख को यह थकी हुई अंग्रेजी सेना अथुसिरवा गांग में सो गई। भोर होने पर जब डगलस आगे बढ़ा तो उसने देखा, विद्रोही उससे सत्रह मील आगे है। अतः वह सारा दिन अंग्रेजी घोड़े और तोपखाना विद्रोहियों की खोज में दौड़ता रहा। पर अंग्रेजी पैदल बहुत पीछे पड़ता रहा। तब कुंवर सिंह से चार मील पहले अंग्रेजी सेना एक नींद लेने लग गई। कुंवर के जासूस शत्रु की बात उड़ाने में अति कुशल थे। उन्होंने अंग्रेजों के सौ जाने का समाचार तत्काल कुंवर सिंह को दिया और कुंवर उठा–उसने शत्रु की नींद का लाभ लेने का निश्चय किया। वह अस्सी वर्ष का वृद्ध राजपूत अपनी सारी सेना के साथ उस आधी रात के अंधेरे में तुरंत निकला और सिंकदरपुर आ गया। घाघरा नहीं उतरा, गाजीपुर प्रदेश में घुसा और सीधे मनोहर शहर तक दौड़कर आया और अपनी थकी हुई, पस्त हुई भूखी सेना को कुछ विश्राम देने थोड़ा ठहर गया। कुंवर की सेना अब बहुत ही थक गई थी। मनोहर गांव का स्थान बहुत मजबूत न होते हुए भी उन्हें विश्राम के लिए ठहरना ही पड़ा। इस गांव में विद्रोही आगे जाना असंभव होने से ठहरे हुए हैं, यह सुनते ही डगलस दौड़ने लगा और 20 अप्रैल को मनोहर गांव आ पहुंचा। उस दिन उन थके हुए विद्रोहियों का जोर कम पड़ा और अंग्रेजी सेना ने उन्हें पराजित कर उनकी गाड़ियां–रसद छीन लीं। परंतु वह वृद्ध युवा या उसका धीरज नही हारा। पराजय का चिह्न देखते ही पहले से ही सोचा–समझा आदेश जारी हुआ। कुंवर की सेना पलक झपकते ही छोटी–छोटी टुकड़ियों में बंटकर रणक्षेत्र से तत्काल एक निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर एकत्र होने हेतु अदृश्य हो गई। अंग्रेजी सेना इस संबंध में कुछ भी जान न सकी और अपनी विजय निष्फल देख वहीं ठह गई। कुंवर सिंह अपनी सेना के साथ गंगा पाट के बहुत नजदीक हो गया।

वह गंगा के पाट के अधिकाधिक पास आ गया। भयानक स्पर्धा जीतकर गंगा पाट से भिड़ भ गया! पीछे अंग्रेजीसेना दौड़ती आ रही थी; परंतु उसका सामना करने की शक्ति या समय अब शेष नहीं था, इसलिए उस चतुर वृद्ध ने एक अलग ही युक्ति भिड़ाई। उसने यह अफवाह फैला दी कि नौका न मिलने से कुंवर सिंह की सेना हाथियों से बाल्टिला के पास गंगा पार होने वाली है। यह समाचार अंग्रेजी जासूसों द्वारा पकड़कर डगलस को सूचित करते ही वह प्रसन्नातापूर्वक अपने जासूसों पर गर्व करने लगा। अब कुंवर सिंह कहां जाएगा? उसका यह गुप्त समाचार मिल जाने से मैं उसके हाथी सहित नष्ट कर दूंगा। इसलिए अंग्रेजी सेना बाल्टिला के पास जाकर उस भारी हाथी की राह देखती रही। ओ शूरवीर ! मजे से छिपकर बैठो। तुम्हारी इस स्वनिर्मित कैद में तुम अटके पड़े हो और कुंवर सिंह का हाथी अब फिर आएगा, इसलिए तब तक नींद निकाल

रहे हो, इसी समय सात मील दूर कुंवर सिंह गंगा उतरकर जा रहा था। हाथियों से गंगा पार करने के समाचार से बाल्टिला की ओर उन्हें भेजकर कुंवर ने उतनी नौकाएं तुरंत इकट्‌ठा कीं और रात–ही–रात में उसकी सेना मेयो घाट से श्री गंगा के जलाशय में प्रवेश कर गई। अंग्रेजों को उनके साथ किया गया धोखा ध्यान में आते ही वे भोर के समय सैदोपुर घाट पर गुस्से से भरे टूट पड़े और उन्होंने पांडे लोगों की एक नौका भी डुबो दी; पर वह अंतिम नौका थी। सारी सेना कुंवर सिंह ने पहले ही गंगा पार उतार दी थी और क्षण–दो क्षण में अपनी सेना को सुरक्षित नदी पार हुआ देखकर वह भी पार हो गया होता; परंतु हाय! हाय! अभिमान, स्वतंत्रता की वह तलवार–राणा कुंवर सिंह! गंगा पाट ममें बीचोबीच पहुंच गया तब शत्रु की एक गोली आई और उसके हाथ में घुस गई। यह देखते ही उस भीष्म ने क्या किया? अश्रु बहाने लगा क्या? रक्त का बहाव रोकने के लिए किसी से सहायता मांगने लगा क्या? क्या उसका आसन उस तीव्र वेदना से किंचित् भी विचलित हुआ? नहीं–नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हाथ पर मक्खी बैठे, उतना भी कंपित नहीं हुआ। उसने एक बार उस गोली की ओर तिरस्कार से देखा और कुंवर सिंह को मैंने एक क्षण भी अस्वस्थ किया, उस फिरंगी गोली को यह अभिमान भी न हो–ऐसा उसे लगा। उसने दूसरे हाथ से अपनी तलवार खींच ली और फिरंगी गोली से भ्रष्ट हुआ हाथ कुहनी से छांट दिया और वह काटा हुआ टुकड़ा गंगा को अर्पण करते हुए कुंवर सिंह ने गंभीर गर्जना की–हे माता, हे गंगा! बालक का यह शेषोपहार स्वीकार कर![154] भागीरथी को हे माता, हे माता कहनेवाले सैंकड़ों पृथजन आज तक जनमे और जनमेंगे, पर कुंवर सिंह, तेरे कारण वह देवी जाह्मवी पुत्रवती हुई है!

'नक्षत्रतारागृहसंकुलापि ज्योतिष्मती चंद्रमसैव रात्रिः!'

इस लोकोत्तर पुरूष द्वारा यह अलौकिक उपहार अपनी त्रिलोक विख्यात मातृगंगा को अर्पित करते ही उसकी शीतल फुहारों ने उसका देह सिंचन किया और इस मातृप्रेम से उत्साहित वह वीरवर अपनी सेना के साथ गंगा पार हो गया। उसका पीछा करती अंग्रेजी सेना हताश होकर गंगा के इस ओर ही कुंवर सिंह का नाम लेना छोडऋकर बैठी हुई थी । तब वैर भाव से रहित हुआ वह सिंह शाहाबाद प्रांत के अपने जन्मसिद्ध जंगल में फिर एक बार घुसने लगा। 22 अप्रैल को उसने जगदीशपुर में भी प्रवेश किया और इस तरह जिस राजमंदिर से उसे कोई आठ माह पूर्व अंग्रेजों ने निकाल दिया था उसी जगदीशपुर के राजमहल में उसका अपना राजा फिर एक बार विराजने लगा। कुंवर सिंह के गंगा उतरकर आते ही उसका समान वीर बंधु अमर सिंह हजारों सशस्त्र ग्रामीणों के साथ उसे आकर मिल गया। इन लोगों को और गंगा उतरकर आए शूर

[154] 1. रजनीकांत गुप्त कृत 'आर्य कीर्ति', बंगाल।

सिपाहियों को कुंवर सिंह ने जगदीशपुर के चारों ओर के जंगल में निशाने–निशाने पर नियुक्त किया और छापामार युद्ध से विजयश्री माया हुआ वह वीर रणपुरूष रण के लिए सज्जित होकर फिर से रण में उतरा।

और फिर युद्ध शुरू हुआ। कुंवर सिंह इतनी तेजी से जगदीशपुर में आ घुसा था कि पास में ही आरा की अंग्रेजी सेना को उसके आगमन की सूचना नहीं मिली। तब जगदीशपुर के राजमहल में कुंवर सिंह फिर से आ धमका है, यह सुनकर आरा का अंग्रेज सेनानी ली ग्रांड गुससे से आगबबूला हो गया । पूर्व अवध से अंग्रेजी सेना को थप्पड़ मारते–मारते यह कुंवर गंगा उतर आया और खुद मेरे सीने पर से चलकर जगदीशपुर में राज्य करने लगा। पूरे आठ माह नहीं हुए जब होअर इसी जंगल में कुंवर को नरम करने घुसा था। वैसे ही आज मैं भी घुसूंगा और इस सारे अपमान का बदला लेकर वैसी ही विजय भी प्राप्त करूंगा। यह निश्चय कर वह अंग्रेज सेनानी चार सौ सैनिक और दो भयंकर तोपें लेकर 23 अप्रैल को जगदीशपुर पर टूट पड़ा। अब इस युद्ध में कुंवर सिंह कैसे टिका रहे? वह आज तक लगातार लड़ते–लड़ते खड़ा हुआ है, उसकी सेना को कितने ही दिन भरपेट खाने को और घड़ी भर सोने को समय नहीं मिला! कल ही वह इस महायात्रा के बाद जगदीशपुर के राजमहल में आया–उसे और उसकी सेना को एक दिन की भी फुरसत नहीं मिली–उसकी सेना भी इस समय अंग्रेजों की रिपोर्ट के अनुसार–''उसकी सेना बेतरतीब बिखरी हुई, शस्त्र, अस्त्र, तोपें आदि युद्ध सामग्री से अपूर्ण पंगु–सी बन गई थी।'' उनके पस एक भी बंदूक नहीं, उनके हताश लोगों की संख्या खींच–तानकर डेढ़ हजार, उनके पास टूटे–मुड़े शस्त्र, उनमें शिक्षित सिपाही नहीं के बराबर और स्वयं उस वृद्ध सेनानी का हाथ कल ही कटा था। पांडे लोगों की ऐसी सेना पर तोपों के साथ, ताजा दम उत्तम शिक्षित आंग्ल सेना के साथ ली ग्रांड का आक्रमण। इस असमान लड़ाई में विजय अंग्रेजों की होगी, यह निश्चित था! वह अंग्रेज बहादुर जगदीशपुर की घनी झाड़ियों में घुस गया। इन झाड़ियों की लंबाई डेढ़ मील ही थी। झाड़ी में घुसते ही कुंवर सिंह के लोगों पर अंग्रेजी सेना गुरार्ते हुए गोले छोड़ने लगी। कुंवर के पास तो तोपें थी ही नहीं, पर ऐसा होते हुए भी कुंवर की सेना अंग्रेजी सेना की तोपों की खिल्ली उड़ाते हुए उसे घेरकर बांधना चाहती थी। फिर अब छोड़ें अंतिम बाण! अंग्रेजी सेना ने जोरदार हमला करने का निश्चय किया। वे कालदूत की तरह कुंवर पर टूट पड़े, कुंवर की सेना झाड़ियों में से उनका सामना करने लगी। अरे! अंग्रेजी सेना की हिम्मत एकदम टूट गई, पीछे लौटने का बिगुल बज उठा। कुंवर ने अंग्रेजी सेना को ऐसी जगह और इस रीति से फांस लिया था कि वहां खड़ा रहना या वहां से भागना–ये दोनों ही समान रूप से घातक थे। इधर कुंवर सिंह के आदेश से उसके राजमहल का सारा महत्त्वपूर्ण सामान दूसरी जगह भेज दिया गया था। वैसे ही सरकारी

कागज आदि न जलाकर उसने सिपाहियों को कहा कि अंग्रेजों को यहां से भगा देने के बाद वास्तविक वसुली और न्याय करने के लिए ये कागज अवश्य रखे जाने चाहिए। लोगों का उसके प्रति इतना आदर था कि उसके सामने कोई धूम्रपान करने की हिम्मत नहीं करता था।[155]

23 अप्रैल को अंग्रेजी सेना को ऐसी धोबी पछाड़ देकर उस वृद्ध युवा राजा कुंवर सिंह ने अपने जगदीशपुर के राजमहल में विजयश्री के साथ प्रवेश किया।

यह उसका अंतिम प्रवेश था, क्योंकि विश्व की रंगभूमि पर अब कुंवर सिंह फिर से प्रकट नहीं होगा। उसके हाथ में गंगा पार में जो भयानक घाव हुआ थ वह बहुत बढ़ जाने के कारण वह राजपूत कुलकीर्ति राजा कुंवर सिंह इस विजय के तीसरे दिन 23 अप्रैल को अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित राजमहल में स्वतंत्रता के झंडे के नीचे चिन्मय रूप में लीन हो गया। जब उसका जन्म हुआ था तब उसकी भूमि स्वतंत्र थी और उसका प्राणोत्सर्ग भी स्वतंत्रता के झंडे के नीचे हुआ। जिस दिन वह मरा उस दिन जगदीशपुर के रजवाड़े पर अंग्रेजों का निशान नहीं, उसके स्वदेश एवं स्वधर्म का स्वांतन्त्र्य थी और उसका प्राणोत्सर्ग भी स्वतंत्रता के झंडे के नीचे हुआ। जिस दिन वह मरा उस दिन जगदीशपुर के रजवाड़े पर अंग्रेजों का निशान नहीं, उसके स्वदेश एवं स्वधर्म का स्वातंत्र्य ध्वज फहरा रहा था। राजपूत के लिए इससे अधिक पुण्यतर मृत्यु कौन सी हो सकती है!

उसने अपने अपमान का प्रतिशोध लिया। उसने रणांगण में अत्यल्प साधनों से अंग्रेजी सेना जैसे प्रबल शत्रु के अनेक बार दांत खट्टे किए थे। उसने स्वधर्म से धर्मद्रोह या स्वदेश से देशद्रोह नहीं किया। उसने अपनी भूमि की दास्य श्रंखला तोड़कर उसे स्वतंत्र किया और युद्ध में आज अस्सी वर्ष के उस वृद्ध कुंवर सिंह का विजयश्री ने अलौकिक आंलिगन किया हुआ है, तो हे सिंह कुमार! यही वह मुहूर्त है और यही वह वेला, हे धर्मपक्षीय भीष्म! यही उत्तरायण है–इसलिए तू अपने वीर तन का त्याग कर! और वह भी रोग से नहीं, युद्ध के घावों से! जैसा तेरा जीवन लोकोत्तर वैसी ही तेरी मृत्यु भी! इसीलिए वह कुंवर सिंह उस दिन मरा। राजपूत के लिए इससे अधिक पुण्यतर मृत्यु कौन सी हो सकती है!

श्री कुंवर सिंह की भूमिका किसी वीर काव्य के नायक स्थान पर शोभित हो सकती है। सन् 1857 के क्रांतियुद्ध में यदि कोई सब प्रकार से योग्य नेता था तो वह कुंवर सिंह ही था। युद्धकला में उसकी बराबरी कर सके, ऐसा कोई नहीं था। स्वातंत्र्य युद्ध में कूट युद्ध का कितना महत्त्व होता है, यह सबसे पहले कुंवर ने पहचाना और शिवाजी के कूट युद्ध का सही–सही नकल कैसे की जाए, उसी अकेले ने सिद्ध किया। तात्या टोपे और कुंवर सिंह के युद्ध चातुर्य की तुलना करें तो कुंवर की कूट पद्धति ही अधिक बेतोड़ थी, ऐसा दिखाई देता है। तात्या ने कूट युद्ध की काट करने में अधिक चतुराई प्रकट की। परंतु कुंवर ने निषेध जैसी ही विधि रूप में भी कूट युद्ध की पूर्णता

155 1. रजनीकांत गुप्त कृत 'आर्य कीर्ति', बंगाल।

सिद्ध कर दी। तात्या ने सैनिकों का नाश नहीं होने दिया; परंतु कुंवर ने तो उसके अतिरिक्त शत्रु सेना का यथावसर नाश भी किया। कूट युद्ध में पूर्ण विजय पाने के लिए यह सावधानी रखनी होती है कि बड़े शत्रु के आगे से भागते समय उस पराजय से अपनी सेना हताश या भयग्रस्त न हो। जान–बूझकर स्वीकारी हुई पराजय से उनकी आत्मनिष्ठा दुर्बल न हो और लड़ाई की बार–बार टाला–टूली से लड़ाई के संबंध में उनके मन में कोई स्थायी भय न समा जाए–इसके लिए छापामार युद्ध का सेनानी हमेशा सतर्क रहे। लड़ाई टालना अलग बात है और लड़ाई लड़ते हुए भीरूता के कारण पराजित होकर पीछे हटना अलगा बात। अर्थात् कूट युद्ध में भीरूता के कारण पराजित होकर कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। लड़ाई लड़नी ही पड़े तो ऐसी लड़ें कि शत्रु के मन में अपनी शूरता का भयंकर भय उत्पन्न हो जाए और अपनी सेना आत्मनिष्ठा की स्फूर्ति से भर जाए। सेनानी की मुख्य खूबी यही होनी चाहिए कि अधिक हानि की आशंका की स्थिति मेमं वह सामना टालता जाए। पर जब सामना हो ही जाए तो ऐसी शूरता प्रदर्शित करे कि जैसी बाजी प्रभु ने पावन घाटी में या कुंवर ने तानू नदी के पुल पर दिखाई। सारांश यह कि लाभ में न हो तो लड़ाई टाले, लाभकारी हो तो लड़ाई लड़े, परंतु कभी भी रण में भय या अनुशासनहीनता से अपनी बदनामी न करवाए। शूरता से ऐसी लड़ाई लड़े कि रण में पराजय हो तो भी विश्व में सत्कीर्ति बढ़े। इससे शत्रु डर जाता है, अपनी सेना में अनीति नहीं बढ़ती, अनुशासन नहीं छूटता, उत्साह बढ़ने लगता है, शूरता का उत्कर्ष होता है, विजय पक्की होती है। शत्रु ने हमें शूरता से जीता है, ऐसा कभी न होने देना ही कूट युद्ध की कुंजी है।

तात्या टोपे ने छापामार युद्ध के विधिरूप का अवलंबन अधिक बार नहीं किया था। जब वे नर्मदा उतरे और जब कुंवर सिंह गंगा उतरे तब दोनों के युद्ध–कौशल में क्या अंतर था, यह स्पष्ट दिखता है। तात्या टोपे की सेना को डर के कारण बार–बार पराजय स्वीकार करनी पड़ी। परंतु कुंवर ने पीछे हटते हुए भी शत्रु अपनी शूरता की डींग हांके, ऐसी स्थिति नहीं बनने दी और जब–जब अवसर मिला तब–तब शत्रु को ऐसा झापड़ लगाया कि रण में उसकी सेना में अधिक आत्मनिष्ठा और वीरस्फूर्ति बनी रहती। तात्या अधिकतर अपनी इच्दा के अनुसार चल नहीं पाते होंगे और इसलिए उनको जो चाहिए था उस परिस्थिति में वे उतना नहीं कर पाते थे; पर कुंवर सिंह ने छापामार युद्ध लड़ते हुए शिवभूप की तरह ही सेना में कातरता और अनीति नहीं घुसने दी और लड़ाई टालना और लड़ाई करना–इस विधि–निषेध से वक्र युद्ध के दोनों ही अंगों का खेल करने में अप्रतिम युद्ध–कौशल दिखाया। इसीलिए वह अंग्रेजी सेना के सीने पर तांडव करते–करते पवित्र विजयानंद में, अपने राजभवन में, स्वतंत्रता के झंडे तले और देवदूतों के पंखों के नीचे पुण्य पावन मृत्यु प्राप्त कर सके।

सन् 1857 की 26 अप्रैल को इस दिव्य पुरूष के देवलोक जाते ही उसके सिद्धांतों का, उसके ध्येय का, उसकी सेना का और उसके ध्वज का सारा भार अपने सिर लेकर कुंवर सिंह का कनिष्ठ बंधु अमर सिंह गद्दी पर बैठा। कुंवर सिंह का यह कनिष्ठ बंधु अमर सिंह, एक ही सिंहनी की गर्भगुहा से संभव हुए थे, वे दो केसरी किशोर अपने प्रखर नखों की तीक्ष्णता में परस्पर तुल्य थे। भाई की मृत्यु के कारण इस लड़ाई में जरा भी ढील न देकर पूरे चार दिन भी विश्राम न करते हुए यह रणपंडित अमर सिंह भी आरा शहर का दरवाजा ठोकने लगा। ली ग्रांड की पराजय सुनकर पीछे गंगा किनारे ही खड़ा ल्यूगार्ड व ब्रिगेडियर डगलस दोनों अपनी–अपनी सेना के साथ अमर सिंह पर 3 मई को चढ़ आए। भिहिया, हंतमपुरा, दलितपुरा में विद्रोहियों पर हर दो–तीन दिन बाद अंग्रेज गोलीबारी करते। जगदीशपुर भी अंग्रेजों ने अपने कब्जे में ले लिया। उस सबल सेना के पंजे से छूटने तथा पराभव टालने को अमर सिंह ने एक अप्रतिम युक्ति खोज ली थी। उसने रणक्षेत्र में अपनी सेना की छोटी–छोटी टोलियां बनाई और पराजय का रंग दिखते ही वे टोलियां शीघ्र ही इधर–उधर हो जाती। उस प्रदेश के इंच–इंच की जानकारी उन्हें होने से नियत समय पर सारी टोलियां नियत स्थान पर इकट्ठा होतीं और फिर से अंग्रेजों को बिलकुल दिखती ही नहीं थी। किसी भूत–प्रेत की तरह उस सारे प्रदेश में अंग्रेजी सत्ता के कण–कण को पछाड़ते हुए भी अमर सिंह उन्हें प्रत्यक्ष कहीं नहीं दिख रहा था। एक टोली राजपुर होती, दूसरी दमरान तो तीसरी कर्मनाशा पर बने रेल कारखाने धूल में मिला देती। जंगल के इस छोर से अमर सिंह को निकालें तो वह जंगल का दूसरा छोर जीत लेता, जंगल के उस छोर की ओर अंग्रेजी सेना दौड़ती तो इस छोर पर अमर सिंह फिर राज्य करने लगता। शाहाबाद प्रदेश के समस्त लोकसमूह की सहानुभूति और सहकर मिलते रहने से अमर सिंह के साथ रण का खेल–खेलते हुए ल्यूगार्ड और उसकी विशाल सेना की हड्डियां नरम पड़ गईं। 15 जून को वह निराश–हताश अंग्रेज सेनापति इस्तीफा देकर इंग्लैंड चला गया और उसकी थकी हुई सेना आराम करने छावनी में चली गई।

यह देखते ही सारी छोटी–छोटी टोलियां एकत्र हो गई और जगदीशपुर का राजा अमर सिंह और उसकी सेना रण–मैदान में फिर से प्रकट हो गई। उस विजय आवेश से भरी उस सेना ने गया में कैद सारे विद्रोहियों को वहां की अंग्रेजी पुलिस से मुक्त कराया और इस तरह गया शहर स्वतंत्र हो गया और आरा की अंग्रेजी सेना को युक्ति से शहर के बाहर बुलवाकर उसपर अमर सिंह का झंडा लगा दिया। इस तरह हर ओर अमर

सिंह का कहर बरपा और जुलाई में उसने फिर एक बार जगदीशपुर में प्रवेश किया । जुलाई बीती, अगस्त बीता, सितंबर बीता फिर भी जबदीशपुर में स्वतंत्रता का झंडा हर दिन की सूर्यकिरण में फहराता ही रहा। ब्रिगेडियर डगलस जैसा अंग्रेज सेनानी और सात हजार अंग्रेजी सेना उस छोटे से राजा पर दांत भींचकर टूटते रहे, उसका सिर काटने या उसकी योजना भंग करने का अनेक देशद्रोही भी उसकी सेना में धन का लालच देकर भेजे गए। जंगल में नए रास्ते बनाए गए, नाके–नाके पर अंग्रेजी सेना की पक्की कतार बांधी गई। परंतु कुछ भी करें, जगदीशपुर का राजा परेशान नहीं हा पाया। उसके अनंत दाव–घातों की सारी कथाएं यहां स्थानाभाव के कारण नहीं दी जा सकती । इतना कहना काफरी है कि स्वतंत्रता के पुण्य रण में वह वीर अमर सिंह आमरण ऐसे ही पूर्ण साहस से समरांगण में भिड़ा रहा।

अंत में उसे जगदीशपुर में ही कैद करके गाढ़ देने के उद्‌देश्य से अलग–अलग सात अंग्रेजी सेनाएं जगदीशपुर के सारे रास्ते बंद करती हुई चढ़ आईं। प्रदेश भर से सारे विद्रोहियों को इस जाल से भगाते–भगाते 17 अक्तूबर को वह कालपाश जगदीशपुर की सीमा से जा भिड़ा। हाय! हाय! अब इस कालपाश में वह स्वतंत्रता–प्रेमी सिंह पकड़ा जाएगा! नियत समय पर ये सातों बलशाली सेनाएं अचानक जगदीशपुर को घेर लें, उसे कड़ा आदेश जारी हुआ और उस आदेश के अनुसार चारों ओर से बंद उस जगदीशपुर के पिंजड़े के अमर सिंह पर कठोर वार हुआ। पर शाबाश रे अमर सिंह, शाबाश! इस कठोर वार को पिंजड़ा मिला, पर सिंह वहां नहीं मिला तो नहीं मिला!

क्योंकि छह सेनाएं छह रास्तों से अचूक आ गईं, फिर भी सातवीं सेना आने में पांच घंटे की देर हो गई और इस विलंब का कुशाग्र अमर सिंह सुशीघ्र लाभ लेकर उसी रासते से और उन्हीं पांच घंटों में सेना के साथ फरार हो गया। इस सात डोरियों के जाल की सातवीं डोरी टूटते ही सिंह मुसकुराता हुआ बाहर निकला और भक्ष्यार्थ लगाया गया वह जाल उसी के नखों में फंसकर पूरी तरह फट गया।

अतः अब ऐसे जाल बुनते बैठने की बात भूलकर अंग्रेजों ने चुने हुए घुड़सवारों की एक टोली तैयार की और वह टोली विद्रोहियों का लगातार पीछा करे, यह आदेश दिया। यह अंखड पीछा अमर सिंह की पीठ को लगते ही उसे तनिक भी विश्राम असंभव हो गया। यह अखंड पीछा अमर सिंह की पीठ को लगते ही उसे तनिक भी विश्राम असंभव हो गया। साथ ही अंग्रेजों के पाास अब एन्फील्ड राइफल जैसी नई बंदूकें आ गई थी। उनकी मार लंबी थी और उनके सामने विद्रोहियों की मस्कट बंदूके अच्छा काम नहीं कर सकती थीं। 19 अक्तूबर को अंग्रेजों ने एक गांव में पहले क्रांतिकारियों को पीछे से घेरा और उनमें से तीन सौ लो काट डाले। शेष बचे एक सौ लोग एक गांव खेड़े में लड़ते बाहर के खेत में पागल बाघों जैसे घुस गए। परंतु उनको भी अंगेजों की नई कुमुक ने घेर

लिया और तलवारों से उन्हें भी काट डाला। केवल तीन असामी पास के गन्ने के खेत में छिपे थे, इसलिए बचे। और इन तीन लोगों में ही अमर सिंह भी था। यहां से बचकर अमर सिंह की सेना कैमूर पर्वतों में घुस गई। उसके पीछे–पीछे अंग्रेजी सेना भी घुसी। इसलिए उस वर्तत के हर टीले और हर शिखर पर लड़ाई करते–करते पांडे लोगों की उस स्वातंत्र्य पूतना (पलटन) ने दिसंबर के अंत में रण में रक्त समाधि पाई। इस तरह बिहार प्रदेश के स्वतंत्रता समर की बहार उजड़ गई। फिर भी राजा अमर सिंह शत्रु के हाथ अभी तक नहीं आई। अंतिम वृत्तांत किसी को भी पता न चलने देकर सदेह स्वर्ग गमन की अनुमति कभी भूलोक के मनुष्यों को यदि स्वर्गलोक के देव, गंधर्व देते होंगे तो उस सम्मान के योग्य इस मर्त्य विश्व में केवल अमर सिंह ही था, यह निर्विवाद है।

प्रकरण–9

मौलवी अहमद शाह

लखनऊ की पराजय के बाद अवध एवं रूहेलखंड के विद्रोहियों का अब कोई सबल मुख्य केंद्र नही रहा था। दोआब और बिहार में अंग्रेजों की पुनर्विजय की लहर सामने आते बांध–बंधनों को धक्के–पर–धक्के देती बड़े वेग से आगे ब़ने लगी, इस कारण वहां भी पांडे पक्षीय नेताओं को आश्रय नहीं मिलने वाला था। ऐसी स्थिति में उन्हें विद्रोह के प्रारंभ में जो युद्ध पद्धति सूझी, वह सहज सूझ गई और उसका अवलंबन कर उन्होंने अंग्रेजों से यह तुमुल युद्ध जारी रखने का निश्चय किया; अंतर इतना ही था कि विद्रोह के प्रथम आवेश में यदि आज पराजय से दुर्बल होकर उस रास्ते पर कदम बढ़ाने से अंतिम सफलता तक पहुंचना बहुत दुष्कर हो गया था। तथापि दुष्कर हो, सुकर हो, म्यान से बाहर खींची तलवार समर्पण करके नीचे नहीं रखनी है, इस संकल्प से अवध के विद्रोही नेताओं ने लखनऊ गिरते ही कूटयुद्ध पद्धति स्वीकार करके रूहेलखंड के विद्रोहियों की अलग–अलग टोलियों को यह प्रख्यात आदेश जारी किया–

''फिरंगियों की संगठित सेना से आमने–सामने लड़ने का प्रयास न करें; क्योंकि व्यवस्था, अनुशासन और कवायद में वे सेनाएं आपसे श्रेष्ठ हैं और उनके पास बड़ी–बड़ी तोपें हैं। इसलिए उनसे खुले मैदान की लड़ाई न लड़कर छापे मारकर उनके आवागमन को रोकते रहें। नदी के सारे घाट दबाए रहें, उनका आवागमन तोड़ दें।

उनकी रसद और डाक लूट लें। उनके थानों पर हमले करें और उनके शिविर के चारों ओर अखंड चक्कर लगाते रहें। फिरंगियों को विश्राम नहीं मिलना चाहिए।''[156]

इस स्फूर्तिदायक और गुरिल्ला युद्ध लेख का प्रत्यक्ष में उतारने के लिए मौलवी अहमद शाह कोई उनतीस मील दूर अंग्रेजों की लखनऊ की सेना पर नजर गड़ाए बारी के पास ससैन्य बैठा था और दूसरी ओर बेगम हजरत महल भी छह हजार लोगों के साथ बिरौली के पास डटी हुई थीं। इन दोनों सेनाओं को पीटने के लिए होप ग्रांट तीन हजार सैनिकों और प्रबल तोपखाने के साथ लखनऊ के पहले बिरौली की ओर चला। दूसरे दिन उसका जहां शिविर लगा था वहां एक मरम साहस की बात प्रकट हुई। अंग्रेजी सेना अपने ऊपर हमला करने आ रही है–यह सुनते ही उस सेना की पूरी जानकारी प्राप्त करने मौलवी ने अपने जासूस भेजे। उस रात इन जासूसों की टोली अंग्रेजी छावनी में बिना संकोच जब घुसने लगी तो अंग्रेजी पहरेवालों ने पूछा, ''कौन जा रहा है?'' ''हम 12वीं पलटन के लोग हैं।'' यह उत्तर उन्होंने सुना। यह उत्तर पूरी तरह सत्य था। क्योंकि ये सारेजासूस 12वीं रेजिमेंट के ही थे। परंतु यह 12वीं पलटन तो वह थी जिसने गत जुलाई में विद्रोह करके अपने गोरे अधिकारी का कत्ल कर दिया था। यह उस अंग्रेजी पहरे वाले को क्या मालूम ! उनका बिना संकोच घुसना, निश्छल उत्तर देना, संकोचहीनता और सावधानी देखकर वह पहरेदार 'ऑल वेल' कहकर चुप बैठ गया और यह टोली अंग्रेजी कैंप में शांति में घुस गई। वहां जो जासूसी करनी थी वह सब करके मौलवी के वे जासूस बाहर निकल आए और इस तरह मृत्यु के मुंह के दांत गिनकर ये देत अपने मौलवी के पास लौट गए।

जासूसों से प्राप्त सूक्ष्म समाचार सुनते ही उस युद्ध विशारद नेता ने अपनी योजना तुरंत बना ली। उसने अपनी सेना के साथ चार मील हटकर एक छोटा सा गांव कब्जे में लिया। उस गांव के सामने एक नदी थी और उसका किनारा ऊंचा था। वह स्थान बहुत मजबूत था। मौलवी की चाल थी कि उस गांव में वह अपनी पैदल सेना के साथ छिप बैठा रहे और उसी समय उसके घुड़सवार एक दूर के मार्ग से जाकर अंग्रेजों के बाजू पर हमला करने को तैयार रहें। मौलवी को यह भलीभांति ज्ञात था कि अंग्रेजी सेना कल भोर में असावधान स्थिति में वही आएगी। विद्रोही उस गांव में न होकर बारी में हैं, इस विश्वास से निस्संकोच आनेवाला यह शिकार बंदूक की मार में आते ही, मौलवी सामने से मारे और उसके शुरू होते ही घुड़सवार अंग्रेजों के बाजू पर टूट पड़ें। मैलसन कहता है–''मौलवी की यह योजना बड़ी चतुरतापूर्ण थी। उसकी व्यूह–रचना के ज्ञान का आभास इसी से हो जाता है।''

इस शत्रु को भी चकित कर डालनेवाली यह उत्तम चाल सफल हो, इसके लिए दो

156 1. डा. रसेल की डायरी, पृष्ठ 276।

बातें आवश्यक थी। पहली यह कि अंग्रेजों को उस गांव तक आने के पूर्व अपनी सेना उन्हें न दिखें–इस प्रकार छिपाकर रखना; और दूसरा गांव से गोलीबारी शुरू होने के पूर्व तक बगल में छिपे घुड़सवारों का शांत बैठे रहना। मौलवी ने अपने कार्य बड़ी तत्परता से पूरे किए। रात–ही–रात पैदलों के संग वह गांव उसने चुपचाप ले लिया। अपने घुड़सवार उसने तत्काल इष्ट मार्ग से बगल की ओर रवाना किए और उस गांव में अपनी सेना का अस्तित्व इतनी उत्कृष्ट रीति से छिपाए रखा कि सुबह अंग्रेजी सेना असावधान, धीरे–धीरे आ गई। घंटे–आधे घंटे की देर थी कि पांडे सेना क विजय निश्चित थी।

परंतु उस आधे घंटे में ही मौलवी का बनाया हुआ यह उत्कृष्ट जाल घुड़सवारों ने बिगाड़ दिया। अंग्रेजी सेना के उस जाल के पास पहुंचते ही नियत किए अनुसार घुड़सवारों ने उनकी पीठ पर उत्तम स्थान भी घेर लिया। वहां से असावधान छह हजार अंग्रेजी सैनिकों पर हमला करना बहुत सुलभ हो गया था, परंतु इतने में घुड़सवारों के अधिकारी अंग्रेजों की दो असुरक्षित तोपें देखकर लालच में आ गए और मौलवी का आदेश भूलकर उन पर आक्रमण कर बैठे। तुरंत ही तोपें उनके हाथ में आ गई। पर क्षण भर बाद वे तोपें ही नहीं बल्कि मौलवी का सारा जाल अंग्रेजों ने छीन लिया; क्योंकि यह पीछे की भीड़ देखते ही वे पूरी तरह सावधान हो गए और सामने का गड्ढा भी उन्हें दिखाई दे गया। थोड़ी सी हाथापाई होते ही अपने घुड़सवारों की लापरवाही से नष्ट हुआ जाल फेंककर मौलवी एक और अवसर खोजने आगे निकल गया।

15 अप्रैल के आसपास होप ग्रांट द्वारा बारी और बिरटौली से लखनऊ के विद्रोहियों को ऊपर धकेलते हुए उधर रूइया किले के पास अवध और अंग्रेजों की एक भिड़ंत हो रही थी। पीछे दोआब में विद्रोह को नष्ट करने कानपुर में जैसे अंग्रेजी सेना चारों ओर से विद्रोहियों को एक साथ दबाती फतेहगढ़ की ओर गई थी वैसे ही अब विद्रोहियों को अवध से समाप्त करने का कार्यक्रम कमांडर–इन–चीफ ने लखनऊ में आयोजित किया।[157] अवध के पूर्व भाग और बिहार प्रांत में ल्यूगार्ड (जिसका उल्लेख पूर्व में भी आया है) और डगलस को भेजा, बारी–बिरौली से सर होप ग्रांट और वालपोल गंगा किनारे से ऊपर–ही–ऊपर विद्रोहियों को रूहेलखंड में चापा जाए और वहीं उनसे अंतिम मारा–मारी की जाए। इस कार्यक्रम के अनुसार 9 अप्रैल को वालपोल सर्वांगपूण्र सबल सेना ले, लखनऊ से निकलकर गंगा किनारे से ऊपर चला । 15 अप्रैल को वह लखनऊ के उत्तर में इक्यावन मील पर स्थिति रूइया के किले तक पहुंचा।

यह किला बहुत बड़ा नहीं था और उसका मालिक नरपत सिंह भी एक छोटा

[157] 1. On the first of April 1858 there were 96,000 British soliders in India besides a large body of reliable native troops, raised in haste some of whom had already shown that they were capable of doing good service-a very different state of affairs from the one which prevailed six months before. & Roberts, Vol. 1

जमींदार था। फिर भी स्वतंत्रता का यह महायज्ञ शुरू हो जाने के बाद से नरपत सिंह ने उसी की स्थंडिल पर अपना सर्वस्व अर्पण किया था। आज उसपर एक जाज्वल्य तोपखाने के साथ प्रचंड अंग्रेजी सेना ने हमला किया है। उसके पास किले में सौ–डेढ़ सौ लोग भी नहीं थे। फिर किला खाली कर विद्रोही बिना शर्त समर्पण करेंगे ही, अंग्रेजों को यह विश्वास होने लगा। पर उस दिन प्रातः नरपत सिंह की कैद से एक यूरोपियन छूटकर आया। उसने अंग्रेजों को बताया कि नरपत सिंह कहता है, ''किला खाली करेंगे, पर रण में चार हाथ कर लेने के बाद।''

रण में? यह विद्रोही नरपत हमें रण में हाथ दिखाएगा? और फिर किला खाली करेगा? वालपोल ने कहा, ''उसे उसके किले सहित उसी जगह पर गाड़ डालें, चलो!'' सदैव की भांति अंग्रेजी सेना ने खबर फैलाई कि किले में दो–तीन सौ नहीं, पंद्रह सौ लोग हैं! नरपत को हम अवश्य मसल देंगे, जबकि उसकी सेना हमसे बहुत भारी है। यह समाचार फैलाने के पहले उसे जीतने में गौरव ही क्या? इसलिए वालपोल ने भी कहा, ''ठीक है, नरपत पंद्रह सौ सैनिक होने के कारण ही ऐसे उद्धत बोल बोल रहा होगा। किले में कैद रहे युरोपियन ने जो प्रत्यक्ष देखा कि डेढ़ सौ लोग हैं वह केवल ठोकी होगी।'' किले पर सेना चलने लगी और वह भी किले के किसी दुर्बल गिरे हुए भाग की ओर नहीं, सामने की मजबूत दीवार पर। किले के सामने की झाड़ी से यह अंग्रेजी सेना घुसते देखकर नरपत के मजबूत योद्धा गोलियां चलाने लगे। अंग्रेजों के खंदक से भिड़ते ही मारा–मारी बहुत हुई। काफे के एक सौ बीस लोगों में से छियालीस लोग वहीं–के–वहीं मारे गए। काफे पीछे हटा। उधर ग्रूव को भी विद्रोहियों ने उसकी जगह पर ही मरने के लिए बांधे वालपोल अपनी तोपें लेकर खंडहर पार्श्व से आता यह अकल्पित संकट देखनेवाला योद्धा वालपोल अपनी तोपें लेकर खंडहर बाजू की ओर गया। और उसने तोपें इतनी कुशलता से चलवाई कि अंग्रेजी सेना का इस ओर गया। और उसने तोपें इतनी कुशलता से चलवाई कि अंग्रेजी सेना का इस ओर से दागा हुआ गोला किले का लांघकर दूसरी ओर विद्रोहियों की सेना के ऊपर जाकर गिरता। केवल शत्रु से लड़नेवाले सेनानी बहुत हुए और होंगे, पर शत्रु और स्वयं से समान वीरता से लड़नेवाला सव्यसाची वीर वालपोल के सिवाए दूसरा नहीं मिलना। वालपोल का समर चातुर्य देखकर अंग्रेज योद्धा होप उस रणक्षेत्र में अंग्रेजी पक्ष संवारने आया तो वह भी मारा गया। विद्रोहियों की मार से ग्रूव भी पीछे हटने लगा। इधर–उधर त्राहिमाम। बुरी तरह भ्रम में पड़ी अंग्रेजी सेना उन ढाई सौ विद्रोहियों के धिक्कार के साथ रण छोड़कर चली गई।

होप जैसा योद्धा बलि चढ़ गया, यह सुनकर इधर–उधर हाहाकार मच गया। लॉर्ड केनिंग, सर कोलिन, सारा इंग्लैंड शोक–विह्वल हो गया। हजारों अंग्रेज लोग मरे होते तो भी इतना दुःखी न होता जितना उस लोकप्रिय होप की मृत्यु से इंग्लैंड देश दुःखी हो गया।

अंग्रेजी सेना की पूर्ण पराजय और होप की मृत्यु! उस बहादुर नरपत सिंह ने अपनी कही सच करके दिखाई। रण में शत्रु को हाथ दिखाऊंगा। अपने ढाई सौ अनुयायियों के साथ उसने वह किला तुरंत छोड़ दिया।

अपनी इन अलग–अलग अंग्रेजी सेनाओं से अवध के सारे विद्रोहियों को रूहेलखं डमें दबोचते ले जाने पर अपनी अलग–अलग सेना इकट्ठी करके कमांडर–इन–चीफ सर कोलिन रूहेलखंड की ओर चला। अवध से भगाए गए विद्रोही नेता शाहजहांपुर में इकट्ठा हो गए थे। वहीं मौलवी अहमद शाह भी थे। इस जोड़ी को पकड़ने के लिए सर कोलिन ने आज तक कितनी ही बार दीर्घ प्रयास किए थे, परंतु वे दोनों ही अभी तक अजित–के–अजित बने रहे। अतः वे रूहेलखं डमें शाहजहांपुर में इकट्ठा हैं, यह समझते ही सर कोलिन ने बहुत परिश्रम से उस शहर को घेरने का प्रयास किया और वे दोनों प्रथित पुरूष बस हाथ में आ ही गए हैं, ऐसा समझक रवह 30 अप्रैल को शाहजहांपुर से आ तो भिड़ा, पर उन दोनों पंछियों के उड़ जाने के बाद। सर कोलिन का मन विषाद से भर गया। उसने चारों दिशाओं से चार सेनाएं शाहजहांपुर और बरेली भेजी थीं और उसे विश्वास था कि उसके जाल से एक भी व्रिदोही छूटेगा नहीं। परंतु वस्तुस्थिति यह थी कि अति प्रबल विद्रोही उस जाल से निकलकर पार हो गया और वह भी स्वयं कमांडर–इन–चीफ की डोरी को झटका देकर।

मौलवी और नाना तो भाग ही गए, परंतु अब बरेली का दांव भी असफल न हो। जाए, इसलिए शाहजहांपुर में चार तोपों के साथ एक अंग्रेजी सेना रखकर उदास कमांडर–इन–चीफ बरेली के लिए चला और 4 मई को एक दिन के अंतर पर आकर उतरा। बरेली में खानबहादुर खान अभी तक राज्य कर रहे थे। दिल्ली और लखनऊ हार जाने पर निराधार हुए विद्रोहियों के नेता इसी स्वतंत्र राजधानी में आकर रह रहे थे। दिल्ली के राजवंश का रणकुशल राजपुत्र मिर्जा फीरेजशाह, श्रीमंत नाना साहब, मौलवी अहमद शाह, राजा तेजसिंह और अन्य कितने ही नेता खानबहादुर खान के अभी तक स्वतंत्र इस राज्य में घुसे होने से बरेली शहर पर अंग्रेजों की बड़ी आंख थी। पर ख ाानबहादुर खान और तत्पक्षीय नेताओं का उस शहर में यों ही दृढ़ता से लड़ते रहने की अपेक्षा एक–दो–हाथ होते ही छोड़कर पहले की गई प्रख्यात घोषण के अनुसार प्रदेश में धींगामुश्ती करने का विचार निश्चित था। अंग्रेजी सेना एक दिन की दूरी पर आते ही बरेली में अपने को बंद करने के अंग्रेजी प्रयास विफल करने के लिए शहर छोड़ने की तैयारी करके उन्होंने बाहर जाने का रास्ता रोके रखा। परंतु फिरंगी शत्रु को एक तगड़ा झापड़ लगाने के पूर्व और अपना रण कर्तव्य कुछ तो भी पूरा किए गिना बाहर निकलने को वह तेजस्वी के पूर्व और अपना रण कर्तव्य कुछ तो भी पूरा किए बिना बाहर निकलने को वह तेजस्वी रक्त तैयार नहीं था। इसलिए 4 मई को वे अंग्रेजों का सामना करने रण में उतरे।

इस रणभूमि में जो अंग्रेजी सेना थी वह अभूतपूर्व थी और प्रबल थी। उनका

भयंकर बड़ा तोपखाना, उनकी उत्कृष्ट घुड़सवार सेना, अनुशासित पैदल सेना और इस बहुसंख्य तीक्ष्ण सेना पर स्वयं सर कोलिन का सेनापतित्व! इस सेना पर खानबहादुर की तोपों का कोई प्रभाव नहीं हुआ, वे बरेली पर बिना रूके चढ़ते चले आए। 5 मई को तोपें छोड़कर विद्रोहियों ने तलवार निकाली। विजय की कोई आशा न होते हुए भी या यों कहें, वैसी आशा नहीं थी, तभी तो रण–मैदान से वापस न लौटकर हंसते–हंसते मृत्यु का आलिंग्न करनेवाले भयंकर गाजी की यह तलवार थी। किसी भी धर्मयुद्ध में शत्रु का प्राण लेना या लेते हुए मरना माने स्वर्ग के दरवाजे धड़ाधड़ खुलवाना होता है, यह जिसकी दृढ़मल अनिवार्य श्रद्धा है, यह उन धर्मवीरों की तलवार थी। किसी भी धर्मयुद्ध में शत्रु का प्राण लेना या लेते हुए मरना माने स्वर्ग के दरवाजे धड़ाधड़ खुलवाना होता है, यह जिसकी दृढ़मूल अनिवार्य श्रद्धा है, यह उन धर्मवीरों की तलवार थी। वही तलवार खींच ये गाजी लोग अकस्मात् अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। दाढ़ी के बाल बढ़े हुए, हरे साफे सिर पर बंधे, कमरबंद कसा हुआ, अंगुली में चांदी की चपटी मुद्रा और उसपर कुरान के धर्म वाक्य खुदे हुए, ऐसे भव्याकृति वीर दाहिनी ओर तीर की तरह घुसे और अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। अपनी ढाल साधे और तलवारें सूर्यप्रकाश में चमकाते 'दीन–दीन' की गर्जना के साथ नाचते वे शत्रु पर टूटे। उनके टूटते ही अंग्रेजी सेना झटके से पीछे हट गई। 42वें हायलैंडर्स आगे आए। उनपर यह वज्राघात हुआ। उन्होंने तेजी से फिरंगियों को काटना शुरू किया। उनके कुछ लोग आगे घुसे और अंग्रेज पीछे चले गए। गाजियों की टोली में से एक भी पीछे नहीं लौटा। मारते, छांटते, काटते उनमें से हर एक जहां लड़ा वहीं कटा। एक अवश्य काटे जाने के पहले रण में गिर गया, क्यों? रूको, एक क्षण पूछो, नहीं–यह देखो, उधर से अंग्रेजी कमांडर–इन–चीफ एकदम पास आ गया। उसे देखते ही मरने का नाटक करके सोया यह आदमी शेर की भांति झपटकर उछला। पर पास के एक तैयार सिख ने उसकी गरदन तत्काल अलग कर दी।

विश्व इतिहास में अप्रतिम साहस, ध्येय–निष्ठा, शहादत और मृत्युंजयता के जितने भी उदाहरण होंगे उनमें से कोई उदाहरण बरेली के इस स्वातंत्र्य समर के गाजियों में से भी नहीं होगा।

दूसरे दिन सर कोलिन का जाल तोड़–ताड़ खानबहादुर खान सेना सहित बरेली से बाहर निकले और 7 मई को अंग्रेजों ने बरेली पर कब्जा कर लिया।

खानबहादुर खान ने रण–चपलता में अपने दांव–पेच विफल कर दिए। इससे उदास होकर कमांडर–इन–चीफ बरेली में प्रवेश कर ही रहा था तभी उसके और सारी अंग्रेजी सेना के बीच एकाएक मौलवी! मौलवी! ऐसी आश्चर्यजनक कानाफूसी प्रारंभ हो गई।

हां, आश्चर्यचकित करनेवाला ही एक दांव उधर शाहजहांपुर की ओर मौलवी ने डाला था। सर कोलिन को पूरी तरह छकाकर मौलवी और नाना साहब जो सटके वे केवल लड़ाई टालने के लिए ही नहीं सटके थे। शाहजहांपुर से निकलने के पूर्व–नाना

के आदेश से वहां के सारे सरकारी भवन गिरा दिए गए थे। अपने जाने के बाद वहां अंग्रेजी सेना आएगी और सेना की एक छोटी टुकड़ी वहां रखकर सर कोलिन बरेली जाएगा, यह समझकर उस कुशाग्र मौलवी ने शाहजहांपुर छोड़ा था। अंग्रेजी सेना बरेली में कितनी देर रहेगी, यह पक्का जानकर मौलवी ने ऐसा जाल रचा कि सर कोलिन के जाते ही–शाहजहांपुर में उतरना वहां के मुट्ठी भर अंग्रेजों को मटियामेट कर बरेली का बदला ले लेना है। मौलवी ने दूरदृष्टि से जो सोचा वैसे ही शाहजहांपुर में छोटी सी सेना रह गई और सारे भवन तोड़ दिए जाने के कारण उन्हें मैदान में ही उतरना पड़ा।

इस तरह सारी योजना बनती चली गई। 2 मई को वह थोड़ी सी अंग्रेजी सेना भी शाहजहांपुर छोड़कर जानेवाली है–यह ज्ञात होते ही दिन–रात मंजिलें तय करते हुए मौलवी अहमद शाह दौड़ने लगा और उसका असावधान शिकार एकदम उसके पंजे के पास आ गया। परंतु उस मध्यरात्रि में ही हमला न करते हुए मौलवी की सेना किसी की मूर्खता के कारण, किंचित् समय पूर्व चार मील दूर खड़ी हो गई। इतने भर से सारी योजना बिगड़ गई! क्योंकि ''Native spies employed by the British were on the alertand one of these flew with the intelligence of his dangerous vicinity to colonel Hale of Shahjahanpur. '' उस नेटिव पिशाच के वह समाचार अंग्रेजों को बताते ही उनक ीवह छोटी सेना जेल के मजबूत भवन में घुस गई। मौलवी योजनानुसार वहां पहुंचा। उसने सारा शहर कब्जे में लिया, किला लिया और युद्ध की यथान्याय पद्धति के अनुसार शहर के श्रीमंत लोगों पर रसद कर लगाया। मैलसन लिखता है–''मौलवी ने वही बरताव किया जो यूरोप की युद्ध–नीति में किया जाता है।'' और तुरंत आठ तोपें मंगाकर उसने जेल में छिपी अंग्रेजी सेना पर गोलीबारी शुरू कर दी।

यह खबर 7 मई को बरेली पहुंचते ही सर कोलिन की खुशी सातवें आसमानपर पहुंची। पहले मौलवी जब उसके हाथ से निकल भागा था तभी से वह मन–ही–मन बहुत खार खाए था। वह भूल सुधारने का अवसर अब मौलवी ने ही दे दिया। अपने आप शत्रु के जाल में घुसे इस शिकार पर झपट्टा मारने सर कोलिन निकला। इस समय उसने पूरा परीक्षण कर लिया कि जाल में कहीं भी सेंध न रह जाए। 11 मई से उस अकेले मौलवी ओर इस प्रचंड अंग्रेजी सेना की भयंकर लड़ाई आरंभ हो गई। यह समाचार सुनते ही उस लोकप्रिय मौलवी की सहायता के लिए विद्रोहियों के झुंड–के–झुंड दसों दिशाओं से आने लगे। अवध की बेगम, मरूयन साहब मोहम्मदी का राजा, दिल्ली का मिर्जा फीरोजशाह, कानपुर के नाना साहब आदि सारे स्वतंत्रता सेनानियों की सेनाएं 14 मई के पहले ही मौलवी के झंडे तले आ गई। जिस शिकार को पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने कोई छेद न छोड़ते हुए जो विशाल बुना था, उस शिकार ने ही

उसपर अपने भयानक पंजे फैलाकर चोट कर दी। छेद नहीं छोड़ा, इसलिए वह जाल ही काट डाला और मौलवी फिर से अपनी सेना के साथ शाहजहांपुर से लड़ते–लड़ते बाहर निकल गया। मौलवी के पकड़े आने का सर कोलिन को इस समय इतना विश्वास था कि उसका नाश निश्चित मानकर उसने सेना में नियुक्तियां भी कर दी थी। मौलवी उस जाल से छूटते ही गया किधर? तो अवध में जिसे भारी प्रयास से जीतकर शत्रु–विहीन किया गया था। अंग्रेजों ने अवध जीता तो मौलवी ने रूहेलखंड जीता; अंग्रेजों ने रूहेलखंड जीता तो मौलवी फिर अवध में सेना सहित आ जमा।

इस तरह अपने देश के शत्रु से, अपने देश के सम्मान की रक्षा के लिए, अपने देशबंधुओं की ओर से यह देशभक्त मौलवी झगड़ रहा था, तब उसे समाप्त करने का विकट काम कौन करेगा? जिसने सर कोलिन की तलवार को धिक्कार कर हताश कर दिया, उसे अब किसकी तलवार मार सकती है? अब क्या करें?

क्या करें? तइनी चिंता किसलिए? अरे पिछला इतिहास देखो, कितनी ही बार हिंदुस्थान के सौभाग्य को आग लगाना अंग्रेज धैर्य रखें, क्योंकि सर कोलिन की तलवार की धार भोथरी करनेवाली हिंदुस्थानी ढाल इस मौलवी की देह अंत में एक हिंदुस्थानी कुलघाती–कुल कलंकी ने फाड़–फूड़कर जला डाली।

अवध में घुसने के बाद अंग्रेजों की विजय का जितना प्रतिशोध करना संभव हो, उतना करते हुए मौलवी के ध्यान में आया कि अवध और रूहेलखंड के बीच पोवेन रियासत है, उसका राजा यदि अपने पक्ष में हो गया तो अंग्रेजों के विरूद्ध चल रहे संघर्ष को अधिक मदद मिलेगी। इसलिए उसने इस आशय का संदेश पोवेन के राजा को भेजा। यह हाथ भर की रियासत का राजा शरीर से संडकुसंड, मति से जड़, सुखभोगी और अकर्मण्तयता से मतिमंद हो गया था। रण का नाम सुनते ही उसके शरीर पर कांटे खड़े हो गए। फिर भी मौलवी से प्रत्यक्ष मिलने को हम तैयार हैं, यह उसने सूचित किया। फिर बेगम की राजमुद्रा लेकर उसका एक प्रतिनिधि पोवेन शहर की ओर चला। मौलवी ने अपने कुछ अनुयायियों के साथ पोवेन शहर की दीवार के पास आते ही देखा कि दीवार के दरवाजे बंद है और दीवार पर सशस्त्र लोग खड़े हैं तथा वह मोटा राजा जगन्नाथ सिंह अपने भाई के साथ उनके बीच में खड़ा है। इस संशयपूर्ण दृश्य का अर्थ यद्यपि उसने समझ लिया, फिर भी रण–मैदान मे खेला हुआ वह वीर उस दृश्य से घबरानेवाला नहीं था। उसने दीवार के बाहर से ही उस राजा से बातचीत की। अपने ध्येय को पाने के लिए सर्वस्व राख होने तक तलवार नीचे नहीं रखूंगा, यह जिस पुरूष सूर्य की प्रतिज्ञा थी उसका वह तेजस्वी बयान उस दीवार पर खड़े उल्लू को बहुत भयानक लगना स्वाभाविक था। जब मौलवी ने देखा, अब इस डरपोक को डराए बिना

मेरा यह कथन सफल नहीं होगा तब उसने अपने महावत को आदेश दिया कि दीवार का द्वार तोड़ने के लिए हाथी को आगे बढ़ाया जाए। जिसपा वह बैठा था उसी विशाल हाथी का मस्तक उस प्राचीर के द्वार पर धड़ाधड़ टकराने लगा। और एक टक्कर कि उस दरवाजे का निश्चित ही चूरा हो जाएगा। उसी समय राजा के भाई ने बंदूक चलाई और उसकी गोली ने मौलवी अहमद शाह! मौलवी अहमद शाह को उस परकोटे पर खड़े एक हिंदुस्थानी कुलांगार ने गोली चलाकर मार डाला। तुरंत ही वे दोनों भाई परकोटे के बाहर आए और उन्होंने मौलवी का सिर गरदन से उतार लिया। उस सिर को एक रूमाल में बांधा और वे तेरह मील दूर स्थित शाहजहांपुर दौड़ते गए। अंग्रेज अधिकारी खाना खा रहा था, तभी वह राजा अंदर घुसा। उसने अपने हाथ का रूमाल खोला और रक्त से सने मौलवी के सिर को उसने अंग्रेज के पैरों के पास लुढ़का दिया। दूसरे दिन अंग्रेजों ने शहर कोतवाली पर वह सिर टांग दिया और इस बहादुरी के लिए पोवेन के राजा का पचास हजार रूपए पुरस्कार दिए।

पोवेन के राजा! पोवेन के चांडाल ! तेरे देशद्रोह से यदि सचमुच तन–बदन में आग लगती हो तो इस प्राणी की प्रतिमा हर घर में नरक कूप के दरवाजे टांगी जाए।

मौलवी अहमद शाह ऊंचा, इकहरा, कसा हुआ, भारतभूमि के हाथ की किसी सतेज तलवार जैसा था। उसकी नाक सीधी, भौंहें कमान जैसी। उसके मरते ही अंग्रेजों ने कहा, ''उत्तर भारत का ब्रिटिशों का भयंकर शत्रु समाप्त हुआ।'' अंग्रेजों के इस भयानक शत्रु के संबंध में अंग्रेजी इतिहासकार मैलसर कहता है–''उसके सैन्य नेतृत्व और युद्ध–चातुर्य के विद्रोह में अनेक उदाहरण घटित हुए हैं। उसके अंतिम समय के दावं–पेच तो अप्रतिम थे। सर कोलिन को दो बार भग्नचातुर्य कर बिखेर देने का सम्मान उसके सिवाय अन्य किसी को भी प्राप्त होना असंभव था। इस तरह फैजाबाद का यह मौलवी अहमद शाह रण में चमका। अपने जन्मसिद्ध देश की अन्याय से छीनी हुई स्वतंत्रता वापस लेने जो पुरूष विद्रोही संगठन खड़ा कर युद्ध करता है, वह यदि देशभक्त कहलाता है तो मौलवी अहमद शाह वास्तव में ऐसा ही देशभक्त था! खून से उसकी तलवार गंदी नहीं हुई, खून के लिए वह सहमत नहीं था। जिसने उसका स्वदेश छीना था उस उचक्के विदेशी से वह लड़ा। वीरोचित लड़ा। रणनीति से लड़ा। दृढ़ता से लड़ा और इसलिए उस लोकोत्तर की स्मृति सारे राष्ट्र के रणवीरों और सत्यप्रियों के आदर की सत्पात्र हो गई थी।''[158]

[158] ''मौलवी एक असाधारण व्यक्ति था। विद्रोह काल में उसके सैनिक नेतृत्व की योग्यता का परिचय कई प्रसंगों में मिलता है। ....सर कैंपबेल को दो बार रण में मुंह की खिलाने का साहस दूसरा कोई नहीं कर सकता।''

–मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 4, पृष्ठ 380

प्रकरण–10

रानी लक्ष्मीबाई

जिन राजाओं ने अपने पीछे राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ा था, उनका राज्य ईस्ट इंडिया कंपनी में मिलाने की नीति लॉर्ड डलहौजी ने अपनाई। डलहौजी की इस अपहरण नीति के अंतर्गत गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार भी नहीं दिया गया था। यही बात झांसी के लिए थी। झांसी राज्य भी अंगेजों ने हथियाना चाहा। विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने विरोध के स्वर में कड़ककर कहा, '' क्या मैं झांसी छोड़ूं? नहीं छोड़ूंगी। किसी की हिम्मत हो तो आजमा ले। मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी।

झांसी की लक्ष्मी के कंठ से स्वातंत्र्य–कौस्तुभ मणि छीनने का साहस किसमें था? इस समय संपूर्ण दैत्य–दानव एकत्र होकर आएं–साक्षात् मृत्युदेव यमराज भी लक्ष्मीबाई से युद्ध करके झांसी लेना चाहें तो भी झांसी उन्हें नहीं मिल सकती। जब तक लक्ष्मीबाई के अंदर रक्त की एक बूंद भी शेष रहेगी तब तक उसकी स्वातंत्र्य–कौस्तुभ मणि उसके कंठ में ही शोभा पाएगी और उसकी धधकती ज्वाला मेमं देशद्रोही, अंग्रेज नराधम जलकर भस्म होंगे। झांसी, झांसी का राजप्रासाद, जरीपटका (मराठी कपड़ा), राजसिंहासन, उसका सतीत्व आदि सब झांसी की रानी लक्ष्मी के साथ स्वाधीन रहेंगे या स्वाधीनता की यज्ञाग्नि में भस्म हो जाएंगे।

अपनी बुलंद आवाज 'नहीं, मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी। जिसकी हिम्मत हो तो आजमा

ले।' के साथ वीरांगना लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से लोहा लेने को तत्पर हो गई। संपूर्ण बुंदेलखंड में आगामी क्रांति के लक्षण दिखाई देने लगे। सागर, नौगांव, बांदा, बानापुर, शाहगढ़ और कालपी में प्रतिशोध की भयंकर अग्नि प्रज्वलित होने लगी। अब तक झांसी की स्वतंत्रता अक्षुझण रही । झांसी की प्रजा शांत, सुखी और व्यवस्थित रही; किंतु डलहौजी ने स्वतंत्रता की उस मणि को अपहृत किया, पर लक्ष्मी ने मणि को उससे छीन लिया और विजय गर्व से राज्य–संचालन करती रही। कमलासना लक्ष्मी अब युद्ध देवी के रूप में शोभा पा रही थी। अब उसके युद्धोचित वेश से आंखें चौंधिया जाती थी। नखशिख तक वह शस्त्रों, युद्धोभूषणों से सजी थी। इन दिनों रानी की दिनचर्या इस प्रकार बताई गई है–? ''प्रातः पांच बजे से जागकर इत्र से सुगंधित जल से स्नान करती थीं। उसके बाद वस्त्र धारण करती थीं। साधारण तथा सफेद चंदेरी साड़ी उन्हें पसंद थी। तदनंतर पूजा पर बैठ जातीं। विधवा होते हुए भी प्रायश्चित्तर्घ्य देतीं, तुलसी वृंदावन में तुलसी की पूजा करती। उसके बाद पार्थिव पूजा होती। दरबारी संगीतज्ञ साम गायन करते। फिर कथावाचक कथा सुनाते। समाप्ति पर मांडलिक सरदार वंदना करते। दरबार के समय साढ़े सात सौ दरबारियों में जब कोई अनुपस्थित रहने का कारण पूछतीं। पूजा–पाठ के बाद प्रातराश (नाश्ता) करती। विशेष जल्दी का कार्य न होता तो नाश्ते के बाद एक घंटे आराम करतीं। उसके बाद भेंट में आए उपहार चांदी के थालों में रखें, रेशमी वस्त्रों से एके उनके सामने पेश किए जाते। उनमें पसंद की वस्तुओं को स्वीकार करतीं, जो को स्वीकार करतीं, जो नौकरों में वितरित करने के लिए कोठीवालों को दी जातीं। अपराह्न तीन बजे पुरूष वेश में दरबार में जातीं। उस समय की वेशभूषा होती–पाजामा, गहरे नीले रंग का कोट, सिर पर टोप और उसपर सुंदर सी पगड़ी बांधती–बूटे का काम किया हुआ दुपट्टा पतली कमर में बांधती, जिसमें रत्नजटित तलवार लटकती। इस वेश में वह साक्षात् गौरी मालूम देती थीं। पुरूष वेश के अतिरिक्त कभी–कभी स्त्री वेश के भी वस्त्र पहनतीं। विधवा होने के बाद सौभाग्य अलंकरण–नथनी आदि–वह धारण नहीं करती थीं। कलाई में हीरे की चूड़ियां, गले में मोतियों का हार और कनिष्ठा उंगली में हीरे की अंगूठी रहती। बालों का जूड़ा बांधती। सफेद साड़ी और सफेद कंचुकी पहनतीं। इस प्रकार दरबार में कभी पुरूष वेश, कभी स्त्री वेश में बैठतीं। दरबारी लोग उन्हें प्रत्यक्ष नहीं देख पाते थे। उनका कक्ष अलग होता था, जिसका दरवाजा दरबार में खुलता था। सोने के बेलबूटों से सज्जित द्वार पर सोने–चांदी के आवरण में लिपटे दो दंड धारण किए दो वेत्रधारी खड़े रहते; दीवान लक्ष्मणराव उस कमरे के सम्मुख महत्त्वपूर्ण कागजों को लेकर खड़े रहते और उनके पास दरबार का अमात्य बैठता।

''रानी बुद्धिमान थीं। बात के मर्म को शीघ्र ही ताड़ लेतीं। उनके निर्णय स्पष्ट, संक्षिप्त और निश्चित रहते। कभी–कभी वे अपने हाथ से आज्ञाएं लिखतीं। न्याय के समय वे बहुत

सावधान रहतीं। मुलकी तथा फौजदारी के निर्णय बड़ी योग्यता के साथ करतीं।

''बड़े भक्तिभाव से वे महालक्ष्मी के दर्शन करने जातीं। यह मंदिर एक तालाब के किनारे था, जिसमें सुंदर कमल खिले रहते। हर मंगलवार तथा शुक्रवार को मंदिर जातीं। एक बार मंदिर से लौटक्र रानी दक्षिणी दरवाजे से आ रही थीं। वहां हजारों भिखारी रास्ता रोककर खड़े थे। रानी ने मंत्री लक्ष्मणराव पांडे से कारण जानना चाहा। मंत्री ने बताया कि ये लोग अत्यंत गरीब हैं। जाड़े से परेशान हैं। रानी साहिबा से मदद मांगते हैं। दयालु रानी बहुत दुःखी हुईं। आज्ञा दी गई। चौथे दिन एक–एक कुरता, टोपी और कंबल सभी भिखारी तथा गरीबों को इकट्ठा करके रानी ने अपने हाथ से बांटा। नत्थे खां के साथ की लड़ाई में घायलों के घाव धोने के कार्य के लिए रानी हठ करतीं, अपने दुःख में रानी की ऐसी रूचि देखकर उनके घाव अच्छे हो जाते। मंदिर जाते यमय रानी की शोभा देखते ही बनती। कभी पालकी में तो कभी घोड़ें पर बैठकर जातीं। पुरूष वेश में साफे का छोर पीठ पर लहराकर शोभा पाता था। उनके आगे राजध्वज मारू बाजे के साथ चलता था। इस ध्वज के पीछे दो सौ गोरे घुड़सवार रहते। रानी के आगे–पीछे सौ–सौ सवार चलते, कभी सारी सेना जुलूस में रानी के साथ होती। रानी के निकलते ही नगाड़ा और शहनाई बजने लगते।''[159]

अब स्वराज्य का नगाड़ा गंभीर घोष कर रहा था। ग्यारह महीने से गूंजनेवाले इस स्वातंत्र्य घोष से संपूर्ण बुंदेलखंड भर गया था। नगाड़े के इस नाद का साथ कालपी से तात्या टोपे की तोपें दे रही थीं। व्रिध्य से यमुना तक ब्रिटिश सत्ता का कोई चिह्न दिखाई नहीं दे रहा था। कोई उसका–अंग्रेजी राज का–नाम भी नहीं ले रहा था। अब तो ब्राह्मण, मौलवी, सरदार, जागीरदार, सैनिक, पुलिस, राजा, राव, साहूकार और देहाती सभी की एक ही मांग थी, एक ही चाह थी–स्वाधीनता–प्राप्ति। इन सबको एक सूत्र में पिरोने का कार्य लक्ष्मीबाई ने किया। उनकी आवाज में वही दृढ़ता थी–'अपनी झांसी मैं नहीं दूंगी˙˙˙ ।।

संसार के सामने दृढ़तापूर्वक कहा गया 'नहीं' शब्द बहुत कम आया है। भारत के उदारमना लोगों के मुंह स`अब तक यही एक शब्द सुनाई देता आया है, ''मैं दूंगा।'' किंतु लक्ष्मीबाई ने यह विलक्षण जयघोष कियाा–''मैं नहीं दूंगी।' काश, यह आवाज भारत के हर मुख से गूंजी होती!

इसी समय सर ह्यू रोज पांच हजार सैनिकों को लेकर विद्रोहियों को दबाने झांसी की ओर चल पड़ा।

सन् 1857 के प्रारंभ में हिमालय से विंध्य तक के समूचे प्रदेश को जीतने की सैनिक योजना पुनः बनाई। यह प्रदेश दो हिस्सों में बांटा गया। प्रत्येक पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी गई। सर कैंपबेल इलाहाबाद से गंगा–यमुना के उत्तर की ओर अपनी बड़ी सेनाके साथ बढ़ा; दोआब जीता, गंगा पार कर लखनऊ को नष्ट–भ्रष्ट

[159] 1. दत्तात्रेय बलवंत पारसनी कृत–'रानी लक्ष्मीबाई का जीवनचरित', पृष्ठ 147–51 ।

किया, बिहार के विद्रोह को दबाया, बनारस के आसपास तथा अवध के बागियों को हराया, सब क्रांतिकारियों को—रूहेलखंड में जहां अंतिम मुठभेड़ हुई—भगाया, उत्तर प्रदेश को क्रांतिकारियों से मुक्त किया। इस सब बातों का उल्लेख पिछले अध्यायों में आ चुका है। जहां कैंपबेल यमुना से उत्तर में हिमालय की ओर बढ़ रहा था, वहां यमुना से दक्षिण में विंध्य तक का प्रदेश जीतने ह्यू रोज आगे बढ़ा। सिखों,, गोरखों तथा कुछ हिंदुस्थानी सैनिकों ने कैंपबेल की सहायता की। ह्यू रोज को विशेष रूप से मद्रास, बंबई तथा हैदराबाद की पलटनों की सहायता मिली। हिंदुस्थानी सैनिकों का सहयोग भी ह्यू रोज को मिला था। सच तो यह है कि मात्र अपनी शक्ति से विजय पाना अंग्रेजों के लिए असंभव था। दक्षिणी भाग को जीतने के लिए हिंदी सेना को दो हिस्सों में बांटा गया। एक भाग ब्रिगेडियर विटलॉक के अधीन रखा गया, जो जबलपुर से आगे बढ़कर मार्ग के सब प्रदेशों को जीतता हुआ ह्यू रोज से मिला। दूसरा भाग ह्यू रोज के ही अधीन था। योजना थी कि जब जबलपुर से विटलॉक चलेगा तभी वह मऊ से प्रस्थान करेगा और झांसी तथा कालपी होकर आगे बढ़ेगा। योजना के अनुसार 6 जनवरी, 1857 को ह्यू रोज मऊ से निकला। एक छोटी लड़ाई करके उसने रायगढ़ जीता। वहां से सागर गया। क्रांतिकारियों द्वारा बंदी बनाए गए गोरों को मुक्त कराया और दक्षिण जाकर 10 मार्च को बानापुर जीत लिया तथा चंदेरी का प्रसिद्ध किला भी जीत लिया। झांसी से चौदह मील की दूरी पर 20 मार्च को इस विजयी सेना ने डेरा डाला। इन मुठभेड़ों के कारण नर्मदा के उत्तर में देश भर में फैले क्रांतिकारी दस्तों की झांसी में भीड़ थी। इसीलिए रोज क्रांतिकारियों के अड्डे को नष्ट—भ्रष्ट करने झांसी की ओर चल पड़ा। इसी बीच लॉर्ड केनिंग तथा कैंपबेल ने उसे आज्ञा दी कि पहले वह चरखारी नरेश की सहायता करे, क्योंकि वह तात्या टोपे से घिरा था। लेकिन वह इस बात को मानता तो झांसी को नष्ट करने का उसका इरादा ही नष्ट हो जाता। बड़ी द्विविधा में था। परिस्थिति विकट थी। झांसी पर चढ़ाई करने में अंग्रेजी शासन का हित था। अतः इस हित को ही सर्वोपरि मान रॉबर्ट हैमिल्टन ने दोनों अधिकारियों की आज्ञा के उल्लंघन का अपराध अपने ऊपर ले लिया और अंग्रेजी राज के हित को ध्यान में रखकर झांसी पर चढ़ाई कर दी। किंतु झांसी की भूमि में पैठते ही उसे बड़े कष्ट उठाने पड़े। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी आज्ञा से आसपास का क्षेत्र उजड़वा दिया था, ताकि शत्रु को रसद न प्राप्त हो सके। न छाया के लिए पेड़ रहे, न खेतों में एक भी भुट्टा रहा; यहां तक कि घास का एक तृण भी नहीं छोड़ा था। जिस प्रकार नीदरलैंड के विलियम ऑफ ऑरेंज ने स्पेनवाले शत्रु के हाथ में देश जाने की अपेक्षा सागर के पानी को अंदर लेना ज्यादा पसंद किया, झांसी की रानी ने भी उसी नीति का अनुसरण किया।

रानी के स्वर में वही कठोरता, वही गर्जना है। बानापुर का राजा मर्दान सिंह क्रोध से उन्मत्त है, शाहगढ़ का राजा शूर ठाकुर जान हथेली पर लिये है, बुंदेलखंड के सरदार, देश की आजादी के लिए अड़े उनके अनुयायी–ये सभी प्रतिशोध की बग्नि में धधक रहे थे। राजध्वज 'जरीपटका' क्रोध की ज्वाला की तरह ऊपर उठ रहे हैं। इन सब शक्तियों का केंद्रीभूत रानी ही हैं। स्वराज्य की साक्षात् मूर्ति, जो दुर्गा की अवतार हैं।

उजाड़ भूमि में से भूख–प्यास का कष्ट उठाती हुई अंग्रेज सेना झांसी की ओर बढ़ रही है। धिक्कार है शिंदे तथा टिहरी नरेश को, जिन्होंने 'अंग्रेज निष्ठा' के कारण इस लड़ाई में सारी सेना को घास, ईंधन और फल–मेवों से भरपूर सहायता की।[160] शिंदे और टिहरी नरेश अंग्रेजों की सहायता कर रहे हैं। विश्वासघात और देशद्रोह का बोलबाला है। अब तुम्हारी विजय के आसार नहीं दिखाई देते। तो फिर क्यों न अंग्रेजों की शरण में जाकर सर्वनाश से बचतीं? पर क्या झांसी की रानी के मन में देशद्रोहियों, विश्वासघातियों के प्रबल जोर के कारण यह बात आएगी? क्या शरण लेने पर रानी ही क्या, महामंत्री लक्ष्मणराव, मोरोपंत, शूर ठाकुर, सरदार तथा सभी वीर बच जाएंगे। पर इनके स्वर–में–स्वर मिलाकर पूरी झांसी का उत्तर था–

'जातस्य कि ध्रुवो मृत्युः ̈ संभावितस्य चाऽकीर्ति मरिणादतिरिच्यते'–अर्थात् जो जन्म पाता है वह अवश्य मरता है, तो फिर व्यर्थ में कीर्ति को क्यों कलंकित किया जाए?

सो देश की आन–बान की रक्षा के लिए अंग्रेजों से लड़ना निश्चित रहा। झांसी की सेना अपनी रानी के साथ युद्ध की तैयारी में निमग्न हो गई। उसकी सेना में वीरों की कमी नहीं थी, पर कुशल, शिक्षित सैनिक कम थे। अनुशासन का भी अभाव था। फिर भी रानी ने संपूर्ण सेना का नेतृत्व किया। वह हर बुर्ज पर, हर द्वारा पर घूमती हुई नजर आती थीं। तोपों की कुरसियां बनने और उन्हें मोरचे पर लगाने की जगह वह स्वयं उपस्थित रहतीं। चतुर तोपचियों का चुनाव करने में वह संलग्न थीं। इधर–उधर घूमकर निराश हृदयों में उत्साह का संचार कर रही थीं। इधर झांसी की जनता में भी पूरा उत्साह था। झांसी के पंडित मंदिरों में स्वाधीनता के लिए प्रार्थनाएं कर रहे थे। पुजारियों ने रण में जानेवाले सैनिकों को आर्शीवाद दिए और घायल होने पर उनकी शुश्रूषा भी की। झांसी के कारीगर गोला–बारूद तथा युद्ध की अन्य सामग्री बनाने में व्यस्त रहते। झांसी की जनता ने तोपों के काम में भरपुर सहयोग दिया। बंदूकें भरने का काम किया और तलवारों की धारें तेज कीं। वहां की स्त्रियों ने भी पूरा सहयोग दिया–गोला–बारूद पहुंचाई, तोपों की कुरसियां बनाईं और समय पर रसद भी पहुंचाई। स्वयं ह्यू रोज ने अपनी आंखों देखा बयान किया है–''स्त्रियां तोपखाने में गोला–बारूद पहुंचाने आदि

160 1. मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 5, पृष्ठ 110 ।

कामों में व्यस्त दिखाई दीं।'' इस प्रकार रात को नगर भर में युद्ध के नगाड़े बजने लगे और किले के बीच में मशालें जलती दिखाई दीं। पहरेदारों ने पूरी चौकसी बरती। 24 का सेवरा हुआ। अब क्या देर थी। 'घन–गर्ज' तोप ने अपना काम शुरू किया। उसकी गर्जना बड़ी भंयकर थी।

झांसी के घेरे का आंखों देखा वर्णन दत्तात्रेह पारसनी कृत 'रानी लक्ष्मीबाई का जीवनचरित', पृष्ठ 187–193 के आधार पर इस प्रकार है–

''25 तारीख से दोनों ओर से बराबर मुठभेड़ शुरू हुई। अंग्रेजी तोपें दिन–रात आग बरसा रही थीं। रात को किले के अंदर और शहर में गोले गिरने लगे। बड़ा भयंकर दृश्य था। पचास–साठ पौंड का गोला टेनिस की गेंद की तरह, किंतु अंगार–सा दीख पड़ता था। दिन की धूप में ये अस्पष्ट दीखते थे, पर रात में खूब चमकते और रात को भयंकर बना देते थे। 26 तारीख की दोपहर को दक्षिणी द्वार की अपनी तोपें अंग्रेजों ने निकम्मी कर दी थी। एक भी व्यक्ति वहां नही टिक पाता था। सब धैर्य खो बैठे थे। तब पश्चिमी द्वार के तोपची ने अपनी तोप का मुंह घुमाया और अंग्रेजों पर गोले फेंकने लगा। तीसरे गोले से अंग्रेजों का कुशल तोपची मारा गया और तोप भी बेकार हो गई। इससे रानी ने प्रसन्न होकर तोपची को चांदी का कड़ा इनाम में दिया। उस बहादुर तोपची का नाम था–गुलाम गोश खान। नत्थे खां के साथ हुए युद्ध में भी उसने ऐसा ही काम किया था। ''पांचवे–छठ दिन उसी तरह युद्ध हुआ। चार–पांच घंटों तक रानी की तोपों ने अच्छा काम किया, अतः अंग्रेजों की तोपों की भीषण मार से रानी की तोपें बंद निकम्मी हुई। कोई वहां खड़ा नहीं हो सकता था। अंग्रेजों के गोलों में मुंडेर ढह पड़ी। किंतु रात मे ही कंबलों में छिपाकर ग्यारह राज वहां लाए गए और सुबह होने से पहले मुंडेर का काम पूरा हो गया। अंग्रेज इस व्यवस्था को देखकर दांतों तले अंगुली दबा गए। रानी की तोप ठीक काम कर रही है, इस बात से अंग्रेज बेखबर थे। उनको बहुत हानि उठानी पड़ी। उनकी तोपें लंबे अरसे तक बेकार रहीं।

''आठवें दिन सवेरे ही अंग्रेजों ने शंकर किले पर हमला किया। अंग्रेजों के पास आधुनिक दूरबीनें थीं। इनकी मदद से किले के जलाशय पर तोपों से आग बरसाने लगे। पानी लाने के लिए नियुक्त छह–सात कहारों में से चार मारे गए। शेष बरतन वहीं फेंक भाग गए। चार घंटे तक पानी न मिलने से बड़ा कष्ट हुआ। अब पश्चिमी तथा दक्षिणी द्वारों पर से गोलाबारी करके अंग्रेजी तोपों को बेकार कर दिया गया। उन तोपों के बेकार होने से ही पीने और नहाने का पानी मिल पाया। इमली कुंज में बारूद का कारखाना था। दो मन बारूद तैयार होते ही तहखाने में भेज दी जाती। उस कारखाने का तोप का

गोला पड़ा, तीस आदमी और आठ औरतें वहीं समाप्त हो गए। उस दनि घमासान लड़ाई हुई। तोपों और बंदूकों की कर्णभेदी आवाज कायरों के दिलों को फोड़े डाल रही थीं। तुरहियां और करताल जोरों से बज रहे थे। धूल और धुएं ने आकाश ढक लिया था। बुर्जों के कई तोपची तथा सैनिक मारे गए। उनके स्थान पर नए आ गए। रानी स्वयं भाग–दौड़कर बहुत कार्य कर रही थीं। हर छोटी–बड़ी बात पर रानी का ध्यान था। तुरंत आज्ञा होती। झट से कच्चे स्थान की मरम्मत हो जाती। रानी के इस व्यवहार से सैनिकों का हौंसला बढ़ता और वे जी–जान से लड़ते। इस कठोर प्रतिकार से अंग्रेज पर्याप्त शक्ति होने पर भी 31 मार्च (सन् 1858) तक किले में प्रवेश नहीं कर पाए।''

पग–पग पर संकटों का सामना था। युद्धकार्य में व्यस्त रानी लक्ष्मीबाई बड़ी उत्सुकता से एक दिशा की ओर उन्मुख होकर देख रही हैं। क्यों? रानी के होंठों पर मुस्कुराहट बिखर गई। मुस्कान मुद्रा के साथ आदेश हुआ। मान वंदना में तोपें दागो। गंभीर गर्जन की आवाज में विजय के ढोल बजने लगे। रणोल्लास से आकाश गूंज उठा। बात यह थी कि झांसी की सहायता के लिए तात्या टोपे सेना लेकर आ रहा है।

तात्या टोपे विंडहम और कानपुर को पराजित कर तथा कैंपबेल से पराजित होकर, गंगा पार कर नाना साहब की छावनी में पहुंच गया। यहां से आगे चलकर कालपी के निकट यमुना को पार किया। अतः उस देशद्रोही चरखारी नरेश पर आक्रमण कर दिया। तात्या ने उसे हराकर उससे जुर्माना वसूल किया, चौबीस तोपें छीन लीं। फिर वह कालपी की ओर मुड़ा। वहां उसे लक्ष्मीबाई का पत्र मिला, जिसमें झांसी पर पड़े अंग्रेजों के घेरे को तोड़ने की प्रार्थना थी। तात्या ने झांसी के प्रधानमंत्री रावसाहब को पत्र भेजा और उनकी आज्ञा पाते ही अंग्रेजों की पिछाड़ी पर टूट पड़ा। इसी सहयोग से रानी के होंठों पर मुस्कुराहट दौड़ गई। बचपन में तात्या और लक्ष्मीबाई ब्रह्मवर्त के राजमहल में साथ–साथ खेला करते थे। और आज भी वे सजग होकर खेल रहे हैं–युद्धभूमि में। रानी झांसी की घेराबंदी में आग की लपटों में खड़ी हैं और तात्या बाईस हजार की सेना के साथ बेतवा के पास खड़ा है। बचपन के उनके खेल पर कौन ध्यान देता था। आज सारा विश्व उनके इस रण–खेल को देख रहा है।

इतनी बड़ी सेना को लेकर तात्या को आते देख अंग्रेज घबरा गए। उस समय थोड़े सैनिक होने से उन्हें बड़ा धोखा था, क्योंकि समाने से लक्ष्मीबाई सामना कर रही थी और पीछे से तात्या पिछाड़ी दाब रहा था। तात्या शेर अपने बाईस हजार पंजों से अंग्रेजों पर टूट पड़ रहा था। जैसे ह ीवह शेर झपटने को था कि उसके बाईस हजार पंजे लुंज–पुंज हो गए। बिना पंजों के शेर क्या करता? उसके सैनिकों ने बेतवा के किनारे कायरता का बड़ा लज्जास्पद प्रदर्शन किया। रानी का सामने से और तात्या का पीछे से

अंग्रेजों को घेरना सचमुच सराहनीय कार्य था। अंग्रेजों को निराशा हो रही थी, फिर भी अंग्रेजों ने तात्या पर हमला किया, झांसी पर तोपों से आग बरसाई और इस प्रकार क्रांतिकारियों के दोनों मोरचों को अंग्रेजों ने ठंडा कर दिया। शिवाजी या कुंवर सिंह के रणधीर योद्धाओं की तरह हमला होता तो यह निश्चय था कि यूनियन जैक तथा उसके अनुयायियों की लाशों पर गिद्धों को दावत मिलती। पर हाय री कायरता! कायर सैनिक आगे बढ़ने से हिचकिचाए। तोपों से एक गोला भी न चला। सेना और सेनापति बुरी तरह डरकर भाग गए। इस गड़बड़ से बहुत सी युद्ध सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी। तात्या की सभी तोपें रखी गईं और पंद्रह सौ सैनिक मारे गए–भागते हुए एक हजार पांच सौ मरे। भागते हुए कायरों की मौत मरने की अपेक्षा हिम्मत से सामना करते हुए मरते तो उसकी सेना का सफाया निश्चित था और सच्ची वीरगति पाकर हुतात्मा बनकर यश के भागी बनते। फिर भी, हम तुम पर यों तरस खाते हैं कि कैसे ही सही, तुम लोग स्वतंत्रता के लिए ही मारे गए हो। परमात्मा तुम्हें क्षमा करे। वीर तात्या के कायर सैनिकों! तुम्हारी मृत्यु से देशवासियों को इतना पाठ अवश्य मिलेगा कि जो जीने के लिए भागते हैं, वे मारे जाते हैं और जो मरने के लिए रणक्षेत्र में जूझते हैं, वे जीवित रहते हैं, अमर हो जाते हैं।

रानी लक्ष्मीबाई मृत्यु को चुनौती देती हुई जूझ रही थीं। पर सरदारों, ठाकुरों और सिपाहियों ने एकाएक लाचारी दिखाई। नौ दिन और नौ रातें आग बरसाती हुई तोपों के सामने ये लोग खड़े रहे। इन्हें आशा थी कि तात्या टोपें की दैवी सहायता अचानक ही मिलेगी और ज बवह आया तो इन्होंने आनंद के नारे लगाए। 1 अप्रैल को तात्या की हार हुई, तब उनका आनंद ही नहीं, विजय की आशा ही मिट गई। जिस रसद को विश्वासघाती शत्रु के हाथ से हजारों सैनिकों का बलिदान देकर छीना था, वह अब अनायास ही गोरों के हाथ लग गई। तात्या की तोपें तथा गोला–बारूद अंग्रेजों के हाथ लगे। फिर भी निराशा क्यों? विजयी होकर शत्रु न जीने दे तो भी मृत्यु के बाद की अमर कीर्ति को वह तुमसे नहीं छीन सकता। हे वीरों! दृढ़ निश्चय करके वीरता की मूर्ति रानी के मुख से उसका स्वर सुनो–

''अब तक झांसी पेशवा के बलबूते पर नहीं जूझ रही थी। आगे युद्ध जारी रखने के लिए भी उनके सहयोग की विशेष आवश्यकता नहीं है। अब तक तुमने आत्माभिमान साहस, दृढ़ता एवं वीरता का सराहनीय परिचय दिया है। अब भी तुम उसी तरह काम लो। और मैं तुमसे आग्रह करती हूं कि धैर्य और प्राणपण से लड़ो।''

''हां, प्राणपण से लड़ो। मारू बजने दो। वीर गर्जन से आकाश गूंजने दो। बड़ी–बड़ी तोपों को धड़धड़ाने दो। 3 अप्रैल क प्रभात किरणें पृथ्वी पर आ चुकी हैं और अंग्रेजों का आखिरी हमला झांसी पर हो चुका है। चारों ओर से उनका दबाव बढ़ गया

हैं। इसलिए अब डटकर प्राणपण से लड़ो। देखो, युद्ध की देवी ने कैसी तलवार संभाली है और वीरता की पराकाष्टा दिखाने के लिए शत्रु के हरावल को विचलित कर रही है! रानी बिजली की तरह घूम रही हैं। किसी को सोने के कड़े, किसी को पोशाक बांट रही हैं। किसी की पीठ ठोकती है तो किसी को अपनी मुस्कान से उत्साहित कर रही हैं। गुलाम गोश खां और कुंवर खुदाबख्श, तोपों से आग बरसाओ। शत्रु मुख्य द्वार तोड़ रहा है, किलाबंदी तोड़ रहा है, आठ जगह नसैनियां लगाई गई हैं। 'हर–हर महादेव' की गूंज के साथ किले से, बुर्जों से, हर घर से गोलियों की बौछार हुई। बाढ़ों का तांता बंध गया। तोपें लाल गोले उगल रही हैं। आवाजें आती हैं–फिरंगी को मारो'। यह देखो, क्या यह युद्ध देवता है या रणचंडी, काली माता स्वयं भीषण युद्ध कर रही हैं। लेफ्टिनेंट डिक और लेफ्टिनेंट माइकल जोहान सीढ़ियां चढ़ रहे हैं और अपने आदमियों को चढ़ने के लिए ललकार रहे हैं। तोपों का धड़ाका हुआ। साहसी अंग्रेज काल के गाल में चले गए। और कोई है उनके पीछे आनेवाला? लेफ्टिनेंट बोनस और लेफ्टिनेंट फॉक्स, तुम मरना चाहते हो? बड़ी कठिनाई से चढ़े हुए इन चार वीरों को गिरते देख नसैनियां भी कांपने लगीं। अंग्रेजों ने पीछे हटने का बिगुल बजाया । सेना पीछे भागी। हर सिपाही चट्टान की ओट लेकर छिपते हुए भागा।

इस तरह प्रमुख द्वार पर डटकर प्रतिकार हुआ। उधर दक्षिण बुर्ज पर कोई कराह रहा है। मालूम पड़ता है, विश्वासघाती नीच ने मोरचा द्वार गंवाया होगा। यह सच है कि अंग्रेजों ने देशद्रोहियों के बल पर ही फतह पाई है और अंग्रेज बुर्ज पर चढ़कर फुरती से आगे बढ़ रहे हैं। उस दिन सबके मन में एकमात्र भाव था–'मारेंगे या मरेंगे।' अंग्रेजों ने शहर में मार–काट मचा दी। एक के पीछे एक मोरचे पर कब्जा करते गए। कत्ल, आगजनी और विध्वंस का बाजार गरम था। वे राजमहल तक पहुंचे। राजप्रासाद पर अधिकार कर हजारों रूपए लूटे गए। पहरेदारों को मार डाला गया। ईंट–से–ईंट बजा दी गई। आखिरकार झांसी अंग्रेजों के हाथों में चली गई।

परकोटे पर खड़ी रानी ने एक बार झांसी पर दृष्टि डाली। दक्षिण दरवाजे पर हुए भीषण कांड का दृश्य उनकी आंखों में तैर गया। शत्रु के स्पर्श से उनकी झांसी अपवित्र हो गई। क्रोध से रानी पागल हो उठीं। आंखों से क्रोध की चिंगारियां छूट रही थीं। उन्होंने अपनी तलवार संभाली, हजार–पंद्रह सौ सैनिक साथ लिये और किले को चल पड़ीं। अपने बच्चे को छेड़नेवाले पर भी शेरनी इतनी फुरती से नहीं झपटती जितनी तेजी से वह दक्षिण द्वार पर तैनात अंग्रेजों पर झपटीं। तलवारों से तलवारें भिड़ गई। दोनों दल थोड़ी देर के लिए एक–दूसरे में समा गए। खनाखन की मार बजी, बहुत से गोरे मारे गए। शेष शहर की ओर भागे और ओट में छिपकर शिकार खेलने लगे। फिरंगी के खून से उस महाकाली का क्रोध कुछ शांत हुआ। ध्यान में आया कि किले से इतनी

दूर अकेली का लडत्रना महामूर्खता थी। अब इस असाधारण साहिसिक वीरता की प्रतिध्वनि शहर के हर रास्ते से मिलेन लगी। हालांकि सारा शहर, राजप्रासाद अंग्रेजों की तलवारों ने खून से रंग दिया। उनमें से हर वीर ने अपनी शक्ति भर अधिक–से–अधिक गोरों का सामना किया। उनके मर–मिटने पर ही घुड़साल शत्रु के हाथ लगी। अंग्रेजों ने अब तक शहर को खंडहर बना डाला था। उनके सामने जो भी आता–भले पांच वर्ष का बालक हो या अस्सी साल का बूढ़ा–उनकी तलवार का शिकार हो जाता । नगर भर आग से जल उठा। घायलों, मरनेवालों की चीखों से आकाश गूंज उठा।

किले का परकोटा बहुत पक्का होने के कारण अंग्रेजों ने उसे तोड़ने का विचार दूसरे दिन का रखा। रानी परकोटे पर खड़ी करूणापूर्ण दृश्य को देख रही थीं। उन्हें अत्यंत दुःख हुआ। उनकी आंखे डबडबा आईं। रानी लक्ष्मीबाई रोईं। उनकी सुंदर आंखें रोने से लाल हो गई। उसकी झांसी की यह दशा! एक बार फिर सिर ऊंचा करके देखा, झांसी की किलाबंदी पर पराधीनता का दाग, फिरंगी का झंडा गाड़ा गया है। उन रोनेवाली आंखों में एक विलक्षण तेज चमक उठा। धन्य हैं वे आंखें, वह हृदय और वह धैर्य! इतने में बेतहाशा दौड़ता हुआ एक दूत आया और कहने लगा, ''रानी सरकार! किले के प्रमुख द्वार–रक्षक सरदार कुंवर सिंह, दोनों तोपचियों खुदाबख्श और गुलाम गोश खां को अंगेजों ने गोली से उड़ा दिया है।'' पहले से ही दुःखी हृदय पर यह कितना भयंकर आघात! संकट–पर–संकट आ रहे हैं। रानी का अब एक ही निश्चय है–स्वाधीनता की कौस्तुभ मणि झांसी की लक्ष्मी के गले से नहीं गिरनी चाहिए। उस दूत से, जो एक बूढ़ा सरदार था, रानी न कहा, ''देखो, मैं इस किले में अपने हाथों बारूद के भंडार में आग लगाकर बाहर निकल जाना चाहती हूं।'' अपने जरीपट के साथ स्वाधीनता के झंडे को लिये हुए या तो वह राजसिंहासन पर विराजमान होंगी या फिर चिता पर। यह सुनकर उस बूढ़े सरदार ने शांति से कहा, ''सरदार, यहां रहना अब खतरनाक है। शत्रु की छावनी को चीरकर आपको आज रात किला छोड़कर चले जाना चाहिए और पेशवा की सेना में पहुंचना चाहिए। और यदि मार्ग में ही मृत्यु मिल जाए तो समरांगण–तीर्थ की पवित्र धारा में गोता लगाकर स्वर्ग द्वार में प्रवेश हो सकता है।''

''मैं मैदान में लड़ते–लड़ते मरना अधिक पसंद करती हूं।'' रानी का जवाब था, ''किंतु मैं स्त्री हूं। मेरे शरीर की कहीं विडंबना हुई तो?''

यह सुनकर सब सरदारों ने एक स्वर से कहा, ''जब तक हममें से एक भी जीवित है तब तक आपके शरीर को छूनेवाले के टुकड़े–टुकड़े कर दिए जाएंगे।''

रात हुई। रानी ने अपनी प्रजा को बुलाकर अंतिम बार आर्शीवाद दिया। रानी

का झांसी छोड़ने का इरादा देख प्रजा की आंखें गीली हो गई, शायद फिर न लौटें। रानी ने चुनिंदा घुड़सवारों को अपने साथ लिया। आभूषणों से सजाया हुआ एक हाथी उनके बीच रखा गया। 'हर–हर–महादेव' के घोष के साथ वे किले से उतरने लगीं। पुरूष वेश बनाया था। फौलादी कवच ने शरीर की रक्षा की थी। कमरबंद में एक जमिया पड़ा था और एक पैनी तलवार लटकर रही थी। अंचल में एक प्याला बंधा था, रेशमी धोती से पीठ पर उनका दत्तक पुत्र दामोदर बंधा हुआ था। सफेद घोड़े पर सवार रानी साक्षात् लक्ष्मी लगती थीं। उत्तरी दरवाजे के निकट पहुंचने पर देशद्रोही टिहरी नरेश के पहरेदार ने टोका, ''कौन है?'' ''टिहरी की सेना सर ह्यू रोज की सहायता के लिए कूच कर रही है।'' उत्तर मिला और प्रहरी ने जाने दिया। रानी आगे बढ़ीं। एक गोरे प्रहरी को ीाी इसी तरह टाला गया। रानी के अंगरक्षकों में एक दासी, एक बारगीर और दस–पंद्रह घुड़सवार थे। इस तरह से यह सेना शत्रु की छावनी की बीच से कालपी तक सुरक्षित पहुंच गई। किंतु रानी के अन्य घुड़सवारों को संदेह में अंग्रेजों ने रोका और वहीं ठन गई। मोरोपंत तांबे घायल होने पर भी दतिया तक निकल गए; किंतु दतिया के देशद्रोही दीवान ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और अंग्रेजों को सौंप दिया। अंग्रेजों ने उन्हें फांसी के झूले पर झुला दिया।

लक्ष्मी ने घोड़े को एड़ लगाई, क्योंकि लेफ्टिनेंट बॉकर चुने हुए घुड़सवारों के साथ रानी को पकड़ने के लिए पीछा करता हुआ आ रहा है। हे रानी के अश्व! तुम्हारी पीठ पर जो पवित्र निधि है उसकी रक्षा के लिए पूरा बल लगाकर दौड़ो। देश के मानव भले ही देशद्रोही बनें, पर देश के पशु तुम तो ईमानदार ही रहोगे। तुम्हारे पशुत्व के आगे देशद्रोहियों के मनुष्यत्व पर हजार बार लानत है। और हे रजनी! तुम भी रानी और घुड़सवारों को छिपाने के लिए अपनी काली चादर फैला दो! और हे भारत के मार्ग! तुम उस घोड़े को कोई बाधा मत देना। और आकाश में चमकते तारागणों! शत्रु को प्रकाश मत दो। हां, इतना प्रकाश अवश्य दो कि कमल के समान कोमल रानी उत्साह के साथ अपने मार्ग पर अग्रसर हो सकें। अब उषा का आगमन हुआ है और वीर रानी, तुम वायु के पंखों पर रात भर उड़ी चली आ रही हो। सो अब मंडेर गांव के पास कुछ विश्राम लो। वहां का लंबरदार तुम्हारे प्यार दामोदर को खिलाएगा।

सुबह का नाश्ता करके रानी तुरंत कालपी की ओर चल पड़ीं। लेकिन पीछे से गुबार उड़ रहे हैं। रानी, घोड़े को तेज करो, दामोदर को संभालो और आगे बढ़ो। अपनी तलवार संभालों। बॉकर नजदीक आ चुका है। ं तो नीच बॉकर, अपनी नीचता का पुरस्कार ले! तलवार उठी और बॉकर लड़खड़ाता हुआ घोड़े से गिर पड़ा। पीछा करनेवाले अंग्रेज और रानी के दस–पंद्रह घुड़सवारों में प्राणघातक मुठभेड़ हुई। उनमें से जो बचे वे लक्ष्मी की रक्षा के लिए आगे बढ़े। घायल बॉकर और उसके साथियों ने पीछा करने

से मुंह मोड़ लिया । भारत माता की तलवार विजयी होकर चमकती हुई आगे बढ़ीं। आकाश में सूर्य और धरती पर लक्ष्मी–दोनों आगे बढ़ रहे थे। दोपहर हुई। रानी नहीं रूकीं। सांझ हुई। सूर्यदेव थककर क्षितिज के पीछे जा छिपे। रानी नहीं थकी। वह बढ़ती गई। दौड़ते–दौड़ते रानी कालपी पहुंची। एक सौ दो मील का सफर और वह भी बॉकर जैसे योद्धा के साथ जूझते हुए–पीठ पर एक बालक का बोझ लेकर रानी ने तय किया। वह घोड़ा कालपी तक रानी को सुरक्षित पहुंचाने के लिए ही प्राण धारण किए हुए था। अमूल्य रत्न को अपनी पीठ पर से उतारने के बाद वह लड़खड़ाता और स्वर्ग सिधार गया। छह आदमियों को उसकी अंतिम क्रिया में तुरंत लगाया गया। वह घोड़ा रानी को अत्यंत प्यारा था। जिस घोड़े ने इतनी ईमानदारी से अपने प्राण देकर भी अपने जिस कर्तव्य का पालन किया, उसकी स्मृति सदा के लिए प्यारी रहेगी।

रानी ने सवेरे तक आराम किया। सुबह रानी और राव साहब पेशवा का हृदयवेधक साक्षात्कार हुआ। दोनों को अपने पूर्वजों का स्मरण हुआ, जिन्होंने असंभव को संभव बनाने के लिए बड़े–बड़े काम किए। ऐसे महापुरूषों में जन्म लेने का सौभाग्य दोनों को प्राप्त था उन्हें इस बात से प्रेरणा मिलती थी मराठों का झंडा अटक पर लहराने का कारण था–शिंदे, होलकर, गायकवाड़, बुंदेले और पटवर्द्धन का स्वराज्य के लिए अपने प्राणों के उत्सर्ग के लिए कृतसंकल्प होना। जिसके लिए उनके पूर्वजों ने अपना खून बहाया था, उसी झंडे, उसी स्वराज्य के लिए शुरू हुए युद्ध को अंत तक निभाने के लिए दोनों ने प्रण किया। स्वदेश को भ्रष्ट करनेवालों से वह युद्ध लड़ा जा रहा था। पुनः लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे ने घनघोर संग्राम की सिद्धता के लिए युऋ्द शुरू किया।

इन दोनों को युद्ध में तत्पर छोड़ अब हम ब्रिगेडियर विटलॉक की गतिविधि पर सरसरी निगाह डालेंगे, जिसे हम कुछ पहले छोड़ चुके हैं। नर्मदा तथा गंगा–यमुना के प्रदेश को फिर से जीतने के लिए दो सेनाएं चली थीं। उनमें एक ने ह्यू रोज के नेतृत्व में झांसी को जीत लिया। झांसी जीतने के बाद वहां अराजकता फैली। लूट के काम में तो नादिरशाह की बराबरी की गई। मंदिर–मूर्तियां तोड़ी गई। भयंकर हत्यकांड हुआ। उसके बाद मुहिम जारी रखने के लिए यह सेना कालपी की ओर बढ़ने वाली थी। इसका अंतिम भाग पूरा करने का भार ब्रिगेडियर विटलॉक को सौंपा गया। विटलॉक काली पलटन, गोरा और काला रिसाला और उत्कृष्ट तोपखाना था। बड़ी शान के साथ उसने सागर में प्रवेश किया। अंग्रेजभक्त आरेछा नरेश उससे मिला। यहां से यह सेना बांदा के नवाब को जीतने चली, जो उस प्रांत के मुख्य क्रांति–नेता थे। क्रांति की पहली लहर में झांसी, सागर और अन्य स्थानों में क्रूर कत्ल थे। वहां के गोरे जहां शरण मिली वहां जान बचाने भाग गए। बांदा के नवाब ने उन्हें अपने राजमहल में सुरक्षित रखा था और

उनकी अच्छी तरह देखभाल की थी। किंतु साथ ही क्रांति के धमाके से थर्रानेवाली ब्रिटिश सत्ता के सभी चिह्न मिटा दिए थे और स्वतंत्र नरेश की हैसियत से राज्य कर रहा था। जब उसने देखा कि अंग्रेजी सेना उसका राज्य छीनने आ रही है तो अपनी प्रजा से युद्ध में सहयोग के लिए अनुरोध किया। कई मुठभेड़ों के बाद हारकर नवाब अपनी सेना के साथ कालपी चल पड़ा। 19 अप्रैल को विजयी विटलॉक ने बांदा में प्रवेश किया। अब किरवी के राव पर चढ़ाई होनेवाली थी। किरवी नरेश माधवराव की अवस्था दसवर्ष की थी और अंग्रेज उसके रक्षक बने थे। बाजीराव पेशवा किरवी नरेश के निकट संबंधी थे। सन् 1827 में अनंतराव–तत्कालीन किरवी–नरेश–ने काशी के मंदिरों में दान करने के लिए दो लाख रूपए जमा कर दिए थे। अनंतराव के मरते ही अंग्रेज सारी रकम हड़प कर गए। इससे कोईसबक न लेकर उनके पुत्र विनायकराव ने भी कई लाख रूपए की रकम अंग्रेजों को सौंपने की मूर्खता की। वह रकम भी अंग्रेज हड़प गए। विनायकराव के मरने पर उनका दत्तक पुत्र माधवराव नागलिग था। रियासत का प्रबंध अंग्रेजों के हाथ में था। प्रधान कर्मचारी रामचंद्रराव अंग्रेजों द्वारा नियुक्त थ। इस दशा में किरवी रियासत में विद्रोह की आशा अंग्रेजों को नहीं । किंतु सन् 1857 में इन राव उमरावों ने जो कुछ किया उससे इनकी प्रजा सहमत नहीं थी। किंतु सन् 1857 में इन राव उमरावों ने जो कुछ किया उससे इनकी प्रजा सहमत नहीं थी। प्रत्यक्ष–परोक्ष दोनों तरह से देश की सच्ची शक्ति–जनता–का बल सदियों से कुचला जाने के बाद भी अपना असर जमाने की भरसक चेष्टा कर रहा था। किरवी के जमींदार, धर्मगुरू, व्यापारी, यहां तक कि मामूली–से–मामूली आदमी भी स्वाधीनता के आदर्श से प्रभावित था। और दिल्ली के स्वतंत्र होने का समाचार सुनकर आनंद से उछल पड़े थे। दूसरे दिन लखनऊ स्वतंत्र घोषित हुआ। तीसरे दिन झांसी द्वारा फिरंगी झंडे को उखाड़ फेंकने का समाचार मिला। इन आशाप्रद घटनाओं–समाचारों से उत्साहित होकर लोगों ने किरवी के स्वतंत्र होने की घोषणा की; और विदेशी कंधावर को राव की सम्मति तथा मंत्रियों के आज्ञा के बिना ही बाहर फेंक दिया। जब जनता द्वारा आजादी की घोषणा के विरूद्ध कुछ भी न किया था, बल्कि उसने अंग्रेजी सेना को उस समय अपने राज्य के सस्वागत आने का निमंत्रण दिया। तब अंग्रेजी सेना बुंदेलखंड में लौट आई। निमंत्रण पाकर अंग्रेजी सेना किरवी राज्य में चुपचाप चली आई; किंतु नाबलिग राव को बंदी बनाने के अपवित्र उद्देश्य को लेकर उसकी राजधानी खंडहर करने, राजमहल को विध्वंस करने और पैशाचिक लूट, अग्निकांड आदि के द्वारा प्रतिशोध लेने।[161]

[161] 1. सं. 48 राव के किए इस अन्याय के विषय में मैलसन को मानना पड़ा है कि ''विटलॉक के सैनिकों पर एक भी गोली न चली, तो भी उसने निश्चय कर लिया था कि उस नाबालिग राव को

किरवी रियासत खालसा में मिलाई गई। विजित प्रदेश में 'शांति' स्थापना के लिए विटलॉक महोबा में छावनी डाल रहा था। दरअसल उसने अपनी मुहिम पूरी की थी। बुंदेलखंड का पूर्वी भाग जीत लिया था। एक–दो छोटी जगहों में शांति कायम करने के लिए कुछ दस्ते भेजे थे। अब विटलॉक को यहीं छोड़ झांसी की रानी के पवित्र चरणों का दर्शन करें।

अब रानी ने पेशवा की सेना के साथ कालपी से बयालीस मील दूर कंच गांव को कूच किया। लेकिन ऐसा अनुमान है कि रानी की सूचना के अनुसार सेना की व्यूह–रचना राव साहब ने नहीं की थी। ध्यान रहे, राव साहब या तात्या टोपे के लिए पूरी तरह प्रबंध करना असंभव–सा था। यद्यपि उनके साथ बांदा का नवाब, शाहगढ़ नरेश, बानापुर के राजा–ये सब एक ही झंडे के नीचे इकट्ठे हुए थे; फिर भी एक विशाल सैनिक संगठन के अंतर्गत अनुशासित होकर नहीं आए थे। कोई ऐसा संगठन नहीं थाा जो एक स्वर से संचालित हो, एक सुनिश्चित विधान के अनुसार चले। प्रत्येक अपनी अलग योजना बनाता, इससे किसी की योजना पर पूरा अमल न हो पाता था। दूसरी ओर शत्रु दल के नेताओं में कोई झगड़ा न था; उनका संगठन व्यवस्थित और अच्छी तरह अनुशासित था। सर ह्यू रोज के सेनानी नियुक्त होने से पहले अफवाहों और मतभेदों का बाजार गरम रहा। लेकिन एक बार जब उसकी नियुक्ति हुई कि उसका मत ही सबका मत था। वह जो भी आज्ञा देता वह ठीक मानी जाती, उसका पालन होता। किसी साधारण सेनानी की आज्ञा का भी, चाहे वह गलत ही हो, पालन एकता के साथ हो तो सफलता निश्चित ही है। इसके विपरीत, यदि सैनिक अपनी सनक को महत्त्व दें, शासन में संगठन न हो, सुयोग्य सेनानी की विचारपूर्ण आज्ञा भी पराजय का कारण बनती है। यदि यह तथ्य गलत है तो कंच गांव में जो पराजय हुई, वह कभी न होती।

झांसी सेसर ह्यू रोज के आते ही क्रांतिकारियों से कंच गांव में मुठभेड़ हुई। दोपहर की कड़ी धूप गोरे सह नहीं सकते, यह जानकर क्रांतिकारियों के एक आज्ञापत्र में लिख था–''सवेरे दस बजे के पहले फिरंगियों से कोई मुठभेड़ न करे, सदा ही दस के बाद लड़ाई हो।''इस सूझ–बूझकर आज्ञा का उस दिन पालन हुआ। जैसाकि अन्य स्थानों में हुआ था, दस बजने के बाद जहां लड़ाई शुरू होती, अंग्रेजों की छावनी में कुहराम मच जाता, आज ऐसा ही हुआ। इसपर भी कंच गावं में क्रांतिकारियों की हार हुई और उन्हें कालपी की ओर हटना पड़ा। जिस सराहनीय ढंग से पीछे हटे, जिस संगठित ढंग से

162

[162] – बागी माना जाए। इस नीचता का कारण यह था कि गोरे सैनिकों को उनकी कठिन लड़ाइयों तथा चिलचिलाती धूप में कष्ट उठाने का पुरस्कार किरवी के खजाने में ही भरा पड़ा था। वहां के तहखाने आदि में अनमोल हीरे तथा जेवरात थे। इस संपत्ति के लालच में यह अन्याय किया गया।''

–के एवं मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 5, पृष्ठ 140–41

मोरचे छोड़ते गए, शत्रु ने इसकी अत्यंत प्रशंसा की है।[163] काश, यह असंगठन अनुशासहीनता पराजय से पहले दूर कर दी जाती! इसके बाद क्रांतिकारी कालपी पहुंचे और पराजय का दोष एक–दूसरे पर मढ़ने लगे; पैदल सेना ने रिसाले को कोसा, सिाले ने झांसीवालों की निंदा की और सब मिलकर तात्या टोपे की गलती बताई।

किंतु इस आपसी बखेड़े को देखने तात्या कालपी पहुंचा ही न था। वह तो जालवण के पास चरखी गांव में अपने पिता से मिलने गया था। ध्यान रहे, रास्ते में ग्वालियर पडत्रता है, उसके बाद वह और कहां जा सकता है? हम आशा करते हैं कि पिता–पुत्र की भेंट अत्यंत प्रेमपूर्वक तथा आनंद से हो; और फिर इस महान् क्रांतिकारी नेता को अपनी योजनाओं के कार्यान्वयन में यश प्राप्त हो।

इस मनचाही यात्रा में तात्या के चले जाने के बाद रानी लक्ष्मीबाई पेशवा के शिविर में गईं। कंच गांव के पराभव से पेशवा को बड़ा दुःख हुआ। अपने ओजपूर्ण शब्दों से उनकी उदासी को दूर करते हुए तथा धीरज बंधाते हुए वीरांगना रानी ने कहा, ''आप यदि सेना को फिर से संगठित करें तो शत्रु उसपर कभी विजय नहीं पा सकता।'' रानी के शब्दों से बांदा के नवाब को उत्साह प्राप्त हुआ। ओजपूर्ण शब्दों में रचे घोषणापत्र फिर से क्रांति–सेना में वितरित हुए । आज यमुना के किनारे भीड़ जमा हो रही थी। तलवारें और तोपें चमकती हैं; मातृभूमि की साधना में रत सिपाही यमुना मैया से आशीर्वाद मांग रहे हैं। इस तरह का मेला यमुना किनारे पहले कभी किसी ने नहीं देखा होगा। सब ओर मातृभूमि और धर्म की जय–जयकार हो रही है–''जय यमुना मैया! तुम्हारा पवित्र जल हाथ में लेकर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि फिरंगी नष्ट होगा। देश स्वतंत्र होगा। स्वधर्म की पुनःस्थापना होगी। मां यमुना! यह सब होगा, तभी हम जिंदा रहेंगे, नहीं तो रणभूमि में सदैव के लिए सो जाएंगे। कालिंदी माता, हम तीन बार प्रतिज्ञा करते हैं।''

तीन बार शपथ ग्रहण किए वीरों! मैदान में बढ़ो। रण–लक्ष्मी तुम्हें उत्तर की ओर बुला रही है। राव साहब सारी सेना का नेतृत्व करेंगे। ह्यू रोज के नेतृत्व में चलने वाली

[163] सं. 49 ''फिर बागियों ने वह काम किया जिसकी प्रशंसा उनके शत्रुओं को भी करनी पड़ी। पीछे हटने का कार्यक्रम उन्होंने इस तरह पूरा किया कि उसका जोड़ पाना असंभव है। अंग्रेज अफसरों ने उन्हें जो पाठ अच्छी तरह पढ़ाए थे, उनको ठीक तरह ध्यान में रखा गया था। किसी प्रकार की जल्दबाजी, अव्यवस्था तनिक भी न थी, पीछे भागने का नाम नहीं। रणक्षेत्र का संचालन आदि सबकुछ व्यवस्थित था। दो मील लंबी मुठभेड़ का हरावाल हाने पर भी किसी पर भी किसी जगह घबराहट नहीं थी। सैनिक गोली चलाते, फिर पीछे की पाती की ओर दौड़ते और अपनी बंदूकें भरते। फिर आगेवाले गोलियां चलाते और पीछे अपनी जगह पर हट जाते। पीछा करनेवाले यदि बहुत जोर करते तो वे डटकर खड़े हो जाते और घमासान लड़ाई पर मजबूर करते।''–मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 5, पृष्ठ 124 । (शत्रु द्वारा की गई इस प्रशंसा से ''पांडे' की सेना का श्रेष्ठतव निखर पड़ता है।)

25वीं पैदल पलटन को भगा दो। ये सब अहिंदी हैं—इन देशद्रोहियों को भगा दो। यह मेजर आर्क बढ़ा क्या? उसकी भी वही गत कर दो। कालपी के सामने के मैदान में हिलोरनेवाले हिस्से की सेना को सुरक्षित रखने पर हमारी स्थिति लगभग अजेय है। दिखो, सेना मुख पीछे हट रहा है। वह बहुत अधिक आगे बढ़ गया था और पीछे से पूरी सहायता न मिलने पर उसे पीछ हटना पड़ा है। रान लक्ष्मी, तुम उनकी रक्षा के लिए दौड़ो। तलवार हाथ में लिये हुए अपनी सेना को बचाने बिजली की तरह वह दौड़ पड़ी। अंग्रेजों के दाएं पार्श्व पर लाला गणेवेशधारी सवारों के साथ टूट पड़ी। अंग्रेज एकदम ठंडे पड़े—हमला इतना जोरदार था! लाचार हो पीछे हटने लगे। इक्कीस साल की लड़की की बिजली—सी झपट, उसके घोड़े का वायु वेग से दौड़ना, दांह—बाएं गाजर मूली की तरह उसका अंग्रेजों को काटना—इन सबको देख कौन होगा जो लड़ने को तत्पर न होगा? रानी ने अपने रण—कौशल से सभी क्रांतिकारियों का उत्साह बढ़ाया। भीषण युद्ध शुरू हुआ। हलकी तोपों पर धावा बोल दिया। तोपची भागे। घोड़ों पर चलनेवाला तोपखाना तितर—बितर हो गया। क्रांतिवीर चारों ओर से आगे बढ़ने लगे। आज तक हाथ में न आनेवाले फिरंगी को मटियामेट करने का मौका मिलने से वे आनंदित हो उठे। उन सबके आगे रानी लक्ष्मीबाई चल रही थीं।

इस आकस्मिक धावे को देखकर ह्यू रोज चौंक पड़ा। वह अपने इमदादी ऊंटों को लेकर आगे बढ़ा; किसी तरह ऊंटों को कारण अंग्रेजों ने अपनी प्राणरक्षा की । एक अंग्रेज का कथन है, ''यदि पंद्रह मिनट और बीत जाते तो क्रांतिकारियों ने हमारा सफाया कर दिया होता। इमदादी डेढ़ सौ ऊंटों ने ही उस दिन हमारा उद्धार किया। और उसी दिन से सचमुच मैं ऊंट को प्यार की नजर से देखने लगा।'' केवल ऊंटों के काफिले ने 22 मई को पेशवा की सेना को कालपी तक पीछे हटने को मजबूर किया। कुछ मुठभेड़ों के बाद 24 मई को ह्यू रोज कालपी में घुस पड़ा। तात्या टोपे तथा पेशवा राव साहब द्वारा कालपी किले में एकत्र की गई—सामग्री अनायास ही अंग्रेजों के हाथ लगी। साठ हजार रतल बारूद भूमि में गड़ी पाई गई। नई बंदूकें, पीतल की तोपों के गोलें, उन्हें बनाने के यंत्र, ढेरों सैनिक गणवेश, झंडे, मारू बाजे, फ्रांसीसी तुरहियां, यूरोप में बनी गरनाल तोपें तथ कई प्रकार के शस्त्रास्त्र आदि युद्धोपयोगी सामग्री अंगेजों के हाथ लगी।

अगर हाथ न लगे तो शूरवीर चिरस्मरणीय क्रांति नेता, क्योंकि कालपी का संपूर्ण पतन होने के पहले एक सप्ताह तक राव साहब, बांदा का नवाब, रानी लक्ष्मीबाई और अन्य नेता वहां से गायब होकर किसी अज्ञात स्थान को चले गए थे। निस्सहाय, निःशस्त्र इन नेताओं को मारे—मारे फिरकर, भूखों भटककर या तो शत्रु के चंगुल में पकड़ा जाने

या आत्महत्या करने के अतिरिक्त और कोई चारा न था।

इस तरह, यमुना के उत्तर कांठे का प्रदेश फिर से हड़पकर विजयी कैंपबेल हिमालय तक पहुंच गया। इधर ह्यू रोज और विटलॉक ने नर्मदा से प्रारंभ कर यमुना के दक्षिणी कांठे के प्रदेश पर दखल किया। क्रांतिकारियों का पूरा सफाया करने पर अंग्रेजों को हक था ि कवे अपना अभिनंदन करें। ह्यू रोज ने अपने सैनिकों का अभिनंदन इन शब्दों में किया है–''वीर सैनिकों! तुमने एक हजार मील का प्रदेश रौंदकर शत्रु से सौ तोपें छीन ली हैं। नदियों को तैरकर, पहाड़–टीले लांघकर, जंगलों, दर्रों, उपत्यकाओं में शत्रु का सफाया कर असीम प्रदेश अपने देश की प्रतिष्ठा में चार चांद लगाए हैं। वीर तो तुम हो ही, पर अनुशासन के साहसी वीरता का मूल्य नहीं होता। अत्यंत कठिन परिस्थितियों में , कठोर यंत्रणाओं में भी तुमने अपने अधिकारियों की आज्ञा का पालन ज्यों–का–त्यों किया है। आज्ञा भंग करने या उद्दंडता का तनिक भी परिचय नहीं दिया। यमुना से नर्मदा तक तुमने अपने अद्वितीय सैनिक अनुशासन से महान् महान विजय प्राप्त की है।''

वीर स्तुतिपूर्ण और प्रभावशाली वक्तव्य देकर ह्यू रोज स्वास्थ्य के कारण सैनिक सेना से निवृत्त हुआ। उसकी विजयी सेना भी शत्रु की पूरी हार होने से छुटकारे की सांस लेकर आराम की अपेक्षा करने लगी।

लेकिन अंग्रेज सैनिकों, अभी आराम की क्यों सोचते हो? अभी तो तात्या और लक्ष्मीबाई जीवित हैं। और यदि स्वेच्छा से रण के लिए तैयार नहीं होंगे तो ग्वालियर की सेना युद्धीभूमि में खदेड़ने के लिए कटिबद्ध है। कालपी से छिटककर सभी क्रांति नेता आगामी योजना बनाने के लिए गोपालपूर में जमा हो गए। वास्तव में इस समय विजय के कोई आसार नहीं थे। नर्मदा से यमुना तक और यमुना से हिमाचल तक सारा प्रदेश अंग्रेज फिर से जीत चुके थे। क्रांतिकारियों के पास सैन्यबल नहीं था, किले आदि भी नहीं थे, बराबर हार होते रहने से नई सेना का संगठन करना भी असंभव–सा ही था। परंतु तात्या जीवित है, यही पर्याप्त है। रानी लक्ष्मी भी वहां थीं, तात्या गोपालपुर लौट आया था। लोगों में यह खबर उड़ी कि वह अपने पिता से मिल आया है। खबर झूठ हो या सच, पर इतिहास इसका कोई प्रमाण नहीं देता। अब ह्यू रोज ने अपना धूर्त दांव कालपी में चलाया। तभी एकाएक तात्या को अपने पिता के दर्शन की सनक आ गई। और पितृ–दर्शन की यह धुन आगे चलकर युद्ध की विस्मृति कराने लगी और अपनी इस इच्छा पर काबू न रखते हुए वह चरखी चला गया। इस सनक का रहस्य क्या हो सकता है? यही कि कालपी का पतन होने पर क्रांतिकारियों के हाथ में कोई–न–कोई सुरक्षित स्थान या किले का होना अत्यंत आवश्यक था। नई सेना मिल जाए, यह भी अच्छा था। इसी कारण क्रांति का अग्रदूत तात्या कालपी से छिटककर ग्वालियर में घुस पड़ा। अब

क्रांति का वात्याचक्र घूमने लगा है। सेनाधिकारियों के शपथपूर्वक आश्वासन तात्या ने प्राप्त किए तथा दरबार के उत्तरदायी व्यक्ति, सरदार आदि लोगों से संबंध स्थापित कर क्रांति के लिए उसने एक स्वतंत्र सेना बना ली। अपनी शक्ति भर सबकुछ करने का आश्वासन लोगों ने उसका दिया, एक महीने में ही ग्वालियर की संपूर्ण सेना तात्या की मुट्ठी में थी। फिर ग्वालियर के मर्म स्थानों को जान लिया और शिंदे के सिंहासन के नीचे से सुरंग बनाकर तात्या टोपे राव साहब के पास गोपालपुर में आया। अपने 'पिता के दर्शन' वह कर चुका था।

ग्वालियर की प्रजा को क्रांति कार्य की ओर कर लेने में सफल हो तात्याा के आ पहुंचने के समाचार सुनकर रानी लक्ष्मी को बड़ा आनंद हुआ और उसने पेशवा से सीधे ग्वालियर पर चढ़ाई करने का आग्रह किया। 28 मई को क्रांतिकारी अमीनमहल पहुंचे। लंबरदार ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। उत्तर मिला, ''तुम कौन हो रोकनेवाले? हम पेशवा हैं और स्वराज्य, स्वधर्म के लिए लड़ रहे हैं।''

श्रीमंत राव साहब के इन शब्दों से कायर चुप हो गए और वहां के हजारों देशभक्तों ने क्रांतिवीरों का ह्रदय से स्वागत किया। तब पेशवा सीधे ग्वालियर की राजधनी की दीवारों से टकराए। शिंदे को उन्होंने लिखा—''मात्र मित्रता की भावना से हम आपके पास आ रहे हैं। पुराने आपसी संबंधों का स्मरण करो। हम आपकी सहायता चाहते हैं। और उसी से हम दक्षिण पर चढ़ाई कर सकेंगे। किंतु कृतघ्न ग्वालियर नरेश ने पुराना नाता कब को तोड़ दिया था। यह तो उसे बताना होगा कि पुराना नाता कब का और क्या है—''शिंदे के पुरखे हमारे सेवक थे, मामूली सेवक; यही पुराना नाता। और इस समय शिंदे की सारी सेना हमारा साथ देने का उद्यत है। तात्या टोपे ने सेनाधिकारियों से मिलकर सब भेद जान लिया है।''

किंतु यह सब भूलकर शिंदे अपनी सेना और तोपों के साथ ग्वालियर के पास पेशवा की सेना पर चढ़ाई करने चला। श्रीमंत पेशवा ने सैन्यदल को आते देख यह जाना कि शिंदे पछताकर स्वदेश के झंडे की वंदना करके अगवानी कर रहा है। किंतु रानी लक्ष्मी ने स्पष्ट बता दिया कि ग्वालियर नरेश स्वदेश के झंडे को ठुकराने आ रहा है। रानी ने अपने तीन सौ सैनिकों के साथ शिंदे के तापेखाने पर धावा बोल दिया। थोड़े ही समय में जयाजीराव शिंदे और उसके अंगरक्षक 'भाले घाटी' वीर दीख पड़े। छेड़ी हुई नागिन से अधिक क्रोधातुर रानी लक्ष्मी उनपर टूट पड़ीं। देख, महादजी शिंदे के शूर वंशज जयाजी! रनवास में पड़ी यह बाईस वर्ष की अबला तुम्हारी तलवार को ललकार रही है। अब संसार यह देखे कि देशभक्त महादजी के कितना अंश इस फिरंगी भक्त जयाजी में उतरा है। रानी के पहले हमले से ही उसके मुसाहब बगलें झांकने लगे और 'भाले घाटी' भाग खड़े हुए। किंतु उसका विशाल तोपखाना अवश्य अपनी शक्ति दिखा

देगा। ग्वालियर की सेना ने तात्या टोपे को देखा और अपनी शपथ का स्मरण कर पेशवा के विरूद्ध लड़ने से साफ इन्कार कर दिया। मुख्य सेनाधिकारियों के साथ सारी सेना पेशवा के साथ हो गई। तोपखाना रखा रह गया। ग्वालियर के हर सैनिक ने स्वराज्य के झंडे को प्रणाम किया। इस प्रकार क्रांति नेता के जादुई स्पर्श से ग्वालियर नरेश का सिंहासन लड़खड़ाकर गिर पड़ा। और कायर जयाजी, उसका मंत्री दिनकर राव दोनों केवल रणभूमि ही नहीं, ग्वालियर छोड़कर आगरा भाग गए।

ग्वालियर की प्रजा के आनंद का ठिकाना र रहा। श्रीमंत राव साहब के सम्मान में सेना ने तोपें दागीं। शिंदे के कोषाध्यक्ष अमरचंद भाटिया ने शिंदे के खजाने का सबकुछ पेशवा के चरणों में अपिर्त कर दिया। क्रांति कार्य में सहानुभूमि दिखानेवाले इन देशभक्तों को बंदी बनाया गया था, उन्हें जनता के जयघोष में मुक्त किया गया। अंग्रेजों का साथ देनेवाले सलाहकार पिट्ठू जयाजी के साथ भाग गए। लेकिन उनके घरों में इसलिए आग लगाई गई कि उनका नामोनिशान भी न रहे, उनकी संपत्ति भी जब्त कर ली गई। 'राजा और प्रजा का नाता एशियाई लोग बिलकुल समझ नहीं पाते।' इस घृणित व्यंग्य का ग्वालियर की प्रजा ने मुंहतोड़ जवाब देकर झूठ साबित कर दिया है, क्योंकि वह राजा क्या जो 'स्वदेश', 'स्वधर्म' का द्रोह करे! पेशवा के सिंहासन से बाजीराव (द्वितीय) को ठीक समय पर नीचे न खींचने के कारण ही तो सन् 1857 में मातृभूमि का द्रोह करने के कलंक का टीका पूना के माथे लगा। ग्वालियर इस कलंक से बचा रहा, इसलिए सन् 1857 की क्रांति आधुनिक भारत में नवांकुरित प्रजा की शक्ति के प्रथम उदाहरण के रूप में इतिहास में अंकित होगी। शिंदे यदि स्वदेश का साथ नहीं देता तो देश भी उसे सहारा नहीं देगा। तलवारें और तोपें, रिसाला तथा पैदल सेना, दरबार एवं सरदार, मंदिर और मूर्ति–सबकुछ राष्ट्र के लिए है और अकेला शिंदे यदि राष्ट्र के लिए नहीं है तो उसे सिंहासन से घसीटकर फेंक दो। राजमहल से निकाल बाहर करो। राजसीमा से भी दूर भगा दो। अब 'राजाप्रकृति रंजनात्' (रघुवंश, सर्ग 4, श्लोक 12) अथार्त् राजा जनता के सुख के लिए है–इस रघुकुल रीति के अनुसार राजा वही बनेगा, जो प्रजा को सुखी करने के लिए ही राजपद स्वीकार करेगा।

3 जून का शुभ दिन निकम्मे होकर बिताना अच्छा नहीं। स्वराज्य को पवित्र स्नान कराकर स्वदेश के सिंहासन पर बिठाना आवश्यक है। अतः फूलबाग में एक बड़ा साथ दे रहे थे, अपनी श्रेणी के अनुसार सभी विराजमान थे। तात्या के नेतृत्व में अरब, रूहेले, पठान, राजपूत, रंगड़, परदेशी–हर प्रकार के वीर अपने–अपने सैनिक गणवेश में तलवार से सज्जित होकर आए थे। श्रीमंत पेशवा ने भी अपने शाही वस्त्र पहने थे; मस्तक पर सिरपेंच और कलगी–तुर्रा, कानों में मोती के कुंडल, गले में मोतियों तथा

हीरों के हार थे। पेशवा के समस्त सम्मान –चिह्नें के साथ भालदार, चोपदारों की ललकारों के बीच श्रीमंत दरबार में पधारे। सबने उनकी वंदना की और आनंदाश्रुओं से डबडबाई आंखों के साथ पेशवा सिंहासन पर विराजमान हुए। फिर उन्होंने ओजपूर्ण शब्दों में धन्यवाद देकर रामराव गोविंद को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। तात्या टोपे सेनापति बने और उन्हें रत्नजड़ित तलवार दी गई। अष्ट प्रधानों का चुनाव हुआ। सैनिकों को बीस लाख रूपए बांटें गए ' '(पारसनी कृत–'रानी लक्ष्मीबाई का जीवनचरित', पृष्ठ 309)

नाना साहब पेशवाके प्रतिनिधि राव साहब ने इस तरह एक नया सिंहासन जमाकर एक नई आशा, नया प्राण क्रांतिदल में प्रेरित किया और विश्रंखलित क्रांतिकारियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए एक नया केंद्र स्थापित किया। युद्ध की धूम के बीच ही इस प्रकार राज्योरोहण समारोह संपन्न करने और वंदनार्थ तोपों को दागने में तात्या का पागलपन नहीं था। संसार ने क्रांति को मुतप्राय देखा था, जिसे इसी उपाय से तात्या ने निराशा के मर्त से उठाया था। संसार कुछ आनंद से, कुछ निराशा से चिल्लाया था, क्रांति अब मर गई, उसमें कोई चेतना नहीं। किंतु यह कैसा जादू है! तात्या ने गोपालपुर में मरी मिट्टी में से एक सिंहासन ऊपर उठा। जिसके चरणों में लाखों रूपयों की झनझनाहट थी। हजारों तलवारें बढ़ रही हैं, तोपें वंदना कर रही हैं। एक नई सेना खड़ी हुई है। नई तोपें तैयार हैं, तात्या ने एक नया राज्य जीता है। पर तात्या ने अपने चमत्कार से चकित करने के लिए इतनी चेष्टा थोड़े ही की है! उसे पहले से ही मालूम था कि मराठा पेशवा के आसीन होने की तोप गर्जना से दूर बिखरे हुए क्रांतिकारी संगठित होंगे। वह जानता था कि ग्वालियर में राष्ट्रीय झंडे को लहराता देखकर उनमें असीम उत्साह और साहस पैदा होगा। तात्या ने जो ताड़ लिया था, उसके अनुसार पांडे दल के शरीर में फिर से जान आ गई। जहां एक ओर तात्या के देशवासियों में उत्साह की लहर दौड़ी, वहां दूसरी ओर अंग्रेज सैनिकों का दिल बैठ गया। इसीलिए तात्या तथा अन्य क्रांति नेताओं ने राज्यारोहण की धूम मचाई थी। उनकी यह चाल सफल हुई, क्योंकि तात्या की तोपों की गर्जना से ह्यू रोज के सुस्ताने की योजना मिट्टी में मिल गई। जिस चतुरता और नीतिज्ञता का परिचय ग्वालियर पर कब्जा करने में तात्या और रानी लक्ष्मीबाई ने दिया, उसके बारे में मैलसन लिखता है–''असंभव संभव कैसे बन गया, यह बताया गया है। ' ' ह्यू रोजो यह भी मालूम हुआ कि अब और देर करने का परिणाम क्या होगा! क्रांतिकारियों हाथ से यदि ग्वालियर शीघ्र न छीना गया तो क्या भयंकर परिणाम होंगे। इसकी कल्पना करना भी कठिन था। समय मिले तो ग्वालियर पर दखल करने से जो असीम राजनीतिक व सैन्य शक्ति तात्या ने प्राप्त की थी–मानव शक्ति, धन, युद्ध–सामग्री के साधन उसे जो मिले थे, उसके बल पर कालपी में बिखरी सेना को एकत्रित कर फिर से नई सेना

खड़ी करेगा और भारत भर में मराठों का उत्थान होगा। अपने स्वाभाविक जीवट के बलबूते पर वह दक्षिणी महाराष्ट्र में फिर से पेशवा का झंडा लहराने में समर्थ होगा। उस प्रदेश से हमारी अर्थात् अंग्रेजी सेना निकाली गई थी, और यदि मध्य भारत में तात्या को विशेष विजय मिल जाए तो वहां के लोग पुनःस साधना में लग जाएंगे, इसी साधना को पूरा करने में उसके पूर्वजों ने अपनी शक्ति क्षीण की थी, अपना खून बहाया था''[164]

अब तक जो हुआ, सो ठीक हुआ। एक बार तो ह्यू रोज को बेदम–सा बना दिया। लक्ष्मीबाई की बात को महत्त्व न देनेवालों को धिक्कार है! युद्ध ही एकमात्र कार्य हो और सब समारोह बंद कर दिए जाएं। किंतु खेद है िकइस बात की ओर कोई ध्यान न देकर क्रांतिकारी अपनी मस्ती में बेखबर थे। ऐशो–आराम, शराब, दावतें आदि में सारे लोग बेसुध थे। शायद स्वराज्य की सीमा उन्होंने यहीं तक मानी थी। पर दरअसल वे स्वराज्य खो रहे थे, क्योंकि मौके का लाभ उठाकर कुशल सैनिकों के साथ अंग्रेजों ने ग्वालियर पर हमला कर दिया। अपने साथ वे देशद्रोही शिंदे को लाए थे और यह घोषणा की थी कि अंग्रेज केवल शिंदे के लिए लडेंगे। यह घोषणा ग्वालियर की भोली प्रजा को धोखा देने के लिए थी। किंतु अब लोंगों की आंखें खुल गई थीं। क्रांतिकारियों को संगठित करने में कुशल तात्या अंगेजों का मुकाबला करने आगे बढ़ा। मुरार की छावनी के सैनिकों को अंग्रेजों ने हराया था। पराजय की छाया पड़ने से क्रांतिकारियों में सनसनी फैल गई थी। राव साहब बांदा के नवाब की कोठी की ओर जाते दिखाई दिए और बांदा के नवाब राव साहब के पास दौड़े। इस भाग दौड़ में मात्र रानी ठंडे दिमाग से काम कर रही थी। सब तरह से संयत होकर आशा और निराशा को उसने अपने पैरों तले कुचल दिया था। उसकी तलवार म्यान से बाहर थी। संसार की हर वस्तु से उसे वैराग्य था। उसकी तो एक मात्र इच्छा थी–जब तक उसकी सांस की हर वस्तु से उसे वैराग्य था। उसकी तो एक मात्र इच्छा थी–जब तक उसकी सांस रहे, उसकी तलवार स्वाधीनता के झंडे को को ऊंचा करने में ही चलती रहे। इसी हौसलें के सहारे उसने राव साहब को धीरज बंधाया और अपनी शक्ति के साथ व्यवस्थित सेना का पुनर्गठन किया। इस तरह पूर्वी द्वार की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। रानी की एक ही मांग थी, ''मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने प्रण को निभाऊंगी, तुम अपने कर्तव्य का पालन करो।''

रानी ने अपना सैनिक गणवेश धारण किया, अच्छे घोड़े पर सवार हुईं, रत्नजटित खड्ग का म्यान से बाहर निकाला और सैनिकों को 'आगे बढ़ो' की आज्ञा दे दी। कोटा की सराय के आसपास, जिसकी रक्षा का भार उनपर था, मोर्चाबंदी की। जब अंग्रेज सेना का चारों तरफ से जोर देखा तो रण के वाद्यों के साथ सैनिक अंग्रेज सेना पर टूट पड़े। काश, उनके पास उनके समान ही धैर्यवान सेना होती! सानी के नेतृत्व में उद्दंड और भीरू भी अनुशासित वीर बन जाता। उनके तथा अपने सैनिकों के साथ रानी ने

164 मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 5, पृष्ठ 149–50 ।

अंग्रेजों पर हमला किया। लक्ष्मीबाई की दो सखियां–मुंदर और काशी भी रानी के कंधे–से–कंधा मिलाकर लड़ीं। पुरूष वेश से विभूषित इन दो सुन्दर कन्याओं की स्मृति रानी लक्ष्मीबाई के साथ–साथ भारतीय इतिहास के जीवन में अमरत्व प्राप्त करेगी। स्मिथ जैसा जनरल रानी की सेना को दबा रहा था, किंतु रानी का साहस और शौर्य देखेत ही बनता था। पूरे दिन विद्युत्–सी रणभूमि में चमक रही थीं। उनके हरावाल पर अंग्रेज जोरदार हमले करते, किंतु हर बा रवह अपने पक्ष को विचलित न होने देतीं। उनका दल जोश में आकर अंग्रेजों के हरावाल पर धावा बोल देता और अंग्रेज मौत की गोद में विश्राम पाते। अंत में स्मिथ को पीछे हटना पड़ा। उसने चट्टान–सी खड़ी हरावल को तोड़ने की कोशिश छोड़ दी।

इस तरह वह दिन बीता। 18 तारीख का सूरज निकला। आज अंग्रेजों ने बड़े जोर–शोर से हमला करने का निश्चय किया। सभी दिशाओं से उन्होंने किले पर धावा बोलने का निश्चय किया। जिस स्मिथ को कल पीछे हटना पड़ा था, वही आज नई कुमुक से झांसी की सेना पर टूट पड़ा। ह्यू रोज ने समझ लिया कि उसका वहां होना आवश्यक है, इसी विचार के कारण आज के हमलावर सैनिकों के साथ वह स्वयं था। रानी भी अपनी सेना के साथ तैनात थीं। उस दिन रानी ने कामदार चंदेरी की पगड़ी पहनी, चोगा और पाजामा पहना और गले में मोतियों का एक हार पहनकर घोड़े पर सवार हुई। उनका घोड़ा उस दिन कुछ थका हुआ सा मालूम देता था। अतः एक दूसरा नया घोड़ा लाया गया। रानी की दोनों सखियां नाश्ता कर ही रही थीं, तभी संवाद मिला कि अंग्रेजी सेना बढ़ी चली आ रही है। रानी तुरंत अपने खेमे में दौड़ पड़ी।–तीर भी इतनी तेजी से नहीं छूटता। रानी ने घोड़ा दौड़ाया और तलवार हाथ में लेकर शत्रु पर धावा बोल दिया। इसी विषय में एक अंग्रेज लिखता है–''तत्काल वह सुंदरी मैदान में उतरी और ह्यू रोज के व्यूह का डटकर सामना किया। अपनी सेनाके आगे रहकर पूरी मारकाट यद्यपि उसकी सफों को चीरकर अंग्रेज जाते, फिर भी रानी हरावल में दिखाई पड़ती थी और अपनी टूटी पांतियों को फिर से संगठित कर अतुल धैर्य का परिचय देती थी। इसके बावजूद ह्यू रोज ने स्वयं अपने ऊंट दल के जारे पर आखिरी पंक्ति तोड़ ही दी तो भी रानी अपने स्थान पर डटी रही।''

इतने असाधारण शौर्य से लड़ते हुए रानी ने देखा कि अंग्रेज सेना पिछाड़ी से आक्रमण कर रही है, क्योंकि पिछाड़ी से रक्षा करनेवाले क्रांतिकारियों की पांतियों को उन्होंने तोड़ दिया था। तोपें ठंडी पड़ी थीं। मुख्य सेना तितर–बितर हो गई थी, विजयी अंग्रेज सेना रानी पर चारों तरफ से हमला बोल रही थी और रानी के पास केवल पंद्रह–बीस सवार थे। रानी ने अपनी दोनों सखियों के साथ घोड़े को एड़ लगाई। शत्रु की पांतियों को चीर वह परले सिरे पर लड़नेवाले लोगों से मिलना चाहती थी। गोरे घुड़सवार

शिकारी कुत्तों की तरह उनका पीछा कर रहे थे। किंतु रानी ने तलवार के बल पर अपना मार्ग बनाया और आगे बढ़ीं ˙˙ और सहसा एक चीख सुनाई दी–''बाई साहब, मैं मरी! '' उफ, यह किसकी पुकार । रानी ने घूमकर देखा। उसकी सखी मुंदर को एक अंग्रेज ने गोली मारी थी। वह मर गई। बिजली की गति से दौड़कर रानी ने एक ही बार में उस फिरंगी के दो टुकड़े कर दिए। मुंदा का प्रतिशोध ले लिया। अब घूमकर आगे बढ़ीं। मार्ग में एक नाला आया। बस घोड़े की एक छलांग में रानी अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त थीं। किंतु नया घोड़ा वहीं अड़ गया। नाला पार करने से उस बेवफा घोड़े ने इन्कार कर दिया। काश, आज रानी का वह पुराना घोड़ा होता! मानो किसी जादुई असर के प्रभाव से वह घोड़ा गोल चक्कर काटने लगा। क्षण भर में ही गोरे सैनिक रानी के करीब आ गए और इस घिरी हुई अवस्था में भी एक तलवार ने अनेक तलवारों का सामना किया। पर एक एक ही है, उन बहुत से अंग्रेजों में से एक ने पीछे से सिर पर वार किया और उस वार के साथ सिर का दाहिना हिस्सा और दाईं आंख निकलकर बाहर लटकने लगी; उसी समय दूसरा वार छाती पर हुआ। महालक्ष्मी, अब तुम्हारे रक्त की पावन बूंद, आखिरी बूंद टपकनेवाली है। स्वतंत्रता की देवी को उसने अंतिम बलि दी। अपने ऊपर वार करनेवाले अंग्रेज के टुकड़े कर डाले और अब रानी अंतिम सांस लेने लगी। रानी का विश्वासपात्र सरदार रामचंद्रराव देशमुख पास ही था। उसने रानी को उठाया और पास की एक झोंपड़ी में उन्हें ले गया। बाबा गंगादास ने रानी को ठंडा पानी पिलाया और रक्त से लथपथ उस देवी के शरीर को बिछौने पर लिटा दिया। उनकी पावन आत्मा स्वर्ग सिधार गई। अंतिम सांस में निकले अपनी स्वामिनी की अंतिम सूचना के शब्दों के अनुसार रामचंद्रराव देशमुख ने शत्रु की आंख बचाकर घास को ढेर लगा दिया और उसी चिता पर लिटाकर, पराधीनता के अपवित्र स्पर्श के भय से अग्नि–संस्कार कर डाला।

सिंहासन पर नहीं, चिता पर लक्ष्मी के गले में स्वतंत्रता की कौस्तुभ मणि विराजमान है। रणभूमि में उत्सर्ग करके रानी ने मृत्यु का दरवाजा तोड़ दिया है। अब भला कोई मानव उसका क्या पीछा करेगा!

इस प्रकार रानी लक्ष्मीबाई लड़ीं। अपना लक्ष्य पूरा कर गईं। ऐसा एक जीवन संपूर्ण राष्ट्र का मुख उज्जवल करता है। वह सब सद्गणों का निचोड़ थीं। एक महिला, जिसने जीवन के तेईस वसंत ही देखे थे; कोमलांगी, मधुर, विशुद्ध चरित्र, पुरूषों में भी न पाई जाने वाली संगठन–कुशलता से ओतप्रोत थीं। उनके हृदय में देशभक्ति रत्नदीप की तरह प्रकाशमान थी। अपने देश पर उन्हें गर्व था। युद्ध कौशल में अद्वितीय थीं। विश्व में शायद ही कोई देश ऐसा होगा, जो ऐसी देवी का अपनी कन्या और रानी कहने का अधिकारी होगा। इंग्लैंड के भाग्य में यह सम्मान अब तक नहीं बदा है। इटली की क्रांति में ऊंचे शौर्य और आदर्श का परिचय मिलता है; फिर भी इतने वैभवकाल में

इटली एक ऐसी लक्ष्मी को पैदा नहीं कर सका।

भारत का यह अहोभाग्य है कि ऐसा स्त्री–रत्न यहां पैदा हुआ। उनका शरीर बाबा गंगादास की झोंपड़ी में प्रज्वलित ज्वाला में दमक रहा है। पर यह रत्नदीप हमारी मातृभूमि भी कदाचित् पैदा न कर सकती, यदि यह स्वतंत्रता संग्राम का महायज्ञ न रचा जाता। अनमोल मोती सागर की सतह पर ही नहीं मिल जाते, रात्रि के अंधकार में सूर्यकांत मणि तेज की किरणें नहीं फेंकती, चमकम पत्थर कोमल वस्तु की रगड़ पर चिंगारी उत्पन्न नहीं करता। इन सबको विरोध की अपेक्षा होती है। अन्याय से पिसे हुए मन को बेचैन बना दो–अंदर तक, रक्त की एक–एक बूंद में उबाल आना चाहिए। अन्याय का ईंधन प्रतिशोध की भट्ठी को तपाता रहे, ऐसी भट्ठी में फिर सद्गुणों के कण चमकने लगते हैं।

सन् 1857 में हमारी भूमि पर सचमुच ही आग भड़क उठी थी और फिर विश्व के कानों में गूंज भरनेवाला धमाका ॱ ॱइस अग्नि का कितना विस्तृत फैलाव हुआ है। ऊंची लपट–लपट में से लपट–मरेठ में चिंगारी और डलहौजी के 'रोलर' से समतल बना धूल का ढेर–सारा देश ज्वालामुखी बारूद के अंबार–सा दिखाई पड़ा। जैसे आतिशबाजी की अनार खुलने पर उसमें से रंग–बिरंगे बाण–पेड़ तथा अन्य चीजें छूटती हैं और शांत हो जाती हैं, उसी तरह इस क्रांति के अनार से तप्त लहू बहा, शस्त्रास्त्र और मुठभेड़ें निकलीं। और यह अनार भी कितना बड़ा–मेरठ से विंध्याचल तक लंबा, पेशावर से डमडम तक चौड़ा। और उसे सुलगाया गया। आग की लपटें सभी दिशाओं में व्याप्त हो गईं और उस अनार के पेट में क्या–क्या अजीब चीजें थीं। लहू मेघ की तरह बरसा–ओलों के साथ। दिल्ली के घेरे, प्लासी के प्रतिशोध, कानपुर, लखनऊ तथा सिंकदराबाद के कत्ल। सहस्त्रों वीर जूझ रहे हैं, खप रहे हैं, नगर जल रहे हैं; कुंवर सिंह आता है, जूझता है, गिरता है; मौलवी आया, लड़ा और मरा, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, बरेली, जगदीशपुर, झांसी, बांदा, फर्रुखाबाद के सिंहासन; पांच हजार, दस हजार, सहस्त्रों, लाखों तलवारें, ध्वजाएं, सेनापति, घोड़े, हाथी, ऊंट–सब इस अनार से बाहर–एक–के–बाद एक आग के फव्वारे–से निकलते हैं। एक कुछ ऊंचाई की लपट पर, कुछ दूसरी पर–ये ऊंचे चढ़ जाते हैं, लड़खड़ाते हैं और लुप्त हो जाते हैं। सब ओर लड़ाई–बिजली की कड़क, ज्वालामुखी की भीषण ज्वालाओं का यह फव्वारा।

और यह चिता–बाबा गंगादास की झोंपड़ी के पास जल रही है। सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के ज्वालामुखी की यह अंतिम ज्वाला है।

भाग–4

अस्थायी शांति

प्रकरण–9

विहंगावलोकन

सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर की प्रमुख भूमिका उत्तरी हिंदुस्थान में ही निभाई गई थी, अतः इस प्रदेश में हुई अद्भुत उथल–पुथल का विस्तृत विवरण इस ग्रंथ में प्रस्तुत करना आवश्यक ही था। परंतु इस स्वातंत्र्य युद्ध को पूर्णतः समझने के लिए अन्य प्रदेशों में इन दिनों मं हुई घटनाओं का उल्लेख करना भी अनिवार्य है। एतदर्थ इस रण–विस्फोट की प्रचंड ज्वालाओं को उत्तरी हिंदुस्थान के आकाश मं किल्लोलें करते हुए छोड़कर अब हम अन्य प्रदेशों में इस विस्फोट से भड़की चिनगारियों पर भी दृष्टिपात करेंगे।

दिल्ली के घेरे में दिनों में पंजाब प्रांत में चले घटनाचक्र का कुछ विवरण हमने उसी स्थान पर प्रस्तुत किया है। तदुपरांत वहां एक–दो सामान्य विद्रोही घटनाओं के अतिरिक्त प्रायः शांति ही रही। सिखों के अतिरिक्त यहां की अन्य जनता ने किसी भी ओर से इस युद्ध में भाग तो नहीं लिया, किंतु वे हृदय से इस बात के आकांक्षी थे कि क्रांति का यह यज्ञ सफलता प्राप्त करे । हां, सिख लोग और सिख संस्थान निश्चित रूप से ही अंग्रेजों के पक्ष में संघर्ष करते रहे।

राजपूताना के जनसाधारण की सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ ही थी। इस तथ्य की साक्षी भी अनेक प्रसंगों से प्रस्तुत हुई। जयपुर, जोधपुर और उदयपुर आदि के जो भारतीय सैनिक अंग्रेजों की ओर से संघर्ष करते थे, उन्हें अपशब्दों से संबोधित किया जाता था; किंतु ज्यों ही क्रांतिकारियों के कहीं विजयी होने का समाचार प्राप्त होता था,

राजस्थान के बाजारों और गलियों में हर्ष का वातावरण व्याप्त हो जाता था। स्थान–स्थान पर इन क्रांतिकारियों के जय–जयकार से धरा–गगन निनादित हो उठते थे। किंतु जब कभी क्रांतिकारियों की पराजय की सूचना मिलती थीं तो संपूर्ण राजस्थान में विषाद और संताप की गहरी छाया व्याप्त हो जाती थी। ये घटनाएं इसी सत्य की परिचायक हैं कि राजस्थान का जनसाधारण हृदय से क्राांति की सफलता का इच्छुक था। राजस्थान के राजपूत नरेशों की स्थिति यह थी कि क्रांति की सफलता का इच्छुक था। राजस्थान के राजपूत नरेशों की स्थिति यह थी कि वे किसी विशेष स्थिति के उत्पन्न होने से पूर्व किसी भी एक पक्ष को प्रकट रूप से सहायता देने के लिए तत्पर नहीं होते थे। किंतु जब कभी भी अंग्रेजों द्वारा दबाव डाला जाता था तो इन राजपूत राजाओं के सैनिक ही अपने शासकों की आज्ञाओं का खुला उल्लंघन कर अपने देशबांधवों के विरूद्ध अंग्रेजों का पक्ष लेकर युद्ध करने से स्पष्टतः इन्कार कर देते थे।

विंध्याचल के उत्तर का यह विहंगावलोकन करने के उपरांत जब हमद क्षिण की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमारी आंखों के समक्ष सर्वप्रथम शिवाजी के मराठों का साम्राज्य उभर आता है। इन्हीं के देशबांधवों ने उत्तर में जाकर कानपुर, कालपी और झांसी इत्यादि में प्रचंड रण–गर्जना की थी। इसके कारण रायगढ़ में पराभूत हुआ राज्य सिंहासन ब्रह्मवर्त में रक्त से स्नान करता हुआ दिखाई दे रहा था। वहां स्वराज्य के पुनीत आसन का प्रादुर्भाव हो रहा था। संताजी और धानाजी ने जिस परम पवित्र भगवा ध्वज को ऊंचा किया था वह अब उत्तर भारत में तात्य ओपे द्वारा पुनः फहराया जा रहा था। उत्तरी हिंदुस्थान ने इस स्वातंन्त्र्य युद्ध में जैसी एकता, साहस और दृढ़ संकल्प व्यक्त किया, वैसी ही एकता यदि दक्षिण में भी उत्पन्न हो जाती तो यह सुनिश्चित था कि यदि संपूर्ण ब्रिटेन भी भारत में आकर युद्ध करने लग जाता तब भी महाराष्ट्र की पावन पताका कभी भी न झुक पाती। महाराष्ट्र का भगवा ध्वज जब रणांगण में फहराता है तो उसके प्रति प्रेम और गर्व से जिसका हृदय न भर जाता हो, ऐसा मराठा वंश का एक भी व्यक्ति कहीं खोजने से मिलना कठिन है। सन् 1857 की वीरता की यह पावन प्रेरणा सभी मराठों के हृदय में स्वाभाविक रूप से ही जाग्रत हो उठी थी। किंतु दृढ़ संकल्प के अभाव और अनिश्चित नीति–इन दो रोगों ने इस वीर भावना और पावन प्ररेणा की भ्रूण–हत्या ही कर दी। जिन दिनों उत्तरी हिंदुस्थान में क्रांति की योजना प्रगति पथ पर थी, उन्हीं दिनों दक्षिण भारत में भी क्रांति का प्रचार करने के लिए दूत भेजे गए थे। वे प्रत्येक नगर और संस्थान में जा रहे थे। सतारा के रंगोजी बापू से भी कानपुर के नाना साहब का पत्र–व्यवहार हो रहा था। पूना, सतारा, बेलगांव, धारवाड़, बंबई, हैदराबाद इत्यादि स्थानों की विभिन्न पलटनों में ब्राह्मण, मौलवी और उत्तर भारत की क्रांतिकारी सेनाओं के प्रतिनिधि क्रांति की ज्वाला गुप्त रूप से संलग्न थे। मैसूर से लेकर विंध्य पर्वत मेखला तक सर्वत्र यह प्रतिज्ञा दोहराई जा चुकी थी कि जब 'उत्तर उठेगा तो दक्षिण भी उभरकार खड़ा हो जाएगा।' दक्षिणी भारत ने भी विद्रोह करना तो स्मरण रखा, किंतु यह भी सत्य है कि वह उत्तरी हिंदुस्थान के साथ उठना स्मरण न रख

सका। उत्तर में तो क्रांति की विद्युत ज्वाला अकल्पित गति से धधकी और इस संकल्प के साथ दहकी कि करेंगे अथवा मरेंगे। किंतु तत्काल ही विद्रोह करने के स्थान पर दक्षिणवाले उस विद्रोह के परिणाम की ओर ही दृष्टि गड़ाए शांत रहे। क्रांति के जोखिमक` समय में तो एक क्षण में जीवन–मरण का निर्णय हो जाता है। उतावलापन और विलंब–दोनों ही इसकी सफलता में बाधक सिद्ध होते हैं। दुविधा के इन क्षणों में क्षमतावान् पुरूष ऐसे मुहूर्त का चयन करते हैं जिनमें तेजी और धैर्य से अधिकाधिक लाभ की उपलब्धि हो। क्रांति का संचालन अंकगणित के नियमों के अनुसार नहीं होता। क्रांति की सफलता तो मानव के ह्रदय में विद्यमान अद्‌भुत आत्मिक सामर्थ्य पर ही अवलंबित होती है। अकर्मण्यता और मंदता से तो क्रांति को जाग्रत रखती है। संयम, दूरदर्शिता और विद्रोह की तिथि का निर्धारण करना आदि क्रांति की सिद्धता तक ही उपयोगी है। किंतु एक बार शंखनाद हुआ कि जीवन जाए अथवा रहे, इस ओर से निश्चित होकर ही क्रांति के रणांगण ममें जूझना पड़ता है। उस अवस्था में जो दुविधा में पड़ेगा उसकी पराजय सुनिश्चित है। उस निर्णायक घड़ी में जो इस चर्चा में उलझ जाएगा कि विद्रोह करना अच्छा है अथवा बुरा है, वह निश्चित रूप से ही अंततोगत्वा पराजित होगा। संगठन करते हुए शांति और क्रांति में धैर्य–ये ही सफलता की सीढ़ियां है। क्रांति का संगठन तो गलीची की बुनाई के समान सावधानी सहित धीरे–धीरे किया जाता अपेक्षित है। किंतु जब एक बार क्रांति का विस्फोट हो जाए तो क्षण मात्र के लिए भी असमंजस्यग्रस्त न होते हुए तीर के तुल्य उसमें प्रवेश करना चाहिए। फिर यश मिले अथवा अपयश, जीवित रहें अथवा मृत्यु का वरण करें, सब ओर से निश्चिंत होकर समरांगण मे जूझना ही श्रेयस्कर है। मारते–मारते मरने का अटल संकल्प ही ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि एक बार क्रांति का शंखनाद हो उठे तो क्रांति को यशस्वी करने के लिए एकमात्र मार्ग है–आगे बढ़ते जाना और अपने पग कदापि न रोकना।

किंतु दक्षिण भारत ने इस तत्त्व को विस्मृत कर दिया और जब उत्तर में क्रांति की ज्वाला धधकी तो उसके साथ ही न उठकर खड़े होते हुए धीरे–धीरे सक्रिय रहे, किंतु असंमजसग्रस्त भी रहे। सफलता के प्रति अत्याधिक चिंता और उसके फलस्वरूप जोश में आकर अनुपम विद्रोह करने के कारण उन्हें अपयश कैसे प्राप्त हुआ, आइए, इस तथ्य पर भी दृष्टिपात करें।

कोल्हापुर में 29वीं और धारवाड़ में 28वीं रेजीमेंट थी। जब पत्र–व्यवहार के माध्यम से क्रांति की योजना बनाई गई तो विद्रोह की तिथि 10 अगस्त, 1857 निर्धारित की गई। परंतु कोल्हापुर की जनता और सिपाहियों के दमन के लिए इसी बीच अंग्रेजों द्वारा एक गोरी सेना भेजने का निश्चय किया गया। यह समाचार तार विभाग के एक भारतीय कर्मचारी के माध्यम से भारतीय सिपाहियों को भी मिल गया? ज्यों ही यह गुप्त सूचना प्राप्त हुई तो पहले से ही दग्ध सिपाहियों ने 31 जुलाई को ही विद्रोह कर

दिया। उन्होंने कई अंग्रेज अधिकारियों की तो हत्या कर ही दी, साथ ही खजाने पर भी अधिकार कर लिया। इन विद्रोही सैनिकों ने आई हुई गोरी सेना से भी दो–दो हाथ किए और कोल्हापुर से चलकर घाटियों की ओर निकल गए। विभिन्ना क्रांतिकारी सावंतवाड़ी के प्रमुख नेता रामजी शिरसाई के नेतृत्व में एकत्र हुए और वाड़ी के वनों से गोरी सेना पर छापे मारने लगे। गोवा के पुर्तगालियों के सहयोग से अंग्रेजों ने कोल्हापुर में हुए इस विद्रोह को दबा दिया और वहां आए हुए नए अंग्रेज अधिकारी जैकब ने बचे हुए क्रांतिकारियों को आत्मसमर्पण करने पर विवश कर उनके नेताओं को गोलियों से उड़ा दिया।

किंतु जिस दिन इन सिपाहियों ने विद्रोह किया उस दिन भी कोल्हापुर के नागरिक तो मौन दर्शक ही बने रहे। इसी मध्य वहां के तरूण राजा के साथ नाना साहब के दूत से भी मंत्रणा हुई थी। उस दूत ने नरेश को भी क्रांति के संघर्ष में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। लखनऊ के नवोत्थित सिंहासन की ओर से उसे एक तलवार भी भेंट की गई। इसी भांति जपखंडी, सांगली आदि के अन्य दक्षिणी संस्थानों से भी गुप्त पत्र–व्यवहार चल रहा था। किंतु कोल्हापुर के नरेश की अपेक्षा तो शिवाजी का अधिक उष्ण रक्त उसके छोटे भाई चिमा साहब की ही नसों में प्रवाहित हो रहा था। अब तक क्रांति का जो बना–बनाया कार्य बिगड़ गया था, अब क्रांति के उसी कार्य को पुनः व्यवस्थित रूप देने के लिए पुनः मंत्रणाओं का क्रम आरंभ हो गया था। इस कार्य को चिमा साहब ही निभा रहे थे। उन्होंने कोल्हापुर के अस्थाई सैनिकों को विद्रोह के लिए संगठित किया। 15 दिसंबर को प्रातःकाल ही कोल्हापुर में पुनः क्रांति की ज्वाला धधक उठी। नगर के द्वार बंद कर वहां तोपें तैनात कर दी गई। नगर के प्रत्येक मार्ग में क्रांति की पुनीत पताका फहरा उठी। जैकब को ज्यों ही समाचार मिला, उसने अपनी सेना का एकत्रित कर एक कच्चे द्वार पर आक्रमण कर दिया। उस समय से अंग्रेजी सेना द्वारा राजमहल पर अधिकार करने की घड़ी तक प्रचंड मुठभेड़ और संघर्ष जारी रहा। पराजय मिलने पर, जैसाकि सामान्यतः होता है, उसने घोषणा की कि विद्रोह सैनिकों तथा राजाज्ञा का उल्लघंन कर जनता ने आरंभ किया था। जब विद्रोहियों के नाम पूछे गए तो उसने कहा कि मुझे इस संबंध में कोई जानकारी नहीं है। जैकब विद्रोही नेताओं को बंदी बनाने में प्राणपण लगा रहा। उसने अनेक व्यक्तियों को संदेह में ही कारागार में बंद कर दिया; किंतु उसके जी तोड़ प्रयास करने पर भी उसे इस विशाल क्रांति का सूत्र हाथ नहीं लग सका। जब एक करके ही उन्हें निगल गया। बंद बनानेवाले ताकते ही रह गए। अनेक लोगों को तोपों के सामने खड़ा करके उड़ा दिया गया। उनमें से एक पहली बार के आघात से न मारा जा सका, किंतु वह दूसरी बार तोप से गोला दगने तक भी निश्चित भाव से निडर खड़ा रहा। उस समय जैकब उसके पास आया और जैकब उसके पास आया और बोला, ''तुम यदि विद्रोहियों के नाम बता दोगे तो तुम्हें प्राणदान दे दिया जाएगा।'' किंतु वह महान् वीर धैर्य सहित अपने अंग–

भंग हुए शरीर का कष्ट सहन करता रहा। उसने जैकब की ओर घृणा से देखते हुए कहा, ''विद्रोह मैंने ही किया है।'' दूसरे एक क्रांतिकारी ने तोप दगने से पूर्व भूल से एक नेता का स्मरण कर लिया। किंतु गोरे अधिकारी उस नेता को बंदी बना पाते, इसके पूर्व ही वह सुशिक्षित नेता कोल्हापुर के बाहर निकल गया। चिमा सहाब ने भी अंग्रेजों को उसक कोई सूत्र नहीं दिया । इस प्रकार के पारस्परिक विश्वास के कारण ही क्रांतिकारी एकता के महान् सूत्र में आबद्ध हुए थे। इसी पद्धति के कारण उनमें कोई भी आपसी मनमुटाव उत्पन्न न हो पाता था। इसी के कारण वे षड्यत्रों का सफलतापूर्वक निर्वाह करते थे।[165]

कोल्हापुर में यदि इस प्रकार विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई थी तो बेलगावं में भी 10 अगस्त से ही क्रांति का रंग मुखरित होने लगा गया था। किंतु विद्रोही सिपाहियों के एक नेता ठाकुर सिंह तथा मुसलमान एवं अन्य नागरिकों के नेता एक साहसी मुंशी के बंदी बना लिये जाने से बेल गांव और धारवाड़ में शांति ही बनी रही, क्योंकि अंग्रेजी सेना भी तत्काल वहां आ पहुंची थी। मुंशी एक सरकारी कर्मचारी था, अतः उसके द्वारा क्रांति के संबंध में पूना और कोल्हापुर आदि के सैनिकों को लिखे गए पत्रों के पकड़ लिये जाने के कारण अंग्रेजों ने उसे तोप से उड़ा दिया।

सतारा में रंगोली बापू पर तो पहले ही ब्रिटिश सरकार अपना क्रोध प्रदर्शित कर चुकी थी। इधर कोल्हापुर में क्रांति का संचार करने के आरोप में अंग्रेजों ने रंगोजी बापू के एक पुत्र को भी बंदी बना लिया था, उसे भी सतारा में लाकर विद्रोह के संशय में ही अन्य क्रांतिकारियों के साथ फांसी पर लटका दिया गया था। सतारा के दो राजपुत्रों को सीमा पार निष्कासित कर दिया गया था। जिस राजसिंहासन की सेवा करने में रंगोजी बापू ने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था, उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर उन्होंने भी तत्काल सतारा का परित्याग कर दिया था। उनके बंदी बनाने के लिए अंग्रेजों ने भारी मात्रा में इनाम देने की घोषणा की थी; किंतु अभी कोई ऐसा घृणित कार्य करनेवाला वहां नहीं जनमा था। शत्रुओं के हाथों से बच निकलने के उपरांत रंगोजी बापू का क्या हुआ, यह तो इतिहास आज तक भी नहीं बता पाया; किंतु उनके जाने के साथ–ही–साथ सतारा स्वतंत्रता से भी हाथ धो बैठी।

उन दिनों बंबई क्षेत्र का गवर्नर लॉर्ड एलफिंस्टन नामक एक सुयोग्य अधिकारी को बनाया गया था। अपने प्रदेश में शांति स्थापित करेन के साथ–ही–साथ उसने कुछ अंग्रेजी सेना राजस्थान भेज दी। किंतु बंबई में विद्रोहाग्नि का शमन करने में जो तत्परता प्रदर्शित की गई उसका श्रेय फॉरेस्ट नामक मुख्य पुलिस अधिकारी को था। बंबई तो उस समय आलसी, सुखभोगी और राष्ट्रद्रोहियों की नगरी ही बनकर रह गई थी। ऐसी स्थिति

[165] सर जॉर्ज ले ग्रांड जैकब के.सी.एस.आई.सी.बी. कृत–'वेस्टर्न इंडिया'।

में केवल उन्हीं सैनिकों के ह्रदय राष्ट्र–प्रेम की पावन ज्वाला से दग्ध हो रहे थे जो वहां तैनात थे। इस स्थिति को समझकर ही फॉरेस्ट की दृष्टि निरंतर उनपर रहती थी। विद्रोह दीपावली के दिन निर्धारित हो चुका था। तदनुसार सैनिकों की गुप्त बैठकों का क्रम भी आरंभ हो चुका था। इन सभाओं में फॉरेस्ट ने अपने विशेष कृपापात्रों को भी घुसाने की भरसक चेष्टा की थी। किंतु सिपाहियों की दक्षता ने उसकी दाल न गलने दी। फॉरेस्ट कभी ब्राह्मण तो कभी अन्य कोई वेश बदलकर स्वयं भी सामूहित भोजों आदि में यदा कदा पहुंचने में सफल हो जाता था। अंततः उसे विदित हो गया कि गंगाप्रासाद नामक एक सज्जन का निवास–स्थान ही गुप्त बैठकों का केंद्र है। किसी–न–किसी प्रकार रौब और आतंक के सारे वह एक दिन गंगाप्रसाद के घर में प्रविष्ट होने में सफल भी हो गया। उसने एक दीवार के छेद से क्रांतिकारियों की पूरी बैठक का भी अवलोकन कर लिया। किंतु क्रांतिकारियों को वहां उसकी उपस्थिति का आभास तक नहीं हो पाया। इतना ही नहीं, वह कतिपय अंग्रेज अधिकारियों को भी एक दिन वहां ले गया और उसने उन्हें भी सबकुछ दिखा दिया। जब एक अंग्रेज अधिकारी ने देखा कि अपने जिन सैनिकों को वे परम राजभक्त समझते थे वे ही एक–एक करके उस बैठक में भाग लेने के लिए आ रहे हैं तो उसके मुख से हठात् निकल पड़ा, ''हे मेरे भगवान! ये तो मेरे अपने ही आदमी हैं। क्या ऐसा होना भी संभव है?'' इन सिपाहियों के विद्रोह की रूपरेखा सामान्यतः इस प्रकार थी कि पहले बंबइ में विद्रोह किया जाए और तदुपरांत पूजा की ओर प्रस्थान किया जाए, और जब वहां अधिकार कर लिया जाए और तदुपरांत पूना की ओर प्रस्थान किया जाए, और जब वहां मराठों का झंडा पुनः फहरा दिया जाए।[166] परंतु इस योजना के कार्यान्वित होने के पूर्व ही फॉरेस्ट द्वारा इस योजना का पता लगा लिये जाने के कारण दो विद्रोही नेता फांसी पर लटका दिए गए तथा अन्य छह को सीमा पार कर दिया गया। इस प्रकार वहां सन् 1857 के अक्टूबर मास में ही विद्रोह को पूर्णतः कुचल दिया गया।

उन्हीं दिनों नागपुर और जबलपुर में भी क्रांति की चिंगारी फूटने की संभावनाएं प्रतीत होने लगी थी। नागपुर में विद्रोह के लिए सिपाहियों ने 13 जून, 1857 की तिथि निर्धारित की थी। इस योजना को सभी प्रमुख नागरिकों का भी समर्थन प्राप्त था। निर्धारित योजना के अनुसार 13 जून की रात्रि में ग्राम के लोगों को तीन प्रज्वलित आकाशद्वीप आकाश में उठाते थे। इन्हें ही सैनिकों के विद्रोह का संकेत वाक्य निर्धारित किया गया था। यहां क्रांतिकारियों के पक्ष में एक और भी बात थी कि नागपुर से जबलपुर तक के मध्य क्षेत्र में अंग्रेज एक भी गोरी पलन नहीं रख पाए थे। किंतु कुछ ही समय उपरांत मद्रास से गोरी पलटन आ पहुंची और उसने विद्रोह का दमन कर

[166] फॉरेस्ट कृत–'रियल डैंजर इन इंडिया'।

दिया। जबलपुर में गोंड जाति के राजा शंकर सिंह और उनके पुत्र द्वारा सर्वत्र क्रांति की ज्वाला धधकाई जा रही थी। जब उन्हें अंग्रेजों द्वारा बंदी बना लिया गया तो उनके पास से एक रेशमी बस्ता भी मिला, जिसमें वह प्रातः स्मरण की श्लोक पंक्ति भी एक कागज पर लिखी मिली, जिसका राजा शंकर सिंह प्रतिदिन पाठ करते थे। उसके अंग्रेजी भाषांतर का हिंदी रूपांतर संक्षेप में इस प्रकार है–

साधुओं से छल और दुष्कृत्य कर रहे नित्य,

दुष्ट दलन हेतु धाओ त्वरित, आओ देवि चंडिके।

शत्रुओं का दलन करो, धम्र संस्थापन करो,

भक्त की पुकार सुनो, ध्याओ शीघ्र मातृके।

आंग्ल दुष्ट संहार करो, धरती का त्रास हरो,

शत्रु रक्त पी अघाओ, आओ शत्रु संहारके!

राजा शंकर सिंह ने 52वीं रेजिमेंट को भी अपने साथ विद्रोह में सम्मिलित करने का प्रयास किया था। इस आरोप में उनको पुत्र सहित 18 सितंबर, 1857 को तोप से उड़ा दिया गया। किंतु इस समाचार ने निराश होने के स्थान पर 52वीं पलटने ने विद्रोह का शंखनाद ही कर दिया। उन्होंने रणभूमि में कूदकर एक अंग्रेज अधिकारी येक ग्रेगर को यमलोक ही पठा दिया। इसी भांति धार राज्य में भी विद्रोह की ज्वालाएं दहकी थीं तो दिल्ली के राजपुत्र वीर फीरोजशाह के द्वारा किए गए प्रयासों के फलस्वरूप महिदपुर और गौरेया में भी क्रांति का विस्फोट हुआ था, जिसका विवरण हम यहां विस्तार के भय से प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं।

किंतु इन सभी स्थानों की अपेक्षा ब्रिटिश सत्ता का मर्मस्थान तो हैदराबाद के निजाम के हाथों में ही था। इस राज्य के सिंहासन पर मई 1857 के मध्य में अफजल उलउद्दौला सिंहासनासीन हुआ था। सर सालारजंग नामक व्यक्ति उसके दीवान पद का भार वहन कर रहा था। इस सालारगंज में अपने इशारे मात्र पर ही संपूर्ण दक्षिण को उठाने की क्षमता थी। यदि हैदराबाद का निजाम विद्रोह में शामिल हो जाता तो यह सुनिश्चित था कि संपूर्ण दक्षिण प्रदेश ही एक व्यक्ति के समान उठ खड़ा होता । फिर उत्तर में हुए विद्रोह के कारण पड़नेवाले दबाव से कसमसाकर टूटने की स्थिति में आई हुई ब्रिटिश साम्राज्य की आयु की डोरी दक्षिण का भी दबाव पड़ने से निश्चित रूप से कड़कड़ाकर टूक–टूक हो जाती। यह भी कैसे कहा जाए कि अंग्रेजों के विरूद्ध प्रारंभ किए गए इस स्वातंत्र्य संग्राम के सिद्धातों से किसी ने सालारजंग को अवगत नहीं कराया होगा। यही मानना होगा कि सर सालारजंग के अंतःकरण में इतनी प्रचंड 'राजभक्ति' विद्यमान थी कि उसने स्वधर्म, स्वराज्य और स्वतंत्रता के प्रति प्रेम की एक भी तरंग से

उसके हृदय को तरंगित नहीं होने दिया। किंतु इतने पर भी उसे क्रांति के संघर्ष में योगदान देने के लिए प्रेरित करने में हैदाराबाद की जनता ने कोई कसर न उठा रखी थी। किंतु सालारजंग अविचल ही रहा। तब हैदाराबाद में 12 जून को प्रातः काल ही अत्यधिक उत्तेजना परिलक्षित हुई। उस दिन एक लब्धप्रतिष्ठ मौलवी के हस्ताक्षरों से युक्त भित्तिपत्रक यत्र–तत्र दीवारों पर चिपके हुए दृष्टिगोचर हुए। क्रांतिकारी हस्तपत्रकों के तो अंबार ही लग गए थे। मसजिदों में मुसलमानों की विशाल सभाएं भी आयोजित हुईं, जहां उत्तेजित भाषण होते थे और लोगों से ये प्रतिज्ञाएं कराई जाती थीं कि फिरंगी काफिरों को भारत से निष्कासित करके ही चैन की सांस ली जाएगी। किंतु सालारजंग पर तो इन सभी घटनाओं का विपरीत प्रभाव पड़ा। उसने कुछ क्रांतिकारी नेताओं को बंदी बनाकर अंग्रेजों को सौंप दिया। किंतु इसपर भी 17 जुलाई को हैदराबाद में विद्रोह का शंखनाद गूंज उठा और क्रांतिकारी नारों की गूंज सर्वत्र सुनाई पड़ने लगी। क्रांति की पताका फहराते हुए लोग अपने नेताओं को मुक्त कराने के लिए ब्रिटिश रेजिडेंसी में प्रविष्ट हो गए। सर्वप्रथम निजाम की सेना के ही रूहेलों ने विद्रोह की पताका फहराई थी और लगभग पांच सौ नागरिक भी इसमें सम्मिलित हुए थे। व्रिदोहियों को आशा थी कि सालारगंज खुलकर भले ही उनकी सहायता न करे, किंतु गुप्त रूप से तो उनकी सहायता करेगा ही और यदि उसने ऐसा भी न किया तो वह कम–से–कम तटस्थ तो अवश्य ही रहेगा; किंतु उसने तो सभी की आशाओं पर तुषारपात कर दिया। वह उनसे न मिलकर शांत ही नहीं बैठा रहा, अपितु उसने तो ब्रिटिश अधिकारियों से हाथ मिलाकर अपने ही सैनिकों की हत्या करने में भी संकोच नहीं किया। एक मुठभेड़ में क्रांतिकारी नेता तोराबाज खां मारे गए तो अलाउद्दीन नामक एक अन्य नेता शत्रुओं द्वारा बंदी बना लिया गया। उसे तत्काल ही अंडमान भेज दिया गया। इस प्रकार हैदराबाद में हुआ क्रांति का प्रयत्न असफल हो गया। एक अंगेज इतिहासकार ने स्पष्टतः इन शब्दों में वस्तुस्थिति को स्वीकार किया है–

''तीन मास तक संपूर्ण भारत का भाग्य निजाम अफजलउद्दौला और सालारगंज के ही हाथों में था। उनकी बुद्धिमतापूर्ण नीति से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने विद्रोही सिपाहियों के प्रयासों से दिल्ली के राजसिंहासन के पुनः प्रतिष्ठित होने की आशा पर संदिग्ध अवस्था में पड़े रहकर अवलंबित रहने के स्थान पर अंग्रेजों की छत्रच्छाया में मांडलिक बनकर रहना ही श्रेष्ठ समझा।'' सालारजंग की इस अस्पृहणीय कारस्तानी के कारण इतिहास उसकी सदैव ही निंदा करता रहेगा।

इस प्रकार जहां दक्षिण मं निजाम क्रांति का विनाश करने में तल्लीन था वहां उसी के राज्य के समीप स्थित जोहरापुर के तरूण हिंदू राजा ने अपना सर्वस्व स्वातंत्र्य संग्राम में समर्पित कर देने का सत्संकल्प ग्रहण किया था। तदनुसार उसने अरब, रूहेलों, पठानों

तथा डोगरों की एक सेना का गठन किया था। उन्हीं दिनों उसके पास नाना साहब के दूत भी पहुंचे थे और उन्होंने उसको नाना साहब के पक्ष में उठ खड़े होने के लिए प्रेरित किया था। रायचूर और अर्काट के भी कुछ ब्राह्मणों और मौलवियों ने उसे प्रेरित किया। किंतु इन सबके प्रोत्साहित करने पर भी ज बवह अंगेजों के विरूद्ध उठकर खड़े होने में टालमटोल कर रहा था तो उसकी प्रजा ने ही उसे कायर कहकर ताने देने आरंभ कर दिए। तब उसने पेशवा के नाम पर अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह प्रारंभ कर दिया। किंतु निजाम और अंग्रेज इन दोनों की शक्ति के विरूद्ध उस अकेले की पर न बसी। अतः सन् 1858 के फरवरी मास में यह वीर नरेश अपनी सेनाओं के पराभव के उपरांत हैदराबाद में आ गया। ज बवह वहां के बाजारों में टहल रहा था तो उसे सालारगंज ने बंदी बना लिया। अंग्रेज अधिकारी मेडोज टेलर को ही भेजा गया। किंतु गुप्त संगठन और उसमें योगदान के संबंध में जब राजा से टेलर ने प्रश्न किया तो उसने क्या उत्तर दिया, यह टेलर के शब्दों में ही बताना उत्तम होगा। मेडोज टेलर ने लिखा है कि ''वह तत्काल तनकर खड़ा हो गया और बड़े आवेश सहित उसने कहा, 'नहीं अप्पा, जिस संबंध में तुम मुझे रेजीडेंसी से भेंट करने के लिए कह रहे हो, मैं उस बात को कदापि स्वीकार नहीं करूंगा; रेजीडेंस समझता होगा कि मैं अपने प्राणदान के लिए उससे याचना करूंगा, किंतु स्मरण रहे अप्पा, मैं अपने सहयोगी देशबांधुवों के नाम तो जीवन की अंतिम घड़ी तक भी नहीं बता सकता हूं, किंतु यदि मुझे मेरे स्फूर्तिदाता का नाम बताने हेतु बाध्य किया जाता है तो मेरा स्पष्ट उत्तर है 'नहीं'। क्या काल के गाल में जाने के हेतु बाध्य किया जाता हो तो मेरा स्पष्ट उत्तर है 'नहीं। क्या तोप से उड़ाए जाने, कालेपानी में सड़ाए जाने अथवा फांसी पर लटकाए जाने, इन सबसे भी अधिक भयंकर दंड–अपने आपको देशद्रोहियों की श्रेणी में गिना जाना मानता हूं।'' वीरव्रती नरेश गरज उठा, ''अप्पा, मैं तुमसे एक ही याचना करता हूं कि मुझे फांसी पर न लटकाओ, अपितु मुझे तोप से उड़ा दो, फिर तुम देखोगे कि मैं कितनी निर्भीकता और शांति से तोप के समक्ष सधकर खड़ा होता हूं।''

उस देशभक्त नरेश को पहले फांसी का ही दंड सुनाया गया, किंतु मेडोज टेलर के हस्तेक्षम से उसे कालापानी के दंड में परिवर्तित कर दिया गया। उसे जब अंडमान भेजा जा रहा था तो उसने समीप में किसी को न पाकर जेल के एक वार्डर से पिस्तौल छीन ली ओर अपने ऊपर गोली दागकर प्राण विसर्जित करते हुए ये अंतिम शब्द कहे–''काला पानी से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है। मेरा तो एक साधारण सा प्रहरी भी बंदीशाला में नहीं रहेगा, फिर मैं तो उनका राजा हूं। मैं कदापि बंदी नहीं रह सकता।''[167]

जोहरापुर के नरेश का इस प्रकार पराभव होते हुए देखकर अब तक असमंजस में पड़े नरगुंद के नरेश ने भी अब विद्रोह करने के लिए कमर कस ली। इस वीरव्रती का नाम था भास्करराव बाबासाहब! बाबासाहब बड़ा विद्या–प्रेमी था। उसने अपने पुस्तकालय में विभिन्न उत्तम ग्रंथों का एक संग्रहालय भी बनाया था। वह स्वतः तो दयालु था ही, उसकी धर्मपत्नी भी अनिंद्य सुंदरी थी और साहसी भी। जब उसे दत्तक पुत्र लेने की स्वीकृति न दी गई थी तभी से उसने अंग्रेजी राज्य का सर्वनाश कर देने का संकल्प कर लिया था। उसी की प्रेरणा से, नितांत ही संकोच सहित नरगुंद नरेश ने 25 मई, 1857 को अंगेजों के विरूद्ध हथियार उठा लिये। बाबासाहब ने ब्रिटिश राज्य सत्ता की दासता का तौक गले से तोड़कर फेंक दिया। जब उन्हें विदित हुआ कि अंग्रेज अधिकारी मैनसन उनपर आक्रमण करने के लिए आ रहा है तो उन्होंने अपने कतिपय विश्वस्त साथियों के साथ नरगुंद के समीप स्थित वन में ही उसे घेर लिया। मैनसन को यमलोक पठा दिया गया और वीर सैनिक उसका सिर काटकर ले आए। मैनसन को यमलोक पठा दिया गया और वीर सैनिक उसका सिर काटकर ले आए। वे इस अंग्रेज अधिकारी के सिर को जुलूस के रूप में नरगुंद लाए और अगले दिन उसे नरगुंद नगर के प्रवेशद्वार पर टांग दिया था। किंतु नरगुंद नरेश के ही सौतेले भाई ने क्रांतिकारियों के साथ सहयोग देना ही स्वीकार नहीं किया, अपितु वह अंग्रेजों से भी जा मिला। अंग्रेज सेना ने नरगुंद पर आक्रमण कर वहां की सेना को पराजित कर दिया। किंतु बाबासाहब शत्रुओं के हाथ में आने से बच निकलने में सफल हो गए। बाद में एक दिन गुप्त रूप से घूमते हुए वे बंदी बना लिये गए और 12 जून को अंग्रेजों ने उन्हें फांसी दे दी। उनकी नवयुवती, परम सुंदरी महारानी भी जीते–जी अंग्रेजों के हाथ न आई, अपितु उसने अपनी सास सहित मलप्रभा नदी की जलधारा में छलांग लगाकर प्राण विसर्जित कर दिए।

इनके अतिरिक्त कोमलदुर्ग के भीमराव, सावंतवाड़ी के अधिपति इत्यादि अन्य लोगों ने भी पेशवा के नाम पर अनेक स्थानों पर विद्रोह किए। किंतु विद्रोह का ठीक समय निर्धारित करने की चतुरता के अभाव, संगठन की अपूर्णता एवं एकाकी और असंगठित जनबल के आधार पर दक्षिण में हुई क्रांतियों में से कोई भी प्रभावी सिद्ध नहीं हुई और अंग्रेजों को भी अपना अधिक ध्यान केंद्रित नहीं करना पड़ा। परिणामतः उन्हें

[167] मेडोज टेलर कृत–'स्टोरी ऑफ माई लाइफ'।

उत्तर में ही अपनी संपूर्ण शक्ति लगाने का सुयोग्य मिल गया।

इस प्रकार दक्षिण का विहंगावलोकन करते के उपरांत अब हमें पुनः अहमदशाह की उस वीररस–प्रचुर चरित्र कथा के उस अध्याय पर दृष्टिपात करना होगा ज बवह तड़पते और कराहते अवध की पीड़ा का हरण करने के लिए अंतिम बार प्रयासरत हुआ था। मौलवी सरीखे असाधारण वीरों की मृत्यु भी उनके जीवन के सदृश ही वैभवशाली होती है। दूसरे अनेक व्यक्ति रणभूमि में संघर्ष करते हुए स्वर्ग सिधारते हैं; किंतु जिनके अंतःकरणों में राष्ट्रभक्ति की पावन ज्वाला प्रज्वलित हो रही हो, उसके शमन हेतु रणभूमि पर 'रक्त–रक्त कहते जो तांडव करते हुए अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हैं, उन्हें तो वस्तुतः मृत्यु भी नहीं मार पाती। ऐसे महान् योद्धा यदि प्रतिशोध की अग्नि पूर्णतः बुझ जाने के पूर्व ही रणभूमि में प्राण विसर्जित कर दें तो भी यमराज के अधीन नहीं हो पाते। यह भी देखा गया है कि ऐसे महान् वीर का शीश धड़ से पृथक् हो जाने पर उनका धड़ ही समर में लिप्त रहता है। और अनेक लोगों में यह भी धारणा व्याप्त है कि यदि ऐसे महावीर के धड़ के भी टुकड़े–टुकड़े कर दिए जाएं तब भी उस वीर का अदृश्य भूत ही रात्रि में शत्रुओं की छाती पर चढ़कर अपनी प्रतिशोधाग्नि को शांत करता है।

इस धारणा के मूल में कोई–न–कोई तथ्य अवश्य ही है, ऐसा प्रतीत होता है। जब मौलवी अहमदा शाह समर भूमि में लड़ रहे थे, उस समय लॉर्ड केनिंग ने एक घोषणा प्रसारित कर संपूर्ण अवधवासियों पर यह व्यक्त किया था कि ''जो स्वतः आत्मसमपर्ण कर देगा उसे विद्रोही न समझते हुए उसके पूर्व के सभी अपराधों को दया सहित क्षमा कर दिया जाएगा और जो लोग आज हमारा साथ दे रहे हैं उनकी संपति और जागीरें आदि भी वापस दे दी जाएंगी। अब अंग्रेजी सत्ता की निश्चित रूपेण विजय हो रही है, अतः अवध के जो लोग अभी भी ब्रिटिश सत्ता का विरोध करने पर डटे रहेंगे उन्हें उनके इस हठ के लिए कठोरतम दंड दिया जाएगा।'' अंग्रेज यह समझते थे िकइस घोषणा के उपरांत अवध`क प्रायः सभी जमींदार शांत हो जाएंगे। परंतु इन्हीं दिनों यह समाचार भी मिला कि 'पावेन के राजा ने 5 जून, 1857 को मौलवी अहमद शाह का सिर काट लिया है।' मंद होती हुई अग्नि मौलवी की मृत्यु के समाचार से पुनः दहक उठी। अत्यधिक प्रयत्नों के उपरांत मिली असफलता से जो अवध थक गया था और जिसे क्षमा के प्रलोभन में फंसाया जा रहा था, वह अवध मौलवी के निधन पर शोक प्रदर्शन करने के स्थान पर 'प्रतिशोध', 'प्रतिशोध' की गर्जना करता हुआ पुनः रणभूमि में कूद पड़ा। मौलवी का शीश तो उनके क्रूर शत्रु ने काटकर निश्चित रूप से ही नगर के तोरण द्वार पर लटका दिया था, किंतु अब तो उसका धड़ ही रणभूमि में अंग्रेजों के होश उड़ा रहा था। मौलवी की हत्या के कारण संपूर्ण अवध पर ही मानो उनका भूत सवार हो गया था और अब अवध जय–पराजय, हानि–लाभ, आशा–निराशा और जीवन–मरण

का मोह त्यागकर नवीन और प्रचंड उत्साह सहित शत्रु से संघर्ष हेतु रणभूमि में पुनः उतर पड़ा था। पावेन के चांडाल से प्रतिशोध लेने के लिलए निजाम अली खां पीलीभीत जा पहुंचा । खानबहादुर खान ने चार हजार लोगों को लेकर चढ़ाई की तो फर्रूखाबाद के नेता के साथ पांच हजार लोग थे और तीन हजार लोगों सहित विलायतशाह तथा तीन हजार को साथ लेकर ही नाना साहब, अली खां मेवाती और उनके अनुगामियों ने संपूर्ण अवध में ही उथल–पुथल मचा दी। इनमें से प्रत्येक ही पावेन के राजा का रक्त पीने के लिए उतावला था। इतनी विशाल वाहिनी को चढ़कर आता हुआ देखकर इस देशद्रोही पापी का अंग–अंग कांप उठा। उसके संरक्षण के लिए अंग्रेजी सेना भी वहां तीव्र गति से एकत्रित होती जा रही थी। इस प्रदेश के आसपास शत्रुओं से क्रांतिकारियों का घमासान संघर्ष हो रहा था। घाघरा नदी के तट पर बेगम हजरत महल और हेमू खां डेरा डाले हुए थे। इधर राजा रामबख्श, बाहुनाथ सिंह, चांद सिंह, हनुमंत सिंह एवं अन्य बड़े–बड़े जमींदार अपनी संपूर्ण सेना लेकर अवध क स्वतंत्रता के लिए एक और प्रयास करने में लगे थे। इसी भांति शहजादा फिरोजाबाद, जो अभी तब धार में युद्ध कर रहा था, अवध आ पहुंचा था। अपने असाधारण धैर्य का परिचय देकर कोया के दुर्ग की रक्षा करनेवाले वीर पिता के वीर पुत्र नृपति सिंह अवध के संग्राम में भाग लेने के लिए आ पहुंचे थे। उसके पिता जुस्सा सिंह नाना साहब के परम मित्र थे और स्वतंत्रता के युद्ध में ही उन्होंने अपने प्राण विसर्जित किए थे। उन्होंने ही नाना साहब को अपने दुर्ग में आश्रय दिया था। इसी भांति देशप्रेम क पावन प्रेरणा लिये दृढ़ता और उत्साह से बढ़ता राजा वेणीमाधव भी अपने दुर्ग से निकलकर देश–रक्षा हेतु रण–कंकण बांधकर प्रचंड शौर्य का प्रदर्शन करता कानपुर होते हुए लखनऊ के लिए चल पड़ा। जिनकी विजयी होने की आशाएं धूमिल हो गई हों, किंतु जो जाति के सम्मान हेतु मरण का वरण करने चल पड़े हों, उनके साहस का पारावार पा भी कौन सकता है! केवल अपने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करने हेतु वीर वेणीमाधव ने अनुपम साहस का प्रदर्शन किया था। उन्हें तो विजय प्राप्ति की किंचित् मात्र भी आशा नहीं थी। किंतु विलंब से ही क्यों न हो, उसने लखनऊ पर धावा बोल दिया था। उसने लखनऊ नगर में यह विज्ञप्ति भी प्रसारित कर दी कि नगर में रहनेवाले सभी भारतीय नगर छोड़ दें, क्योंकि फिरंगियों पर मेरा प्रचंड प्रहार आरंभ होनेवाला है। विजय से उत्मत्त और पूर्ण अनुशासनबद्ध सेना से सुरक्षित अंग्रेज भी उसकी इस घोषणा, तत्परता और साहस से आश्चर्यचकित हो गए थे। इसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी। मृतवत् और साहस से आश्चर्यचकित हो गए थे। इसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी। तत्परता अवध एक निमिष मात्र के लिए क्यों न हो पुनः प्राणहान् सा होकर खड़ा हो गया था। लखनऊ पर इससे पूर्व क्रांतिकारियों का जितना प्रबल आक्रमण पहले कभी भी नहीं हो पाया था, वैसा अब होने वाला था।

रक्त के सागर से ता अभी भी अवध के अंग सूख नहीं पाए थे, तभी 13 जून

1857 को होप ग्रांट लखनऊ के समीप नवाबगंज की ओर बढ़ चला, जहां लखनऊ प्रस्थान करने के लिए क्रांतिकारी वीर एकत्र हुए थे। उन्हें अपनी विजय की तो किंचित मात्र भी आशा नहीं थी। उनपर होप ग्रांट सहसा ही अपने गोरे और कोल सैनिकों सहित टूट पड़ा। अन्य कोई सेना होती तो ऐसे आक्रमण की स्थिति में उसका तितर–बितर हो जाना अपरिहार्य था। परंतु हे क्रांतिवीरों, ठहरो् अभी तो मौलवी का निधन हुए आठ दिन भी व्यतीत नहीं हा पाए हैं। अतः रूको! वे रूके और उन्होंने आक्रमण का प्रतिकार करना आरंभ कर दिया। उन्होंने प्रचंड, उत्कर्ष शौर्य का परिचय दिया उसे देखकर तो शत्रुओं के ह्रदय भी उनकी वीरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। आंग्ल वीर होप ग्रांट ने भी उनकी वीरता के संबंध में लिखा–''इतने पर भी उनके आ क्रमण बड़े ही प्रचंड होते थे और उन्हें विफल बनाने के लिए हमें कठोर परिश्रम करना पड़ा। सुदृढ़ साहसी जमींदारों ने दो तोपों सहित हमारी सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। मैंने हिंदुस्थान में अनेक संग्राम देखे हैं और विजय अथवा मृत्यु का वरण करने के लिए कृतसंकल्प सुभट वीरों को भी देखा है; किंतु जिस असाधारण वीरता का प्रदर्शन इन जमींदारों ने किया वैसी वीरता शायद ही कहीं देखी हो। सर्वप्रथम उन्होंने हडसन के अश्वारोही दल पर आक्रमण किया और उसे तितर–बितर कर दिया और उसकी दो तोपें भी विचलित–सी हो गईं। उस समय मैंने सातवीं हुजार पलटन के दस्तों को आगे बढ़ने का आदेश दिया, उनके चार तोपें भी थीं। ये तोपें विद्रोहियों पर केवल पांच सौ गज के अंतर से ही अग्नि–वर्षा कर रही थीं। विद्रोही हंसियां से काटे जानेवाले भुट्टों की तरह गिरते जा रहे थे। उनके प्रमुख ने, जो काफी मोटा था, निर्भय होकर दो पताकाएं अपनी तोपों के समक्ष गाड़ दी। वस्तुतः यह वहीं डटे रहने का संकेत था। किंतु हमारी तोपों से इतने प्रचंड प्रहार हो रहे थे कि जो भी उनके समीप आता, धराशायी हो जाता। हमारी सहायता के लिए अन्य दो दस्ते भी आ पहुंचे। अतः बचे हुए विद्रोहियों को हटना पड़ा। फिर भी वे हम पर तलवारें और भाले चमकाते हुए हमें चुनौती देते रहे। केवल उन दो तोपों के चारों ओर ही एक सौ पच्चीस शव पड़े हुए थे। तीन घंटे के संग्राम के उपरांत विजयश्री हमारे हाथ रही।''[168]

इस प्रकार की घमासान मुठभेंड़ पूर्वी अवध, मध्य अवध, उत्तरी अवध अथवा संपूर्ण अवध में ही आरंभ हो गई थीं। अपनी पुरानी शमशीरों और तोड़ेदार बंदूकों से ही अवधवासी अंग्रेजी की प्रबल सत्ता को चुनौती दे रहे थे। अंग्रेजों के रचे हुए जाल को उनकी कृपाणें काट डालने में संलग्न हो उठी थीं। इन उग्र हठी रणवीरों के प्रबल पराक्रम का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना तो स्थानाभाव के कारण संभव नहीं है। किंतु इतना कहना ही उपयुक्त होगा कि अवधवासी रणांगण में भयंकर तांडव करने में संलग्न

[168] होपग्रांट कृत–'इंसीडेंट्स ऑफ द सेपॉय वार', पृष्ठ 292 ।

थे। वे केवल आंग्ल शत्रुओं को ही ठिकाने नहीं लगा रहे थे अपितु शत्रु द्वारा क्षमादान दिए जाने की भूलभुलैया में पड़े हुए राजा मान सिंह तथा पावेन नरेश के समान चांडाल देशद्रोहियों पर भी टूट पड़े थे। इस प्रकार अवध के देशभक्तों को दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। उन्होंने पावेन पर धावा बोला, लखनऊ में संग्राम जारी रखा, सुलतानपुर में वे शत्रु के भिड़े, उन्होंने नीचे विश्वासघात मान सिंह को उसके दुर्ग में ही बंद कर दिया, अंग्रेजों के लिए प्रत्येक मार्ग में अवरोध उत्पन्न किया, उनकी चौकिया को लूट लिया। उन्होंने अवध के कण–कण को अपने रक्त का अभिषेक देकर पावन बना दिया। उसके चप्पे–चप्पे में आत्मयाग की पताकाएं गाड़ दीं। जहां कहीं भी अंग्रेज उन्हें घेर लेते थे, वे देशभक्त उसे तोड़कर इधर–उधर फैल जाते थे और युद्ध तथा प्रतिशोध का जयघोष जारी रखते थे। जून से अक्तूबर–पर्यंत और अक्तूबर से दिसंबर–पर्यंत अवध रण में जूझता रहा। दक्षिण से और उत्तर से नही अपितु सभी दिशाओं से नित नवीन अंग्रेजी सेनाएं उनपर आकर धावा बोलती थीं। इस प्रकार अनंत शत्रु सैन्य के साथ कृतनिश्चयी अक्तूबर–पर्यंत लोहा लेते रहे। वेणीमाधव के शंकरपुर को अंग्रेजी सेनाओं द्वारा तीन ओर से घेरा गया। शंकरपुर में सेना भी कम थी और रसद भी। वेणीमाधव ने इस स्थिति में भी शस्त्र समर्पित नहीं किए। तब अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति ने उन्हें स्वतः यह संदेश भेजा कि ''तुम्हारे पक्ष के विजयी होने का अब कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। अतः तुम यदि युद्ध के हठ को छोड़कर शरण मांग लोगे तो तुम्हें पूर्णरूपेण क्षमा कर तुम्हारी संपत्ति वापस लौटा दी जाएगी।'' वेणीमावध ने उसे उत्तर दिया, ''अब मेरे लिए दुर्ग की रक्षा कर पाना संभव नहीं, अतः उसे तो मैं छोड़ रहा हूं; किंतु तुम्हारी शरण में कदापि नहीं आऊंगा, क्योंकि मेरी इस देह पर मेरा अधिकार नहीं है। यह तो मेरे प्रभु की है। किला तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, किंतु वेणीमाधव नहीं, कारण? उसकी देह तो स्वराज्य की दास है।''[169]

[169] चार्ल्स बाल कहता है–''उपर्युक्त घोषणा के उपरांत भी अवध का संघर्ष विचित्र सा ही रहा। इन सभी विद्रोहियों को जनता की अपूर्व सहानुभूति प्राप्त थी तथा उन्हें आदमियों की कुमुक भी मिलती रहती थी। ये विद्रोही बिना रसद के ही रवाना हो जाते थे, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर ही लोग इन्हें खिलाते–पिलाते थे। ये अपना सामान आदि भी बिना किसी प्रहरी के ही छोड़कर चल देते थे, क्योंकि लोग अपने आप ही उसकी रक्षा करते थे। इन विद्रोहियों को प्रति घंटे ही अंग्रेजों की दशा का पूर्णतः आकलन कर लेते थे। प्रत्येक भोजनालय में मेज के समीप खड़े रहनेवाले खानसामा भी विद्रोहियों से गुप्त रूप से सहानुभूति रखते थे। इस कारण हमारी कोई भी योजना गुप्त नहीं रह सकती थी। यों तो अंग्रेजों के शिविर में ही गुप्तचर खड़े होते थे, विद्रोहियों पर अचानक आक्रमण करना इसलिए संभव नहीं था। कोई कौतिक ही हो जाए तो अलग बात थी। क्योंकि एक मुख से दूसरे मुख तक पहुंचनेवाले समाचारों ने तो हमारे अश्वारोही भी मात कर दिए थे।''–खंड 2, पृष्ठ 572 ।

इस बीच सन् 1857 के नवंबर मास में ब्रिटेन की सम्राज्ञी ने अपनी सुप्रसिद्ध घोषणा की और यह भविष्यवाणी भी इस घोषणा के माध्यम से सत्य ही सिद्ध हो गई कि ठीक सौ वर्ष के पश्चात् कंपनी के राज्य का भारत से अंत हो जाएगा, क्योंकि अब हिंदुस्थान से कंपनी की राज्य सत्ता समाप्त हो गई थी और उसके स्थान पर ब्रिटिश सम्राज्ञी का राज्य आरंभ हो गया था। महारानी की घोषणा में यह भी स्पष्ट वचन दिया गया था कि जिस–जिसने भी अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह किया है, किंतु अपने शस्त्र समर्पित कर दिए हैं और ब्रिटेन की शरण में आ गए हैं, उन्हें सार्वजनिक रूप से क्षमादान दिया जाएगा और उनकी संपत्ति भी जब्त नहीं की जाएगी। इतना ही नहीं, अपितु उनके अपराधों की भी जांच–पड़ताल नहीं की जाएगी।[170] इस घोषणा में ही राजा–महाराजाओं को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार भी स्वीकार कर लिया गया। ब्रिटेन की महारानी की इसी घोषणा में ही यह अभिवचन भी दिया गया कि जनता के धार्मिक अधिकारों और रूढ़ियों में किंचित् मात्र भी हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और उपर्युक्त सभी वचनों का पूर्णरूपेण पालन किया जाएगा।

महारानी ने अपनी घोषणा में यह भी कहा–''ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकाल में नागरिक तथा सैनिक पदों पर काम कर रहे वर्तमान कर्मचारियों को हम उन्हीं पदों तथा अधिकारों पर बनाए रखने का भी वचन देते हैं; किंतु भविष्य के नियम–कानूनों का निर्धारण हम स्वेच्छानुसार करेंगे और उन्हें इनका पालन करना होगा।

''मैं यह भी घोषणा करती हूं कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने देशी राज्यों और संस्थानों से जो संधियां की हैं अथवा करार किए हैं, उनका अक्षरशः पालन किया जाएगा। दूसरे

170 महारानी के इन वचनों का पालन अंग्रेजों ने किस प्रकार किया, इसका परिचय भारतवासियों को भलीभांति मिला है। विभिन्न साहूकारों से जमानती देकर जो लाखों रूपए ऋण के रूप में लिये गए थे वे रूपए साहूकारों को विद्रोही बताकर देने से पूर्णतः इंकार कर दिया गया। इस संबंध में प्रस्तुत उदाहरण नितांत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि सन् 1857 से संबंधित किसी भी इतिहास ग्रंथ मं इसकी जानकारी नहीं मिल सकेगी। इतना ही नहीं, अपितु 'लंदन टाइम्स' से लिए श्री रसेल द्वारा प्रेषित संवाद पत्रों में भी इसका कहीं उल्लेख नहीं है। किंतु 'लंदन टाइम्स' के संपादक जॉन डीलन का आत्मचरित प्रकाशित हुआ है। उसमें 'लंदन टाइम्स' के संपादक को भारत स्थित संवाददाता श्री रसेल द्वारा लिखे गए व्यक्तिगत पत्र का भी समावेश है। इस पत्र में लिखा गया है–''सन् 1849 के जनवरी मास के अंत में भी सर डब्ल्यू, एच. रसेल लॉर्ड क्लाइव के साथ था। लखनऊ से लिखे गए अपने अंतिम पत्रों में से एक में उसने एक रोचक कहानी बताई है, जो उसने प्रधान सेनापति से सुनी थी। इलाहाबाद के अपने मकान मालिक (एक एंग्लो–इंडियन जनरल मचेंट) के संबंध में लॉर्ड क्लाइव ने बताया कि तुम ठीक प्रकार जानते हो कि उसने क्या किया? 'नहीं', अच्छा, जब विद्रोह भड़क उठा तब देशी व्यापारियों का उसपर पर्याप्त ऋण था। वह अब स्पेशल कमिश्नर नियुक्त कर दिया गया था और उसने सर्वप्रथम जो कार्य किया वह यह था कि सभी साहूकारों को फांसी के तख्तों पर लटका दिया''।

पक्ष द्वारा भी उनका पालन होगा, ऐसी भी मुझे आशा है। इस समय जितने प्रदेश पर हमारा अधिकार है, उससे अधिक पर अधिकार करने की हमारी इच्छा नहीं है। जिस प्रकार हम अपनी प्रभुसत्ता के अधिकारों तथा मातहत प्रदेशों पर किसी प्रकार का और किसी का भी अतिक्रमण मौन रहकर सहन नहीं करेंगे, उसी प्रकार दूसरे के अधिकारो पर भी कोई आक्रमण करने की अनुमति नहीं देंगे। देशी नरेशों के अधिकार, सम्मान और पद की प्रतिष्ठा का विचार करते हुए हम उनके साथ नितांत आदरपूर्ण व्यवहार करेंगे। हमारी यह भी इच्छा है कि हमारी प्रजा के समान ही वे भी उन्नति करें और आंतरिक शांति, सुरक्षा और सुप्रबंध से प्राप्त होनेवाली सामाजिक प्रगति का भी उन्हें लाभ प्राप्त हो।

''हमारी यह भी अभिलाषा है कि हमारे प्रजाजनों में जो भी अपनी शिक्षा, क्षमता एवं कर्त्व्य के आधार पर योग्यता अर्जित कर ले, तो जाति, धर्म, पंथ किसी का भी विचार न करते हुए उसे निस्संकोच और निष्पक्ष भाव सहित हमारी सेवा में किसी का भी विचार न करते हुए उसे निस्संकोच और निष्पक्ष भाव सहित हमारी सेवा में किसी पद पर भरती किया जाए।

''जिन लोगों ने ब्रिटिश प्रजाजनों की हत्या करने में सक्रिय योग दिया हो और जिनके विरूद्ध अभियोग प्रमाणित हो चुका हो, उन अपराधियों के अतिरिक्त अन्य सभी को हम क्षमा देने की भी घोषणा करते हैं।

''जो अन्य व्यक्ति अभी तक भी सशस्त्र होकर हमारे विरूद्ध युद्ध कर रहे हैं वे भी यदि अपने ग्रामों को वापस चले जाएंगे, अपने पहले के कामों में लग जाएंगे तो उन्होंने हमारे तथा हमारे शासन के विरूद्ध जो भी अपराध किए हैं, हम उन्हें नितांत कृपा सहित भूल जाने को तत्पर हैं।

इस प्रकार महरानी का घोषणापत्र अथवा भारत का भाग्यलेख प्रकाशित किया गया। निस्संदेह, इसका एकमात्र उद्देश्य अवध की क्रांति—ज्वाला पर पानी डालना ही था। किंतु अवध के क्रांतिदूतों को यह घोषणा तनिक भी आकर्षित न कर सकी। महारानी की घोषणा के सर्वथा विपरीत अवध की बेगम ने घोषणा कर दी—''इंग्लैंड की रानी के घोषणापत्र में यह बताया गया है कि देशी नरेशों से कंपनी ने जो संधियां अथवा प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं वह उन सभी का पालन करेंगी। किंतु भारतीय जनता को इस कपटपूर्ण चाल को भलीभांति समझ लेना चाहिए। कंपनी तो संपूर्ण की रानी ने कौन सी नई बात कही है? भरतपुर नरेश को कंपनी ने वचन दिया था कि उसे पुत्रवत् माना जाएगा और दूसरी ओर उसके संपूर्ण राज्य पर भी हाथ साफ कर दिया। लाहौर के अधिपति (दिलीप सिंह) को लंदन में बंदी बनाकर रख दिया गया है। उन्हें भारत नहीं लाया जाता। नवाब शम्सुद्दीन को इन्हीं अंग्रेजों ने एक हाथ से फांसी पर लटकाया और दूसरे हाथ से उसे

सलाम करते हुए भी उन्हें तनिक भी लज्जा न आई। सतारा के छत्रपति को, पूना के पेशवा को बंदी बनाया और मृत्युपर्यंत बिठुर में उससे पेंशन चढ़वाते रहे। काशी नरेश को इन्होंने आगरा में बंदी बनाकर रखा। इन्होंने ही बिहार, उत्कल और बंगभूमि के राजाओं को और जागीरदारों को समूल नष्ट कर दिया। इन्होंने अवशिष्ट वेतन का वितरण करने के नाम पर अवध का संपूर्ण पैतृक धन भी हड़प लिया। हां, इतनी कृपा अवश्य ही की कि संधि के 7वें परिच्छेद में इस प्रतिज्ञा का अवश्य ही उल्लेख कर दिया कि भविष्य में और कोई वसूली नहीं की जाएगी। ऐसी स्थिति में जो कुछ कंपनी ने किया है, यदि उसी को स्वीकृत करने की बात इंग्लैंड की रानी करती हो तो पहले की और आज की स्थिति में अंतर ही क्या है? यह सब तो पुरानी ही बातें हैं। किंतु हाल ही में लिखी गई संधि की शर्तों की पूर्णतः उपेक्षा करके और हमारा लाखों रूपए का ऋण उसकी ओर होते हुए भी कंपनी को जब कोई अन्य बहाना हाथ न आया तो 'शासकों के प्रति प्रजा में असंतोष' का कृत्रिम उपालंभ गढ़कर हमारे विपुल धन और करोड़ों रूपए के प्रदेश को हड़प लिया। यदि हमारी प्रजा इससे पूर्व नवाब वाजिद अली शाह के शासनकाल में ही सुखी नहीं थी तो अब हमारे प्रशासन काल में उसे संतुष्ट हो जाने का कारण क्या है? आज हमारी प्रजा हमारे प्रति जितनी श्रद्धा और प्रेम तथा राजनिष्ठा का प्रदर्शन कर रही है उतनी तो शायद ही किसी राजा की प्रजा ने प्रदर्शित की होगी। ऐसी स्थिति में हमारा प्रदेश हमें क्यों नहीं लौटाया जा रहा है? इंग्लैंड की रानी ने यह भी कहा है कि और आधिक प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने शासन में मिलाने की उनकी कोई इच्छा नहीं है। किंतु इस कथन के बावजूद राज्यों पर दखल करने का कार्य पूर्ववत् चल ही रहा है। किंतु इस कथन के बावजूद राज्यों पर दखल करने का कार्य पूर्ववत् चल ही रहा है। यदि अब उसने संपूर्ण शासन–व्यवस्था अपने हाथों में ले ली है तो फिर हमारे प्रजाजनों द्वारा स्पष्टतः अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति कर देने के पश्चात् भी हमारा राज्य हमें वापस क्यों नहीं दिया जा रहा है?

''किसी भी राजा अथवा रानी ने आज तक विद्रोह के अपराध में संपूर्ण सेना अथवा संपूर्ण जनता को दंडित नहीं किया, यह सत्य जगद्विख्यात है। सभी को क्षमा किया जाएगा, क्योंकि संपूर्ण सेना अथवा समग्र हिंदुस्थान को दंडित किया जाना कोई भी विचारवान् व्यक्ति कदापि पसंद न करेगा। उन्हें यह भी भलीभांति विदित है कि जब तक दंड का भय विद्यमान रहता है तब तक विद्रोह की ज्वाला भी शांत नहीं हो पाती। ''मरता क्या न करता', यह कहावत भी सुपसिद्ध ही है।

''रानी की घोषणा में कहा गया है कि जिन्होंने विद्रोहियों को आश्रय दिया अथवा विद्रोह को प्रोत्साहित दिया है, उनका पता लगाकर भी उन्हं प्राणदंड नहीं दिया जाएगा, अपितु नाम मात्र का दंड ही दिया जाएगा। किंतु जिन्होंने स्वयं हत्या की है अथवा हत्या करने में सहायता की है, उनके साथ किसी प्रकार को भी दया प्रदर्शित नहीं

की जाएगी; किंतु अन्य सभी को क्षमा प्रदान कर दी जाएगी। इस घोषणा को पढ़कर तो कोई मूर्ख भी यह समझ सकता है कि चाहे कोई अपराधी हो अथवा न हो, कोई भी दंडित हुए बिना नहीं रहेगा। इस घोषणा में तो सभी कुछ लिखकर भी कुछ नहीं लिखा गया। किंतु एक तथ्य तो स्पष्टतः उलिलिखित ही है कि जिस किसी का भी क्रांति से संबंध रहा है, ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं छोड़ा जाएगा। यह भी स्पष्ट है कि जिस नगर अथवा अंचल में हमारे सैनिक रूके हैं उस ग्राम के सभी ग्रमीणों को क्षमा नहीं किया जा सकता। शत्रुता से परिपूर्ण रानी की इस घोषणा को पढ़कर मेरे मन में यह चिंता उत्पन हो गई है कि हमारी प्रिय प्रजा के साथ क्या व्यवहार किया जाएगा। उस व्यवहार की तो कल्पना मात्र से ही मेरा हृदय भर आता है। अतः मैं स्पष्ट शब्दों में विश्वास दिलाती हूं कि जो ग्राम–प्रमुख अपनी अनभिज्ञता के वशीभूत अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर चुके हैं, वे 1 जनवरी, 1857 से पूर्व ही हमारे शिविर में उपस्थित हो जाएं। इस बात में कोई भी संशय नहीं है कि मैं उन्हें क्षमा प्रदान कर दूंगी। हिंदुस्थान के राज्यकर्ता दयालु और उदार रहे हैं, इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए हमारी घोषणा पर विश्वास करो। सहस्त्रों लोगों ने यह अनुभव ग्रहण किया है, लाखों लोगों ने भारतीय शासकों की यह कीर्ति सुनी है; किंतु अंग्रेजों ने कभी एक भी अपराधी को क्षमा किया है, यह किसी ने नहीं सुना होगा।

''इंग्लैंड की रानी की घोषणा में यह भी कहा गया है कि शांति की प्रस्थापना के उपरांत लोगों की स्थिति सुधारने की दृष्टि से राजमार्ग बनेंगे और नवीन नहरों का निर्माण आदि जनहित के कार्य किए जाएंगे। उनके इस आश्वासन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वे हिंदुस्थान की जनता को मार्गों के बनाने और नहरे तथा कुएं आदि खोदने से अधिक अन्य कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं सौंप सकते।

''इसका अर्थ यदि जनता ने ध्यानपूर्वक समझने की चेष्टा न की तो फिर आशा की कोई भी संभावना नहीं रह जाएगी।

''मैं यही चाहती हूं कि इस घोषणापत्र के भुलावे में किसी को भी नहीं फंसना चाहिए।''

एतदर्थ अब अवध ने बिना शर्त दिए जानेवाले इस क्षमादान को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। वह अब भी हाथों में तलवार संभाले हुए था, अश्वारूढ़ था। उसके एक–एक खेत में लड़ाई चल रहा थी, रक्त–स्नान हो रहा था और अवध स्वातंत्र्य यज्ञ की ज्वाला में खुलकर भाग ले रहा है। स्वतंत्रता की प्राप्ति अथवा अंतिम समय तक संग्राम, यही उसकी टेक थी। शत्रु के पैरों में पड़ने के स्थान पर शत्रु का गला घोट देना ही उसने अपनी प्रवृत्ति बना ली थी। इस प्रकार सन् 1859 का अप्रैल मास आ जाने पर भी अवध का संग्राम जारी था। शंकरपुर, टुंडिया खेड़ा, रायबरेली, सीतापुर आदि अनेक

स्थान इस समय भी रणस्थली बने हुए थे। किंतु इन स्थानों पर हुई पराजय के उपरांत इन क्रांतिवीरों को नेपाल की सीमा तक हटने पर विवश होना पड़ा। अंग्रेजों ने भी अपनी विभिन्न सेनाओं द्वारा इनका पीछा करना जारी रखा। अतः क्रांतिकारियों को अब नेपाल में ही प्रविष्ट होना पड़ा और साथ ही उनमें यह नवीन आशा भी उत्पन्न हुई कि नेपाल का हिंदू राजा उन्हें सरंक्षण प्रदान करेगा।

इस समय नेपाल में प्रविष्ट होनेवाले क्रांतिकारियों की संख्या साठ हजार थी। बेगम, उसका पुत्र और तरूण नवाब, नाना साहब तथा बाला साहब ही इनके नेता थे। उन्हें नेपाल के जंगबहादुर का पुत्र मिला था, जिसके उत्तर में नाना साहब और बेगम ने उसे दो पत्र लिखे थे। इनमें से भी नाना साहब का पत्र सुस्पष्ट, मुंहतोड़ तथा मार्मिक था। उसका एक अंश यहां देना उपयुक्त रहेगा। उन्होंने लिखा था—''आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपकी उदारता की ख्याति हम अब तक दूर से ही सुन रहे थे। हमने भारत के अनेक प्राचीन राजाओं का इतिहास पढ़ा है तथा नरेशों के भी गुण—दोषों से हम परिचित हैं। तब भी हम यह बात निश्चय के साथ कह सकते हैं कि आपकी समानता किया है उनमें से कोई भी नहीं कर सकता; क्योंकि जिन अंग्रेजों ने आपकी प्रजा से भी दुर्व्यवहार नहीं दिखाया। उनके आग्रह मात्र पर ही आप तत्काल उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े, आपकी निस्सीम उदारता सब पर स्पष्ट हो गई। आज जैसे उदारमना व्यक्ति ने जब प्रत्येक दृष्टि से अपने विरोधी शत्रु की भी सहायता की तो मैं भी आपसे आशा करता हूं कि आपके प्रजाजनों से पेशवाओं के जो वंशज सदैव ही मैत्री और उदारतापूर्ण व्यवहार अपेक्षा अस्वाभाविक है? और विशेषतः उस स्थिति में जबकि आपने कट्टर शत्रु अंग्रेजों—की मुक्त हस्त से सहायता की हैः जिसने अपने शत्रु को अपने घर में सादर नहीं सुना है कि अनेकानेक अन्यायों, दिए गए वचनों के स्पष्टतः उल्लंघन और अनेक संधियों के भंग किए जाने से हिंदुस्थान अंग्रेजों द्वारा किस प्रकार सताया जा रहा है। इसका विवरण यहां प्रस्तुत किया जाना आवश्यक नहीं है। स्वराज्य के अतिरिक्त अंग्रेज हिंदुस्थान के लोगों के धर्म को नष्ट करने के लिए किस प्रकार प्रवृत्त हैं, यह भी जगद्विख्यात है। इन्हीं कारणों से यह क्रांतियुद्ध आरंभ हुआ है। मैं अपने भाई बाबा साहब पेशवा को आपके पास भेज रहा हूं, जिससे कि वे आपसे मिलकर अन्य बातों को विस्तृत रूप से आपके समक्ष प्रस्तुत करेंगे।''[171]

इस पत्र पर पेशवा की राजमुद्रा भी अंकित की गई। पत्र के पहुंचने के उपरांत

[171] चार्ल्स बाल कृत—'इंडियन म्युटिनी', खंड 2 ।

पर्याप्त विचार–विमर्श भी हुआ। विद्रोहियों से भेंट करने के लिए जब जंगबहादुर ने अपने एक सरदार कर्नल बलभद्र को भेजा तो उसे भी विद्रोहियों की सेना के प्रमुखों ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि ''हम हिंदू धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। महाराज जंगबहादुर (नेपाल–नरेश) भी हिंदू ही हैं, अतः उन्हें हमारी सहायता अवश्य करनी चाहिए'' तब उस सरदार ने उनसे प्रश्न किया कि ''आपके कार्य करने का उद्देश्य क्या है?'' इसके उत्तर में विद्रोही पक्ष के उस प्रतिनिधि ने उसे उत्तर दिया, ''हमारे पास अभी भी साठ हजार लड़ाकू जवान हैं। जंगबहादुर ने अंग्रेजों को सहायता दी है; किंतु यदि वे हमें पचास लड़ाकू हजार गुरखा सैनिक दे दें तो मैं उन्हें अंग्रेजों की अपेक्षा दुगुना वेतन दे सकता हूं। यदि वे ऐसा न कर सकते हों तो हमें केवल अपने सुयोग्य सेनापति ही दे दें। मैं पुनः हिंदुस्थान में जाकर अंग्रेजों को कलकत्ता तक भगा सकता हूं और हम जो भी प्रदेश जीतेंगे, उसपर नेपाल राज्य का आधिपत्य होगा, और यदि हो सके तो उसके पश्चात् महाराज हमें अपने राज्य में आश्रय दे दें। हम उनके आज्ञाकारी बनकर वहां रहेंगे।'' ये बातें सुनकर सरदार बलभद्र बोला, ''किंतु ब्रिटिश सरकार तो कृपा–दृष्टि कर रही है, आप लोग उसके समक्ष आत्मसमपर्ण क्यों नहीं कर देते?'' इस पर क्रांतिकारी नेताओं ने उसे उत्तर दिया, ''हमें अंग्रेजों की वह घोषणा सुन ली है। किंतु दूसरों को मृत्यु के मुख में धकेलकर हम अपनी जीवन–रक्षा करना नहीं चाहते। हम ब्रिटेन के समक्ष आत्मसमर्पण कदापि नहीं करेंगे।''

इस प्रकार की अनेक वार्त्ताओं के उपरांत जंगबहादुर ने विद्रोहियों को स्पष्ट उत्तर दिया कि ''यदि मुझे तुम्हारी सहायता ही करनी होती तो मैं लखनऊ में तुम लोगों की हत्या कराने हेतु अपनी सेनाएं ही क्यों भेजता?'' इतना अधिक नीचतापूर्ण उत्तर देकर ही उसने बस नहीं की अपितु उसने अंग्रेजों को नेपाल में प्रवेश कर क्रांतिकारियों का शिकार करने की पूरी–पूरी छूट भी दे दी।

अब सभी आरे से सर्वथा निराश होकर क्रांतिकारी सिपाही अपने–अपने शस्त्रास्त्र छिपाकर अपने घरों को जाने लगे। अब उन्हें उभारने में लाभ न होता देखकर अंग्रेजों ने भी उन्हें छेड़ने का प्रयास नहीं किया। जो क्रांतिकारी अपने घरों को न लौटे वे वन में ही उपवास कर आत्मार्पण करने लगे। इन्हीं दिनों नाना साहब ने प्रमुख ब्रिटिश सेनापति होप ग्रांट को भी एक पत्र लिखा था। अपने इस पत्र में उन्होंने ब्रिटिश कूटनीति की घोर भर्त्सना की तथा विस्तृत आलोचना करने के पश्चात् लिखा था–"What right have to occupy India and declare me an outlaw'' (हिंदुस्थान पर राज्य करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया है? तुम विदेशी हमारे राजा हो तो क्या मैं चोर हूं?) इतिहास ने नाना साहब के नाम पर ये ही अंतिम शब्द संगृहीत रखे हैं। ये शब्द क्या हैं, वस्तुतः बालाजी विश्वनाथ पेशवा के सिंहासन का अंतिम उच्छ्वास है।

शिवाजी के अंतिम उत्तराधिकारी के योग्य, सुदृढ़, न्यायपूर्ण, आत्मभिमान और शान की शोभ बढ़ानेवाले ही ये शब्द हैं। बाजीराव द्वितीय की नपंसुकता के कलंक को रक्त ही शत्–शत् धाराओ से नहलाकर निष्कलंक कर दिया गया था और पेशवा का वह विशुद्ध राजसिंह चित्तौड़ की राजपूतानियों के समान लड़ते, झगड़ते, जलते तथा देदीप्यमान अग्नि ज्वालामालाओं को विस्फारित करते हुए विश्व के रंगमंच से विलुप्त हो गया। उनकी अंतिम आह इन्हीं शब्दों से निकली थी–''परकीय हिंदुस्थान के राजा और हम हिंदू–भूमि के ही पुत्र हिंदुस्थान में चोर बना दिए गए हैं।''

इस पत्र के लिखने के पश्चात् नाना साहब का क्या हुआ, इस संबंध में इतिहास मौन है। स्वेच्छा सहित अंगीकृत दरिद्रता में ही बाला साहब का इन्हीं दिनों वनों में ही स्वर्गवास हो गया। तदुपरांत अवध की बेगम और तरूण राजकुमार को नेपाल में अनुमति प्रदान कर दी गई। महान् हुतात्मा गजराज सिंह नामक एक अन्य क्रांतिकारी नेता भी बाद में हुए एक संघर्ष में देवलोकगामी हुआ।

इस प्रकार अवध में क्रांतियुद्ध की इतिश्री हो गई। अपनी स्वतंत्रता हेतु अवध ने कितनी वीरता सहित संघर्ष किया था, इसका विवरण शत्रु द्वारा प्रस्तुत किए गए विवरण से ही पढ़ना उचित होगा। स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए इतने महान् हठ और पराक्रम सहित क्या विश्व के किसी अन्य देश ने संघर्ष किया होगा? मैलसन ने लिखा है–''सिपाहियों ने स्वतंत्रता के लिए जिस क्रांतियुद्ध का श्रीगणेश किया था उसमें अवध की प्रजा ने बढ़–चढ़कर भाग लिया था। वे स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए जूझ पड़े। वे कितनी वीरता सहित संग्राम कर रहे थे, इसका विवरण हम प्रस्तुत कर चुके हैं। किंतु कितने दीर्घकाल तक अवध की जनता संग्राम करती रही उतनी वीरता से हिंदुस्थान के अन्य किसी भी अंचल में संग्राम नहीं हुआ था। सन् 1856 के मध्य से ही उनपर जो अत्याचार और अन्याय हुए थे, इससे उनका अंतःकरण इस्पात के समान कठोर हो गया था और उन्होंने सृदृढ़ संकल्प भी ग्रहण कर लिया था। सदा–कदा उन्हें मारकर पलायन भी करना पड़ जाता था। इस आशा से ही वे ऐसा करते थे कि किसी अन्य मारकर पलायन भी करना पड़ जाता था। इस आशा से ही वे ऐसा करते थे कि किसी अन्य दिवस वे विजय के लिए संघर्ष करेंगे। अंततः लॉर्ड क्लाइव ने अवध पर एक प्रचंड बवंडर के समान अंतिम आक्रमण किया। शेष बचे सैनिकों को नेपाल के वनों में आश्रय ढूंढ़ने पर विवश होना पड़ा। वहां भी जो वीर बचे रह गए थे, उन्होंने आत्मसमर्पण करने के स्थान पर उपवास करते हुए आत्मार्पण करना वरेण्य माना। दीर्घकाल तक चले इस संघर्ष में जब उन्हें विजय की कोई आशा नहीं रही तो अवध के श्रमिकों, कृषको, तालुकेदारों, भूमिधरों और व्यापारियों ने पराजय स्वीकार कर ली।''[172]

[172] मैलसन कृत–'इंडियन म्युटिनी', खंड 5, पृष्ठ 207 ।

प्रकरण–2

पूर्णाहुति

दिनांक 20 जून को ग्वालियर की रणभूमि में हुए घनघोर संग्राम में रणलक्ष्मी लक्ष्मीबाई की पराजय हो गई थी। इस कारण अंग्रेजों को अपने एक दृढ़ निश्चयी शत्रु से मुक्ति मिल गई थी। किंतु अभी रानी से भी अधिक एक दृढ़ निश्चयी शत्रु, जो रण–कौशल में लक्ष्मीबाई की अपेक्षा अधिक सिद्धहस्त था, रणभूमि से पलायन कर अंग्रेजों को झांसा दे गया था। ग्वालियर की रणभूमि में वह 20 मई को ओझल हुआ था तो जावरा और अलीपुर की रणभूमि से भी बच निकलने में सफल हो गया।

यत्र–तत्र तात्या टोपे

कुद ही दिनों में मध्य हिंदुस्थान के सभी वन, गुफाएं, ग्राम, नगर, पर्वत सभी से प्रचंड रण–गर्जनाएं होने लगीं और यत्र–तत्र 'तात्या टोपे! तात्या टोपे' का ही स्वर गूंज उठा। इसका कारण यह था कि शिकारी के भालों से घिरा हुआ यह मराठा सिंह अब विवश होकर मध्य भारत के जंगलों में घुस गया था। ग्वालियर की रणभूमि में रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान हो जाने के कारण मानो उसका दाहिना हाथ ही कट गया था। अनेक पराजयों के फलस्वरूप क्रांति दब–सी गई थी। श्रीमंत नाना साहब से तो सदा के लिए ही बिछुड़ चुका था। कुछ भारतीयों के ही विश्वासघात के कारण अब अंग्रेजी सत्ता अपने अजेय होने का दंभ भर रही थी। इधर तात्या के पास न तो उत्तम सेना थी

और न ही तोपें तथा धन ही। उसके पास तो रसद का भी अभाव था। इसे तो इन साधनों के कहीं से उपलब्ध होने की भी आशा नहीं थी, किंतु इस सारी स्थिति में ही अंकुठित धैर्य रखनेवाला तात्या टोपे, संपूर्ण आपदाओं और विपरीत परिस्थितियों में भी झुका नहीं और नह ही उसने स्वतंत्रता के प्रतीक भगवा ध्वज को ही झुकने दिया। शत्रु के समक्ष अपनी मताका झुकाना–नहीं, यह महापाप कदापि नहीं होगा; क्योंकि भगवा ध्वज का दंड ही ऐसे वृक्ष से निर्मित हुआ है कि उसे कभी शत्रु तोड़ तो सकता है, किंतु वह शत्रुओं के आगे झुक कदापि नहीं सकता।

ग्वालियर और जावरा तथा अलीपुर मं मिली पराजयों के पश्चात् अपनी बची खुची सेनाओं को लेकर तात्या और राव साहब पेशवा सरमथुरा नामक ग्राम में चले गए। यहीं उन्होंने अपनी संपूर्ण युद्ध योजना के तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धांत निर्धारित किए। प्रथम यह कि अब किसी भी स्थान पर प्रत्यक्ष युद्ध नहीं लड़ा जाएगा। दूसरा सिद्धांत यह निर्धारित किया कि चाहे कोई भी स्थिति क्यों न हो, प्रत्यक्ष युद्ध न करते हुए छापामार युद्ध का अनुगमन कर अंग्रेजी सेना को छकाया जाएगा। परंतु इन दोनों निर्धारित सिद्धांतों को कार्यान्वित करने के लिए भी तो रसद और शस्त्रों की प्राप्ति अनिवार्य थी। इस समस्या का निदान करने हेतु तात्या ने तीसरा सिद्धांत यह निर्धारित किया कि मार्ग में जो भी देशी रियासतें मिलेंगी उनसे उनकी इच्छा से अथवा कठोरता सहित शस्त्रास्त्र और धन प्राप्त किया जाएगा। उत्तर और मध्य भारत में तो पग–पग पर देशी रियासतें विद्यमान थीं। प्रत्येक राज्य में ही वर्ष भर के लिए सैनिकों के लिए रसद तथा आवश्यक शस्त्रास्त्र जमा रहते थे। उस रसद और उन शस्त्रास्त्रों को प्रदेश की रक्षा में लगाना ही तो इन नरेशों का प्राथमिक कर्तव्य था। परंतु सन् 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम में इस भूमि और उसमें निवास करनेवाली अपनी प्रजा की इच्छा एवं दृढ़ आशा को फलीभूत करने के स्थान पर इन नरेशों ने अपने व्यक्तिगत लाभ को ही महत्त्व दिया था। इसी कारण ये क्रांतिकारियों के साथ खुला सहयोग नहीं कर सके थे। अतः उनके पास इस समय भी रसद और शस्त्रास्त्र निरूप्योगी होकर पड़े हुए थे। वे अपने राज्यों में उत्पन्न हुए अन्न को भी दबाकर बैठे थे। वे व्यर्थ ही संग्रह किए हुए थे और दूसरी ओर देशभक्त और स्वतः देशमाता भी दरिद्रता में जीवनयापन कर रही थी। ऐसी स्थिति में इन विश्वासघाती जमाखोरों को उत्तम योजना बनाई। अपनी इस योजना के द्वारा उन्होंने स्वातंत्र्य सैनिकों के भोजन के लिए खाद्य सामग्री और युद्ध का कोई दबाव न पड़ेगा, अपितु इन नरेशों से युद्ध–कर की वसुली की जाएगी। इन नरेशों के पास तो नाममात्र के लिए ही सेना थी, अतः उनपर यह 'युद्ध–कर' लादना भी कोई कठिन कार्य सिद्ध न होगा। साथ ही इन देशी राज्यों के पास–पास स्थित होने के कारण खाद्य सामग्री को एक स्थान से ढोकर

दूसरे स्थान पर ले जाने की कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ेगी। इन दोनों सेनानियों ने निश्चय कर लिया था कि यदि उनके आह्वान मात्र से ये देशी नरेश उनकी योजना को स्वीकार कर लें तो अच्छा है, अन्यथा उन्हें ऐसा करने के लिए विवश किया जाएगा। इन्हीं तीन सिद्धांतों के आधार पर तात्या ने अपने नितांत विस्मयकारक रण–तांडव की संपूर्ण रचना की थी।

किंतु अंग्रेजों की यह सहज कल्पना थी कि ऐसी विपन्न अवस्था में किसी भी मनुष्य का बहुत दिनों तक प्रयत्न करते रहना असंभव है। यही समझकर उन्होंने यह धारणा भी बना ली कि अलीपुर में उनका दबाव पड़ने के कारण तात्या के पलायन करते ही वहां से विद्रोह समाप्त हो गया है। इसके साथ ही उन्होंने तात्या को चारों ओर से घेरकर एक–डेढ़ मास में ही आत्मसमर्पण कर देने का विवश बनाने के लिए अपनी सेनाएं भी भेज दीं। ग्वालियर, झांसी, शिवपुरी और गुना–सभी और ब्रिटिश सेना छा गई थी, तो राजस्थान में भी रॉबर्ट ने अपनी सेना डटा दी थी। इस प्रकार अंग्रेजों की सेनाओं ने चारों ओर से ही अपनी व्यूह में तात्या को घेर लिया था और अब देखना यह था कि तात्या इस व्यूह से किस प्रकार निकलता है!

तात्या की प्रथम दृष्टि भरतपुर पर केंद्रित हुई थी। किंतु वहां अंग्रेजी सेना के पहुंच जाने का समाचार प्राप्त होते ही उसने जयपुर की दिशा में अपने पग बढ़ा दिए। जयपुर के राजदरबार में तात्या से सहानुभूति रखनेवाले अनेक व्यक्ति तो थे ही, साथ ही वहां की सेना और जनता का झुकाव भी तात्या क ओर था। अतः तात्या ने वहां अपना दूत भेजकर अपने शुभचिंतकों को सावधान और सन्नद्ध रहने का निर्देश दिया। किंतु यह सूचना अंग्रेजी सेना के हाथ भी लग गई, अतः उसने तत्काल ही नसीराबाद से जयपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। जयपुर की यह स्थिति देखकर तात्या ने दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर दिया। उसके पीछे कर्नल होम्स भी अपनी सेना सहित लगा ही हुआ था। यहां तात्या टोपे ने अपने प्रचंड बुद्धि–कौशल का परिचय देते हुए इस सेना को झांसा दिया और टौंक राज्य पर धावा बोल दिया। वा ंके नवाब ने नगर के द्वार पर बंद करा दिए और तात्या का प्रतिरोध करने के लिए अपने कुछ सैनिकों को चार तोपों सहित नगर के बाहर भेज दिया। भयंकर संग्राम हो सकता था, किंतु टौंक के इन सैनिकों ने नितांत ही मैत्रीपूर्ण ढंग से तात्या के सैनिकों का अभिनंदन किया। उन्होंने अपनी चारों तोपें भी तात्या को समर्पित कर दीं। इस प्रकार इस नवीन सेना और नवीन तोपों को प्राप्त कर तात्या ने निश्चिंत होकर दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर दिया। तात्या टोपे ने इंद्रगढ़ पहुंचकर वहां कुछ समय विश्राम किया। किंतु उसके पीछे ही होम्स की सेना तथा दूसरी ओर से रॉबर्ट की सेना भी आ रही थी। उन दिनों घनघोर वर्षा की झड़ी लगी हुई थी, इस कारण चंबल भी जल से लबालब भरी अपने रोद्र रूप का प्रदर्शन कर रही थी। तात्या के पीछे से शत्रु बढ़ा आ रहा था तो सामने थी बाढ़ से परिपूर्ण चंबल नदी। तात्या उत्तर–पूर्व की ओर मुड़कर बूंदी जा पहुंचा। वहां से बड़ी चतुराई और सफलता सहित शत्रुओं को

भूलभूलैया में डालता हुआ वह नीमच और नसीराबाद के मध्य स्थित प्रदेश में जा पहुंचा, जहां की जनता पहले से ही क्रांति–यज्ञ में योगदान दे रही थी। यहां उसने पुनः अंग्रेजों को छकाने में सफलता प्राप्त की। उसने उन्हें ऐसा भुलावा दिया कि तात्या दक्षिण की ओर बढ़ रहा है, किंतु वह भीलवाड़ा जा पहुंचा। यह समाचार प्राप्त होते ही रॉबर्ट सरवर नामक ग्राम से बढ़ा और उसने तात्या की सेना पर आक्रमण कर दिया। 7 अगस्त को अंग्रेजों की सेना ने धावा बोला, किंतु तात्या ने दिन भर इस सेना को रोके रखने में सफलता पाई और रात्रि में ही वह अपनी सेना और तोपों सहित सुरक्षित उदयपुर राज्य की सीमा में स्थित कोटरा नामक ग्राम में जा पहुंचा। वहां अपनी सेना को विश्राम करने का अवसर देकर तात्या टोपे समीप ही स्थित 'नाथद्धारा' नाम के हिंदू तीर्थ क्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण की पावन प्रतिमा के दर्शन करने जा पहुंचा। जब वह वहां से मध्य रात्रि में वापस लौटा तो उसे विदित हुआ कि उसका पीछा करती हुई ब्रिटिश सेना भी समीप आ पहुंची है। अतः उसने वहां से अपनी सेना को प्रस्थान करने का आदेश दे दिया। परंतु सैनिक इतने अधिक थक गए थे कि पैदल सैनिकों ने स्पष्टतः कह दिया कि सतत प्रवास करने के कारण पैदल सेना अब आगे बढ़ने में समर्थ नहीं है, अश्वारोही चाहें तो आगे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में तो युद्ध करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही नहीं रह गया था।

दूसरे दिन अर्थात् 14 अगस्त को यथाशीघ्र सूर्योदय से पूर्व ही उसने अपनी सेना की यथासंभव व्यूह–रचना कर ली। तात्या की सेनाओं ने रॉबर्ट की सेनाओं से जमकर संघर्ष किया, किंतु अंग्रेजों की सेना के समक्ष उसे पराजित होकर तितर–बितर होना पड़ा। तात्या की सेना तोपें भी छोड़कर रणभूमि से हट गई और हटते–हटते लगभग पंद्रह मील दूर चली गई। अब पुनः तात्या टोपे की सेना तोपों से वंचित हो गई थी। किंतु विजय के उन्माद से उन्मत्त शत्रु अभी भी तात्या टोपे की सेना तोपों से वंचित हो गई थी। किंतु विजय के उन्माद से उन्मत्त शत्रु अभी भी तात्या का पीछा कर ही रहे थे। फिर भी तात्या अंग्रेजों को झांसा देकर चंबल की ओर बढ़ने लगा; किंतु अंग्रेजी सेना के उसपर हमले भी जारी रहे और चंबल नदी पर एक और ही दृश्य उपस्थित हो गया, जब एक अंग्रेज कमांडर अपने चुने हुए सैनिकों सहित चंबल के किनारे पर ही आ धमका। किंतु बाधाओं को खेल समझनेवाले तात्या का हौंसला मंद नहीं हुआ, अपितु उसने अंग्रेजों को भी आश्चर्य में डाल दिया। उसने एक अंग्रेज अधिकारी को पीछे हटा दिया तो दूसरे को वंचिका दी और उसकी आंखों में धूल झोंकता हुआ तात्या मंजिल–पर–मंजिल पार करता हुआ चंबल नदी पर जा पहुंचा। इतना ही नहीं, उसने चंबल को पार भी कर लिया और अंग्रेज उसका रास्ता ही ताकते रह गए।

अब अंग्रेजों और तात्या की सेनाओं के मध्य चंबल बह रही थी। किंतु तात्या के पास न तोपें थीं, न खाद्य सामग्री और न धन ही। इस प्रकार तात्या टोपे का पूर्ण पराभव हुआ था। अतः अब उसे नर्मदा का मार्ग छोड़कर झालरापाटाण की ओर प्रस्थान करना पड़ा। उस राज्य का अंग्रेजनिष्ठ नरेश भी नामर्द तो नहीं था। उसने अपनी विश्वासपात्र

सेना और जंगी तोपखाने सहित तात्या की सेना पर टूट पड़ने की 'वीरता' दिखाई। किंतु यह भी क्या चमत्कार था कि त्यों ही तात्या और अंग्रेजों के चाटुकार उस राजा की सेना के सैनिकों की आंखें चार हुईं, वे तात्या को ही 'स्वामी' कहकर उसका अभिवादन करने लगे। इस प्रकार वहां भी तात्या को पर्याप्त संख्या में घोड़े, गाड़ियां तथा रसद अर्पित कर दी गई। तात्या वहां खाली हाथ पहुंचा था, किंतु अब उसके पास बत्तीस तोपें हो गई थीं। राव साहब पेशवा का ओदश मिला कि झालरापाटण नरेश से पच्चीस लाख रूपए जुर्माने के रूप में वसूल किए जाएं। किंतु उसके अत्यधिक अनुनय–विनय करने पर पंद्रह लाख रूपए पर समझौता हो गया। तात्या टोपे वहां पांच दिन ठहरा और उसने अश्वारोही सैनिकों को तीस रूपए तथा पैदल सैनिकों को बीस रूपए मासिक के हिसाब से वेतन चुका दिया। अब तात्या, राव साहब और बांदा के नवाब ने दक्षिण की ओर बढ़ने के संबंध में विचार–विमर्श किया। पेशवा की इस सेना का प्रमुख लक्ष्य था नर्मदा नदी को पार कर दक्षिण भारत में प्रवेश। अंग्रेजों ने भी तात्या की योजना को असफल बनाने हेतु अपनी सेना की कुशलतापूर्ण और सुदृढ़ व्यूह–रचना करेन में कोई कसर न छोड़ी। उन्होंने तात्या के आगे बढ़ सकने के सभी मार्गों को अवरूद्ध कर दिया। किंतु अब तो तात्या के पास भी तोपखाना था और साथ ही वह तो प्रत्येक आपदा और बाधा से टकराने को बहुत पहले से ही संकल्पबद्ध था। अतः उसने अपने सहयोगियों को आह्वान दिया–''चलो साथियों, इंदौर की ओर प्रस्थान करो।''

यह कल्पना तात्या के साहसी स्वभाव के सर्वथा अनुरूप ही थी। जिस तात्या टोपे ने ग्वालियर की रणभूमि में अपने अद्भुत नाटक का प्रदर्शन किया था, उसके लिए इंदौर में होल्कर के सिंहासन को हिला देना कौन सा असंभव कार्य था! होल्कर उसके इस साहसपूर्ण कार्य में उसकी सहायता करता, यही उसका कर्तव्य था। किंतु उसने तो अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया था। अतः पेशवा अब इंदौर से ऐसा कराने के लिए ही तो जा रहा था। इंदौर की सेना गुप्त रूप से तात्या के साथ थी। होल्कर का राजदरबार भी तात्या का समर्थक था। इसलिए महान् धैर्यवान् तात्या ने इंदौर प्रस्थान करने की योजना बनाई थी। अब तात्या ने तत्काल ही झालरापाटण से दक्षिण की ओर बढ़कर मालवा में प्रवेश किया और वह राजगढ़ ग्राम के पास खड़ा हुआ दुष्टिगोचर हुआ।

अब तात्या का पीछा करते हुए रॉबर्ट, होम्स, पार्क, मिचेल, होप, लॉक, हॉर्ट आदि अंग्रेज सेनापतियों के नेतृत्व में अंग्रेजी सेनाएं चारों दिशाओं से बढ़ती आ रही थीं। तात्या के इंदौर पर आक्रमण करने के लिए बढ़ने के समाचार से ही उनके हृदय प्रकंपित हो उठे थे। कोई उज्जयिनी से बढ़ा तो कोई राजगढ़ की ओर से आ निकला, कोई मऊ की ओर से सरका तो कोई तलखेड़ की ओर से चढ़ दौड़ा। मिचेल ज्यों ही एक पहाड़ी चढ़ा तो उसकी दृष्टि दूसरी ओर पहाड़ी से उतरते हुए तात्या पर पड़ी। किंतु अब

अंग्रेजी सेना भी थककर इतनी चूर हो गई थी कि उसके लिए एक पग भी आगे रखना असंभव हो गया था। उसका दम फूल चुका था। तात्या ने अंग्रेजी सेना की इस हताश अवस्था का पूर्ण लाभ उठाया और वह आगे निकल गया। प्रातःकाल ही मिचेल पुनः उसके पीछे आ धमका। अब क्रांतिकारी थके हुए थे; किंतु फिर भी उन्हें युद्ध के लिए सिद्ध होना ही पड़ा। उस समय उनकी संख्या लगभग पांच–छह हजार थी और उनके पास उत्तम श्रेणी की तीस के लगभग तोपें भी थीं। नितांत ही आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी सेना के एक–डेढ़ हजार सैनिकों के धावा बोलते ही क्रांतिकारी अपनी तोपों का भी छोड़कर भागते हुए ही दिखाई दिए। यहीं पर तो तात्या टोपे और कुंवर सिंह की छापामार युद्धकला का उत्कृष्ट रहस्य मुखरित हो उठता है। अंग्रेजी सेना से खुले मैदान में युद्ध न करेन के अपने निर्णीत सिद्धांत को भंग न होने देने के लिए हो तो तात्या की सेना ने हाथ में आए अपने निर्णीत सिद्धांत को भंग न होने देने के लिए ही तो तात्या की सेना ने हाथ में आए अनेक अवसर भी इच्छा सहित ही जाने दिए थे। अब तात्या की सेनाएं मैदान से हटकर बेतवा नदी के समीप स्थित वनखंड में जा घुसी थीं और दूसरी ओर सिरोजनगर के पास आ निकलीं थीं। सिरोज में पुनः तात्या टोपे को चार तोपें प्राप्त हो गई थीं। इसी समय वर्षा अपने पूर्ण भयंकर रूप का प्रदर्शन भी करने लग गई थी। अतः तात्या की सेनाओं को भी विश्राम करने का पूर्ण अवसर उपलब्ध हो गया था। आठ दिन के उपरांत तात्या ने उत्तर की ओर प्रस्थान किया; किंतु शिंदे के राज्य में स्थित ईसागढ़ ग्राम ने उसे रसद देना अस्वीकार कर दिया; अतः उसे वहां से बलात् रसद लेनी पड़ी और आठ तोपें भी उसके हाथ लग गईं। परंतु अब नर्मदा को पार करना तो दिन–प्रतिदिन पीछे हटता जा रहा था, क्योंकि तात्या और नर्मदा में अंतर बढ़ता ही जा रहा था। परंतु जब इतनी अंग्रेजी सेनाएं अकेले तात्या के पीछे ही लगी हुई हों तो फिर नर्मदा पार करने का ध्यान ही कैसे आ सकता है।[173]

[173] एक अंगेज लेखक कहता है–''फिर पीछे हटने का वह अनोखा क्रम आरंभ हो गया, जो दस मास तक चलता रहा। किंतु तात्या टोपे भी पराजय का उपहास उड़ाता जाता था और अब उसका नाम यूरोप भर में अनेक एंग्लो–इंडियन सेनापतियों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हो गया था। उसके समक्ष कोई साधारण समस्या तो विद्यमान नहीं थी। उसे पराजित एशियावासियों की सेना को संगठन–सूत्र में आबद्ध करना था, जिसका उससे कोई व्यक्तिगत संबंध भी नहीं था। और परस्पर भी तो वे सैनिक एक ही आधार पर एकता के सूत्र में आबद्ध थे। वह सूत्र था–समान द्वेष और समान भय। अंग्रेजों के नाम से द्वेष और उनके द्वारा फांसी के फंदों पर लटका दिए जाने की आशंका। ऐसी अस्त–व्यस्त सेना को भी एकता के सूत्र में पिरोकर उसे येन–केन प्रकारेण आगे बढ़ना पड़ता था। और वह भी इतनी तीव्र गति से कि उससे केवल उसका पीछा करनेवाले शत्रु ही स्तंभित नहीं रह जाते थे अपितु तात्या के प्रस्थान की रेखा से समकोण करके दौड़ लगानेवालों को भी दांतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। अपने इस अर्द्ध संगठित गिरोह को उन्मादियों के तुल्य दौड़ते रखने के साथ ही तात्या को

अब क्रांतिकारियों ने भी अपनी सेना दो भागों में विभाजित कर दी। एक का नेतृत्व राव साहब पेशवा कर रहे थे तो दुसरे का तात्या टोपे। दोनों सेनाएं पृथक्–पुथक् दिशाओं में प्रस्थान भले ही करती थीं, किंतु उनकी युद्ध पद्धति में कोई अंतर नहीं था। शत्रुओं को धोखे में डालती, यदा–कदा अपनी ही तोपें गंवातीं, मंग्रोली, छिंदवाड़ा आदि में संग्राम को धोखे में डालती, यदा–कदा अपनी ही तोपें गंवातीं, मंग्रोली, छिंदवाड़ा आदि में संग्राम करती और हटती हुई ये दोनों सेनाएं अंत में ललितपुर में जाकर मिल गईं। परंतु नर्मदा की लहरें तो अभी भी बड़ी दूर थीं। अब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि अंग्रेजों की प्रसन्नता का कोई पारावार ही न रहा। दक्षिण की ओर से मिचले, पूर्व और उत्तर की दिशा से कर्नल लिडेल और पश्चिम दिशा से कर्नल पार्क तथा चंबल की ओर से रॉबर्ट आगे बढ़ता आ रहा था और इस प्रकार तात्या टोपे शत्रु के व्यूह–पाश में चारों ओर से घिर गया। अब तात्या और राव साहब पेशवा में विचार–विमर्श हुआ। तदनुसार वे तत्काल कजूरी जा पहुंचे। वहां उन्हें पता लगा कि अंग्रेज सेना विद्यमान है। अतः उन्होंने पुनः वनखंड में प्रवेश किया और वे उत्तर में स्थित तालवेहट तक जा पहुंचे। अंग्रेजों ने समझा कि अब तात्या ने दक्षिण जाने का अपना विचार बदल दिया है। किंतु वहीं से तात्या और राव साहब ने बड़ी ही त्वरित गति से बेतवा को पार किया। कजूरी और रायगढ़ में अंग्रेजों को अपने हाथ दिखाते हुए, कभी खुलकर लोहा लेते हुए छिपकर दक्षिण की ओर बढ़ते रहे। तात्या के इस साहसपूर्ण कृत्य से अंग्रेज दुविधा में पड़ गए। अब वे उसे रोकने के लिए चारों ओर से आगे बढ़े। किंतु अपनी विचित्र गतिविधि से शत्रु को चकमा देकर इस नरपुंरव ने विद्युत् वेग से घाटियां लांघी और सरिताएं पार कीं, वन–प्रांतरों को चीरा और दक्षिण की ओर बढ़ता रहा। उसपर एक ओर से पार्क दृष्टि गड़ा रहा था और सामने से मिचेल आ धमका। इसपर भी तात्या टोपे का दक्षिण की ओर बढ़ना जारी रहा। अंततः

[174]

[174] –अनेक नगरों पर अपनी विजय पताका फहरानी पड़ी, अनेक स्थानों से रसद आदि जुटानी पड़ी, नई तोपों को हथियाना पड़ता था तो जनता में से ही नए स्वयंसेवक भी अपने साथ लगाने पड़ते थे, जिन बेचारों के भाग्य में प्रतिदिन ही साठ मील की दौड़ लगाना लिखा गया था। इन सभी कार्यों को यथा उपलब्ध साधनों के बलबूते पर पूर्ण करने में ही तात्या की असाधारण क्षमता प्रकट होती है। अपने विद्रोही शत्रु के नाते हम भले ही उसको सम्मान न दें, किंतु यह सत्य है ि कवह हैदर अली के समक्ष था। यदि वह अपनी योजना पूर्णतः कार्यान्वित करने में सफलता प्राप्त कर लेता और नागपुर से घुसकर मद्रास की ओर निकल जाता तो वह भी हैदर अली के सदृश ही बीभत्स शत्रु बन जाता। नेपोलियन को जिस प्रकार इंगलिश चैनल ने रोक दिया था उसी प्रकार नर्मदा ने तात्या को रोक लिया था। नर्मदा पार कर पाने के अतिरिक्त वह और तो सभी कुछ कर लेने में सफल हो गया। अंग्रेजी सेनाएं पहले तो अपने स्वभाव के अनुरूप आगे बढ़ती रहीं और अंततः जब उन्हें वेग से बढ़ना आ ही गया तब भी ब्रिगेडियर पार्क और कर्नल नेपियर तात्या की आधी गति को ही प्राप्त कर पाए। इसपर भी वह बच निकला और सर्दी, गर्मी तथा वर्षा से टकराता हुआ भागता ही रहा–कभी दो हजार सैनिकों के साथ तो कभी पंद्रह हजार सैनिकों के साथ। –फ्रेंड्स ऑफ इंडिया'।

वह नर्मदा तट पर आ पहुंचा। आश्चर्यचकित संसार ने तात्या का जय–जयकार किया और तात्या टोपे ने अंततः नर्मदा को लांघ ही लिया। अब उसका प्रयाण दक्षिण की ओर हो रहा था। मैलसन ने लिखा है–''तात्या ने जिस जिवट और हठ सहित अपनी योजना कार्यान्वित की उसकी प्रशंसा न करना असंभव है।'' इस संबंध में 17 जनवरी, 1859 के 'लंदन टाइम्स' का विवरण भी पठनीय है। उसने लिखा था–

"Our very remarkable friend, Tatia Tope is too troublesome and clever an enemy to be admired. Since last June he has kept central India in fervor. He has sacked stations, plundered treasuries, emptied arsenals, collected armies, lost them, fought battles, lost them, taken gunds from native prince, lost them; then, his motions were like forked lighting; and for weeks, he has marched 30 and 40 miles a day. He has crossed the Narmada to and fro. He has marched between our columns, behind them, and before them. Ariel was not more subtle aided by the best staged mechanism. Up mountains, over rivers, through ravines and vallies, amidst swamps, on he goes, backwards and forwards, sideways and zig-zag ways, now falling upon a post card and carrying off the Bombay mail, now looting a village, headed and burned yet evasive as proteus." ''

अंततः मराठा सेना दक्षिण में जा पहुंची। होशंगाबाद के समीप नर्मदा नदी को पार कर तात्या नागपुर के समीप पहुंच गया है, यह समाचार प्राप्त होते ही केवल तीन प्रांतों में ही नहीं, इंग्लैंड मात्र में ही नहीं अपितु संपूर्ण यूरोप में एक ही स्वर निनादित हो उठा, ''धन्य तात्या, धन्य–धन्य टोपे!'' महाराष्ट्र तो उसके सान्निध्य की ही बाट जोह रहा था। हैदराबाद का निजाम, मद्रास का गवर्नर लॉर्ड हेरिस, बंबई का लॉर्ड एलफिंस्टन, कलकत्ता का लॉर्ड केनिंग तत्क्षण थर्रा उठे।[175] तात्या ने रणचंडी का ऐसा अपूर्व पासा फेंका था, किंतु अब तो समय हाथ से निकल चुका था। यदि एक वर्ष पूर्व ही वह नर्मदा पार हो गया होता तो दृश्य कुछ और ही होता। अब तो सन् 1858 के अक्तूबर मास के मध्य में उसकी यह रण–चपलता केवल कौतुक का ही कारण सिद्ध हुई, उपयोगी अथवा जय–प्रदायनी नहीं। यत्र–तत्र उठी क्रांति की ज्वाला पर पानी पड़ चुका था। अब तो

[175] मैलसन ने अपने ग्रंथ 'इंडियन म्युटिनी', खंड 5 में पृष्ठ 238–40 पर लिखा है–''यह बात नितांत ही उल्लेखनीय है कि उस व्यक्ति का भतीजा सेना सहित महाराष्ट्र की धरती पर आ पहुंचा था, जिसे मराठों द्वारा अंतिम पेशवा का वास्तविक उत्तराधिकारी माना जाता था। निजाम राजनिष्ठ था; किंतु स्थिति बड़ी विचित्र थी। इससे पूर्व भी ऐसी घटनाएं हो चुकी थीं जिनका एक उदाहरण सिंधिया के मामले में उपलब्ध हुआ था। जब सर्वोच्च शासक ने राष्ट्र–भावनाओं को रोकने के प्रयास किए तो लोगों ने उसके विरूद्ध भ विद्रोह कर दिया। अतः यह असंभव ही था कि यह भय उत्पन्न न हो कि तात्या की सेना संपूर्ण महाराष्ट्र की जनता को उभार दे और तब शस्त्र–सज्ज लोगों का यह विद्रोह संपूर्ण दक्षिण की जनता को ही प्रभावित कर दे।''

संपूर्ण राष्ट्र भयंकर रक्तस्राव के उपरांत शिथिलगात्र व संज्ञाविमूढ़ होकर रह गया था। यद्यपि अभी भी उत्तरी हिंदुस्थान और राजस्थान में तात्या और उसकी सेना को ग्राम–ग्राम में लोग रसद और धन–धान्य अर्पित करते थे, वह वहां देशभक्त के रूप में पूजित और वंदनीय था, परंतु नागपुर में स्वयं मराठों के प्रदेश में लोग उसका योग देने में भय का अनुभव करते थे। किसी ने भी उसके महान् कार्य में योगदान नहीं दिया। हां, कुलकलंकिनी बाकाबाई की राजनिष्ठा के बीज से और कौन सी फसल उत्पन्न हो सकती थी। तब भी तात्या ने से संपूर्ण विपरीत स्थिति के बावजूद वहां ठहरने का निश्चय कर लिया।

अब तात्या के समक्ष निजाम का राज्य था। वहां भी क्रांतिकारी थे जो स्वातंत्र्य युद्ध की ज्वाला को धधकाने की बाट जोह रहे थे, इधर पूना और खानदेश से भी अंग्रेजी सेनाएं चढ़ दौड़ी। मेलघाट, असीरगढ़, खानदेश, गुजरात, नागपुर आदि सभी दिशाओं से अनेक अंग्रेजी सेनाएं दक्षिण का द्वार बंद कर देने के लिए बढ़ रही थीं। किंतु ऐसी स्थिति में भी तात्या ने अपने अपूर्व धैर्य का परिचय देते हुए अपनी रणनीति का चमत्कार दिखाया। उसने अपना पीछा करनेवाली तथा घेरनेवाली सेनाओं को रोकथाम कर नर्मदा के उद्गम स्थल तक अपना रण–कौशल दिखाया, क्योंकि अब उसकी दृष्टि बड़ौदा पर गड़ी हुई थी। आगरा रोड से होकर अंग्रेजों की डाक–गाड़ियों को लूटता, तारयंत्रों को तोड़ता और अंग्रेज सेनाओं को झांसा देता हुआ तात्या नर्मदा की ओर बढ़ता रहा। नर्मदा के सभी घाटों पर शत्रु सेना के दल बादल–से मंडरा रहे थे, नदी के दोनों घाटों पर शत्रु सेना डटी हुई थी, किंतु नर्मदा को पार करने को उत्कट लगनेवाले तात्या का उत्साह मंद नहीं हुआ और वह करगूण नामक ग्राम में जा पहुंचा। वहां उसका अंग्रेज सेनापति मेजर संडरलैंड से डटकर संघर्ष हुआ। युद्ध अब अपने पूर्ण बीभत्स रूप को ग्रहण कर रहा था। उसी समय तात्या ने अपनी सेनाओं को आदेश दिया कि तत्काल गोली वर्षा बंद कर दो और नर्मदा में कूद पड़ो। उसका आदेश मिलते ही तात्या के सैनिक नर्मदा में कूद पड़े। अभी अंग्रेज यह विचारने में ही लगे हुए थे कि यह क्या हो रहा है और दूसरी ओर तात्या अपने अनुयायियों सहित नर्मदा को पार कर गया।

यह प्रसंग आज तक भी युद्धों के इतिहास में एक अतुलनीय एवं नवीन आश्चर्यजनक घटना के रूप में स्मरण किया जाता है। मैलसन ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है–''उनकी तोपें छीन ली गई थीं, किंतु तात्या के सैनिकों ने नितांत शीघ्रता सहित मार्ग तय करने का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। इस कला में इन देशी सिपाहियों का कोई भी मुकाबला नहीं कर पाएगी। इस स्थित में भी तात्या ने बड़ौदा की ओर बढ़ने जाने का अपना लक्ष्य नहीं छोड़ा था। बड़ौदा के राजदरबार तथा सेना में भी नाना साहब के

पक्ष के अनेक लोग थे। अतः वे तो तात्या के आगमन की बाट जोह रहे थे। तात्या राजपुर पहुंचा, जहां उसे घोड़े और धन भी मिला। दूसरे दिन उसने छोटा उदयपुर में प्रवेश किया, वहां से बड़ौदा केवल पचास मील की दूर रह गया था।''

अब यद्यपि बड़ौदा केवल पचास मील की ही दूरी पर रह गया था, किंतु अंग्रेजों की सेनाएं भी तो तात्या का निरंतर पीछा कर रही थीं। तात्या को चारों ओर से ही अंग्रेजी सेनाएं घेरने का प्रयास कर रही थीं। तात्या का पीछा करते हुए पार्क छोटा उदयपुर भी जा पहुंचा था। अतः तात्या को भी अब बड़ौदा की ओर बढ़ने का अपना विचार त्याग देना पड़ा और उसने अपनी सेना सहित उत्तर की ओर बढ़ते हुए बांसवाड़ा के जंगलों में प्रवेश किया। किंतु उसी समय ब्रिटेन की महारानी की घोषणा सुनकर बांदा के नवाब ने आत्मसमर्पण कर दिया। तात्या और राव साहब के समक्ष अब ऐसी विचित्र और कठिन परिस्थिति पैदा हो गई थी कि उससे निकल पाना भी असंभव–सा ही प्रतीत हो रहा था। दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में रॉबर्ट तथा उत्तर और पूर्व में अनुल्लंघनीय ढलान थी। इस विपरीत परिस्थिति में यदि राव साहब और तात्या टोपे आत्मसमर्पण भी कर देते तो उन्हें कौन दोषी ठहरा सकता था। किंतु वे वीर धन्य हैं, उन्होंने इस संकटापन्न अवस्था में भी आत्मसमर्पण की कायरतापूर्ण भावना को पास न फटकने दिया। एक अंग्रेज ग्रंथकार ने आश्यर्चचकित होकर इन वीरों का गुणागान करते हुए लिखा है–''किंतु ये दो ऐसे व्यक्ति थे जो इस घोर संकटपूर्ण परिस्थिति में भी नितांत शांति, वीरता और धैर्य सहित अपने जीवन के इस प्राणांतक संघर्ष का सामना करते रहे।''

किंतु तात्या ने कठिनाइयों के इस चक्रव्यूह को भी बेध डाला। वह 11 दिसंबर को जंगल से बाहर निकला और एक किलेदार से थोड़ी सी सहायता प्राप्त कर उदयपुर की दिशा में बढ़ चला। किंतु उसी समय कई अंग्रेजी सेनाओं ने भी उसपर आक्रमण कर दिया। अतः उसे पुनः वनखंड में शरण लेनी पड़ी। अब तात्या को एक सप्ताह से अधिक ठहरना असंभव ही हो गया था। यह स्पष्ट होता जा रहा था कि उसे शरण लेनी ही पड़ेगी। उसी समय क्रांतिकारी नेताओं में भी परस्पर यह चर्चा चलने लगी थी कि अब इस संघर्ष को समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर होगा। अब तो वह वन भी वन नही रह गया था–वे चारों ओर से खदेड़कर उस स्थान पर बंद कर दिए गए–बल्कि महाराष्ट्र के सिंहों का पिंजरा ही बनकर रह गया। सभी दिशाओं से अंग्रेजों की सेनाओं के पाश मानो उसकी ग्रीवा को ही जकड़ते जा रहे थे। इस स्थिति में भी युद्ध को बंद कर देने का विचार इस मराठा वीर के मन में उत्पन्न नहीं हो पाया। एक दिन वह राव साहब के साथ प्रतापगढ़ की दिशा में बढ़ चला। अभी तात्या टोपे की सेनाएं वन प्रदेश से बाहर भी नहीं निकल सकी थीं कि मेजर रॉक ने उसका मार्ग अवरूद्ध कर दिया। तात्या ने किसी प्रकार की भी दुविधा में न पड़ते हुए उस पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण

भी इतना प्रचंड था कि रॉक के सैनिक आश्चर्यचकित रह गए। इस भांति जंगला तोड़कर इस मराठा सिंह ने एक बार पुनः अंग्रेजों पर आघात किया। यह आघात ऐसा था कि अंग्रेज सेनापति भी लज्जा से सिर झुकाए और हाथ मलते ही रह गए।

25 दिसंबर को तात्या टोपे बांसवाड़ा के वनखंड से बाहर आया। उसी समय अवध का प्रख्यात वीर शहजादा फीरोजशाह भी अपनी सेना सहित तात्या की सहायता करने के लिए आ रहा था। स्थानाभाव के कारण यहां फीरोजशाह ने गंगा और यमुना को पार कर जिस प्रचंड शौर्य का प्रदर्शन किया उसका विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। शिंदे के एक दरबारी मान सिंह, फीरोजशाह, तात्या एवं राव साहब की 13 जनवरी, 1849 को इंद्रगढ़ में भेंट हुई। इन चारों नेताओं ने यहां एकत्रित होकर आगामी कार्यक्रम पर विचार–विमर्श किया। अंग्रेजों की साधारण सी गतिविधियों की सूचना भी तात्या को मिलती रहती थी। जब उसे यह विदित हुआ कि अंग्रेज पुनः चारों ओर से घेरा डालते आ रहे हैं तो वह बड़ी निर्भीकता से मंजिल तय करता हुआ देवास जा निकला। किंतु वहां भी वह चारों दिशाओं से बढ़ी आ रही अंग्रेज सेनाओं के व्यूह में घिर गया। अब उसकी यश–प्राप्ति की आशा तो किंचित् मात्र भी नहीं रह गई थीं, अतः कोई साहसी योजना बनाने का विचार ही करना निरर्थक था। अब उसके लिए अपनी थकी हुई सेना को अंग्रेजों की इस व्यूह–रचना से निकाल पाना ही कठिन हो गया था। अंग्रेज सेनापति भी दंभ से अकड़े हुए यह घोषणा कर रहे थे कि ''देखें, अब यह कैसे बचकर निकलता हैं'' अब तो क्रांतिकारियों के चारों नेता फीरोजशाह, मान सिंह, तात्या टोपे और राव साहब पर अंग्रेजों ने अपना जाल पूर्णरूपेण कस दिया था। 16 जनवरी, 1849 को तात्या, राव साहब तथा फीरोजशाह आगामी योजना पर विचार–विमर्श कर ही रहे थे कि बाहर कुहराम मच गया। तात्या ने तत्काल अनुमान लगाया कि अब उन्हें अंग्रेजों ने पूर्णतः घेर लिया है। उसने बाहर आकर देखा कि संपूर्ण छावनी में गोरों ने कुहराम मचा दिया है। गोरे सैनिक आनंद से झूमते हुए चीख उठे, ''तात्या ने तत्काल अनुमान लगाया कि अब उन्हें अंग्रेजों ने पूर्णतः घेर लिया है। उसने बाहर आकर देखा कि संपूर्ण छावनी में गोरों ने कुहराम मचा दिया है। गोरे सैनिक आनंद से झूमते हुए चीख उठे, ''तात्या मिल गया! किंतु उनकी वह चिल्लाहट क्षण भर में ही लुप्त हो गई। वे यही कहते रह गए कि अभी–अभी तो वह यहां था, अब कहां खिसक गया? 'दौड़ो सैनिकों, दौड़ो और खोजो' की चीख ही सुनाई पड़ी, किंतु तात्या कहीं न मिला। अंग्रेज सैनिकों की पूर्ण सतर्कता भी तात्या टोपे की चाल के समक्ष निढाल हो गई। तात्या मानो पंख लगाकर उड़ गया और अंग्रेज सैनिक और सेनापति क्रोध से सिर पटककर ही रह गए।

अब 21 जनवरी को राव साहब, फीरोजशाह और तात्या अपने अन्य सहयोगियों सहित अलवर के समीप सीकर नाम ग्राम में उपस्थित हुए। अंग्रेज पुनः पागल होकर उनका पीछा करने में लग गए। अंग्रेज सेनापति होम्स की सेनाओं और क्रांतिकारियों में मुठभेड़ हुई, जिसमें क्रांतिकारी पराजित हो गए। किंतु इस पराजय ने क्रांतिकारियों को

हताश नहीं किया, क्योंकि उनकी विजय की आशाएं तो पहले ही नष्ट हो चुकी थीं। किंतु अब उनमें प्रतिकार की शक्ति नहीं रह गई थी। नर्मदा को पार कर बड़ौदा पर आक्रमण करने की तात्या की योजना भी अब समाप्त ही हो गई थी। अब तात्या और राव साहब ने अपनी छापामार युद्धकला में कुछ सुधार करने के संबंध में विचार–विमर्श किया और कुछ निश्चय करने पश्चात् तात्या और राव साहब ने अपनी सेनाओं से विदाई ले ली। तात्या के साथ केवल दो अश्व, एक टट्टू, दो ब्राह्मण रसोदए और एक नौकर था। अपने इस परिवार के साथ वे ग्वालियर के सरदार मान सिंह के पास पहुंचे। सरदार मान सिंह उन दिनों पारौन के वनों में शरण ले रहा था। मान सिंह ने उनसे कहा, ''तात्या, तुमने अपनी सेना को छोड़कर यहां आने में भूल की है।'' तात्या ने उत्तर दिया, ''चाहे अच्छा हुआ अथवा बुरा, मैं तो अब तुम्हारे साथ ही रहने का निश्चय करके आया हूं। अब मैं तो इन प्राणलेवा पलायनों से बहुत अधिक थक गया हूं।''

अंग्रेजों को भी यह सूचना मिल गई कि तात्या टोपे मान सिंह के पास रह रहा है। अंग्रेज प्रत्यक्ष युद्ध में उसे बंदी बनाने में असफल हो चुके थे। अतः उन्होंने छल–कपट के नीच हथकंडों को अपनाने को योजना बनाई। उन्होंने अपना एक दूत भी मान सिंह के पास भेजा और उसके माध्यम से यह कहलवाया गया कि यदि मानसिंह तात्या को पकड़वा दे तथा आत्मसमर्पण कर दे तो उसे क्षमा प्रदान की जा सकती है। इतना ही नहीं, शिंदे से यह भी कहा जाएगा ि कवह नरवर राज्य उसे दे दे। इसी मान सिंह ने पहले अपने चाचा को भी अंग्रेजों को सौंप देने की कायरता प्रदर्शित की थी। वह इस प्रलोभन में फंसकर अंग्रेजों को सौंप देने की कायरता प्रदर्शित की थी। वह इस प्रलोभन में फंसकर अंग्रेजों के झांसे में आ गया। उसने तात्या आत्मसमर्पण कर देने का आग्रह किया तो वीरवर तात्या ने उसके इस प्रस्ताव को घृणा सहित ठुकरा दिया। उसी समय फीरोजशाह का एक पत्र भी तात्या को मिला था, जिसमें उसने तात्या को अपनी छावनी में आ जाने का निमंत्रण दिया था। तात्या ने यह पत्र मान सिंह को दिखाया और उससे परामर्श किया कि ''मैं वहां जाऊं अथवा नहीं, इस संबंध में तुम्हारे परामर्श के अनुसार ही कार्य करूंगा।'' किंतु नीच मानसिंह ने उससे कहा कि ''आपको अभी कुछ दिनों यहीं ठहरना चाहिए, ुरि इस संबंध में निश्चय कर लिया जाएगा।'' तात्या ने ताड़ लिया कि मान सिंह को अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण करना है; किंतु इसपर भी वह यह समझता था कि मेरे संबंध में मान सिंह की नीयत में कोई अंतर नहीं आ पाया है। मान सिंह ने उससे कहा कि ''मेरे वापस लौटने तक आप उस स्थान पर रहो जहां मेरा एक व्यक्ति आपको ले जाएगा।'' उसके द्वारा बताए गए स्थान को सुरक्षित समझकर तात्या टोपे तीन दिन तक वहां रहा।'' तीसरा दिन हुआ और सहस्त्रों युद्धों में शत्रु को नाकों चने चबवानेवाला वीर मराठा सेनानी, जो अब तक अनेक प्राणघातक संकटों और कष्टों

में भी अपनी चतुरता और रण–कौशल के कारण शत्रुओं के हाथ में नहीं आ पाया था, उस विश्वासघाती मान सिंह द्वारा ही बंदी नवा दिया गया।

मान सिंह तात्या को वहां रहने का परामर्श देकर सीधी अंग्रेजों की शरण में गया था। उन्होंने तात्या को बंदी बनाने के लिए बंबई की अंग्रेजी सेना को इस विश्वासघाती के साथ भेजा था, तात्या के प्रति प्रत्येक भारतीय के मन में जो महान् आदर भावना विद्यमान थी, उसके कारण अंग्रेज किसी भारतीय पर विश्वास नहीं कर पाते थे। अतः बंबई के इन सैनिकों को केवल इतना निर्देश दिया गया था कि ''मान सिंह जिस अभियुक्त को बंदी बनाने का निर्देश दे, उसे तुम्हें बंदी बनाकर ले आना होगा।'' मान सिंह उन सैनिकों सहित पारौन के वनखंड में जा पहुंचा। तात्या को उसने तीन दिन पश्चात् ही वापस आने की बात कही थी और वह अपने कथनानुसार ठीक समय पर वापस आ पहुंचा था। जिस स्थान पर मान सिंह द्वारा भेजे गए आदमी द्वारा तात्या को ले जाया गया था, तात्या वहां विश्राम कर रहा था और जिस समय मान सिंह वहां पहुंचा उस समय वह प्रगाढ़ निद्रा में लीन था। नराधम मान सिंह ने अपने साथ लाए हुए शिकारी कुत्तों को इस नर केसरी पर छोड़ दिया था। तात्या के नेत्र जब खुले तो उसने अपने आपको अंग्रेजों के बंदी के रूप में पड़ा हुआ देखा।

यह घटना 7 अप्रैल, 1849 को अर्धरात्रि में घटित हुई। दूसरे दिन प्रातः काल ही उसे शिवपुरी में जनरल मीड की छावनी में कड़े पहरे के बीच ले जाया गया। यहां सैनिक न्यायलय लगा और उसमें तात्या के विरूद्ध ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने का आरोप लगया गया। बुधवार को इन आरोपों का उत्तर देते हुए तात्या ने कहा–

''मैंने जो भी कार्य किया है, अपने स्वामी के निर्देशानुसार किया है। कालपी तक मैंने नाना साहब के आदेशों के अनुसार ही आचरण किया। तदुपरांत मैंने राव साहब का आदेश माना। न्याय के अनुसार लड़े गये युद्धों अथवा मुठभेड़ों को छोड़कर मैंने अथवा नाना साहब ने एक भी यूरोपियन पुरूष, स्त्री अथवा बालक की निरर्थक हत्या नहीं की और न ही किसी को फांसीपर ही लटकाया। इससे अधिक मैं इस न्यायालय के समक्ष अन्य कोई भी बात कहने को तैयार नहीं हूं।'' अंग्रेज के विशेष अनुरोध पर तात्या ने क्रांति के पुनीत प्रारंभ से लेकर उस दिन तक ही घटनाओं का प्रतिदिन का वृत्त भी संक्षेप में बता दिया। लिपिक ने उसके द्वारा दिए गए संपूर्ण विवरण को लिपिबद्ध कर लिया। तदुपरांत इस दैनिक कार्यक्रम और वक्तव्य को उसे पढ़कर सुनाया गया और उसे सुनने के पश्चात् तात्या टोपे ने उसके नीचे सुंदर रोमन अक्षरों में लिख–दिया TATIA TOPE । किंतु अंग्रेजों द्वारा उससे जो प्रश्न पूछे गए उनका उत्तर में उससे कोई प्रश्न पूछते थे तो वह बड़ी ही शांतिपूर्ण मुद्रा में उत्तर देता था, ''मुझे पता नहीं।''

तीन दिन तक तात्या से इसी प्रकार पूछताछ की जाती रही। भारतीयों के झुंड–के–झुंड इस महान् वीर के दर्शनार्थ एकत्र होते थे, किंतु उन्हें दर्शन करने से वंचित रखा जाता था। जिनको उसे दर्शन करने की अनुमति प्राप्त हो जाती थी वे बड़े ही आदर सहित नतमस्तक होकर उसका अभिवादन करते थे। जिस समय अंग्रेजों ने तात्या को सूचित किया कि सैनिक न्यायलय उसके मामले में निर्णय देगा तो उसी समय उन्होंने यह भी कहा था कि वह अपने बचाव के लिए आवश्यक प्रमाण संगृहीत कर ले। उसी समय इस महा वीर क्रांति योद्धा ने अंग्रेजों को एक ही उत्तर दिया, ''मैंने अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध किया है और मैं भलीभांति जानता हूं कि मुझे आत्माहुति देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। मुझे तुम्हारे न्यायालय के निर्णय अथवा जांच से कोई सरोकार नहीं हैं।'' इस वीर मराठा के हाथों में बेड़ियां पड़ी हुई थीं, किंतु इस पर भी अपने हाथों को ऊंचा करते हुए इस महान् योद्धा ने घोषणा की–''इन हथकड़ियों से मुक्त होने की मुझे एकमात्र आशा यही है कि तोप का गोला या फांसी का फंदा चूमते ही ये दूर हो जाएंगी। परंतु मैं तुम्हें एक बात बता देना चाहिता हूं कि ग्वालियर में मेरा परिवार रह रहा है और उसका मेरे इन कार्यो।से तनिक सा भी संबंध नहीं है। अतः मेरे कार्यों के बदले मेरे पिताजी अथवा पारिवारिक जनों को तनिक सा भी त्रास देना उचित नहीं होगा।''

जांच–पड़ताल और पूछताछ का नाटक समाप्त हो गया। तात्या टोपे को फांसी का दंड सुना दिया गया। दोपहर के चार बजे थे कि उसे तीसरी बंगाल गोरी सेना के कड़े पहरे में वध–स्तंभ के समीप लाया गया। फांसी के तख्ते के समीप आने पर सैनिकों ने व्यूह बनाकर इस महान् सेनानी को चारों ओर से घेर लिया। इस अवसर पर भारतीय पैदल सैनिक, अश्वारोही तथा अन्य दर्शकों की एक भारी भीड़ वहां एकत्र हो गई थी। तात्या ने अंग्रेजों से पुनः एक बार आग्रह किया कि उसके वृद्ध पिताजी को किसी प्रकार से भी त्रस्त न किया जाए। तात्या को दंड सुना दिया गया। तात्या के पैरों में पड़ी बेड़ियां काट दी गई। वह नरपुंगव निस्संकोच होकर धीरे–धीरे वध–स्तंभ तक पहुंचा और बड़ी ही तीव्र गति से सीढ़ियों पर जा चढ़ा। नियमानुसार अब वधिक उसके हाथ–पैर बांधने के लिए वहां पहुंचे। उस समय तात्या ने हंसते हुए उन्हें कहा, ''ऐसा करने की किंचित मात्र भी आवश्यकता नहीं है।'' यह कहकर उसने स्वयं फांसी के फंदे को हार के समान अपने गले में पहन लिया। फंदा कसा गया और एक झटके के साथ तख्ता गिर पड़ा।

और इस प्रकार पेशवा का राजनिष्ठ सेवक, सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर का महान् नायक, हिंदुस्थान का निर्भीक वीर, धर्मरक्षक, देशाभिमानी और कुशल सेनापति तात्या टोपे का निर्जीव शरीर अंग्रेजों द्वारा निर्मित फांसी की टिकटिकी पर झूलता दृष्टिगोचर हुआ। वध मंच रक्त से सराबोर हो गया तो संपूर्ण देश के नेत्रों से अश्रुधाराएं प्रवाहित हो उठीं। समग्र हिंदुस्थान ही अश्रुओं से भीग गया। स्वदेश की सेवा के लिए उसने महान्

और अवर्णनीय कष्टों को सहन किया था, यही तात्या का एकमात्र दोष था। उसे इस देशभक्ति का पारितोषिक एक विश्वासघाती द्वारा उसके साथ किए गए विश्वासघात और नीचता के रूप में मिला था। अंग्रेजों ने उसे किसी रक्तपिपासु दस्यु के समान वधस्तंभ पर लटकाया था। है महावीर तात्या! तुमने इस अभागे देश में जन्म ही क्यों ग्रहण किया? इन विश्वासघाती नराधमों और महामूर्खों की स्वतंत्रता के लिए तुमने संघर्ष का आह्वान क्यों किया? तात्या टोपे, तुम्हारे लिए हमारे नेत्रों से जो अश्रुधाराएं प्रवाहित हो रही हैं, क्या तुम उन्हें देख रहे हो? हां, तुम्हें रक्तदान का प्रतिदान हम अभागे और निर्बल अश्रु बहाकर ही तो दे रहे हैं। हे नरवीर! तुमने भी यह कैसा घाटे का सौदा किया!

तात्या की निष्प्राण देह को फांसी के फंदे से झूलता हुआ देखकर अपने पराक्रम पर समाधान व्यक्त करते हुए शूरवीर अंग्रेज अब वापस लौट रहे थे। तात्या की नश्वर काया इसी स्थिति में भगवान् सूर्यदेव के अस्ताचलगामी होने तक लटकती रही। वहां खड़े पहरेदार भी जब चले गए तब भीड़ को चीरते हुए यूरोपियन प्रेक्षक आगे बढ़े और उनमें इस महान् राष्ट्रभक्त के केशों के गुच्छे स्मृतिस्वरूप अपने पास रखने की पहल करने की होड़ लग गई।

सन् 1857 के स्वातंत्र्य युद्ध के इस होमकुंड में तात्या के बलिदान के रूप में यह अंतिम आहूति पड़ गई थी।

इस प्रकार वह भयंकर ज्वालामुखी जिसने अपने विस्तीर्ण मुख के क्रोध के आवेग में मांस, रक्त, लाखों, गड़गड़ाहटों और दग्ध लाल–लाल उष्ण लावा रस को उगला था, अब अपना मुख बंद कर रहा था। उसकी तलवार रूपी जीभें अब पुनः म्यान रूपी जबड़ों में समाती जा रही थीं। अब उसकी कड़कती बिजलियां और कर्णभेदी गड़गड़ाहट तथा गर्जनाएं, प्रचंड वेग और बवंडर व उग्रता सभी मदारी के पिटारे के समान वायुमंडल में विलुप्त हो रहे थे। ज्वालामुखी का मुख बंद हो गया। उसके धरातल पर पुनः हरियाली उगती दृष्टिगोचर होने लगी। उसपर पुनः कृषि–कार्य आरंभ हो गया। पुनः शांति, सुरक्षा और प्रेमभाव उभरने लगा। और अब इस ज्वालामुखी का पृष्ठभाग इतना सुकोमल और हरा–भरा दिखाई देने लगा कि कोई यह आशंका भी नहीं कर सकता कि उसके नीचे एक प्रचंड ज्वालामुखी विश्राम कर रहा है।

प्रकरण—3

समारोप

अब यह ज्वालामुखी कुछ समय के लिए तो शांत हो ही गया है। फिर भी मैं समझता हूं कि पाठकों को यह जानने की इच्छा अवश्य होगी कि फीरोजशाह और राव साहब का तात्या के इस आत्मार्पण के उपरांत क्या बना?

तात्या के विदा ले जाने के एक मास पश्चात् तक भी राव साहब पूर्ण वीरता सहित लड़ते रहे और जब कोई अन्य विकल्प न रह गया तो वे गुप्त रूप से जंगल की ओर निकल गए। किंतु तीन वर्ष के अज्ञातवास के पश्चात् वे बंदी बना लिये गए और उन्हें मृत्युदंड सुनाकर 20 अगस्त, 1862 को फांसी पर चढ़ा दिया गया। केवल फीरोजशाह ही अब वेश बदलकर घूमता रहा और सुदैव से वह भी हिंदुस्थान से बाहर निकल जाने में सफल हो गया। वह ईरान पहुंचा तथा करबला में जाकर रहने लगा।

अब तक हम सन् 1857 के क्रांति—युद्ध का बारंबार उल्लेख करते रहे हैं। उससे अनेक प्रश्न भी हमारे समक्ष आ खड़े होते हैं। इनमें से भी एक प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या क्रांति—युद्ध की संपूर्ण सिद्धता होने से पूर्व ही अकस्मात् इसका विस्फोट हो गया था? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है—नहीं। सन् 1857 की इस क्रांति के लिए जितनी तैयारियां और सिद्धताएं की गई थीं उतनी तो बड़ी—बड़ी शक्तिशाली सामंत और राजा—महाराजा, उच्च पदस्थ पुलिस अधिकारी ही नहीं, अपितु नगर—के—नगर ही क्रांति

शंखनाद करने का स्वेच्छा सहित संकल्प व्यक्त कर रहे थे तो ऐसा कौन होगा जिसे तत्काल विप्लव का पुनीत प्रारंभ करने के संकोच की अनुभूति होगी? यह एक सुपरिचित तथ्य है कि किसी भी कार्य के आरंभ में ही अवरोध और बाधाएं उपस्थित होती हैं, उनपर विजय प्राप्त कर लिये जाने के पश्चात् संपूर्ण देश ही अपने आप उठ खड़ा होता है। इस दृष्टि से यह तथ्य सुस्पष्ट है कि क्रांतिकारियों के नेताओं ने किसी प्रकार के भी उतावलेपान का परिचय नहीं दिया था। वस्तुतः इतनी अनुकूल परिस्थिति में जो जाति खड़ी नहीं हो पाएगी वह तो कदापि विद्रोह नहीं कर सकेगी।

परंतु अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि फिर यह क्रांति क्यों असफल हो गई? इस असफलता के छोटे—मोटे कारणों की चर्चा तो इस ग्रंथ में यथायोग्य स्थानों पर की ही जा चुकी है । किंतु इस महान् विलप्व की असफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि यद्यपि क्रांति की पर्याप्त तैयारी की गई थी, किंतु तदुपरांत उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों का सामना कैसा किया जाएगा, इस संबंध में कोई आकर्षक और सुव्यवस्थित व्यवस्था नहीं की गई थी। अंग्रेज सत्ता को उखाड़कर नष्ट करने में तो सभी एकमत थे, किंतु उसके पश्चात् क्या होगा, इस संबंध में कोई सुनिश्चित योजना नहीं बनाई जा सकी थी। किंतु पहल के समान ही घातक मतभेदों और मुग्लों तथा मराठों के पारस्परिक विवादों और वैरपूर्ण वायुमंडल के पुनः उद्भव का भय लोगों में व्याप्त था। इसलिए सर्वसाधारण में यह भावना व्याप्त हो गई थी कि व्यर्थ में ही अपना रक्त क्यों प्रवाहित किया जाए। उपर्युक्त आशंका के संदर्भ में ऐसी भावना का उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक भी तो नहीं था; क्योंकि इसी तानाशाही और अन्यायपूर्ण सत्ता से क्षुब्ध होकर तो जनता ने विदेशी शासन को पहले अपने ऊपर लादा था। क्रांति का प्रथम भाग अर्थात् विध्वंस का कार्य तो बड़ी सुगमता सहित पूर्ण हो गया; किंतु जब रचनात्मक और विधायक गतिविधियों का प्रारंभ होना था तो लोगों में पारस्परिक मतभेद और अविश्वास पुनः उभर आया। यदि जनता के अंतःकरण को आकर्षित करनेवाला और उसे प्रेरित करनेवाला कोई नवीन ध्येय और आदर्श उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता तो क्रांति की प्रगति के समान ही उसका अंत भी उसके पुनीत प्रारंभ के समान ही यशस्वी और प्रभावशाली सिद्ध होता ।

यदि लोगों को इस तथ्य से पूर्णतः अवत करा दिया जाता कि प्रलय के तुरंत पश्चात् ही पुनः नया सृजन और नवनिर्माण होता है तब क्रांति निश्चित रूप से ही सफलता प्राप्त करती। किंतु निर्माण तो दूर रहा, संहार कार्य भी तो हिंदुस्थान पूर्णरूप से नहीं कर पाया। इसका कारण क्या था? कारण यही था कि राष्ट्र का कंठ अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु घोंटने की नीच प्रवत्ति भारत से पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो पाई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रांति की असफलता के मुख्यतः दो ही कारण थे। प्रथम यह कि अपनों के निकृष्टतम स्वराज्य की अपेक्षा अंग्रेजों का शांतिपूर्ण शासन भी स्वदेश के लिए अधिक हानिकारक है, इस तथ्य को भलीभांति न समझने के कारण ही अनेक मूर्खों द्वारा स्वदेश से द्रोह किया गया। क्रांति क असफलता का दूसरा प्रमुख कारण यह था कि

स्वदेशवासियों के विरूद्ध विदेशी शत्रुओं को किंचित् मात्र भी सहायता न देने की प्रेरणा प्रदान करनेवाली प्रामाणिकता भी लोगों में नहीं थी। इस कारण भी उन्होंने स्वदेश बंधुओं से ही विश्वासघात भी किया।[176] इस प्रकार क्रांति की असफलता का संपूर्ण पाप उन देशद्रोहियों के ही सिर पर आ जाता है। यदि अधिक स्पष्ट, अधिक सरल, अधिक आकर्षक आदर्श उस समय जनता के समक्ष होता तो ये विद्रोही ही देशभक्त के रूप में परिणत हो जाते; क्योंकि यदि देशभक्ति ही लाभदायक और स्वार्थ की पूर्ति में साधक सिद्ध हो तो जान–बुझकर देशद्रोह का कलंकपूर्ण कृत्य कौन करेगा? वास्तव में महान् यश के भागीदार वे हैं जिन वीरों ने इस तथ्य को हृदयंगम कर स्वातंत्र्य समर में भाग लिया था कि अपने निकृष्ट स्वशासन से भी विदेशी सत्ता और शासन निकृष्टतम होती है, फिर चाहे वह स्वराज्य गणतंत्र हो अथवा एकतंत्र, राजतंत्र हो अथवा अराजकतापूर्ण। स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने का एकमात्र उद्देश्य अपने देश को समृद्ध करना मात्र ही नहीं होता अपितु स्वतंत्रता में ही आत्मिक सुख की उपलब्धि होती है और लाभ अथवा हानि की अपेक्षा आत्मसम्मान ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। पराधीनता के स्वर्णिम पिंजरे की अपेक्षा स्वतंत्रता का वन भी सहस्त्र गुना श्रेष्ठ है। जिन्होंने इन सिद्धातों को भलीभांति समझ लिया, अपने देश और धर्म के प्रति अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन किया, स्वधर्म और स्वराज्य के लिए अपने हाथों में प्रति अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन किया, स्वधर्म और स्वराज्य के लिए अपने हाथों में शस्त्र ग्रहण किया, यश के लिए नहीं अपितु केवल कर्तव्य–पूर्ति के हेतु मृत्यु को भी आलिंगन करना श्रयेस्कर समझा, उनके पावन नामों का सदैव ही गौरव सहित स्मरण किया जाता रहेगा। हमारा देश उन लोगों के नाम कदापि स्मरण नहीं करेगा जिन्होंने संकोच अथवा लापरवाही के कारण स्वतंत्रता के युद्ध में सहयोग नहीं दिया अथवा जो शत्रुओं से जा मिले और जिन्होंने अपने ही देशबंधुओं के

[176] Yet it must be admitted that, with all their courage, they (the British) would have been quite exterminated if the natives have been all altogether hostile to them. The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic, but the natives shared their glory, and they y their aid and presence rendered the defence possible. Our sieze of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quite in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrisons were helped, fed and served by the natives, as our armies were attended and strengthened by them in the field. Look at us all, here in campt at this and grooming them, feeding the elephants] managing at transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldier's food, cleaning their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declared that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, Doli bearers, hospital men, and other dependants. Gurkha guides did good service at Delhi and Bengal artillerymen were as much exposed as the Europeans. - Russell's, 'my diary in India'

विरूद्ध संघर्ष कर अपने नाम को कलंकित कर दिया। सन् 1857 की क्रांति से हिदुस्थान की एकता, स्वतंत्रता व जनशक्ति तथा जागृति की दिशा में कितनी प्रगति हुई है, इसका यह मापदंड थी।[177]

सन् 1857 की क्रांति की असफलता के लिए दोषी वे हैं जिन्होंने अपने आलस्य और प्रमाद तथा स्वार्थपरता और विश्वासघात से इसपर मर्मांतक प्रहार किया। उन महान् वीरों को इसकी सफलता के लिए दोषी सिद्ध करने का दुःसाहस किसी को नहीं करना चाहिए, जिन्होंने अपना ही उष्ण रक्त प्रवाहित करनेवाली तलवारों को उठाकर उस महान् पूर्व प्रयोग के हेतु क्रांति के अग्निमय रंगमंच पर प्रवेश किया था और जो प्रत्यक्ष मृत्यु का भी आलिंग्न कर आनंद से झूम उठते थे। वे न तो उन्मादी थे और न ही विक्षिप्त, न ही वे विचारहीन थे और न ही पराजय में हाथ बंटानेवाले। उन्हें कोई भी दोष देना उसके साथ अन्याय करना है। वस्तुतः उन्हीं की पावन प्रेरणा से भारत माता की गहन निद्रा भंग हुई थी और पराधीनता की श्रंखलाओं को टूक–टूक कर देने के लिए संपूर्ण हिंदुस्तान जाग्रत् हो उठा था। किंतु विधि की विडंबना कि जहां उसका एक हाथ अत्याचारियों के सिर पर मर्मांतक प्रहार कर रहा था वहां दूसरा हाथ स्वयं माता के वक्षस्थल में छुरा घोंपने का कलंकित कृत्य करने में संलग्न था। घायल भारत माता एक बार पुनः तड़प उठी और भू–लुंठित हो गई। इन दोनों श्रेणी के पुत्रों में से कौन क्रूर, विश्वासघाती तथा तिरस्कार योग्य है और कौन वीर, साहसी, देशभक्त तथा सम्माननीय–यह सुस्पष्ट ही हैं।

दिल्ली का सम्राट् बहादुरशाह एक महान् कवि भी था। क्रांतियुद्ध के रंगमंच पर प्रवेश करने के पूर्व ही उसने एक गज़ल की रचना की थी। उसने स्वतः यह प्रश्न किया था–

दमदमे में दम नहीं अब खैर मांगो जान की।

ऐ ज़फर! ठंडी हुई शमशीर हिंदुस्थान की।।

177 ''भारतीय क्रांति से इतिहासकारों को अनेक शिक्षाएं मिल सकती है; किंतु उसमें इससे बढ़कर कोई अन्य महत्त्वपूर्ण शिक्षा नहीं है कि भारत में ब्राह्मण और शूद्र, हिंदू और मुसलमान हमारे (अंग्रेजों के) विरूद्ध संगठित होकर क्रांति कर सकते हैं और हमारे अधिराज्य के संबंध में यह मानना धोखे से खाली नहीं है कि विभिन्न धार्मिक रीति–रिवाजों का परिपालन करनेवाली जातियों से जब तक यह देश परिपूर्ण है तब तक हमारा यह राज्य शांतिपूर्ण और स्थिर बना रहेगा; क्योंकि ये लोग एक–दूसरे के रहन–सहन, रीति रिवाज और व्यवहारों को भलीभांति समझते ही नहीं बल्कि उनके प्रति आदर–भावना रखकर उनमें सहयोग भी प्रदान करते हैं। सन् 1857 की इस क्रांति ने हमें यह स्मरण करा दिया है कि हमारा आधिपत्य एक पतली परत पर आधारित है और समाज–सुधार तथा धार्मिक क्रांति के विस्फोटों से यह परत किसी भी समय नष्ट हो सकती है।''

.फॉरेस्ट के ग्रंथ की भूमिका से

(–प्रतिदिन ही तुम थकते चले जा रहे हो। हे सम्राट्! तुम अपने प्राणों की रक्षा के लिए प्राथेना करो (अंग्रेजों से), क्योंकि अब भारत की तलवार सदैव के लिए टूक–टूक हो गई हैं।)

उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर भी इन शब्दों में दिया–

ग़ाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।

तख्ते लंदन तक चलेगी तेग हिंदुस्थान की।।

(–हमारे वीरों के अंतःकरण में जब तक आत्मविश्वास और देशभक्ति की भावना विद्यमान है तब तक हिंदुस्थान की पावन कृपाण लंदन तक भी वार करती रहेगी।)